राम-कथा

गोपाल उपाध्याय

राम-कथा

(नाटक रूप में)
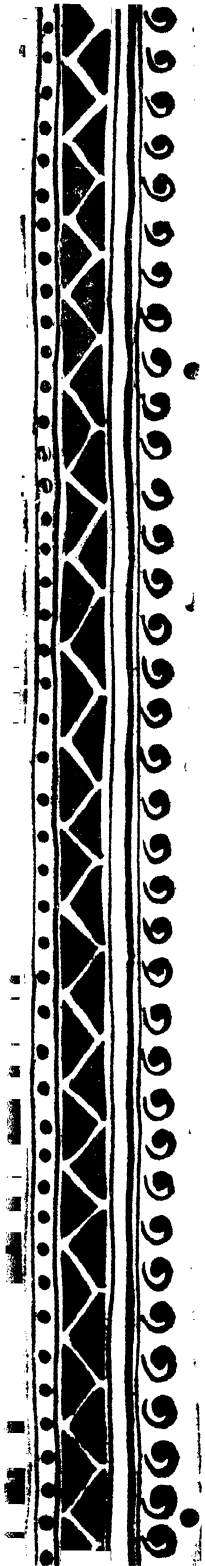
सामयिक प्रकाशन

३५४३ जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्लो-११०००२

फोन : ३२८२७३३

गोपाल उपाध्याय
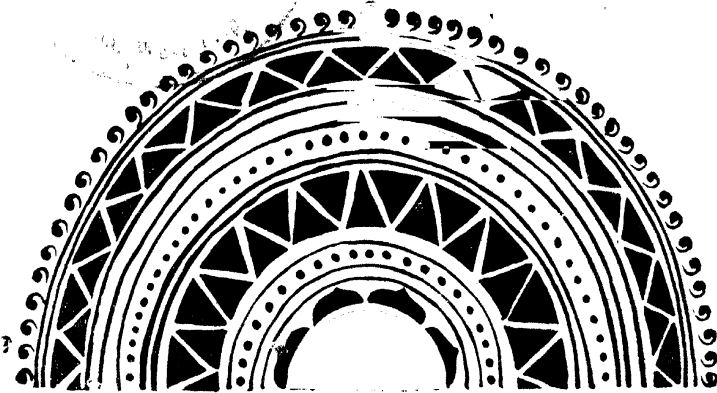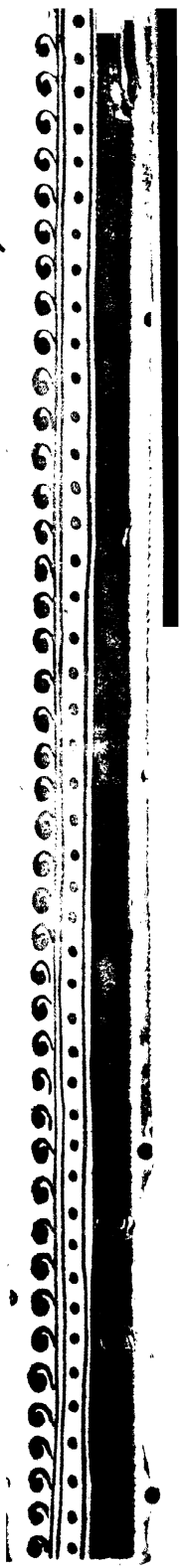
प्रकाशक : जगदीश भारद्वाज
सामयिक प्रकाशन
३५४३, जटवाड़ा, दरियागंज
नई दिल्ली-११०००२

कलापक्ष : तूलिकि

मुद्रक : शान प्रिंटर्स, शाहदरा
दिल्ली-११००३२

RAM-KATHAA (Play) by Gopal Upadhyay

श्री राम की यह कथा
भारत की उस महान् जनता को
जिसका साहस, संघर्ष और विश्वास
आस्था का सम्बल है

॥ श्रीहरिः ॥

प्राक्कथन

भगवान् श्रीराम का लोकविश्रुत पावन चरित्र भारतीय संस्कृति का मेरुदंड है। महर्षि वाल्मीकि के कथनानुसार वेदवेद्य परम पुरुष श्रीमन्नारायण श्री राम बनकर मानव रूप में अवतीर्ण हुए हैं और स्वयं वेद राम-कथा रूप में प्रादुर्भूत हुए हैं—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षात् रामायणात्मना॥

इस बात को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि मनुष्य के भौतिक और सांस्कृतिक अभ्युत्थान के लिए जिन सिद्धान्त-सूत्रों का वेदों में वर्णन किया गया है, रामचरित्र उनकी व्यावहारिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। देश, जाति एवं काल की सीमाओं को लाँघ कर आज विश्व स्तर पर राम-कथा का प्रचार-प्रसार इस तथ्य को द्योतित करता है कि श्रीराम अब एक सार्वभौम सत्य के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके हैं। यही कारण है कि सामान्य से असामान्य तक प्रायः सभी साहित्यकारों ने आध्यात्मिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक किंवा व्यावहारिक आदि विभिन्न विधाओं के आदर्श स्वरूप में श्रीराम को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाकर स्वयं को महिमामण्डित किया है। श्रीरामचरित्र के प्रति कला-कोविदों का दुर्निवार आकर्षण और उसे गाकर स्वयं को धन्य बना लेने का गौरव श्री मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में इस प्रकार मुखरित हुआ है—

राम! तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है॥

प्रसन्नराघवकार का तो यहाँ तक कहना है कि श्रीराम को अपनी सूक्तियों का पात्र बनाने के लिए कवि विवश हैं, इसमें उनका कुछ भी दोष नहीं है। वस्तुतः श्रीराम में इतने गुण समाविष्ट हैं जो रचनाकारों को अपनी ओर बरबस आकृष्ट कर लेते हैं। विचारपूर्वक देखा जाय तो यह 'दोष' उन्हीं गुणों का है—

स्वसूक्तीनां पात्रं रघुतिलकमेकं कलयतां
कवीनां को दोषः स तु गुणगणानामवगुणः॥

राम-कथा ऐतिहासिक सत्य है!!

राम-कथा के इस लोकमंगलकारी स्वरूप के असहिष्णु कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने तथा उनकी जठन चाटने में स्वयं को गौरवान्वित मानने वाले कतिपय भारतीय

विवेचकों ने भी श्रीराम-चरित्र को काल्पनिक सिद्ध करने की दम्भपूर्ण कुचेष्टा की है। पश्चिमी पण्डितों में प्रो० वेबर ने तो यूनानी कवि होमर के 'इलियड' नामक महाकाव्य के आधार पर रामायण लिखा जाना बता कर दुस्साहस की चरम सीमा ही लाँघ डाली है। क्योंकि 'इलियड' तो सिकन्दर के आक्रमण (३२६ ई०पू०) के बाद ही भारत में प्रसिद्ध हो पाया जबकि श्रीराम-चरित्र पाश्चात्य समालोचकों की दृष्टि में ५०० ई० पू० तथा भारतीय मनीषियों के विवेचनानुसार साढ़े नौ लाख वर्ष पूर्व घटित होने वाला ऐतिहासिक सत्य है।* पण्डित-वरेण्य श्री नीलकण्ठ ने तो 'मन्त्र रामायण' नामक ग्रन्थ लिख कर राम-कथा की वेदमूलकता सप्रमाण सिद्ध की है। अस्तु।

श्री गोपाल उपाध्याय ने राम-चरित्र को ऐतिहासिक तथ्य एवं शाश्वत सत्य के रूप में स्वीकार करते हुए प्रस्तुत 'राम-कथा' का प्रणयन किया है। श्री वाल्मीकि रामायण और श्री रामचरितमानस को मुख्यतया आधार बनाकर नाटक रूप में संवाद-शैली में लिखी गई यह 'राम-कथा' अपनी सरस, सरल, सुबोध और प्रवाह-पूर्ण भाषा के कारण निस्सन्देह रूप से राम-कथा-रसिकों को अधिकाधिक आह्लादित करेगी। श्री उपाध्याय ने अपनी 'राम-कथा' में महर्षि वाल्मीकि के सजग मर्यादाबोध तथा तुलसी के अध्यात्ममूलक नीतिबोध का कलात्मक सन्तुलन बनाया है। क्षत्रिय-पुत्र होने के नाते श्रीराम और लक्ष्मण द्वारा 'ऋषिपत्नी अहल्या के चरण छूने में वाल्मीकि की जागरूक मर्यादा-भावना (पृष्ठ ७२) तथा समुद्र-प्रार्थना के समय तुलसी का प्रबल नीतिबोध (पृष्ठ ३१३) उक्त सन्तुलन के नमूने के रूप में देखे जा सकते हैं।

कभी भी असामयिक न होने वाले, मणिदीप की भाँति सर्वदा देदीप्यमान रहने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम के लोक-पावन चरित्र का 'राम-कथा रूप में स्पृहणीय प्रकाशन करके सामयिक प्रकाशन ने अपने नाम को अन्वितार्थ किया है, एतदर्थ वह धन्यवाद का पात्र है। श्रीरस्तु।

राधाष्टमी-२०४४
धर्मधाम
१०३-ए, कमलानगर
दिल्ली-११०००७

—प्रेमाचार्य शास्त्री
शास्त्रार्थ महारथी
एवं
राम-कथा-मर्मज्ञ

* 'भारतवर्ष का इतिहास', श्री गंगाशंकर मिश्र, पृष्ठ २६।

लेखकीय

रामायण की रचना संसार की पहली काव्य-रचना है और साहित्य का प्रारम्भ काव्य से माना जाता है। काव्य का पहला छन्द या श्लोक महाकवि वाल्मीकि ने क्रौंचबध होने पर रचा था, जिसे साहित्य का सबसे पहला सृजन माना जाता है। यह उल्लेख मैं यहाँ पर विशेष रूप से कर रहा हूँ जिसका आगे स्पष्ट प्रयास है।

मुनि वाल्मीकि अपने शिष्य भरद्वाज से कलश और वल्कल मँगाकर तमसा नदी के तट पर कीचड़ रहित स्वच्छ जल में स्नान करने जा रहे थे। विशाल वन की रमणीक शोभा थी, वहीं क्रौंच पक्षियों का एक जोड़ा, जो कभी एक-दूसरे से अलग नहीं होता था, विचरण कर रहा था। वे पक्षी बड़ी मधुर बोली बोल रहे थे। ऋषि वाल्मीकि उस मनोरम जोड़े के प्रेम-कलरव को सुनकर चकित हो रहे थे। उसी समय एक निषाद ने उनमें से एक पक्षी को अकारण ही बाण से मार दिया। वह पक्षी खून में लथपथ होकर वहीं भूमि पर गिरकर पंख फड़फड़ाता हुआ तड़पने लगा। अपने पति की हत्या हुई देखकर उसकी पत्नी क्रौंची करुणा-जनक आर्त स्वर में चीत्कार कर उठी। हमेशा अपने पति के साथ आमोद-प्रमोद के रस में डूबी रहने वाली मैथुनरता क्रौंची के लिए यह आघात असहनीय हो उठा। वज्रपात से भी अधिक कठोर, अधिक कुलिश (इस दृश्य की जरा कल्पना कीजिए) उस नारी की हृदय-विदारक करुणा मुनि वाल्मीकि से, कवि-हृदय मुनि से देखी न गयी। करुणाकलित ऋषि ने यह अधर्म हुआ है ऐसा अनुभव करते ही निषाद को सम्बोधित कर कहा---

मा निषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्च मिथुनादेकवधीः काममोहितम् ॥

निषाद ! तुझे जीवन में कभी भी शान्ति न मिले। क्योंकि तूने क्रौंच के जोड़े में से एक की, जो काम से विमोहित था, अकारण ही, बिना अपराध हत्या कर डाली। किन्तु यह कह जाने के बाद अपने मुख से निकले शब्दों पर जब मुनि ने विचार किया तो उन्होंने अपने शिष्य से कहा कि तात ! शोक से पीड़ित मेरे मुख से जो वाक्य निकल पड़ा है, यह चार चरणों में गुँथा हुआ है। 'पादबद्धोऽक्षर समस्तन्त्री लय समन्वितः। शोकार्त्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा।' इसके प्रत्येक चरण में सम, बराबर, अर्थात् आठ-आठ अक्षर हैं तथा इसे वीणा की लय पर गाया भी जा सकता है। गेय है यह, अतः मेरा यह वचन श्लोक-रूप अर्थात् श्लोक नामक छन्द में आबद्ध काव्य-रूप या यशःस्वरूप होना चाहिए अन्यथा नहीं।

शिष्य ने प्रसन्नता से कहा—'हाँ, आपका यह वाक्य श्लोक-रूप ही होना चाहिये।' ब्रह्मा जी, जो सृष्टिकर्ता और सरस्वती के श्री थे, ने ऋषि वाल्मीकि से कहा कि मुनि, तुम्हारे मुख से निकला हुआ यह वाक्य जो छन्दबद्ध है, श्लोक-रूप ही होगा। 'रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम। धर्मात्मनो भगवतो लोके रामस्य धीमत: ।। वृत्तं कथयधीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्, नारद जी ने तो राम-कथा वाल्मीकि जी को बता ही रखी थी किन्तु ब्रह्मा जी ने कहा—'श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और राक्षसों का गुप्त-प्रकट जो भी चरित्र है उसे इन छंदों में कहिये। क्योंकि बिना राक्षसों की कथा के राम-कथा कैसे होगी।' विश्वास दिलाया कि इन श्लोकों में, छंदों में जो कथा आप लिखेंगे वह झूठ नहीं होगी और तब तक इस कथा का प्रचार पृथ्वी पर होता रहेगा जब तक पृथ्वी पर नदियाँ रहेंगी, पर्वतों की सत्ता रहेगी। यही था विश्व में काव्य की प्रथम रचना का प्रारम्भ। सोचने की बात यह है कि क्या कोई ऐसी रचना संसार में और है, कोई ऐसा कथानक दूसरा है जो सहस्राब्दियों के बाद भी पुराना नहीं पड़ता; जो आज की कहानी लगता है; जो बार-बार पढ़े जाने, अभिनीत होने, सुने जाने के बाद भी नया-नया सा ही लगता है; उसमें जितना खोजिये उतना ही अधिक मिलता है। इसमें काव्यात्मकता तो है ही, औपन्यासिकता भी है, और नाट्य कलात्मकता भी।

इस नाटक की रचना का प्रयोजन क्या है?

इस नाटक को लिखने का मेरा प्रयोजन क्या है? यह एक स्वाभाविक प्रश्न है। आज वाल्मीकि 'रामायण' से लेकर तुलसीदास जी के 'रामचरितमानस' तक और उसके अतिरिक्त भी तमाम ग्रन्थ हैं, पुस्तकें हैं जिनमें राम का जीवन इस नाटक की अपेक्षा अधिक विस्तार से, अधिक प्रांजल रूप में और अधिक सम्प्रेषणीयता के साथ पाठकों को उपलब्ध है। फिर मैंने इसे गद्य नाटक के रूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता क्यों महसूस की?

वास्तव में राम-कथा एक ऐसे नायक की कथा है जो हजारों साल से जीवित है और हजारों साल तक जीवित रहेगा। वह जल की तरह है—समुद्र में अपनी तरह से, नदी में अपनी तरह से, नहर में अपनी तरह से। पोखर में अपनी तरह से, नल में अपनी तरह से और अंजलि में अपनी तरह से। जहाँ भी है, जैसे भी है, वह है तो जल ही, चाहे वह हिमालय में बर्फ की तरह है या आँख में आँसू की तरह। हर किसी को यह छूट है कि वह उसे किस तरह से लेता है और किस तरह से उसका उपयोग करता है या किस रूप में उसे पाता है। मुझे राम का चरित्र ऐसा ही लगता है। उसे अपने-अपने ढंग से ग्रहण किया जा सकता है और अपने-अपने ढंग से व्यक्त किया जा सकता है। आज के सामाजिक संदर्भों में, आज

की ज्वलन्त समस्याओं में, आज के राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में मुझे लगा कि राम की जीवनी ऐसी है जो ज्यादा कारगर ढंग से लोगों तक न केवल पहुँच सकती है बल्कि उन लोगों में भी मानसिक चेतना और परिवर्तन ला सकती है, जो कुम्हार के पक्के घड़े की तरह कच्ची और नयी मिट्टी को अपने में नहीं मिला सकती।

हमारी सांस्कृतिक पहचान का स्रोत

सबसे पहली बात तो यह है कि इसकी जड़ें हमारी प्राचीन संस्कृति से गहराई में जुड़ी हैं। अपनी सांस्कृतिक पहचान खोये बिना ही हम आज के समाज को जीने की जिजीविषा दे सकते हैं, उसकी अलग पहचान बरकरार रख सकते हैं। दूसरी उससे भी बड़ी बात यह है कि राम-कथा हजारों सालों के इस दीर्घ अन्तराल में एक धार्मिक संस्कार बनकर इस देश के लोगों के मन पर (केवल हिन्दुओं के मन पर ही नहीं) एक जीवनी शक्ति की तरह छा गयी है। हाय राम, हरे राम, उई राम, राम हो राम, अरे राम-राम आदि किसी भी शुभ-अशुभ परिस्थिति को देखते-सुनते ही हमारे मुख से अनायास ही साँस की तरह उच्छ्-वासित हो जाता है। क्यों होता है ऐसा ? यदि सोचिये तो इसका कारण है कि हमारे रक्त में, हमारी साँस में, हमारी चेतना में जन्म से ही राम की कथा, राम का प्रभाव, राम का दुःख, राम की क्षमता, राम की समर्थता, राम का सुख, राम का कर्तव्य, राम का न्याय रच-बस गया है। तीसरी बात यह है कि राम का सम्पूर्ण कथानक कल्पना की तरह नहीं लगता, सत्य लगता है। हमारे बीच घटता-सा, घट रहा-सा। राम हमें अशोक, चन्द्रगुप्त, नन्द की तरह के राजा नहीं लगते। राम हमें बाबर, अकबर, औरंगज़ेब की तरह के बादशाह जैसे भी नहीं लगते। राम हमें महारानी विक्टोरिया, वारेन हेस्टिंग्ज, वाशिंगटन जैसे शासक भी नहीं लगते। और जब राम लंका में पहुँचते हैं तो हमें सिकन्दर या नैपोलियन जैसे भी वह नहीं लगते। यह एक ऐसी कथा है कि राम हमें नितान्त अपने लगते हैं, अपने घर के जैसे। राम का बचपन अपने घर के बच्चे की तरह लगता है तो राजकुमार से राजा होने तक की उनकी सारी यात्रा अपने परिवार के ही किसी सदस्य की तरह लगती है। उनका दुःख हमारा दुःख बन जाता है और उनका सुख हमारा सुख। और होता यह है कि उस दुख को, उस सुख को हम अपना निजी दुःख-सुख समझ कर किसी को बाँटना-बताना भी नहीं चाहते। हम उनके साथ स्वयं भी उसे जैसे भोगने लगते हैं। उनके दुःख से हमारी आँखों में दुःख के आँसू छलक आते हैं तो उनके सुख में हमारी आँखों में हर्ष के आँसू उमड़ आते हैं। यह निजता जो हमें राम से, राम-कथा के अन्य पात्रों से जोड़ देती है किसी भी तरह सायास नहीं है, एकदम, अनगढ़ ढंग से अनायास है। इसलिए मुझे ऐसी कोई कथा दूसरी नहीं लगती जो व्यक्ति को उसके अन्दर इतनी गहराई तक

आन्दोलित करती है, मथ देती है।

राम-कथा इस देश के जन-जन की, जन-मन की आस्था से जुड़ी हुई है। हाँ, धर्म के रूप में भी, विचार के रूप में भी और जीवन पद्धति के रूप में भी। इसलिए इस देश में अगर कोई वैचारिक क्रान्ति आ सकती है, तथा किसी सामाजिक परिवर्तन की बात हो सकती है तो वह आयातित होकर नहीं आयेगी, वह इस देश की आस्था और मान्यता, संस्कृति और विश्वास के साथ जुड़कर ही आ सकती है। इस देश के लोगों की आस्था, विश्वास, रस्म, रिवाज, धर्म, दर्शन और सांस्कृतिक विरासत को तोड़कर इस देश में किसी तरह के नये समाज की रचना सम्भव नहीं है। हम गलत को रद्द करने को, नकार देने को तैयार हैं। हम अन्याय और शोषण से छटपटाते लोगों की मुक्ति का मार्ग अपनाने को आतुर हैं और इस देश ने सैकड़ों वर्ष उस मार्ग को पाने के लिए उतना बड़ा और लम्बा संघर्ष किया जितना शायद और किसी देश के लोगों ने न किया हो। बलिदान हम बेदी बनाकर देने के आदी हैं। लेकिन अपनी आस्था, विश्वास और संस्कार की कीमत पर इस देश के लोग किसी बड़ी क्रान्ति के लिए एकजुट नहीं हो सकते। उनके पास न्याय, बलिदान, शोषण से मुक्ति और अराजकता को काट फेंकने की अपनी सांस्कृतिक परम्परा है। राजा शिवि से बड़ा न्याय किसी सांस्कृतिक विरासत में है? प्रतिबद्धता क्या राजा हरिश्चन्द्र के वचन से बड़ी भी किसी संस्कृति में है? शोषण के विरुद्ध राम और कृष्ण से बड़े संघर्षशील व्यक्तित्व भी किसी संस्कृति में है? वह कौन संस्कृति है जो राजा मकरध्वज से अधिक बड़ा बलिदान दे सके, बलि दे सके? वह कौन दानशील राजा रहा है किसी दूसरी संस्कृति में, जो दानवीर कर्ण से ऊँचा उठ सका हो? संस्कृतियाँ और भी तमाम हैं, नायक उनमें भी बड़े नीतिवान-आदर्शवान हैं किन्तु भारतीय संस्कृति कभी बौनी नहीं रही, न अवैज्ञानिक रही। अत: किसी पेड़ पर कलम भी तभी उग सकती है जब जड़ गहरी हो उस वृक्ष की।

मैंने अपने विचारों को जनग्राह्य बनाने और जन-मन को आज की सामयिकता से साक्षात्कार कर सकने योग्य बनाने के लिए यह आवश्यक समझा कि राम- से बेहतर और कोई माध्यम नहीं है जो इस देश की मिट्टी में, खून में, जल में, वायु में रची-बसी है। उसमें अपने आप वह सारे तत्त्व पहले से मौजूद हैं जिन्हें आज हमें पहचानना है, अपनाना है और जो आज के हमारे समाज की उन्नति के लिए आवश्यक हैं, पथ-दर्शक हैं। विद्वानों ने, विचारकों ने अपने-अपने समय में सामाजिक आवश्यकता के अनुसार राम-कथा के अनुकूल तत्त्वों को रेखांकित कर लोगों तक पहुँचाया और उसी के माध्यम से जहाँ तक हो सका अपनी बात भी, अपनी अभिव्यक्ति भी लोगों तक पहुँचायी। उन्हें उसमें समाज-हित के अनुरूप, कथा के अनुरूप जो परिवर्तन आवश्यक लगे वे उन्होंने किये। समुद्र की तरह है यह

राम-कथा। जितनी नदियाँ इसमें जुड़ती जाती हैं उतना ही नदियों का महत्त्व बढ़ता ही है, समुद्र न घटता है न बढ़ता है।

शोषण-मुक्ति और सामन्तवाद का विरोधी आख्यान

राम-कथा और कृष्ण-कथा दोनों में कई तरह का विचार-साम्य है। कृष्ण ने कंस और जरासंध तथा शिशुपाल से लेकर दुर्योधन तक के सामन्तवाद को ललकारा था। नन्दग्राम के एक गोपालक के घर से द्वारिका तक पहुँचने की उनकी यात्रा, पाण्डवों का साथ देकर कुरुपति दुर्योधन से निरस्त्र रहकर युद्ध-रचना की उनकी राजनीति उस समय के देश-काल की अनिवार्य सामाजिक आवश्यकता के साथ आज के युग की सामाजिक वैषम्यता से जूझने का जो मार्ग प्रशस्त करती है, लगभग राम-कथा के राम की चक्रवर्ती सम्राट के घर से विश्वामित्र के आश्रम तक और किष्किन्धा तथा लंका तक की बल्कि उसके बाद शत्रुघ्न को भेजकर लवणराज के बध तक की संघर्षशील यात्रा सामन्तों, आततायियों, आतंकवादियों से लड़ने-युद्ध करने की उस ज्वलन्त परम्परा को कायम करती है जो आज की समय-सापेक्षता भी है और शायद कल भी होगी। न शोषण और आतंक से कभी मुक्ति सम्भव है और न सामन्ती संस्कार किसी भी तरह की समाज-रचना से कभी विमुख हो सकते हैं। उनके रूप बदल सकते हैं, प्रकृति बदल सकती है। उनसे छुटकारा पाना शायद मुश्किल ही होगा। अतः राम शाश्वत संघर्ष, अन्याय के विरुद्ध, शोषण की नीति से मुक्ति और विषमता के विरुद्ध एक प्रकाश-पुंज हैं, हारे-थके और कुचले हुए लोगों की आवाज हैं। विश्वामित्र जैसे शस्त्रज्ञ की भी जरूरत है और अगस्त्य जैसे परम तपस्वी और ज्ञानी की भी। वह सुग्रीव जैसे पीड़ित लोगों की पुकार भी हैं और विभीषण जैसे समतावादियों की गुहार भी। राम कैकेयी के लिए भी उतने ही विश्वसनीय हैं जितने तारा और सुलोचना, मन्दोदरी के लिए हैं। वह सीता के लिए भी उतने ही निरपेक्ष हैं जितने अहल्या जैसी परित्यक्ता नारी के लिए आत्मीय हैं। वह गिरे हुए को उठाने के निजधर्म से बँधे हुए हैं और किसी भी तरह की सामाजिक-सांस्कारिक मान्यता के विरुद्ध आचरण वाले के लिए उतने ही कठोर हैं जितने वानरराज बाली के लिए। वह राजा के घर पैदा होकर भी वन्य जीवन की कामना करते हैं। वह राजसुखों की अपरिमित भोग सुविधा में भी मन से वनवासी हैं। वह सुविधाओं के सागर में भी अभावों की कठोर चट्टानों पर नंगे पाँव दौड़ने के आकांक्षी हैं।

सत्ता के शिखर पर बैठने के बाद वह राम ही हैं जो तुलसीदासजी के शब्दों में कह सकते हैं—'जो अनीति कुछ भाषों भाई तौ मोहि बरजहुँ भय बिसराई।' क्या उस समय के चक्रवर्ती सम्राट में यह नैतिक साहस हो सकता था? जबकि उस समय वह उस माहौल से लौट रहे थे जहाँ सामन्तशाह की यह ललकार

थी कि 'देव, दनुज, नर सब बस मोरें। कवन हेतु उपजा भय तोरें। जग जोधा को मोहि समाना ?…।' कौन है मेरे बराबर ? कौन है मुझसे बड़ा ? सत्ता मेरे हाथ में है, शक्ति मेरे पास है। यह सामन्ती भाषा है। यह सामन्तशाही विचार है। चक्रवर्ती सम्राट होकर भी, सर्वशक्ति-सम्पन्न हो जाने पर भी, रावण जैसी महाशक्ति को परास्त कर चुकने के बाद भी उनके शासन में दैहिक, दैविक, भौतिक ताप नहीं है। भौतिक ताप ही विषमता की जड़ है। फिर राम ने तो भौतिक ताप रहित राज्य की रचना की है। 'बैर न विग्रह आस न त्रासा'—न परस्पर शत्रुता न लड़ाई-झगड़ा, न अनर्गल आशा न पीड़ित करना किसी को त्रास से दूर—राम के जीवन का यह घोषित लक्ष्य है और राम के समतामय शासन में जन-जन को यह जीवन-प्रक्रिया निभाने को मिली हुई है। 'निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत् ?'— ऋषि वाल्मीकि के अनुसार कहीं भी उनके राज्य में चोर-लुटेरे क्यों नहीं थे ? कोई भी व्यक्ति अनर्थकारी कार्यों में हाथ क्यों नहीं डालता था ? स्पष्ट है कि किसी को इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी। केवल राज-भय नहीं था, सबकी अपनी जरूरतें, अपनी आशाएँ पूर्ण रहती थीं। इससे लगता है कि आर्थिक विषमता नहीं थी, आर्थिक और सामाजिक शोषण नहीं था। 'सर्वमुदित मेवासीत'—सब लोग सदा प्रसन्न ही रहते थे, सुखी ही रहते थे। अभावहीन थे। 'निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति ।'—जनता को न किसी प्रकार का रोग होता था, न किसी प्रकार का शोक होता था। सुख-सम्पन्न राज्य में शोक किसी को क्यों होगा। स्वास्थ्य-उपचार भी तो राज्य-सुविधा का ऐसा विषय रहा होगा कि रोग से लोग मुक्त रहें। सबको शिक्षा व स्वास्थ्य-साधन सुलभ रहे होंगे, तभी त। क्योंकि 'न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम्। न व्याधिजं भयं चासीद् रामे राज्यं प्रशासति।' —उनके राज्य-शासन काल में कभी विधवाओं का विलाप नहीं सुनाई पड़ता था, सर्प आदि दुष्ट जन्तुओं का भय नहीं था और रोगों की भी आशंका नहीं थी। स्वास्थ्य-सुविधाओं और पर्यावरण की शुद्धता का ही असर तो होगा यह ? पर्यावरण की ओर राज्यसत्ता का विशेष ध्यान होगा तभी तो 'नित्यमूला नित्यफला स्तरवस्तु सुपुष्पिताः। काम वर्षी च पर्जन्यः सुख स्पर्शश्च मारुतः।' छायादार वृक्ष, फलों से लदे हुए फलदार वृक्ष थे। मेघ लोगों की इच्छा और आवश्यकता के अनुसार ही बरसते थे। वायु मन्द गति से चलती थी, जिससे उसका स्पर्श सुखद जान पड़ता था। यह पर्यावरण की शुद्धता और संतुलन से ही तो सम्भव है। साहित्य में समय का सत्य तो होता ही है, कल्पना भी सत्य के आधार को छोड़कर तो नहीं होती। और अगर होगी तो वह कला और साहित्य नहीं हो सकेगी। क्योंकि 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' कला के लिए, साहित्य के लिए अनिवार्य शर्त है यदि वाल्मीकि ने ऐसा लिखा है तो सत्य से परे तो नहीं हो सकता और ऐसे सत्य की आवश्यकता क्या आज नहीं है ? क्या आज के सामाजिक

जीवन का सत्य राम-राज्य की व्यवस्था की पुनःपरिणति आज नहीं चाहता ? अपना राज्य, शासक को बरज सकने का साहस जिस व्यवस्था में हो, जहाँ लोभ-लालच, चोरी-डकैती न हो, जहाँ सबकी आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती हों, जहाँ शिक्षा और स्वास्थ्य की पर्याप्त सुविधा हो, जहाँ लोगों में अपने-अपने कार्य के प्रति लगन और निष्ठा हो, दुर्भावना न हो, परस्पर मेल और मित्रता हो, एकता और अपनापन हो, जहाँ जन के शोषण का स्रोत सत्ता न हो सके, जन के कल्याण के लिए शासन के स्रोत खुले रहते हों, समता हो, विषाद न हो, रोग-शोक न हो—ऐसे ही समाज की कल्पना तो करता है आदमी। आवश्यकताएँ जहाँ पूर्ण हो जाती हों वहाँ निश्चय ही कृषि और उद्योग विकसित होगा, आर्थिक शोषण की आवश्यकता नहीं होगी।

राम एक ऐसी व्यवस्था के उन्नायक और समर्पित व्यक्ति हैं जिनका अपना सुख दूसरे की आँख में आँसू न देखने में निहित है; जिनका अपना दुःख दूसरे की पीड़ा का अनुभव और आत्मसात है।

इस नाटक को लिखने की प्रेरणा का यही कारण रहा है कि मैं अपने जिन विचारों के साथ पाठकों को जोड़ना चाहता था उसके लिए राम-कथा मुझे बेहतर माध्यम लगी। इसके द्वारा मेरा सोच, मेरे विचार, मेरी भावना इस देश के संस्कारनिष्ठ लोगों तक इस प्रभावशाली सशक्त कथा के माध्यम से पहुँच सकती है, ठीक-ठीक अभिव्यक्त हो सकती है। नाटक का रूप देने से मंचस्थ हो जाने पर आकाशवाणी या दूरदर्शन के माध्यम से बड़े प्रेक्षागृहों, खुले रंगमंचों या गाँव की चौपालों पर खेले जाने से, इस कथा का, इसके पात्रों का सीधा साक्षात्कार एकबारगी ही अनेक लोगों से हो सकता है जो स्वयं लेखक की बातों, विचारों से जुड़ जाते हैं। काव्य या उपन्यास की अपेक्षा नाटक अभिनीत करने से यही बड़ी सुविधा मिलती है कि रचना दर्शक से बिल्कुल अपनेपन के साथ, सह-भागी स्तर पर जुड़ जाती है और एक-एक व्यक्ति के बजाय एक बार ही अनेक लोगों तक पहुँच जाती है।

नाटक लिखने वाले ही जान सकते हैं कि नाटक साहित्य की दूसरी विधाओं से अधिक कठिन काम है। सीमित स्थान, सीमित दृश्य में ही सारे प्रभाव देने होते हैं। संवादों में ही वह सब कुछ प्रकट कर देना होता है जो कथोपकथन के उत्तर और अतिरिक्त होता है। उपन्यास और काव्य की तरह का विस्तृत कैनवास नहीं होता नाटककार के पास। एक बात और। उपन्यास और काव्य व्यक्तिगत स्तर पर पढ़ा जाता है; नाटक सामूहिक रूप से देखा जाता है। दर्शक को अधिकार होता है कि वह उसके किसी अंश से भी अगर प्रभावित नहीं होता तो उसे रद्द कर दे। प्रति-क्रिया वैयक्तिक नहीं सामूहिक होती है। इसलिए नाटककार की जिम्मेदारी कुछ दूसरी तरह की होती है—सर्वप्रियता की, लोकप्रियता की। तुरन्त जवाबदेही की-

सी स्थिति होती है। फिर ऐसी रचना को नाटक रूप में प्रदर्शित करने में और भी जोखिम होता है जो हजारों वर्ष से कही, सुनी और अभिनीत की जा रही हो। जिस कथा के प्रति लोगों के अपने-अपने आग्रह होते हैं, जो कथा लोगों की आस्था और विश्वास से जुड़ी हुई हो, और उससे भी महत्त्वपूर्ण यह कि जो कथा धार्मिक आस्था, दैविक विश्वास से जुड़ी हो—उसे बहुत सही ढंग से, बड़े बेबाक तरीके से कथा की पूरी आत्मा के साथ, सामयिक आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में ही बड़ी होशियारी और मर्यादा को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत करना अपेक्षित है। अपनी लेखकीय दृष्टि और विचार भी होते हैं जिनको इस कथा में बड़ी सावधानी से पिरोया गया है, इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए यदि लेखकीय दृष्टि और विचार समाहित न किये जायँ तो लोग राम-कथा को नये रूप में क्यों पढ़ें ? वाल्मीकि और तुलसीदास का लिखा तो पर्याप्त है ही। तुलसीदास ने भी अपने समय की आवश्यकता के अनुरूप राम-कथा को अपने ढंग से, अपने विचार और दृष्टि के अनुसार प्रस्तुत किया। मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवियों ने भी राम-कथा को अपने सोच और विचार के अनुसार अलग तरह से अलग अंशों में प्रस्तुत किया। शायद मेरा प्रयास भी लोगों को ऐसा लगे, यदि उन्हें ऐसा लगा तो मेरा श्रम, मेरी लगन, मेरा प्रयास सार्थक हो सकेगा।

इस नाटक को लिखने का एक कारण यह भी था कि भारत के गाँवों और नगरों में रामलीला नाटक, धार्मिक सांस्कृतिक विश्वास के तहत भी अभिनीत किये जाते हैं। लोग अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग तरह से नाटक अभिनीत करते हैं। ज्यादातर पारसी नाटक शैली पर या तुलसीदास जी की दोहा-चौपाइयों में हैं। राधेश्याम की रामायण पर आधारित कुछ अंश भी उनमें शामिल कर लिये गये हैं। गेयता और संगीत तथा दीर्घ स्वर की दृष्टि से यह लोकग्राही पद्धति बन गयी है पर सर्वगम्य नहीं हो पायी है और संगीतकारों की आवश्यकता भी अनिवार्य रूप से होती है। इसलिए आज के समय में राम-कथा पर एक सर्वग्राह्य गद्य-नाटक रचना की आवश्यकता आन पड़ी। मेरे विचार से मेरा प्रयास इस कार्य की पूर्ति में सहायक होगा।

सबसे पहले मैंने आकाशवाणी के 'रूभारती' कार्यक्रम में प्रसारित करने के लिए इसे नाटक के रूप में लिखा। लगभग ८५ किस्तों में यह नाटक रेडियो से धारावाहिक प्रसारित हुआ। रेडियो जैसे व्यापक माध्यम से सम्पूर्ण राम-कथा को धारावाहिक रूप में देने का सन् १९८० में मैंने पहला प्रयास किया था। वहाँ हर किस्त के लिए समय सीमित रखने की शर्त होती थी। बहरहाल, उस समय लाखों लोगों ने गाँवों, नगरों में इसे बड़ी रुचि से सुना और अपने समय का यह बड़ा लोक-प्रिय कार्यक्रम सिद्ध हुआ। रेडियो-दूरदर्शन एक ऐसा माध्यम है जो धर्म, सम्प्र-दाय की सीमाओं को लाँघ कर सब तक, घर-घर तक पहुँचता है। स्वाभाविक तौर

पर सभी धर्मों, सम्प्रदायों के लोगों में यह नाटक पसन्द किया गया—श्रोताओं द्वारा भेजे गये हजारों प्रमाण थे। यह बात भी आश्चर्यजनक थी कि ऋषिकेश, कनखल, प्रयाग, वाराणसी के संतों, मनीषियों ने जितनी प्रशंसा पत्र भेजकर की, कान्वेंट में पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं ने भी उतनी ही प्रशंसा की। बम्बई से एक पारसी सज्जन लखनऊ तक केवल नाटक की स्क्रिप्ट या टेप लेने मेरे पास आये थे। सैकड़ों मुसलमान भाइयों के पत्र भी मुझे मिले।

रेडियो और मंच के माध्यम में अन्तर है। अतः मैंने ऐसा किया है कि अब निर्देशक अपनी प्रतिभा के अनुसार अपने ढंग से इसे मंच पर भी, रेडियो, दूरदर्शन पर भी प्रस्तुत कर सकते हैं। इसीलिए किसी एक माध्यम का विशेष ध्यान न करके इसे सभी माध्यमों को दृष्टि में रखकर तैयार कर लिया गया है। खास ध्यान इस बात का रखा है कि इसे रामलीला खेलने वाले दस दिन या बारह दिन तक गाँवों, कस्बों, नगरों में अभिनीत कर सकते हैं। प्रत्येक दिन इसे दो-तीन घण्टे तक मंच पर अभिनीत किया जा सकता है और गाँवों में, पर्वतीय अंचलों में जहाँ रात-रात-भर रामलीला होती है वहाँ भी बीच-बीच में जैसा कि प्रहसन, नृत्य आदि देकर दर्शकों में रसान्तर किया जाता है तथा दृश्य बदलने का समय निकालने के लिए भी प्रहसन आदि दिये जाते हैं यह नाटक रोज रात-भर (चार-पाँच घण्टे) अभिनीत किया जा सकता है। दृश्य-परिकल्पना, पात्रों के हाव-भाव तथा अभिनय सम्बन्धी बारीकियाँ नाटक में आम तौर पर इसलिए नहीं दी गयी हैं ताकि निर्देशकों को इसके लिए पूर्ण स्वतंत्रता रहे कि वह किस तरह नाटक प्रस्तुत करना चाहते हैं।

श्री राम जी का संघर्षशील जीवन

महर्षि वाल्मीकि ने श्री राम को, उनके कार्यों को विश्वसनीय बनाये रखने के लिए नितान्त मानवीय बनाये रखा। एक आम आदमी में जितना ईश्वरत्व, ज्ञान और शक्ति हो सकती है श्री राम में उतनी ही है। वाल्मीकि ने मनुष्यत्व से ऊपर उन्हें अलौकिक नहीं होने देने का पूरा प्रयास किया है। ताकि प्रत्येक मनुष्य को मनुष्य के चरित्र पर, निष्ठा पर, संघर्ष करने की शक्ति पर, मर्यादा में रहने की सीमा पर, मानवीय वीरता और शक्ति पर ऐसा अटूट विश्वास बना रहे कि वह इन सबको मानवेतर न समझे, ईश्वरीय शक्ति के लिए ही ऐसा सब करना सम्भव है यह न समझे। मनुष्य में आत्मविश्वास जग सके यह वाल्मीकि की रचना का उद्देश्य लगता है। इसीलिए राम में वह सब कमजोरियाँ भी हैं जो मनुष्य को मनुष्य बनाये रखती हैं और वह सब अच्छाइयाँ भी हैं जो एक धीर, क्षमाशील, विचारवान मनुष्य में होनी चाहिये। तुलसीदास ने श्री राम को इतना अधिक ईश्वरीय बनाने की कोशिश की कि वह कभी भी साधारण पुरुष नहीं लगते, उससे ऊपर ही

लगते हैं। यह वाल्मीकि और तुलसीदास के युग की अलग-अलग आवश्यकताओं के कारण है। तुलसीदास को हिन्दुत्व की रक्षा के लिए उस समय एक ऐसे आदर्श नायक की आवश्यकता थी जो सर्वथा आदर्शमय ही हो और मनुष्य की प्रेरणा और श्रद्धा को जागृत कर सके। वाल्मीकि के समय में हिन्दुत्व की रक्षा का कोई प्रश्न नहीं था। केवल अन्याय, अनीति, अधर्म, परपीड़न, उद्देश्यहीनता और पारिवारिक एवं सामाजिक संस्कारों में आ रहे ह्रास की समस्याएँ रही होंगी। आचरणशील लोगों, तपस्वियों और साधुओं को सताये जाने की समस्या रही होगी। इसलिए वाल्मीकि की काव्य-रचना का उद्देश्य समय की आवश्यकता के अनुसार भिन्न रहा है। इसीलिए अपने कथानक की विश्वसनीयता और प्रामाणिकता को बनाये रखने के लिए वाल्मीकि ने राम-जन्म से पूर्व ही देवताओं द्वारा भगवान् विष्णु से यह वचन ले लिया कि वह निःसन्तान महाराज दशरथ के घर में जन्म लेकर मनुष्य रूप में ऐसी लीलाएँ करें जिससे देव संस्कृति की, देवत्व और मनुष्यत्व की रक्षा हो सके तथा राक्षस संस्कृति पराजित हो सके। उसके बाद उन्होंने अरसक श्री राम को जन्म लेने के बाद से मनुष्यत्व का ही नायक बनाये रखा। यहाँ तक कि अहल्या पत्थर बन गयी थी और श्री राम के चरण छूते ही सुन्दर नारी बनकर श्री राम की आरती करने के बाद पतिलोक को गयी थी, ऐसा कुछ नहीं दिखाया। पति द्वारा शापित अहल्या तपस्यालीन होकर राजपुत्र राम के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। उसका चेहरा कान्तिमय और देदीप्यमान था—'ददर्श च महाभागां तपसा द्योतित प्रभाम्।' वह महातापसी-सी प्रतीत होती थी। धूम से घिरी हुई प्रज्वलित अग्निशिखा-सी जान पड़ती थी। ओले और बादलों से ढकी हुई पूर्ण चन्द्रमा की प्रभा-सी दिखायी देती थी तथा जल के भीतर उद्भासित होने वाली सूर्य की दुर्द्धर्ष प्रभा के समान दिखायी देती थी। जबकि तुलसीदास जी कहते हैं कि 'पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहा बिसेषी।। गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर। चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर।।' यहाँ दोनों के राम में अन्तर स्पष्ट है। वाल्मीकि की अहल्या श्री राम के दर्शन होने तक सबसे अदृश्य है। श्री राम के दर्शन हो जाने पर उसके शाप का अन्त हो गया। यहाँ पर भी एक और भेद देखने को मिलता है कि शिला बनी अहल्या 'परसत पद पावन सोक नसावन प्रकट भई तप पुंज सही। देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही।' चरण स्पर्श पाते ही तपोमूर्ति-सी अहल्या प्रकट होकर भक्तों को सुख देने वाले श्री रघुनाथजी को देखकर, हाथ जोड़कर सामने खड़ी रह गयी। वह प्रभु के चरणों से लिपट गयी और उसके दोनों नेत्रों से जलधार बहने लगी। किन्तु वाल्मीकि जी ने गौतम पत्नी की गरिमा को बनाये रखते हुए उस महान विदुषी और तपस्विनी की श्रेष्ठता को उच्चता देते हुए 'राघवौ तु तदा तस्याः पादौजगृहतुर्मुदा। स्मरन्तौ गौतमवचः प्रतिजग्राह सा हितौ'

कहा है कि उस समय श्री राम और लक्ष्मण ने बड़ी प्रसन्नता के साथ अहल्या के दोनों चरणों का स्पर्श किया। महर्षि गौतम के वचनों का स्मरण करके अहल्या ने बड़ी सावधानी के साथ उन दोनों भाइयों को आदरणीय अतिथि के रूप में अपनाया। तात्पर्य यह है कि युगधर्म के अनुसार श्री राम के स्वरूप को चित्रित किया गया है किन्तु मूल कथा एक ही है। क्योंकि दोनों महाकवियों को विश्वास था कि जनचेतना को परिष्कृत करने और अपने विचारों से परिचित कराने के लिए राम-कथा का इस्तेमाल दिव्यास्त्र की तरह करके ही सामाजिक चेतना का विकास किया जा सकता है या उसे युगानुरूप ढाला जा सकता है।

इसीलिए आज भी कोई राम-कथा को उस विचार-अस्त्र के रूप में इस्तेमाल कर सकता है जो युग की आवश्यकता, लोकहित के अनुरूप हो तो राम-कथा को अपनी दृष्टि से देखने और अभिव्यक्त करने का प्रयास उस तरह से करना होगा कि राम-कथा का मूलरूप, जो जनमानस की सम्पत्ति है, अक्षुण्ण बना रहे। इस दृष्टि से देखने पर श्रीराम का जीवन अत्यन्त संघर्षमय, क्रान्तिद्रष्टा, परहितकारी जनकल्याणकारी और सामाजिक विसंगतियों में काट सकने में अद्‌भुत रूप से समर्थ है।

जनता तक रचनाकार को पहुँचाने के लिए जनता की भाषा, जनता की मान्यता और जनता के विश्वास को साथ लेकर चलना होगा।

'रामायण' और 'रामचरितमानस' को केवल सम्प्रदाय या धर्म से बाँधकर उसकी विशालता को, उसके व्यापक संदेश को सीमित नहीं किया जा सकता। वह मनुष्यता, इंसानियत का पहला पाठ है। निश्चय ही आप उसे धर्म से काट नहीं सकते किन्तु केवल धार्मिक आख्यान या सम्प्रदाय एवं धर्म की पुस्तक कह कर पूरे मानव समाज के उद्‌बोधन से उसे अलग भी नहीं कर सकते। उसमें जो बीज पड़े हैं वह किसी सीमित आस्था के नहीं हैं, किसी परहेजपरक विश्वास के नहीं हैं। उसमें समाज का अपना सही रूप दिखायी देता है। देश-काल से हटकर भी, कहीं भी, कभी भी आपको यह अपने आस-पास का आख्यान ही लगेगा। ईस्वी सन् शुरू होने से कभी पहले भी, सन् २५०० या ४००० में भी यह आपके समाज का दर्पण ही आपको लगा होगा और सदा लगेगा यही इस कथानक की, इस काव्य की, इसे जन्म लेने वाली तमाम अन्य रचनाओं की विशेषता है।

कितना संघर्षमय है राम का जीवन

सुकुमार अवस्था में प्रवेश करते ही राम, को अपने अनुज लक्ष्मण सहित विश्वामित्र जी के साथ उन बीहड़ जंगलों में जाना पड़ता है, जहाँ निष्काम तपस्वियों को जप-तप करने, योग की संस्कृति में जीने से ताड़का और मारीच, सुबाहु जैसे राक्षस उत्पीड़न का ताण्डव मचाये रहते थे। वनों का कठिन, श्रमसाध्य, सादा जीवन

तथा सात्त्विक आचरण से रहने वाले ज्ञानी जनों एवं वनवासियों की अभावग्रस्त, संकटपूर्ण जीवन-चर्या से साक्षात्कार करते, राक्षसों से अनवरत संघर्ष करते, साथ ही साथ धनुर्वेद का गहन और व्यावहारिक अध्ययन करके विवाह के समय अपनी शिक्षा की जो कठिन परीक्षा उन्हें देनी पड़ती है वह उनके चक्रवर्ती सम्राट के पुत्र होने के किसी सुखभोग से या कुलीन होने की किसी कृपा से कोई सरोकार न रखते हुए उनके वैयक्तिक संस्कार, श्रम और अध्ययनशीलता के कारण उनकी सफलता बन जाती है ।

विवाह के बाद सुखी गृहस्थ बनने की अपेक्षा बड़े भाई होने के नाते उन पर वृद्ध पिता के राजकार्य में, शासन-व्यवस्था को सुधारने व सुदृढ़ करने में, कानून और दण्ड तथा न्याय और जन-सुविधाओं को सुव्यवस्थित करने में अधिक से अधिक समय देने और व्यस्त रहने का गुरुतर भार आ जाता है । सीता का साथ और लक्ष्मण का सहयोग ही है जो उन कठिन स्थितियों में उनकी प्रसन्नता की पूँजी बना रहता है । अपने भावी राजा के रूप में जनता को उनसे बहुत-सी अपेक्षाएँ हैं, पारिवारिक सुख-शान्ति की ज़िम्मेदारी भी उनपर है और इन तमाम अपेक्षाओं, ज़िम्मेदारियों के रहते सुख भोगने, आमोद-प्रमोद के लिए राजधानी से दूर चले जाने, आखेट करने आदि का अवसर उन्हें नहीं मिलता ।

जब राज-भोग का अवसर मिलने वाला था तो उन्हें फिर से वनवासी संस्कृति में जीवन जीने की राह पर डाल दिया जाता है । पिता के वचन, विमाता की आकांक्षा, माँ का आँसू-भरा भविष्य, पत्नी के अथाह समर्पण के बावजूद प्रेम से वर्षों वंचित रह जाने का नैराश्य, भाइयों का अपनापन, पिता की वृद्धावस्था की असहायता, प्रजाजनों के स्नेह का अवदान, चौदह वर्ष तक अकेले रहने की नियति राम के संघर्षशील मन को आहत नहीं कर पाते । संयोगवशात पत्नी और भाई को दुर्गम वनों में साथ ले जाकर एक कल्पित सुख पाने की आकांक्षा, अकेले न रहने का अहसास राम पर उनकी सुरक्षा का अतिरिक्त दायित्व भी डाल देता है। नियति उनसे सुख, राजभोग छीन लेती है, तब भी जब वह सुकुमार थे और तब भी जब वह युवा हो गये थे !

चित्रकूट में राम एक पड़ाव पा गये थे । वनवासी जीवन का उन्होंने अपना निवास बना लिया था । किन्तु यह क्या राम के जीवन का मात्र उद्देश्य था ? अयोध्या से चलते समय ही उन्हें लगा था कि उनको अपने जीवन के एक बृहत्तर उद्देश्य की पूर्ति के लिए दण्डकारण्य जाना ही होगा । सद्कर्म, सद् आचरण और योग नीति पर चलकर जो ऋषि-मुनि, साधु-संन्यासी भौतिक सुखों, संग्रह की संस्कृति से दूर रहकर, सम्पत्ति-विस्तार के लोभ से अलग रहकर अपना तपोनिष्ठ तथा वनवासी जीवन जी रहे हैं और वन-आश्रित वे पिछड़ी, भोलीभाली जातियाँ जो कृषि पर आधारित होकर मनुष्य संस्कृति को जीवित रखने के संघर्ष

से जूझ रही हैं, उन्हें भोग-नीति के भागीदार, राक्षस-संस्कृति को पनपा रहे उत्पीड़क और धनसंग्रही तथा राज्य-विस्तार, सम्पत्ति-विस्तार के आकांक्षी सामन्त सुख से जीने भी नहीं दे रहे हैं—उन्हें त्राण देना होगा, गुरु विश्वामित्र की भी यही आकांक्षा थी। उनकी शिक्षा का उद्देश्य भी यही था। वह स्वयं विश्व-विजयी राजा होकर भी, क्षत्रिय होकर भी, राजसुख से परितृप्त रहकर भी योगी हो गये थे, मुनि हो गये थे, ऋषि और महर्षि हो गये थे। उन्होंने रत्नों की चका-चौंध के बीच कभी किसी क्षण पीड़ित और विश्व की आह को महसूस किया होगा। राजशाही के, पूँजीशाही के उत्पीड़न को समझा होगा तभी न उनके मन में वितृष्णा जन्मी होगी। तभी न उन्होंने राम से कहा था कि रावण जैसे आततायी का दमन मैं तुम्हारे हाथों चाहता हूँ। अपने शिष्य के हाथों, यही मेरी अंतिम अभिलाषा है। यही मेरी गुरुदक्षिणा है।

इसलिए राम का उद्देश्य केवल चौदह साल की अवधि वन में बिता कर अयोध्या लौट जाने का नहीं था। ऐसा तो वह सहज ही कर सकते थे। भरत से वहीं राजसुख जुटवाकर भी कर सकते थे और यदि अयोध्या की सम्पत्ति से परहेज था तो मिथिलेश जनक से या काशीपति कुशध्वज से सभी राजसुख चित्रकूट में उपलब्ध करवा सकते थे। राक्षस संस्कृति के भोगियों को भी लगा था कि विश्वामित्र का शिष्य, ताड़का का वध करने वाला राम निश्चय ही चित्रकूट में बैठकर राक्षसों के दमन की कोई नयी रणनीति बना रहा है। तभी उनके उत्पात उन लोगों के प्रति बढ़ गये जो श्रीराम के समर्थक थे। उन्हें अपने बसे-बसाये आश्रम छोड़ने पड़े थे। तब ऐसे में राम का चित्रकूट में बने रहना बहुत संगत नहीं रह गया था। इसीलिए उन्हें चित्रकूट छोड़कर अत्रि मुनि के आश्रम में जाकर अपने मन को एक नयी लड़ाई के लिए तैयार करना पड़ा। वहीं से उनके संघर्ष के संकल्प का शंख बज चुका था। तपस्वियों के आश्रम में जाकर उन्होंने अपनी उपस्थिति और राक्षसों के संहार का अहसास उन्हें कराया। विराध के भयंकर आक्रमण का उन्होंने जिस कुशलता और वीरता से प्रतिकार कर उसे नष्ट किया उससे दण्डकारण्य में उनकी कीर्ति तो फैली ही, वनवासियों में आत्म-विश्वास भी जागा। इसके बाद तो राक्षसों द्वारा उत्पीड़न, अन्याय और शोषण की पराकाष्ठा ही हो गयी। सीता के अहिंसक रहने के आग्रह को अस्वीकार करके भी उन्होंने राक्षसों से ऋषियों की रक्षा का संकल्प कर लिया। मुनि सुतीक्ष्ण के साथ दण्डकारण्य के महान तपस्वी और गुरुकुलों के संरक्षक महर्षि अगस्त्य से श्रीराम को वनवासियों और निर्धनों के पक्ष में संघर्ष करने की अनन्त प्रेरणा और साहस मिला। महर्षि अगस्त्य की सलाह पर राम ने पंचवटी को अपने रहने के लिए चुना। रावण के सामन्तों खर और दूषण के लिए यह असह्य था कि कोई उनके जनस्थान के पास आकर उनकी प्रभुता को चुनौती दे। लालच,

प्रलोभन और कामानुरक्ति के प्रति शूर्पणखा परीक्षा का माध्यम बनती है—यह देखने-परखने के लिए कि राम और लक्ष्मण में भोग-लिप्सा और दैहिक सौन्दर्य के प्रति सहज राजशाही महत्त्वाकांक्षा शेष है या नहीं। लेकिन राजशाही का लोभ-संस्कार तो क्या राम ने अपना जीवन-दर्शन ही बिलकुल नयी दिशा में ढाल लिया था। वह जिनके पक्ष में अन्याय, अनैतिकता और शोषण के स्वयंभू शासकों से लड़ने को अग्रसर हो गये थे उन निर्धन, विवश, किन्तु आचरणशील वनवासियों की तरह ही उन्होंने अपना जीवन भी बना लिया था।

श्री राम यह जानते थे कि जिस जनता के पक्षधर वह हैं उन्हें उनके बीच रहकर उन जैसा ही जीवन बिताना होगा तभी वह उनके अपने हो सकते हैं, उनके विश्वास को पा सकते हैं। कालान्तर में महात्मा गांधी ने इस रहस्य को समझा था और अपनाया था। तभी वह इस देश की करोड़ों जनता का विश्वास पा सके थे। जिनके लिए हम हैं, जिनके लिए हम संघर्ष कर रहे हैं उनके अभावों को, उनके जीवन-दर्शन को अपनाकर ही हम उन्हें अपने साथ खड़ा कर सकते हैं। ऐसा करना राम के लिए कोई विवशता नहीं थी, उनके अपने संकल्प के लिए उनके विचार में जरूरी था। सोने के हौदे पर बैठकर गाँव के गरीबों की लड़ाई लड़ने वाले भीड़ का बादशाह हो सकते हैं, भीड़ का हिस्सा नहीं हो सकते। संघर्ष की मुद्रा उन्होंने (श्रीराम ने) ओढ़ नहीं रखी थी। वह उनके मन के भीतरी आर्तनाद से, अनुभव की पीड़ा से जन्मी थी। सिद्धाश्रम और उसके आसपास के वनवासियों, ग्रामवासियों की दयनीय दशा को देखने, शोणभद्र के अंचल में बसे लोगों की पीड़ा को अनुभव करने, चित्रकूट तथा दण्डकारण्य के वनवासियों पर हो रहे अन्याय, आतंक के हाहाकार से जन्मा था वह संघर्ष। इसी अन्याय और शोषण के प्रतिकार की शिक्षा दी थी उन्हें ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने। ऋषि भरद्वाज ने यही चाहा था उनसे। सुतीक्ष्ण और सहस्रों ऋषि-मुनियों ने परित्राण की कामना की थी उनसे। ऋषि अगस्त्य और अत्रि मुनि ने असहायों, विद्यार्जन और जीविकोपार्जन में लगे लोगों की रक्षा और आततायियों का अंत करने का आग्रह किया था उनसे। श्री राम जानते थे, उनका मार्ग बहुत कठिन है—कंटकाकीर्ण। जहाँ वह सब कुछ खोकर, अपनी अस्मिता को भी दाँव पर लगाकर शायद ही विजय का वरण कर सकें किन्तु वह यह भी जानते थे कि यदि यह कार्य वह नहीं करेंगे तो संसार से सद्कर्मों, सदाचार और मानवीयता का भयंकर ह्रास हो जायेगा। नैतिकता का अवमूल्यन राक्षस धर्म को सदा-सदा के लिए प्रशस्तगामी बना देगा तथा देवत्व और मनुष्यत्व, योग और क्षेम, सत्य और समानता, अक्षोभ और लज्जाशीलता, सत्यनिष्ठा और परोपकार, दया और ममता हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त हो जायेगी। इन जीवन-मूल्यों और कर्म के सांस्कृतिक विकास की परम्परा को जीवित बनाये रख सकना बहुत दुर्द्धर्षतापूर्ण हो जायेगा। राम

जिन आदर्शों के प्रति समर्पित थे उनके लिए जीना और लड़ना उन्होंने अपनी नियति बना ली थी। चित्रकूट से दण्डकारण्य तक वर्षों उन्हें यह लड़ाई लड़नी पड़ी थी, अकेले। केवल लक्ष्मण उनके कठोर कर्म में उनके सहभागी थे और उनकी पत्नी सीता उनके सद्प्रयत्नों में मात्र सहचारिणी की तरह ही नहीं जिजीविषा की तरह साथी थीं।

अपनी समस्त वैभवमयी सेनाओं के साथ दूषण का और फिर खर का अपने युद्ध-कुशल मंत्री त्रिशिरा सहित पंचवटी पर आक्रमण करने में मारा जाना न केवल अकम्पन जैसे राक्षसों के लिए दिल दहला देने वाला वाकया था बल्कि उन सब राक्षसों के महासम्राट लंकापति रावण के लिए खुली चुनौती थी। रावण के जनस्थान में कोई साधारण-सा मनुष्य बिना किसी बड़ी सशस्त्र सेना के ही दूषण और खर जैसे असाधारण शक्ति-सम्पन्न राक्षसों को धूल चटा दे इससे बड़ी चुनौती रावण के लिए और क्या होती? इसलिए, जैसा कि शक्ति-सम्पन्नों के हथकण्डे होते हैं, उसने धोखे से सीता जी का हरण करके न केवल गुरुकुलों, आश्रमवासियों, ऋषि-मुनियों को आतंकित कर दिया बल्कि श्रीराम को अन्दर से तोड़ देने का घणित और अनैतिक कार्य करके उनकी अस्मिता, प्रतिष्ठा पर ही डाका डाल दिया। दूषण, खर त्रिशिरा और विराध के साथ आमने-सामने का युद्ध था किन्तु रावण जैसा आतंकवादी जब छल-प्रपंच से, धोखे से, पीठ पीछे से घात लगाकर काम कर जाये तो उसका प्रतिकार कितना सहज संभाव्य हो सकता है! वास्तव में, पीठ पीछे से, चोरी-छुपे नुकसान करने वाले से निपटने का तरीका क्या हो सकता है? रावण जैसी बड़ी शक्ति का मारीच को अपने अनैतिक, अन्यायपूर्ण कृत्य के लिए माध्यम चुनना शोभा देता हो या न देता हो, शक्ति के मद में रहने वालों को ऐसी घृणित अहंमन्यता हमेशा चूर किये रहती है। रावण इस शाश्वत सत्य का प्रतिवाद कैसे होता? जिनके पास बड़ी शक्ति होती है उनके उतने ही छोटे और कुत्सित विचार भी होते हैं। जो दण्डकारण्य में थे वे आश्रमवासी थे, तपोनिष्ठ थे, ब्राह्मण थे, ऋषि थे, महर्षि थे, जिनकी आस्था देवता थे, देव संस्कृति थी। जो जनस्थान में थे, किसान थे, ग्रामवासी थे, उनका जीवन कृषि और पशुओं पर आधारित था। सीता का हरण केवल राम की पत्नी का हरण नहीं था। वह राम जैसे वनवासी, आश्रयहीन, साधन-विहीन, शांत जीवन जी रहे मनुष्य के सुख और संतुष्टि का भी प्रतीक थी जिसका हरण राक्षसों की प्रवृत्ति का प्रतीक था।

सीता-हरण मात्र एक वैसा सीधा-सादा प्रसंग नहीं है जैसा कि साधारणीकरण कथा के साथ इस प्रसंग का कर दिया जाता है। सीता का जन्म राजा जनक द्वारा अकाल और सूखे के समय खेत जोते जाते समय हल के अग्रभाग (फाल) से हुआ था। अयोनिजा थी वह। जिस तरह राम एक प्रतीक हैं शोषण और अन्याय के

विरुद्ध मानवीय चेतना के, उसी तरह सीता भी प्रतीक हैं सुख की, शान्ति की, धन-धान्य की और सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह कृषि की अधिष्ठात्री देवी की प्रतीक हैं, किसानों की अस्मिता की प्रतीक हैं। ऋग्वेद (४-५७) में इसका प्रमाण है फिर वही प्रमाण हमें अथर्ववेद में, यजुर्वेद में, शतपथ ब्राह्मण में भी मिलता है। हालांकि ऋग्वेद के सूक्त आम तौर से एक ही देवता की प्रार्थना से सम्बन्धित हैं, किन्तु पशुओं पर निर्भरता के बाद जब कृषि को अपनाया गया होगा तो कृषि से सम्बन्धित अनेक देवताओं से प्रार्थनाएँ की गयी होंगी। क्षेत्रपति (भूमिया) की, गौ और अश्व की, मधु, घी, जल, अग्नि की प्रार्थनाएँ या संदर्भ हैं। 'हे सौभाग्यवती! हमारी ओर कृपादृष्टि से अभिमुख हो। हे सीते! तेरी हम वन्दना करते हैं ताकि तू हमारे लिए अमित धन और श्रेष्ठ फल देने वाली होवे। इन्द्र सीता को ग्रहण करें, सूर्य (पूषा) उसका संचालन करें, वह पानी से भरी (सीता) प्रत्येक वर्ष हमें धान्य प्रदान करती रहे। सुन्दर हल सुखपूर्वक हमारे लिए भूमि को जोतें, कृषक वाहनों (बैलों) के पीछे-पीछे सुख से चलें। पर्जन्य मधुर जल द्वारा (पृथ्वी को) सिक्त करें। हे शुनः सीर! हम लोगों को सुख प्रदान करो।

सीते वन्दा महे त्वाअर्वाची सुभगे भव।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः॥

हे सीते! तेरी हम वन्दना करते हैं, हे सौभाग्यवती! कृपा करते हुए हमारी ओर अभिमुख हो, जिससे हमारे लिए तू हिताकांक्षिणी होवे और जिससे तू हमारे लिए श्रेष्ठ फल देने वाली होवे।

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत्पिन्वमाना॥

घी और मधु से सानी हुई सीता विश्व देवताओं और मरुतों से अनुमोदित (रक्षित) होवे। हे सीता! ओजस्विनी और घी से सींची हुई, तू जल (दूध) के साथ हमारे पास विद्यमान रहे। [उर्जस्वती का अर्थ पुष्टिकारक अन्न देने वाली भी होता है।] यह उद्धरण है 'सीरा युंजति' मंत्र से (अथर्ववेद ३-१७), जिससे बहुत स्पष्ट है कि सीता कृषि की मानी गयी देवी थी। 'तैत्तिरीय आरण्यक' में पितृमेध के अवसर पर सीता की प्रार्थना है।

रावण को वेदों का महान् ज्ञाता और व्याख्याता बताया गया है। वह सीता जी के बारे में यह भी जानता था कि वह कृषि की, कृषकों की अधिष्ठात्री देवी हैं या वह मिथिला के राजा को हल की 'सी' में मिली थीं। उसका उद्देश्य किसानों की आस्था व विश्वास को अपनी धरोहर रखने का भी था। वह किसानों के सुख-संतोष की भावना-आराधना का अपहरण कर लेना चाहता था। इसलिए सम्पूर्ण कथा के संदर्भ में सीता जी की इस प्रतीकात्मकता को ध्यान में रखकर

आदिकाल से चले आ रहे किसानों के शोषण और उनके प्रति शक्ति-सामन्तों की जोर-जबरदस्ती को भी वाल्मीकि जी ने अवश्य ध्यान में रखा है। इसीलिए सीता जी के अपहरण के बाद पहला प्रतिरोध पक्षीराज जटायु द्वारा किया जाता है। क्योंकि कृषि-वनस्पति पक्षियों के लिए किसानों की तरह प्रिय भी है और परम आवश्यक भी। सीता-हरण लंकापति रावण द्वारा होने की पुष्टि घायल पड़े जटायु से ही होती है, जो राम-लक्ष्मण को अपहरण का सारा वृत्तान्त बताते हैं।

वाल्मीकि जी ने कथा के प्रारम्भ में ही बता दिया है कि देवताओं की विजय पर ऋषियों, मुनियों, मनुष्यों की सुरक्षा के लिए, देवत्व की रक्षा के लिए भगवान् विष्णु ने मनुष्य रूप में राजा दशरथ के घर जन्म लेकर मानवीय आचरण करने की बात स्वीकार कर ली थी। उसके बाद राम के जन्म लेने से राम-कथा के अन्त में काल के आने तक उन्होंने राम को बराबर मनुष्य के रूप में ही चित्रित किया है। क्योंकि दैवी शक्ति दैवी शक्ति ही होती है। मनुष्य को अपने कर्म और शौर्य पर, अपने संकल्प और अधिकार पर विश्वास तभी होता है जब वह अपने जैसे हाड़-मांस के आदमी का कर्म और संकल्प व शौर्य, बल और विक्रम देखता है। वह मनुष्य है इसीलिए उसमें सभी मानवीय महानताएँ, कमजोरियाँ, दुःख-सुख की वैसी गहनता हैं जैसी मनुष्य में होती हैं। राम में ऐसा ही सब है। इसीलिए वह शिव, विष्णु, ब्रह्मा की तरह केवल पूज्य ही नहीं, केवल अनुकरणीय ही नहीं, बल्कि अपने ही बीच के, अपने ही जैसे लगते हैं। यही राम के चरित्र की विशेषता है और सीता-हरण के बाद राम का वह मानवीय रूप और अधिक अपना और विश्वसनीय लगता है जैसा राज-तिलक के समय वनवास के लिए आते समय पारिवारिक जनों, अपनों के बीच था या चित्रकूट में अपने लोगों से मिलकर और पिता के देहावसान का समाचार पाकर होता है। राम के चरित्र की यह महानता है, विशिष्टता है कि वह धरती के हैं, उनके पाँव धरती पर हैं, उनकी जड़ धरती पर है; उनका सुख-दुःख, उनका भोग-सरोकार धरती पर रहने वाले आदमी का है। ईश्वर होकर भी वह ईश्वर नहीं लगते, ऐसे ही जैसे राजा होकर भी वह राजा नहीं लगते या गरीब से गरीब आदमी को, दुखी से दुखी आदमी को वह अपने ही लगते हैं, अपने में से ही एक लगते हैं। उस आदमी की कल्पना कीजिये जिसकी प्राणों से भी प्यारी पत्नी अकारण उससे बिछुड़ गयी हो। उसके मन की पीड़ा और अवसाद की कल्पना कीजिये। ऐसी अवस्था में कोई भी मनुष्य विक्षिप्त-सा हो जाता है और उसे विश्वास ही नहीं होता कि उसकी प्राणप्रिया उससे छीनी भी जा सकती है। 'पुष्प प्रियतरा प्रिये' तुम्हें फूल अधिक प्रिय है, इसलिए खिली हुई अशोक की शाखाओं में अपने शरीर को छिपाती हो और मेरा दुःख बढ़ा रही हो। कैसे न आये मांसल देह-यष्टि की याद किसी को, यदि वह मनुष्य है तो। राम भी कहते हैं—'कदलीकाण्ड सदृशो

कदल्या संवृतावुभौ। उरु पश्यामि ते देवि नासि-शक्ता निगूहितुम् ।'—देवि ! मैं केले के तनों के तुल्य और कदली दल से ही छिपे हुए तुम्हारे दोनों उरुओं (जाँघों) को देख रहा हूँ ! तुम उन्हें मुझसे छिपा नहीं सकती । 'वृतौस्तनौ शोणित पङ्क-दिग्धौ ।नून प्रियाया मम नाभिपात: ।।'—मेरी प्रिया के दोनों गोल-गोल स्तन, जो *सदा लाल चंदन से चर्चित होने योग्य थे निश्चय ही (राक्षस के हर लेने से) रक्त की कीच में सन गये होंगे । पद्मानना पद्मपलाशनेत्रा शायद कमल के फूल लाने* गोदावरी गयी हो । अकेले वन में जाने से तो वह डरती थी । सूर्य से, वायु से, मृगों से, पक्षियों से, वन्य पशुओं से, आकाश से, वृक्षों से, धरती से, पहाड़ से सभी से तो पूछते है वह अपनी सीता का पता कि वह गयी कहाँ ? किसी ने नहीं देखा क्या ? फिर कैसा प्रताप है तुम्हारा, क्या देखते हो तुम सब ? इतना तो बता दो कि हर ली गयी है कि मर गयी है कि कहीं मार्ग में पड़ी है ? सारे अंग शिथिल हो गये हैं राम के । बुद्धि काम नहीं दे रही है । चेतना लुप्त-सी हो गयी है । सीता के साथ अयोध्या से निकले राम के मन में प्रश्न है कि सीता के बिना वहाँ लौटा तो अपने सूने अंतःपुर में कैसे जाऊँगा । सारा संसार मुझे पराक्रम हीन कहेगा । जब मिथिलेश जनक कुशल पूछने आयेंगे तब ? पहले तो मैं राज्य से वंचित हुआ फिर मेरा स्वजनों से वियोग हुआ, फिर पिताजी का परलोकवास, माता से बिछुड़ना। आह ! कितना हतभागी हूँ मैं कि सीता के साथ सब दुःख भूलना भी चाहा तो अब सीता ही नहीं रही ? अब अयोध्या तो क्या स्वर्ग भी मुझे सीता के बिना सूना ही लगेगा । अत: लक्ष्मण, मुझे मेरे हाल पर वन में छोड़कर तुम अयोध्या लौट जाओ और भरत से कहना, तुम सारी पृथ्वी का पालन मेरी आज्ञा से करो ।

एक निष्कपट, सरल आदमी ही तो कह सकता है ऐसा जैसा राम कहते हैं कि 'न मद्विधो दुष्कृत कर्मचारी, मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुंधरायाम्'—लगता है मेरा जैसा पापकर्म करने वाला मनुष्य इस पृथ्वी पर दूसरा कोई नहीं है । एक दुःख बीतता नहीं कि दूसरा आ जाता है । 'पूर्वमया नूनमभीप्सितानि, पापानि कर्मण्य सकृत्कृतानि ।' निश्चय ही पूर्व जन्म में मैंने अपनी इच्छा से बार-बार बहुत से पापकर्म किये है । उन्हीं में से कुछ कर्मो का यह परिणाम आज प्राप्त हुआ है । तभी न एक के बाद दूसरे दुःख में मैं पड़ता जा रहा हूँ । प्रश्रवण पर्वत से भी वह पूछते है—'मुझसे बिछड़ी हुई सर्वांग सुन्दरी रमणी सीता को तुमने देखा है ? मैं तेरे शिखरों को तोड़ डालूँ इससे पहले ही बता दे कि कांचन की-सी काया-कान्ति वाली सीता है कहाँ ? राम के चरित्र की यह विशेषता है कि वह बिल्कुल साधारण मनुष्य हैं, उसी की तरह सोचते हैं, उसी की तरह डरते हैं, उसी की तरह बोलते हैं और उनमें कहीं किसी तरह का अहं या श्रेष्ठता का भाव नही है । पर कातर भी नही हैं इतने । मनुष्य की क्रोधवृत्ति भी उनमें है, इसीलिए

वह परम हंस नहीं हैं। साधु-सन्यासी नहीं हैं। गृहस्थ जैसे हैं। क्रोध पर विजय पाकर मनुष्य साधारण नहीं रह जाता। राम में क्रोध है। कई बार उसका प्रदर्शन हुआ है। सिद्धाश्रम से, ताड़का-वध से लेकर सीताहरण और रावण-वध तक। सीता के खो जाने पर वह केवल प्रस्रवण पर्वत को ही चेतावनी नहीं देते. लक्ष्मण से कहते हैं—'मैं लोकहित में तत्पर, युक्त चित्त, जितेन्द्रिय तथा जीवों पर करुणा करने वाला हूँ तो इन्द्र आदि देवताओं ने भी मेरी सीता की रक्षा मुझे निर्बल मान कर ही तो नहीं की।' सीधे स्वभाव के लोग अक्सर सोचते हैं कि उनके सीधेपन का नाजायज फायदा उठाया जाता है। उन्हें लोग महत्त्वहीन समझने लगते हैं। राम भी इसी भाव से कहते हैं—'लक्ष्मण! देखो तो सही, मेरी दयालुता का गुण मेरा दोष बन गया है आज। तभी तो मुझे निर्बल समझ कर मेरी पत्नी का अपहरण कर लिया गया है। अब न यक्ष, न गन्धर्व, न पिशाच, न राक्षस, न किन्नर, न मनुष्य ही चैन से रह पायेंगे। सुमित्रानन्दन! देखना मैं थोड़ी ही देर में आकाश को अपने बाणों से भर दूंगा। ग्रहों की गति रुक जायेगी, चन्द्रमा छिप जायेगा, अग्नि, मरुदगण तथा सूर्य का तेज नष्ट हो जायेगा। सब कुछ अन्धकारमय हो जायेगा। पर्वत-शिखर मथ डाले जायेंगे। नदी-सरोवर सूख जायेंगे। वृक्ष, लता-गुल्म नष्ट हो जायेंगे। समुद्रों का भी नाश कर दिया जायेगा। काल की विनाश-लीला कर दूंगा मैं। देवगण इसी समय सीता को मुझे नहीं सौंपते तो वह मेरा पराक्रम देखेंगे। मेरे क्रोध से तीनों लोकों का विनाश हो जाने पर न देवता रहेंगे, न दैन्य, न पिशाच रह पायेंगे न राक्षस। वे मेरी हरी या मरी सीता मुझे दे दें। वरना बुढ़ापे, मृत्यु और काल (समय) की तरह मुझे कोई रोक नहीं पायेगा।' राम का यह क्रोधी स्वभाव जनक यज्ञ में लक्ष्मण के रौद्र रस से कहीं कम नहीं है। श्रीराम का ऐसा ही क्रोध उस समय भी देखने को मिलता है जब अनुनय, व्रत-उपासना करके राम हार गये पर समुद्र उनकी सुनता ही नहीं—कैसे जावें समुद्र को पार करके लंका तक? तब राम ने क्रोध में धनुष उठा लिया कि समुद्र को जला दूंगा, सुखा दूंगा। आज या तो मैं समुद्र के पार जाऊँगा या मेरे द्वारा समुद्र का संहार होगा। समुद्र पर अत्यन्त कुपित होकर वह लक्ष्मण से कहते हैं—'अपने ऊपर बड़ा अहंकार है। शान्ति, क्षमा, सरलता और मधुर भाषण वाले पुरुषों के ये गुण, जब गुणहीनों के साथ प्रयोग होते हैं तो वे उन्हें असमर्थ या कमजोर समझते हैं। सत्कार किसका करते हैं, जो धृष्ट, दुष्ट, सर्वत्र त्राहि-त्राहि मचाने वाला और अच्छे-बुरे सभी पर दण्ड का प्रयोग करने वाला तथा अपनी प्रशंसा स्वयं करने वाला हो। सामनीति (शान्ति) से न इस संसार में यश व कीर्ति मिलती है न युद्ध में (दुश्मन से) विजय मिलती है। ऐसे दुष्ट समुद्र को (जलचरों का नाश करते हुए) मैं अपने तीर से सुखाये देता हूँ और फिर सभी वानर पैदल ही लंका तक चले चलेंगे।

राम में दीनता के, भक्तिभाव के, ओज के, क्रोध के, मित्रता के, दयालुता के वे तमाम गुण हैं जो साधारण मनुष्य में होते हैं। उनमें, उनके चरित्र में ईश्वरीय, वायवी वह अकल्पनीयता नहीं है जो मनुष्य के लिए विश्वसनीय न हो या अलौकिक हो। *इसीलिए राम हम सबके बीच के व्यक्ति हैं और सबको अपने लगते हैं।*

श्री राम का आदिवासियों, वनवासियों से अपनत्व

बचपन से ही विश्वामित्र जी की शिक्षा और सान्निध्य ने श्री राम को, लक्ष्मण को, दलितों, प्रताड़ितों, पिछड़ों, अविकसितों और वनवासियों तथा कृषिकर्मियों के प्रति स्नेही बना दिया था। विश्वामित्र स्वयं चक्रवर्ती साम्राज्य को छोड़कर वनवासी, तपस्वी, साधु और महर्षि हो गये थे। विश्वामित्र में राज्य की सम्पदा और राज्य के अहंकार के प्रति वितृष्णा आ गयी थी तभी वह एक झटके में सारा साम्राज्य और घर-बार छोड़ कर तापस धर्मी बन गये थे। राक्षसों का विनाश उनका संकल्प था किन्तु देवाधिराज इन्द्र से भी उनकी कभी नहीं बनी। जो अपने को सर्वश्रेष्ठ मानता था उसी से विश्वामित्र की नाराजगी हो जाती। ब्रह्मा की सृष्टि के मुकाबले नयी सृष्टि की रचना तक के लिए वह उद्यत हो गये थे और उनका आत्मबल इतना सघन था कि यदि देवताओं ने अनुनय-विनय न की होती तो वह न केवल सृष्टि का यह नियम तोड़ देते कि सदेह स्वर्ग कोई नहीं जा सकता, राजा त्रिशंकु को सदेह स्वर्ग भेजकर, बल्कि एक नयी सृष्टि ही रच डालते — ब्रह्मा जी की सृष्टि से एकदम अलग। उनकी देवताओं व ब्रह्मा से लड़ाई इस बात की थी कि तपस्या में श्रेष्ठ होकर, अध्ययन में निष्णात होकर भी, ब्रह्मर्षि-पद-उन्हें क्यों नहीं दिया जाता ? केवल इसलिए कि वह क्षत्रिय कुल में जन्मे हैं, केवल इसलिए कि वह ब्राह्मण कुल में नहीं पैदा हुए। अंत में इस जाति-व्यूह को तोड़ कर उन्होंने ब्रह्मर्षि-पद पाया। इक्ष्वाकु वंश से उन्हें लगाव इसलिए हो गया था कि वह उन्हें अपनी आशा के अनुरूप और सक्षम पाते थे। देवासुर संग्राम में वह देवताओं को विजय दिलाने में सक्षम थे तो वचन के धनी भी थे और राजसत्ता से मोह न रखने वाले भी थे। राजा हरिश्चन्द्र की परीक्षा वह ले चुके थे। ऐसे वंश और कुल में पैदा हुए राम को उन्होंने जड़ से, प्रारम्भ से पकड़ लिया कि वह उन्हें अन्याय, शोषण, अधर्म, अनीति के विरुद्ध प्रशिक्षित कर दुर्बलों, दलितों, असहायों और न्याय के लिए संघर्ष करने, लड़ने की जिजीविषा उनके मूल संस्कार में, धमनियों में प्रवाहित हो रहे रक्तबीज में ही डाल दें। विश्वामित्र की यह शिक्षा, यह ज्ञान राम-लक्ष्मण के साथ आजीवन रहा। लोक-मानस[illegible], लोक-मर्यादा, लोक-कल्याण ही उनके जीवन का आदर्श रहा।

राक्षस कौन थे ? रावण का आतंक

चित्रकूट से दण्डकारण्य, जनस्थान तक राम को साधु-संतों, ऋषियों-मुनियों, वनवासियों का पक्ष लेकर राक्षसों-आततायियों का नाश करते हुए पाया गया है। पुराणों के अनुसार राक्षस ब्रह्मा जी द्वारा जल में से पैदा वैसे ही प्राणी हैं जैसे उन्होंने देवता, मनुष्य पैदा किये थे। अपने ही शरीर के अंश। शिवपुराण, विष्णुपुराण, मत्स्यपुराण में राक्षसों की उत्पत्ति का यही वर्णन है। सबसे पहले उनकी जंघा से असुर उत्पन्न हुए, मुख से देवगण हुए फिर पितृगण हुए, उनके रजोमय शरीर से मनुष्य उत्पन्न हुए। जब अन्धकार में स्थित होकर उन्होंने क्षुधाग्रस्त सृष्टि की रचना की तो जो भीषण प्राणी उत्पन्न हुए। वे ब्रह्माजी को ही भक्षण करने दौड़े। उनमें से जिन्होंने यह कहा कि 'ऐसा मत करो, इनकी रक्षा करो', वे राक्षस कहलाये और जिन्होंने कहा, 'नहीं हम खायेंगे' वे क्षुधा-वासना के कारण यक्ष (भक्ष) कहलाये। वास्तव में जो धर्मग्रन्थ व विवेचनाएँ मिलती हैं उनका सार यही है कि ये राक्षस मनुष्य के शत्रु हैं और अनिष्ट, अशुभ, हिंसा और पाप के प्रतीक हैं। यद्यपि विष्णुपुराण में ही यह उल्लेख भी है कि जब विश्वामित्र की प्रेरणा से वशिष्ठ जी के पुत्र और पराशर जी के पिता को राक्षस ने खा लिया तो राक्षसों का ध्वस करने के लिए पराशर द्वारा किये जा रहे यज्ञ को वशिष्ठ जी द्वारा रुकवा दिये जाने पर पुलस्त्य जी, जो ब्रह्मा जी के मानस पुत्र थे (वशिष्ठ भी मानस पुत्र थे और पुलह भी), कहते हैं कि अत्यन्त क्रोधित होने पर भी महाभाग पराशर, तुमने मेरी सन्तान को पूरी तरह नष्ट नहीं किया, कुछ राक्षस बच गये अतः मैं तुम्हें उत्तम वर देता हूँ।' इसी तरह वाल्मीकि रामायण में महर्षि अगस्त्य जब रामचन्द्र जी को रावण और मेघनाथ के बारे में बताते हैं तो यही कहते हैं कि पुलस्त्य जी ने तृणबिन्दु मुनि की कन्या से विश्रवा नाम का पुत्र जन्मा। विश्रवा से वैश्रवण (कुबेर) का जन्म हुआ, जो देवताओं के कोषाध्यक्ष बने और जिनके लिए विश्वकर्मा ने अलकापुरी से भी सुन्दर लंकापुरी बनाई थी। ब्रह्मा जी ने जो राक्षस अपने शरीर से उत्पन्न किये थे उनके वंशज भी कुबेर की नगरी में बस गये। उन मूल राक्षसों में हेति और प्रहेति नाम के दो भाई थे जो सब राक्षसों के प्रमुख थे। प्रहेति धर्मात्मा था, अतः तपस्या करने चला गया। हेति का विवाह काल की बहिन भया से हुआ जिससे उसे विद्युत्केश नाम का पुत्र हुआ। विद्युत्केश ने संध्यापुत्री सालकटङ्कटा से ब्याह कर सुकेश को जन्म दिया जिसे पार्वती जी के आग्रह पर शिवजी ने वरदान दिये और आकाशचारी नगराकार विमान भी दिया। ग्रामणी गन्धर्व की कन्या देववती से सुकेश को तीन पुत्र हुए—माल्यवान, सुमाली और माली। कठिन तप से ब्रह्मा जी को प्रसन्न कर इन तीनों ने अपराजेयता और भाइयों में प्रगाढ़ प्रेम का वर प्राप्त किया। तब ये अपराजेय देवताओं, असुरों और ऋषियों को त्रस्त करने

लगे। विश्वकर्मा से जब उन्होंने सुन्दर आवास नगरी के निर्माण के लिए कहा तो उन्होंने उन्हें अलकापुरी से भी सुन्दर लंकापुरी में बसने को कहा जो दक्षिण समुद्र में त्रिकूट और सुवेल पर्वत के मध्य इन्द्र की आज्ञा से बसाई गयी है। यह नगरी तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी है जिसकी चहारदीवारी सोने की बनी हुई है। नर्मदा नाम की एक गन्धर्वी ने (राक्षसी न होने पर भी) अपनी तीनों कन्याओं—लज्जा, ह्री श्री (सम्पत्ति) व कीर्ति—का विवाह इन तीनों भाइयों से ज्येष्ठता क्रम से कर दिया। माल्यवान के सात पुत्र वज्रमुष्टि, विरुपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यक्षकोप व मत्त तथा उन्मत्त हुए। सुमाली के दस पुत्र प्रहस्त, अकम्पन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, सुपार्श्व, संह्रादि, प्रघस तथा भासकर्ण एवं चार पुत्रियाँ राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी और कुम्भीनसी हुईं। छोटे भाई माली के चार पुत्र थे—अनल, अनिल और हर तथा सम्पाति (जो चारों विभीषण के मंत्री हुए)।

इन राक्षसों के सैकड़ों पुत्र हुए। ये अपराजेय राक्षस, यक्ष आदि सद्कर्मों का विध्वंस करने लगे और देवताओं तथा तपोधन ऋषियों को पीड़ित करने लगे। तब देवतागण भगवान शंकर की शरण में गये और उनकी सलाह से विष्णु जी के पास गए। तब विष्णु भगवान, जिन्होंने दैत्यों आदि का नाश किया था, ने इन राक्षसों से भयंकर युद्ध करके इनका संहार किया और बचे हुए राक्षस भाग गए। ये राक्षस रावण आदि से भी बहुत बलवान थे। बहुत ही कठिन युद्ध करने पर माली मारा गया। माल्यवान हार कर लंका की तरफ भाग गया और सुमाली अन्य राक्षसों के साथ रसातल में प्रवेश कर गया। बाद में विष्णु के बल से पीड़ित होकर सभी राक्षस लंका छोड़कर अपनी स्त्रियों और संतानों के साथ पाताल में रहने लगे। सुमाली बड़ा विद्वान था। अपनी जाति के उत्थान की चिंता में वह भूलोक पर घूम रहा था कि उसे कुबेर दिखायी दिये, जो अपने पिता विश्रवा के दर्शन के लिए वहाँ पहुँचे हुए थे। उसने अपनी पुत्री कैकसी को विश्रवा से विवाह करने के लिए तैयार किया। विश्रवा ने कैकसी की प्रार्थना पर उनसे पुत्र प्राप्त करना तो स्वीकार किया किन्तु कहा कि तुम्हारे पुत्र क्रूरकर्मा और राक्षसों से प्रेम करने वाले होंगे। अर्थात् वह राक्षस ही होंगे। कैकसी दुराचारी संतान नहीं चाहती थी, तब विश्रवा ने कहा कि तुम्हारा सबसे छोटा पुत्र धर्मात्मा होगा। तब उसके रावण, कुम्भकर्ण पुत्र हुए और शूर्पणखा नाम की पुत्री हुई। अंत में कैकसी के विभीषण नाम का पुत्र हुआ। कैकसी ने रावण को समझाया कि वह भी अपने भाई वैश्रवर्ण (कुबेर) की तरह तेजस्वी और वैभवशाली बने। रावण ने माँ को तपस्या से अपना मनोरथ पूर्ण करने का वचन देकर गोकर्ण आश्रम पर कठिन तपस्या की। जब उसने अपने नौ सिर होम कर दिए और दसवाँ भी होम करने लगा तो ब्रह्मा जी ने प्रकट होकर उससे वर माँगने को कहा। उसके द्वारा माँगे गए अमरत्व को ब्रह्मा जी द्वारा मना कर देने पर उसने यह वर माँगा कि वह

गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओं के लिए अवध्य हो जाये। मनुष्य आदि जीवों से उसे कोई भय नहीं था। ब्रह्मा जी ने ऐसा ही वर देकर उसके हवन किये गए मस्तक भी उसे लौटा दिए और उसे इच्छित रूप धर सकने का वर भी दिया।

रावण को ऐसा श्रेष्ठ अभयदान मिल जाने पर सुमाली राक्षस अपने अनुचरों और मारीच, प्रहस्त, विरुपाक्ष तथा महोदर नाम के चारों मंत्रियों सहित रसातल से धरती पर रावण के पास आया और विष्णु के भय से रसातल चले जाने की बात बताकर अब रावण को ही सब राक्षसों का राजा होकर किसी भी तरह राक्षसों की पुरानी नगरी लंका को धनपति कुबेर से वापिस लेने के लिए कहा। रावण ने बड़े भाई के प्रति ऐसा विचार मन में न लाने की बात तय कर नाना सुमाली को चुप कर दिया। कुछ दिनों बाद प्रहस्त ने रावण को समझाया कि अदिति और दिति दोनों सगी बहनें हैं जो प्रजापति कश्यप की पत्नियाँ हैं। अदिति ने देवताओं को और दिति ने दैत्यों को जन्म दिया है। पहले-पहले पर्वत, वन और समुद्रों सहित यह सारी पृथ्वी प्रभावशाली दैत्यों के अधिकार में थी किन्तु भगवान विष्णु ने युद्ध में दैत्यों को मारकर यह अक्षय त्रिलोकी राज्य देवताओं के अधिकार में कर दिया। अत: आपको तो अपनी लंका वापस लेनी है जबकि ऐसा विपरीत आचरण पहले देवताओं और असुरों ने भी किया है। इसलिए आपके नाना का कहना युक्ति विरोधी नहीं है। रावण की समझ में बात आ गयी। उसने त्रिकूट पर्वत पर जाकर प्रहस्त को कुबेर के पास भेजकर कहलाया कि आप धर्म का पालन करने वाले हैं। अत: यह लंका सुमाली आदि जिन राक्षसों की है उन्हें लौटा दी जाए। कुबेर ने प्रहस्त से कहा कि निशाचरों से सूनी हो जाने के कारण पिताजी ने मुझे इस लंका में रहने की आज्ञा दी थी जहाँ मैंने अन्य दानी-मानी लोगों को बसाया है। किन्तु मेरे पास जो कुछ भी है वह सब रावण का भी है। वह आकर इसका उपभोग करे। कुबेर तब अपने पिता विश्रवा मुनि के पास यह बताने गए। उन्होंने कुबेर से कहा कि वर पाकर रावण मदमत्त हो गया है और मेरे शाप के कारण वह क्रूर प्रकृति का भी है। अत: तुम अपने अनुचरों सहित लंका छोड़कर कैलास पर्वत पर चले जाओ और अपने रहने के लिए वहीं जहाँ मंदाकिनी नदी बहती है नया सुन्दर नगर बसाओ। कुबेर ने ऐसा ही किया। अत: सभी राक्षसों सहित रावण लंका में बस गया जहाँ उसका राज्याभिषेक किया गया।

अपनी बहन शूर्पणखा का विवाह रावण ने दानवराज विद्युज्जिह्व से किया जो कालिका का पुत्र था। रावण का विवाह दिति के पुत्र मय दानव की पुत्री मंदोदरी से हुआ। जो मय की पत्नी हेमा नाम की अप्सरा से उत्पन्न हुई थी। मंदोदरी के दो भाई भी थे—मायावी और दुंदुभि। कुम्भकर्ण का विवाह विलोचन कुमार

बलि की दौहित्री व्रज ज्वाला से हुआ तथा गंधर्वराज महात्मा शैलूष की कन्या सरमा से विभीषण का विवाह हुआ। मंदोदरी से रावण के पुत्र मेघनाद, जिसे इंद्रजित् भी कहते हैं, का जन्म हुआ। रावण के अत्याचारों का सिलसिला शुरू हो गया। देवताओं और यक्षों पर उसके अत्याचार और आक्रमण निरंतर होने लगे। मणिभद्र तथा कुबेर भी पराजित हो गए और उनके पुष्पक विमान का भी उसने अपहरण कर लिया। शिवजी के नंदी का उपहास करने पर रावण को यह शाप मिला कि जिस तरह शंकर पार्षद नंदी को वानर के रूप में देख कर वह हँसा है वैसे ही रूप वाले बंदर उसके कुल का विनाश करेंगे। कैलास पर्वत को अपने पुष्पक विमान द्वारा न लाँघे जाने पर शिव की भी अवमानना करके रावण ने विशाल शर्वण को ही जड़ से उखाड़ देने के लिए अपनी भुजाएँ निचले भाग में लगा दीं। तब शिवजी के अँगूठे के जोर से उसकी बाँहें पहाड़ के नीचे दब गयीं। किन्तु फिर शिव की तपस्या करने पर उसकी भुजाएँ स्वस्थ हो गयी तथा उसने शिवजी से अपनी बीती हुई आयु को पुनः प्राप्त करने का वर व चंद्रहास नामक खड्ग भी प्राप्त किया। अब वह हिमालय पर स्वच्छंद विचर रहा था तो उसे वेदवती नाम की कांतिमान युवा तपस्विनी दिखायी दी, जिसके प्रति वह काम-जनित मोहाभिभूत हो उठा। वेदवती आचार्य बृहस्पति के पुत्र कुशध्वज की पुत्री थी, जिसे अपने लिए देवता, गंधर्व, यक्ष, राक्षस माँगते रहे किन्तु कुशध्वज की इच्छा थी कि देवेश्वर विष्णु उनके दामाद हों। उनके इस अभिप्राय को जानकर दैत्यराज शंभु ने कुपित होकर उनका वध कर दिया। तब वेदवती की माता दुःखी होकर अग्नि समर्पित हो गयी। तभी से अपने पिता की इच्छा की पूर्ति के लिए वेदवती विष्णु को पाने के लिए कठिन तपस्या कर रही थी और उन्हीं के लिए अपने को समर्पित कर उन्हीं को अपना पति मान चुकी थी। ऐसा जानकर भी विष्णु को अपने से कम पराक्रमी बताकर रावण ने वेदवती से विवाह की इच्छा प्रकट की। मना करने पर उसने बलात् उसके केश खींच लिए। इस पर वेदवती 'अगले जन्म में मैं तुम्हारी मृत्यु का कारण बनकर अयोनिजा कन्या के रूप में प्रकट होकर किसी धर्मात्मा पिता की पुत्री बनकर तुमसे इस अपमान का बदला लूँगी!' ऐसा कहकर अग्नि को समर्पित हो गयी थी।

तीनों लोकों में देवताओं, यक्षों, गंधर्वों को आतंकित करता हुआ रावण समस्त राज्यों और राजाओं को अपने अधीन करता चला गया। राजा मरुत के यहाँ पहुँचने पर उसके यज्ञ में आये हुए इन्द्र रावण के डर से मोर बन गये, धर्मराज कौआ बन गए, कुबेर गिरगिट बन गए और वरुण हंस बन गए। राजा मरुत को भी उसने अधीन कर लिया। महेन्द्र और वरुण के समान पराक्रमी राजाओं के पास जाकर वह कहता कि या तो मुझसे युद्ध करो या कह दो कि हम हार गए। ऋषियों और मुनियों को उनके सत्य और धर्माचरण के कारण वह ढूँढ़-ढूँढ़ कर मारने

लगा। बहुत सारे धर्मशील विचारवान राजा परस्पर सलाह करके रावण से अपनी हार स्वीकार करने लगे। इनमें दुष्यंत, सुरथ, गाधि, गय, पुरूरवा जैसे भूपाल राजा भी थे। अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशी राजा अनरण्य को भी उसने भारी सेना सहित पराजित कर दिया। कालकेय जैसे महादानवों और शूर्पणखा के पति विद्युज्जिह्व को भी रावण ने मार डाला तथा जलस्वामी वरुण को भी पुत्रों सहित पराजित कर दिया। देवताओं की कन्याओं तथा स्त्रियों का अपहरण करना रावण के क्रूर अभियान का प्रमुख अंग ही बन गया था। परायी स्त्रियों से रमण करना उसका शौक हो गया था। मौसेरे भाई खर को सेनापति दूषण के साथ शूर्पणखा सहित भेजकर उसने दण्डकारण्य का अधिपति बनाकर भेज दिया जो जनस्थान का राजा और रावण का प्रतिनिधि था। देवलोक पर भयंकर आक्रमण कर उसने अप्सरा रम्भा से बलात्कार किया। रावण के बड़े भाई कुबेर के पुत्र नलकूबर की पत्नी होने के नाते वह रावण की भी पुत्रवधू लगती थी। तब नलकूबर ने उसे शाप दिया था कि अब वह किसी ऐसी स्त्री से सम्भोग कर ही नहीं सकेगा जो उसे स्वयं न चाहती हो। देवताओं और उनके राजा इन्द्र पर भी रावण ने भयंकर आक्रमण कर दिया। मेघनाथ द्वारा इन्द्र भी बन्दी बना लिये गये जिन्हें ब्रह्मा ने किसी तरह छुड़ाया। गरज ये कि रावण सर्वजयी हो गया। देवता, दैत्य, मनुष्य, गन्धर्व, किन्नर, नाग सभी पर उसका आतंक था। मद बढ़ता है तो अत्याचारों की सीमा नहीं रहती। उसकी आड़ में उसके मामूली कर्मचारी और सेवक बिना कारण अत्याचारों, शोषण और पीड़न की सीमा तक पहुँच जाते हैं। समरथ के लिए नीति उसका कर्म और वाक्य बन जाते हैं। वह किसी नीति में कहाँ बँधता है। ऋषियों, मुनियों, संतों पर राक्षसों के कहर इस कदर बढ़े कि उनका जीवित रह सकना सम्भव नहीं रह गया था। रावण का आतंक हर राक्षस का आतंक बन कर पृथ्वी पर छा गया।

इसी आतंक, अपराध, अनीति, अधर्म से हर त्रस्त को मुक्ति दिलाने की शिक्षा श्री राम को विश्वामित्र ने दी थी। विश्वामित्र के मन की पीड़ा संसार के जन-जन की पीड़ा थी। यही संकल्प, यही उद्देश्य राम को राजसिंहासन से बार-बार वन तक लाया, जन-जन तक लाया।

रावण ने दण्डकारण्य के समीप ही किष्किन्धापुरी के महाबलशाली राजा बाली से मित्रता कर ली थी। बाली का भी कम आतंक नहीं था। नीति-अनीति उसने भी ताक पर रख दी थी। शक्ति का मद उसे भी कम न था। दोनों ने संधि कर ली थी कि स्त्री, पुत्र, नगर, राज्य, भोग व वस्त्र तथा भोजन इन सभी पर हमारा साझे का अधिकार होगा। यह राक्षस और वानर जाति की एकता सद्पुरुषों, श्रमशील लोगों के लिए और भी भयावह हो गयी, यहाँ तक कि मुनि मतंग तक इससे परेशान हो उठे। मर्यादा जैसे रह ही नहीं गयी थी। मन्दोदरी के

भाई मायावी और दुन्दुभी बाली द्वारा मार दिये जाने पर भी रावण और बाली की मित्रता बनी रही। ऋषि अगस्त्य ने राम को यह सारी अन्तर्कथा सुनाकर तथा आतंक के दुष्परिणामो से अवगत कराकर और भी संकल्पनिष्ठ तथा शस्त्र-युक्त बना दिया था।

ऋक्ष, वानर आदिवासी जन थे

वाल्मीकि जी ने रामायण मे जिन वानरों-रीछों का जिक्र किया है वे मनुष्यो की तरह बुद्धिमान, मानवीय भाषा बोलने वाले, कपड़े पहनने और घरों मे, राज-महलो में रहने वाले, विवाह संस्कारो को मानने वाले, राजा के शासन में रहने वाले है। उनकी अपनी संस्कृति और समाज व्यवस्था भी है। वास्तव में वानर, ऋक्ष आदि के जाति नाम से जानी जाने वाली जनजातियाँ हैं। सी० वैद्य तो कहते है--'वे देखने मे वानर जैसे थे' किन्तु कुछ ग्रन्थो मे बताया गया है कि यह उनके ध्वज-चिह्न थे . जिस कुल के लोग जिस पशु या वनस्पति की पूजा करते है वह उसी के नाम से जाने जाते है। यह प्रथा आदिवासियो में आज भी है। बजरंग, वानर गोत्र भी मिलते है। वाल्मीकि रामायण मे जब हनुमान श्रीराम-लक्ष्मण से मिलते है तो हनुमान जी अपने परिचय मे कहते है कि 'मैं वायु देवता का वानर जातीय पुत्र हूँ।' श्री राम लक्ष्मण से कहते हैं—'इन शत्रु दमन सुग्रीव सचिव कपिवर हनुमान से, जो बात के मर्म को समझने वाले है, तुम स्नेहपूर्वक मीठी वाणी मे बातचीत करो। जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नही मिली, जिसने यजुर्वेद का अध्ययन नही किया तथा जो सामवेद का विद्वान नही है, वह इस प्रकार सुन्दर भाषा मे वार्तालाप नही कर सकता। निश्चय ही उन्होने समूचे व्याकरण का कई बार स्वाध्याय किया है क्योकि इनके मुँह से कोई अशुद्धि नही निकलती। ये संस्कार और क्रम मे सम्पन्न, अद्भुत, अविलम्बित तथा हृदय को आनन्द प्रदान करने वाली कल्याणमयी वाणी का उच्चारण करते है।' इससे स्पष्ट है कि वे (वानर) मनुष्यो की भाषा बोलते है, शास्त्रो का ज्ञान रखते है। राम इन्ही वनवासियो, इन्ही जनजातियो, इन्ही आदिवासियो को संघर्ष के लिए साथ लेते है—वानर और ऋक्ष जाति को।

कितने सरल और सहज हैं राम

राम रावण की प्रभुता और शक्ति-सम्पन्नता को जानते हैं फिर भी उसके साथ संघर्ष के लिए, युद्ध के लिए वह किसी बडी शक्ति को साथ नही लेना चाहते। वे कमजोर लोगो को, छोटे लोगो को भी उनकी अपार शक्ति का भरोसा दिलाते है! वह चाहते तो निश्चय ही अयोध्या से, मिथिला से और काशी से, जो राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के अपने राज्य और ससुराल की शक्ति थी, मदद लेकर

रावण से भिड़ सकते थे। वे अगस्त्य, शरभंग, सुतीक्ष्ण, भरद्वाज के आश्रमों से भी मदद लेते तो उन तप:मनस्वियों की अपार शक्ति उनके साथ होती। किन्तु उन्होंने ऐसा भी नहीं किया। उन्होंने केवल उन्हें साथ लिया जो दक्षिणापथ के वासी थे और जो लंका के राक्षसों के अनाचार, अत्याचार और उनकी चालाकी से अवगत थे। जो उपेक्षित थे किन्तु जिनमें अपार संगठन शक्ति थी। उनका विश्वास जागृत करने, अपने प्रति आस्था उत्पन्न करने और रावण को अपराजेय न समझने का साहस देने के लिए ही उन्होंने बाली के आतंक को, अनैतिकता को ललकारना जरूरी समझा और बाली का बध करके जहाँ कर्नाटक क्षेत्र के आदिजनों को उन्होंने अपने पक्ष में कर लिया वहीं प्रकारान्तर से रावण को भी यह जता दिया कि वह बहुत साधारण प्रतिरोधी के रूप में उनका आकलन न करे बल्कि बाली, जिससे स्वयं रावण भी परास्त हो चुका था, को मारने वाली किसी हस्ती के रूप में उन्हें स्वीकार करे। राम रथों, विमानों पर आरूढ़ होकर भी युद्ध कर सकते थे किन्तु उन्होंने आम जनता के पास जो साधन उपलब्ध हो सकते हैं उन्हीं का उपयोग किया। देवराज इन्द्र तक का विमान उन्होंने लौटा दिया था। राम के मन में केवल रावण के आतंक, अन्याय और अनीति को ध्वस्त कर देने का संकल्प था। वह रावण की सामन्ती विस्तारवाद की प्रवृत्ति को तोड़ देना चाहते थे। उनका मकसद उसके राज्य, साम्राज्य को हस्तगत करना नहीं था। सम्पूर्ण राक्षसी वृत्ति को नष्ट कर, राक्षस संस्कृति को पराजित कर रावण को उसके भाई कुम्भकर्ण तथा मेघनाथ आदि पुत्रों, युद्धवीरों सहित मारकर वह लंका का राज्य उसके उत्तराधिकारी, नीतिवान, आचरणवान, धर्मवान भाई विभीषण को सौंप देते हैं। बाकी जो भी रावण के आधिपत्य में थे, दासता में थे वे मुक्त हो जाते हैं, स्वतंत्र हो जाते हैं। राक्षसों को मनुष्यत्व और देवत्व की संस्कृति से मेल करना होता है। लवणासुर जैसे जो राक्षस रह गये थे। उनका बध बाद में वह शत्रुघ्न से कराते हैं और अपने संकल्प को, अपनी जिजीविषा को, अपने संघर्ष को मानवता के कल्याण के लिए सफलता के शिखर पर पहुँचाते हैं। राम जन-जन की आकांक्षा के पर्याय बन जाते हैं। अन्याय और शोषण के प्रतिरोध के प्रतीक बन जाते हैं। कहीं भी एक क्षण को भी वह अलौकिक नहीं लगते, मनुष्य की तरह नितान्त सादगी-भरे और सहज साधारण हैं। मनुष्य का दुःख उनका दुःख है। जनता की शक्ति और विश्वास तथा स्नेह उनकी ऊर्जा है। गलत के प्रति उनका प्रतिरोध है, अभिमान के प्रति उनकी वितृष्णा है चाहे वह बाली का अनुज-वधू वाला प्रसंग हो या धोबी के शब्द में जहर घोलता सीता के प्रति शंका या लोकापवाद हो, या समुद्र का घमण्ड हो। उनकी राजनीति षड्यंत्र की नहीं, सद्भाव की है। शुक और सारण जैसे रावण-दूतों को अपने युद्ध-शिविर में गुप्त रहस्य ज्ञात करते पकड़े जाने पर वह यही कहते हैं कि मेरा शस्त्रागार, अन्न-भण्डार आदि सब देख लो क्योंकि मेरी रणनीति

एक खुली किताब की तरह है। मतंग आश्रम की तपस्विनी सेविका भील स्त्री शबरी के प्रति भी अयोध्या के राजा राम के मन में हार्दिक आदर-भाव है वैसा ही जैसा निषाद-प्रधान के लिए है, जो वन को आते समय उन्हें अपनी नाव में गंगा पार कराता है। दीन जनों के सम्मुख विनीत और रावण जैसे सर्वशक्ति-सम्पन्न के सामने वह गरजते हैं—

भिन्नमर्याद निर्लज्ज चारित्रेष्वन वस्थित।
दर्पान्मृत्युमुपादाय शूरोऽहमिति मन्यसे॥

'धर्म की मर्यादा भंग करने वाले पापी, निर्लज्ज और सदाचारशून्य निशाचर, तूने बल के घमण्ड से वैदेही के रूप में अपनी मौत बुलाई है।'

राम का जीवन कितना जनवादी है इसका इतना-सा उदाहरण बहुत है कि संन्यासी, साधु न होकर गृहस्थ होकर भी वह बिल्कुल सामान्य आदमी के वस्त्रों में जटा-जूट के साथ चौदह साल का संघर्षपूर्ण जीवन झेलते हैं। वह उनकी वेशभूषा में हैं जिनके साथ रह रहे हैं। भूमि पर सोते हैं, झोंपड़ी में रहते हैं कन्द-मूल खाकर जीवन जीते हैं। आज के युग में ऐसा चरित्र का अनुसरण केवल महात्मा गांधी ही कर पाये थे। सब कुछ प्राप्त होते हुए भी गांधी जी का जीवन सामान्य से भी सामान्य भारतीय जन का था। एक धोती का पहनावा और आश्रम में निवास। माओत्सेतुंग और हो-ची-मिन्ह का जीवन भी इस मायने में उल्लेखनीय है कि वह अपने क्रान्तिकारी सैनिक की तरह सैनिक वस्त्र में, फटे-पुराने पैबन्द लगाये कपड़ों में सारा जीवन काट देते हैं, अपने आजाद देश के सर्वोच्च नायक होकर भी। राम की अनुपस्थिति में अवध-सम्राट का राज-काज सँभाले भरत राम के ही पदचिह्नों का अनुपालन करते हुए अयोध्या के बाहर नन्दिग्राम की पर्णकुटी में रहकर सारा शासन-कार्य सम्पादित कर रहे हैं। प्रजा के सुख-दुःख के सहभागी बने हैं। किसमें है आज यह विलक्षण त्याग-भावना—सत्ता का दण्ड हाथ में लिये जो संत की तरह अपने राज्य के सबसे गरीब व्यक्ति की तरह जीवन जी रहा हो। हाँ, यहाँ एक उदाहरण कुछ वर्ष पहले वियतनाम में जरूर पाया गया था कि भरत की तरह हो-ची-मिन्ह हैं जो राष्ट्रपति होकर भी राज-भवन के बाहर झोंपड़ी में रहते हैं। या फिर माओ थे जो अपने साधारण-से घर में टूटी-फूटी-सी बहुत साधारण तीन-चार कुर्सियाँ भर रखते थे। महात्मा गांधी राम के जीवन से, उनकी आदर्श मानवीयता से इतने प्रभावित थे कि वह स्वतंत्र भारत में राम-राज्य की ही कल्पना करते थे। वह सत्ता के शिखर पर पहुँचने में पूर्ण सक्षम होकर भी सत्ता से इतने दूर रहे, सुखभोग से इतने विलग रहे, जितना कि बहुत ही साधारण आदमी रह सकता है। महात्मा गांधी चाहते तो स्वतंत्र भारत का कौनसा बड़े से बड़ा पद था जो उन्हें प्राप्त न होता। जनता उन्हें सिर-आँखों पर उठाती थी पर उन्हें जनता जनार्दन के बीच, गरीबों, दुखियों के

बोध वही जिन्दगी चाहिये थी जिसकी ललक राम के जीवन में हमेशा रही।

जिस जीवन को राम ने जिया—राजा न होने पर भी और राजा होकर भी।

राजा होकर भी वह अभावों, दुःखो के सागर मे ही खड़े रहे।

रामकथा के पात्रों का दुःख

वाल्मीकि जी ने क्रौंच पक्षी के जोडे के बिछुडने की स्थिति को अपने काव्य की वेदना का मूल स्रोत बनाया था। मन उमड पडा था उनका। शायद यह भी एक कारण रहा हो कि राम-कथा के पात्रों का दुःख मन को साल जाता है। दशरथ को लीजिये। सारे सुख थे, शक्ति से सम्पन्न थे किन्तु निःसन्तान होने का दुःख वृद्धावस्था तक झेलते रहे। वृद्धावस्था मे पुत्रों की प्राप्ति के बाद भी विश्वामित्र के साथ विकराल राक्षसो से लडने के लिए घोर वन में राम-लक्ष्मण को सुकुमारावस्था में ही भेज देना पडा। अपनी सारी अक्षौहिणी सेना देकर स्वयं विश्वामित्र के साथ जाने को तैयार होने पर भी उन्हें अपार दुःख को सहन कर राम-लक्ष्मण को भेजना पडा। जब सुख के दिन लौटे, राजकाज मे राम हाथ बटाने लगे, उनके राजतिलक के, सुख के क्षण आने को थे तो प्राणो से भी प्यारे पुत्र राम, लक्ष्मण और बहू सीता को चौदह वर्ष की लम्बी अवधी के लिए वन जाने का आदेश देना पडा। ऐसा निर्मम निर्णय केवल दशरथ को ही लेना पडा था। निश्चय ही अकल्पनीय क्षण रहा होगा वह जब राजतिलक के समारोह की धूमधाम के बीच दोनो पुत्रों व बहू को वनवासी बनाकर राजमहल से जाते हुए देखना पडा होगा। कितनी टूट गयी होगी कौशल्या माँ! कैसा निर्णय था यह? अपार खुशियो के बीच वज्र-सा कठोर आघात! चौदह वर्ष तक एकमात्र पुत्र व वधू से दूर रहने की मन वेदना। अच्छे-खासे पति का निधन। तार झनझना उठे मन के। किसी तरह समय कटा और वे लौटे तो फिर बहू का वन-गमन! गर्भवती बहू को आजीवन वनवास। पौत्र को पाने की, देखने की कितनी लालसा होती है दादी के मन में! जीवन-भर आँसू ही तो पीती रही कौशल्या जी, एक बार पति का वचन और एक बार पुत्र का निर्णय। राम का विछोह, वैधव्य और भरत का प्रेम। कैसी स्थितियाँ रही हमेशा कि न रो सकी, न हँस सकी थी वह। कैकेयी भी कम दुखी नही रही। बड़े पुत्र के प्रेम में डूबी रह कर उसका अनिष्ट चाहने का पश्चाताप, पति के देहावसान के कारण विधवा बनने की लोक-लज्जा, पुत्र की निगाहों मे पतित हो जाने का संताप। कैसी भाग्यहीन रही होगी सुमित्रा! उसका पुत्र भी तो सुकुमार होते ही सकट से लड़ने चला गया, लौटा तो अभी उसे गोद मे बिठाने का सुख भी न ले पायी थी कि फिर चौदह वर्ष भाई के साथ वन का कठिन और संकटपूर्ण जीवन वरण कर लिया। सुमित्रा के सामने रह गयी युवा बहू जो पति से प्रेम-सुख पाने की उम्र में आँखों मे आँसू छुपाये पड़ी रहती।

सबसे अधिक दुखी जीवन तो राम का है। सौ सुख-सुविधाओं में भी हमेशा रीते-रीते से। कैसा कौमार्य होना था राजकुमार का, कैसा बीता? पिताजी का काम बाँटने का अवसर आया तो विषाद की छाया लेकर। मृत्यु के समय भी पिता का सिर हथेली पर न ले सके। माँ की वेदना, परिवार का दु:ख और अपने सकल्प के लिए संघर्ष की हर घड़ी चिन्ता। गुरुदक्षिणा का भार। संताप से भरे जीवन में पत्नी थी साथ, तो वह भी छिन गयी और उसे पाने की लालसा मे जीवन का वह दुर्द्धर्ष क्षण कितना आहत कर गया था राम को जब भाई लक्ष्मण युद्ध में निष्प्राण पड़ा था। ऐसे मे किससे कहें? क्या कहें? पत्नी को, भाई को खोकर लौटें भी, हार मान कर लौट भी जायें तो किस मुँह से? क्या कहेंगे माँ से? भरत से? शत्रुघ्न से? और फिर माँ सुमित्रा को क्या जवाब देंगे? लक्ष्मण जैसे भाई को खोकर क्या जीवित अयोध्या लौटा जा सकता था राम से? किस पराक्रम की बात करेंगे राम संसार से? लोगों से? पत्नी मिली, युद्ध जीता, संकल्प पूरा हुआ तो लोकमर्यादा के लिए उसी पत्नी की अग्नि-परीक्षा लेने का कैसा कटु निर्णय लेना पडा राम को। जिस साध्वी की साँस-साँस के समर्पण से राम परिचित है उस पत्नी के मन का अतर्द्वन्द्व साल गया था राम को मन ही मन। वह मन की निर्लज्ज पीड़ा उन्हें अकेले ही तो झेलनी पड़ी थी। उसमे तो वह पत्नी को भी सहभागी नही बना सके थे। राजसिंहासन पर बैठे, जनता का दु:ख-सुख अपने मे सँजोया, परिवार के साथ हँसने-बतियाने के दिन आये, पिता बनने का सुख मिलने का अवसर आया तो पत्नी को, गर्भवती पत्नी को ही आजीवन त्यागने का कठोरतम निर्णय लेना पड़ गया। पत्नी को बता सकने की भी सामर्थ्य न थी तब राम के अन्दर। उस पत्नी को जिसके रोम-रोम के संकल्प को वह जानते थे, जिसकी निस्पृह समर्पण भावना से वह पतिरूप मे ढके रहते थे, जिसकी वह लोक-मर्यादा के लिए ही अग्नि-परीक्षा ले चुके थे। पत्नी के बिना जीवन जीने का क्या अर्थ राम के लिए? किन्तु जीना पड़ा। समाज मे आदर्श पुरुष का पद धारण करने का यही दण्ड उन्हें स्वीकार करना पडा। किसके मन में अपनी सन्तान का जन्म-सुख भोगने, उसकी किलकारियों, कलोलों में खो जाने का मन नही होता। इतने बडे साम्राज्य का राजकुमार पत्थरों, चट्टानों, काँटों पर दौड़ कर जगली पशुओ के बीच अपना शैशव जियेगा। राम का यह दु:ख, उनके सारे जीवन का दु:ख, अपने से पहले ही, अपने ही मुख से लक्ष्मण को जीवन-लीला समाप्त कर देने को कहने का दु:ख—उस लक्ष्मण को जो केवल अपने जीने का उद्देश्य ही राम के लिए जीना मानता हो—राम को कितना तोड़ जाता है। सीता भी गयी और लक्ष्मण भी। यही नियति अंत तक झेलनी पड़ी है राम को। दु:खों से त्रस्त मानव के लिए राम का जीवन साहस और धैर्य का अवलम्ब है, आशा की किरण है। लक्ष्मण का दु:ख कब कम रहा? किस समय उन्हें सुखी

कहा जाय ? राम-कथा के पाठक वह क्षण बता सकते हैं जब हम लक्ष्मण को सुखी कहें। उर्मिला के दुःख का कहीं पारावार है ? भरत क्या कम दुःखी रहे ! भाई के प्रति समर्पित रहकर कर भी भाई के प्रति लांछित होने का सबसे बड़ा दुःख तो भरत ने ही झेला। और फिर माण्डवी ? उसके दुःख को किसने अनुभव किया ? सुखी-सी लगने वाली माण्डवी का दुःख तो किसी की नजर में भी नहीं पड़ता। सीता की बहनें भी तो सीता के भाग्य से जुड़ी हैं। वह सीता जो धरती पर पड़ी मिली, पति के सुख-दुःख में साथ निभाने को वह कहाँ-कहाँ नहीं भटकी ! क्या-क्या नहीं भोगा उसने, क्या-क्या नहीं सहा ! अपमान भी, दुःख भी। सुख से परिचय ही कितना हुआ सीता का। राम-कथा के नायक की पत्नी है सीता। नायिका है वह किन्तु धरती से पैदा होने और धरती में समा जाने तक ऐसा कौनसा दुःख बचा था जो सीता ने न देखा हो।

इस 'राम-कथा' नाट्य रूपान्तर के माध्यम से मैंने भारतीय संस्कृति की उच्च परम्परा को दिखाने की चेष्टा की है जहाँ कोशिश करके किसी भी पात्र के प्रति पाठकों-दर्शकों के मन में क्षोभ न हो, घृणा न हो बल्कि हमें ज्ञात हो सके कि हमारी परम्पराएँ, हमारे पितृगण, हमारे नियन्ता कितने सही और सार्थक थे, हैं और रहेंगे। हर युग में हमें यह कथा आज के, अपने समय के प्रवाह से, आवश्यकता से, समाज से जोड़ती है। यह कभी पुरानी नहीं पड़ती। रामायण की रचना का काल ईस्वी सन् से ग्यारह-बारह सौ साल पहले माना जाता है। तब भी यह तीन हजार साल से पहले की रचना है। क्योंकि महाकवि गुणाढ्य की रचना 'बृहद्कथा' विक्रमी सम्वत्सर की पहली सदी की रचना मानी जाती है उसमें राम-कथा है। अन्तर इतना है कि उसमें सीता को अंत में वाल्मीकि आश्रम से राम वापस अयोध्या ले आये हैं। नैमिषारण्य के ऋषियों ने जिस बोध विश्वविद्यालय के माध्यम से नाना पुराणों की रचना की है उनमें भी विष्णु-पुराण, शिवपुराण आदि में रामचन्द्र जी की कथा है। राम की कथा प्राचीनतम कथाओं में है।

मानव-धर्म व राष्ट्रीय एकता का आधार

'रामायण' को हिन्दू धर्मग्रन्थ माना जाता है। यह उन लोगों के लिए गौरवमय है जो हिन्दू हैं, भारतवासी हैं। क्योंकि यह भारत भूमि के भूगोल से जुड़ी कथा है। किन्तु इसे सम्प्रदाय से जोड़ने का खतरा लेने वाले शायद इस तथ्य को नहीं जानते कि जिस समय यह काव्य-कथा लिखी गयी उस समय केवल हिन्दू धर्म ही था, आज की तरह नाना धर्म नहीं थे। प्रजापति की सभी सन्तान थे। देवता, दानव, दैत्य, मनुष्य, ऋषि, गंधर्व, यक्ष और राक्षस सबके सब ब्रह्मा जी की संतान थे और सब एक ही शक्ति के, एक ही ईश्वर के आराधक थे—मानने वाले

थे। वही शिव थे, वही विष्णु थे, वही ब्रह्मा थे। परम पुरुष से ही इन तीनों की उत्पत्ति महाशक्ति सहित हुई थी। अतः रामायण विशुद्ध रूप से मानव धर्म का पोषक ग्रन्थ है। इसे आज के सन्दर्भ में किसी एक सम्प्रदाय से जोड़ने का कुत्सित प्रयास नहीं करना चाहिए। यह मानव को मानव से जोड़ने वाला ग्रन्थ है, मानव से मानव को तोड़ने वाला नहीं। अपने कथन में मैं बार-बार कह रहा हूँ कि यह दो संस्कृतियों के टकराव की कहानी है। राम और रावण दोनों ही शिवभक्त हैं, दोनों ही शक्ति के उपासक हैं। ब्रह्मा की ही उपासना से रावण को भी अपराजेयता का वरदान मिला हुआ है। राम का युद्ध रावण से, राक्षसों से इसलिए है कि वह मनुष्यता के पक्षधर हैं। नीति, मानवीय आदर्श, धर्माचरण और न्याय की श्रेष्ठता चाहते हैं। इसलिए राम मानव धर्म की रक्षा के लिए उद्यत हैं। वह उत्तर में अयोध्या से सिद्धाश्रम व मैथिली तक तथा दूसरी बार में अयोध्या से दक्षिण में कर्नाटक तथा लंका तक इसलिए जाते हैं कि सम्पूर्ण राष्ट्र को जोड़ सकें। भौगोलिक एकता कायम कर सकें। राम-राज्य में आप देखते हैं कि किष्किन्धा के राजा सुग्रीव व लंका के राजा विभीषण इसीलिए अयोध्या आते रहते हैं, अश्वमेध यज्ञ में भी आये हुए हैं कि वह एक अखण्ड राष्ट्र को मानने वाले हैं, मित्र हैं। प्रगतिशीलता यह अधिकार नहीं देती किसी को कि रामायण जैसे ग्रन्थ को आप आज की उस धार्मिकता से जोड़ दें जो सम्प्रदाय बन कर मनुष्य से मनुष्य को दूर कर रही है। इस काव्य ने तो शैव-वैष्णव तक के भेद को मिटाया है। आर्यों व द्रविड़ों वाली जो बात उठाई जाती है वह भी एकदम असत्य है। इस कथा में, रामायण में उसका कोई जिक्र कभी नहीं है। रावण द्रविड़ था इसलिए राम का उससे वैर क्यों होगा? रावण तो अलकापुरी व कैलास अक्सर जाता था। उससे राम का द्रोह जिन कारणों से था वे कारण बताये जा चुके हैं। दक्षिण तथा उत्तर भारत की एकता का प्रतीक रामायण भी है और दूसरे पुराण भी। अगस्त्य मुनि तो दाक्षिणात्य थे, तमिल के प्रणेता थे, वह राम के पूज्य थे और राम के राज पाने पर सबसे पहले आये थे उनके पास। धर्म का अर्थ हमारे प्राचीन ग्रन्थों में क्या है? श्रीमद्‌भागवत के एकादश अध्याय (सप्तम स्कन्ध) के अनुसार भी धर्म का मतलब है—सत्य, दया, साधना, शौच (शुद्धि), तितिक्षा, उचित-अनुचित का विचार, मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य (चारित्रिक स्वच्छता), त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी, महात्माओं की सेवा, भोग की संस्कृति से दूर रहने की चेष्टा, अभिमान से दूर रहने का विचार, मौन, आत्म-चिन्तन, प्राणियों में अन्न आदि आवश्यक वस्तुओं का यथा योग्य बँटवारा आदि। क्या आज के लोग धर्म को इसी अर्थ में लेते हैं। धर्म के ये लक्षण किस जाति, किस प्रदेश व देश के लिए अच्छे नहीं माने जा सकते। आज यदि हम मानव धर्म की रक्षा कर सकें,

धर्म जो यहाँ कहा है उसका पालन कर सकें, अपने विश्वास और आस्था के अनुसार इष्ट को, ईश्वर को मानने का सबको समान अधिकार दे सकें, किसी के विश्वास में, उपासना व आस्था में अवरोध न आने दें, तो राष्ट्रीय एकता के लिए, देश की अखण्डता के लिए, मानवीय, भाईचारे, सद्भाव को मजबूत करने के लिए श्रेयस्कर कार्य कर सकेंगे। हमें अपने प्राचीन ग्रन्थों से, साहित्य से संस्कृति से, दर्शन से, संस्कारों से सीख लेने में हिचकना नहीं चाहिये यदि उससे हमारी, हमारे समाज की आज की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। यही पंडित जवाहरलाल नेहरू भी कहते थे और डा० लोहिया की यह बात सही थी कि भारत की जनता में कोई भी सामाजिक, चेतनात्मक परिवर्तन उसकी जड़ को पहचान कर किया जा सकता है। राम-कथा को वह भारतीय जनता की चेतना की जड़ मानते थे। जो तथाकथित प्रगतिशील बनते हैं और पश्चिम की संस्कृति और संस्कार, साहित्य और ज्ञान को अपनी श्रेष्ठता का मानदण्ड मानते हैं उनके लिए मैं इतना ही कहूँगा कि मार्क्स ने कहा है रचनाकार पाठक के पास अपने विचार और पांडित्यपूर्ण दर्शन के जरिये नहीं बल्कि उन विविधतापूर्ण बिम्बों के जरिये पहुँचता है जो अपनी कलात्मक अभि-व्यंजनाओं से पाठक की चेतना और अनुभूतियों को प्रभावित करते हैं।···'यदि किसी ने सत्य और न्याय के आग्रह के लिए अपना पूरा जीवन अर्पित कर दिया था तो वह दिदेरो था।··· इसीलिए मार्क्स कहते हैं कि 'तुम अपनी राह पर चलते चलो, लोग कुछ भी कहें, कहने दो।' (साहित्य तथा कला)। इसी तरह २३ मई १९४२ में येनान में लेखक सम्मेलन में माओत्सेतुंग ने कहा था—'बहु-संख्यक जनता की भलाई के लिए जो चीज होती है, उसे श्रेष्ठ समझना होगा। यदि आप जनता के सांस्कृतिक तल को ऊँचा नहीं कर सकते, और उसकी जगह और कुछ न कर केवल आप उनके पिछड़ेपन को दोष देते हैं, तो आप बेकार की बात बघार रहे हैं।··साहित्य-कला के सम्बन्ध में हमारी आलोचना साम्प्रदायिक नहीं होनी चाहिये। प्रतिरोध-युद्ध और राष्ट्रीय एकता के सामान्य सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए, हमें साहित्य-कला की उन सारी कृतियों को सहन करना चाहिये जो कि राजनीतिक रुखों के हर प्रकार और हर रंग को प्रकट करती हैं।

मेरे उपर्युक्त कथन का केवल इतना ही आशय है कि हर समय, हर युग की तरह आज भी हमें यदि अपने समाज, देश और मानवता की कोई चिन्ता है, प्रेम है, तो राम-कथा हमें रास्ता दिखाती है। और यह रास्ता निश्चित रूप से सही दिशा में ले जाने वाला रास्ता है।

—गोपाल उपाध्याय

१२ राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१
विजय दशमी, २ अक्टूबर, १९८७

अंक एक

दृश्य एक

[महाराज दशरथ का निजी महल। मंत्री व कुलगुरु वशिष्ठ तथा दो-एक सभासद बैठे हैं।]

वशिष्ठ : राजा दशरथ! हम देख रहे हैं कि तुम इन दिनों बहुत अधिक चिन्तित रहने लगे हो। तुम जैसे दयालु और प्रतापी तथा प्रजा-पालक राजा को यों गुमसुम नहीं रहना चाहिए। तुम्हारी चिन्ता हम सब की चिन्ता है। पूरे राजदरबार और प्रजा की चिन्ता है।

दशरथ : मनुष्य के जीवन की कमी चिन्ता को जन्म देती है गुरुदेव!

वशिष्ठ : हम तुम्हारी चिन्ता जानना चाहते हैं राजन्।

दशरथ : गुरुदेव! चक्रवर्ती सम्राट होकर भी अपनी प्रजा का परम स्नेह पाकर भी मैं कितना अधूरा-अधूरा-सा हो गया हूँ। क्यों महामंत्री सुमंत्र! तुम लोगों को नहीं लगता है कि घुन की तरह की कोई चिन्ता मुझे अन्दर ही अन्दर खोखला किये दे रही है।

सुमंत्र : क्षमा करें महाराज। आपकी चिन्ता चाहे आपके होंठों से बाहर न निकलती हो किन्तु हम सब भी हर घड़ी उसी चिन्ता में डूबे रहते हैं।

दशरथ : मैं जानता हूँ सुमंत्र, मैं जानता हूँ। आखिर सोचने की बात है कि इक्ष्वाकु वंश अगर मेरे कारण निरवंश हो जाता है तो मैं अधम कहा जाऊँगा और पितृऋण से उऋण भी न हो पाऊँगा। इस उम्र

तक निःसन्तान होने की चिन्ता ही मुझे तिल-तिल कर घुन की तरह निरन्तर खाये जा रही है।

वशिष्ठ : निराश न हो दशरथ। निराशा मनुष्य को पतन की ओर ले जाती है। तुम जैसे सदाचारी और कर्मशील पुरुष निःसन्तान नहीं रह सकते। उसके उपाय हैं। तुम्हें पुत्रेष्टि यज्ञ कराना होगा। अवध की प्रजा के हितों की रक्षा के लिए तुम्हें पुत्रेष्टि यज्ञ कराना होगा।

दशरथ : (**हर्ष के भाव से**) पुत्रेष्टि यज्ञ ? मैं करूँगा मुनिवर ! मैं करूँगा। यदि इस यज्ञ से यह इक्ष्वाकु वंश, यह रघुकुल समाप्त होने से बच सकता है, अयोध्या को मेरे बाद राजा मिल सकता है, मैं पुत्र-प्राप्ति कर सकता हूँ, तो गुरुदेव, यह यज्ञ शीघ्र कराया जायेगा।

वशिष्ठ : (**गम्भीर होकर**) किन्तु किसी भी महान यज्ञ में तमाम विघ्न-बाधाएँ भी आती हैं। उनको दूर रखकर इसे सम्पन्न कराने के लिए किसी सुयोग्य व्यक्ति को, किसी महान ऋषि को आमंत्रित करना होगा दशरथ !

दशरथ : (**उत्तेजित स्वर में**) एक नहीं एक लाख भी ऋषि, मुनि, देवता, गन्धर्व आमंत्रित करने पड़े तो किये जावेंगे। सुमंत्र, तुम किसी महान ऋषि को सादर आमंत्रित करो।

सुमंत्र : महाराज, इस पवित्र और महान यज्ञ के लिए मेरे विचार से सबसे उत्तम तो ऋषिश्रृंग हैं। क्योंकि अंगदेश में जब वर्षा न होने से घोर अकाल पड़ गया था तो राजा रोमपाद भी ऋषि श्रृंग को किसी तरह अपने राज्य में ले आये थे। ऋषि ने वहाँ यज्ञ किया था। तब उस राज्य में इन्द्र देव ने वर्षा की थी फिर राजा रोमपाद ने अपनी कन्या शान्ता का विवाह ऋषि से कर दिया। ऋषि श्रृंग तब से वहीं हैं।

वशिष्ठ : सुमंत्र ठीक कहता है दशरथ। ऋषि श्रृंग सबसे उपयुक्त आचार्य हैं। विघ्न-बाधाएँ उनसे दूर रहती हैं। वे महान तपस्वी हैं।

दशरथ : तो गुरुदेव, हम स्वयं उन्हें सादर आमंत्रित करने जावेंगे। सुमंत्र ! यज्ञ की तैयारियाँ हों, हवन-सामग्री तैयार की जावे। जो भी निमंत्रण के पात्र हों उन्हें सादर आमंत्रित किया जावे। हम और हमारी तीनों महारानियाँ प्रजा के प्रतिनिधि समूह सहित अंगदेश जावेंगे। ऋषिराज श्रृंग से निवेदन करेंगे कि वह हमारे पुत्रेष्टि यज्ञ को सम्पन्न करें। हमें पुत्रवान बनावें। गुरुदेव, आप

हमें आशीर्वाद दें।

वशिष्ठ : हमारा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। जिसके हम कुलगुरु हैं वह कुल समाप्त नहीं होगा, अवध नरेश!

दृश्य दो

[राजा दशरथ का रनिवास। कौशल्या शृंगार कर रही हैं। राजा दशरथ का प्रवेश]

दशरथ : (**प्रवेश करते ही**) कौशल्ये! (**प्रसन्नता के भाव से**) अरे! तुम शृंगार करने में लगी हो (**हँसकर**) ह ह ह ह! आओ, इधर आओ मेरे समीप आओ रानी! आज मैं बहुत खुश हूँ। आज मैं तुम्हारी बाँहों में कसकर लिपट जाना चाहता हूँ।

कौशल्या : (**समीप आकर लजाती हुई-सी**) आप तो जब भी राजसभा से उठकर आते हैं सदा इसी तरह प्रसन्न होकर आते हैं। प्रजा सुखी है, दिशा-दिशा आपके यश के गीत गा रही है, जन-जन आपके मंगल की प्रार्थना करता है—यही तो कहने जा रहे हैं न आप।

दशरथ : (**हँसकर**) और तुम क्या कहने जा रही हो? यही न कि क्या तुम्हारी कोख सूनी ही रह जावेगी? क्या यह वंश तीन-तीन रानियों के होते हुए भी समाप्त हो जावेगा? क्या राजा दशरथ जैसा समर्थ पुरुष बुझा-बुझा-सा रहेगा?

कौशल्या : (**मुस्कराकर**) हटिये भी। कभी कोई बात कह दी तो मन में इस तरह गाँठ बाँध लेते हैं आप कि मौका आने पर मुँह पर दे मारते हैं।

दशरथ : (**बनावटी गम्भीर स्वर बनाकर**) गाँठ? कितनी कड़वी बात कह देती हो तुम! तुमसे भी अधिक कड़वी बात तो सुन्दरी कैकेयी कह देती है। और फिर नवयौवना सुमित्रा के तो कहने ही क्या? वह तो यह भी कह देती है कि यदि तीसरी रानी होकर भी वह पुत्रवती न हो सकी तो मेरे पूर्वज भगीरथ जिस गंगा को तपस्या करके शिवजी की जटाजूट से बहाते हुए धरती पर लाये हैं वह उसी गंगा में या इस अपनी सरयू में डूब मरेगी।

कौशल्या : कहती ही तो है। डूब मरती तो नहीं।

दशरथ : डूब मरेगी या नहीं यह तुम जानो या जाने कैकेयी । मेरा मन तो तार-तार हो ही जाता है । मुझे तुम सबकी बातें सुनकर लगता है कि मैं क्यों जी रहा हूँ और किसके लिए जी रहा हूँ ?

कौशल्या : आप हमारे लिए जी रहे हैं, अपनी प्रजा के लिए जी रहे हैं। दान, धर्म और दया के लिए जी रहे हैं ।

दशरथ : रानी ! मेरा मन जानता है कि तुम में समर्पित नारीत्व का, कैकेयी में नारी सुलभ सुन्दरता का और सुमित्रा में यौवन की आकांक्षा का बड़ा ही सहज अभिमान है। होना चाहिए भी। सुमित्रा उफनाती नदी की तरह यौवना है, कैकेयी राजा कैकय की ऐसी पुत्री है जिससे सुन्दर शायद ही इस ब्रह्माण्ड में कोई हो, और तुम ! कौशल्ये, तुम तो केवल तुम हो जो केवल तुम ही हो सकती हो। (**जोर से हँसते हैं**) हा हा हा हा हा !

कौशल्या : (**झेंपकर**) आप तो बस बात बदल देना जानते हैं। बताइये तो आज आप इतने प्रसन्न क्यों हैं ?

दशरथ : आओ न पहले मेरी बाँहों में तो आओ । मेरे पास तो आओ। (**अपने समीप खींच लेते हैं**)

कौशल्या : ओह ! बस, बस । अब बस भी करिये। (**बाँह छुड़ाने लगती है**)

दशरथ : रानी ! मैं वर्षों बाद आज इतना प्रसन्न हूँ कि अकेले यह प्रसन्नता झेल नहीं पाऊँगा । जाओ कैकेयी और सुमित्रा को भी बुला दो। तीनों को एक साथ बताऊँगा ।

कौशल्या : पहले मुझे तो बता दीजिए, आर्य !

दशरथ : न-न, कैकेयी और सुमित्रा को भी बुलाओ। तीनों को एक साथ ।

कौशल्या : अच्छा, अच्छा । बुला रही हूँ। आप तब तक इधर आराम से लेटिये तो। राजसभा से दिनभर थक कर आये हैं।

दशरथ : थक कर नहीं रानी, वर्षों की थकान मिटाकर आया हूँ। बात मुँह में रुक नहीं रही है। आओ, मेरे समीप आओ, तुम्हारे कान में बता दूँ। कान में कहूँगा तो बात का महत्त्व समझ सकोगी ।

कौशल्या : अच्छा बताइये । (**कुछ देर चुप सुनना**) ऐसा है, राजन् ! हम पुत्रवती हो सकेंगी । अवध को सुन्दर राजकुमार मिल सकेंगे। ओह, कितनी अच्छी बात है यह !

दृश्य तीन

[देवताओं की सभा। इन्द्र, ब्रह्मा, नारद आदि बैठे हैं।]

इन्द्र : मुनिवर नारद ! देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों, ऋषि-मुनियों की इस प्रार्थना सभा में हम लोग बार-बार भगवान विष्णु से आग्रह कर रहे हैं कि राक्षस राज रावण से हमारी रक्षा करें। किन्तु उनकी ओर से हमें कोई संकेत नहीं मिल रहा है। देवतागण, ऋषिगण, मुनिगण और मृत्युलोक के मनुष्य रावण के अत्याचारों से त्रस्त हैं।

नारद : देवराज इन्द्र ! वो देखिये, दूर आकाश में गरुड़ पर विराजमान विष्णु भगवान स्वयं ही चले आ रहे हैं। नारायण-नारायण !

समवेत स्वर : (हर्ष) हम देवता और ऋषि-मुनि भगवान को देखकर हर्षित हैं। यक्षगण, गन्धर्व हम सब अपार हर्ष का अनुभव कर रहे हैं।

[विष्णु भगवान का आगमन]

विष्णु : कहिए महर्षि ब्रह्मा ! देवराज इन्द्र, मुनि नारद, ये सब देवता, ऋषि-मुनि, यक्ष-गन्धर्व किस कष्ट में हैं कि यहाँ देवसभा में एकत्र हुए हैं।

इन्द्र : भगवान हरि ! आपसे क्या छिपा है। देवराज होकर भी मेरा अस्तित्व संकट में है। सभी देवताओं को लंका के राजा क्रूरमति रावण ने दुःखी कर रखा है। यक्षों का स्वतंत्र विचरना और गन्धर्वों-अप्सराओं का मुक्त रहकर कार्य कर सकना असम्भव हो गया है। ऋषियों और मुनियों का तपस्या करना, ध्यान और अर्चन करना कठिन हो गया है।

नारद : नारायण-नारायण ! सत्य है भगवन् ! क्रूर रावण ने अपने सिर काट कर प्रजापति ब्रह्मा जी को प्रसन्न कर यह वरदान माँगा था कि उसे देवताओं, यक्षों और गन्धर्वों तथा राक्षसों से कभी कोई भय न हो। इनसे वह अविजित रहे। इसी वरदान के रहते वह प्रलय मचाये हुए है। लोगों के लिए पूजा-पाठ और तपस्या कर सकना भी कठिन हो गया है। नारायण-नारायण !

विष्णु : क्यों प्रजापति ब्रह्मा जी ! मनुष्यों से क्या रावण को भय नहीं था। उसने मनुष्यों से भी अविजित रहने का वर नहीं माँगा था क्या ?

ब्रह्मा : वह मनुष्यों को अपने लिए भय का कारण नहीं समझता था,

हरि !

विष्णु : तो आप लोग क्या आज्ञा देते हैं मुझे ? मुझे क्या करना होगा देवताओ ?

इन्द्र : भगवन्, देवताओं, सदाचारियों की रक्षा के लिए रावण का नाश आप ही कर सकते हैं ।

विष्णु : देवराज अपनी बात स्पष्ट करें न ?

इन्द्र : आपको हम सब की रक्षा के लिए मनुष्य अवतार लेकर रावण के भय से हमें बचाना होगा प्रभु ! आपके सिवा इस समस्या का हमारे पास और कोई निराकरण नहीं है ।

विष्णु : यदि आप सबकी इच्छा है तो मैं मनुष्य अवतार ले सकता हूँ ।

समवेत स्वर : भगवान विष्णु की जय हो ! हम सब धन्य हैं ।

विष्णु : लेकिन मुझे देखना होगा कि मैं किसके घर में जन्म लूँ । ठहरिए मुझे सोचने दीजिए ।

नारद : नारायण-नारायण ! वह तो मैं आपको बताता हूँ भगवन् । रघु-कुल के राजा दशरथ पृथ्वी पर बड़े ही सदाचारी, वीर और दयावान राजा हैं । वह मुनि वशिष्ठ के कहने पर ऋषि शृंग के आचार्यत्व में पुत्र पाने के लिए यज्ञ कर रहे हैं ।

विष्णु : देवताओं का इस पर क्या विचार है ? क्या देवराज इन्द्र बतायेंगे ?

इन्द्र : भगवन् ! आपके मनुष्य के रूप में जन्म लेने के लिए राजा दशरथ का घर ही श्रेष्ठ है । हम आपसे उनके पुत्ररूप में जन्म लेकर मनुष्य लीला कर रावण को समाप्त करने की प्रार्थना करते हैं ।

विष्णु : आप चाहते हैं तो भला मुझे इसमें क्या विरोध हो सकता है ।

इन्द्र : हम इसका विधान करते हैं । सभी देवता बड़े जतन से कामधेनु गाय के दूध में, कल्पतरु के फलों को भिगोकर और ईख के रस से मीठी की गयी खीर तैयार करके प्रजापति के हाथ राजा दशरथ के यज्ञ में हवन-कुण्ड से प्रकट होने के लिए भेज देते हैं ।

विष्णु : तो ठीक है । उसी खीर में मैं अपने को अंश रूप में स्थापित कर देता हूँ । राजा दशरथ की तीनों साध्वी रानियाँ जिस अंश में उस खीर का सेवन करेंगी मुझे अपने पुत्र रूप में प्राप्त करेंगी ।

समवेत स्वर : धन्य हो प्रभु ! आप धन्य हैं !

दृश्य चार

[दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ का स्थल। एक पात्र में हवन-कुण्ड से खीर का प्रकट होना। ऋषि श्रृंग खीर का वह पात्र राजा दशरथ को सौंप देते हैं।]

दशरथ : ऋषि श्रृंग, आप धन्य हैं। हवन-कुण्ड से प्राप्त यह खीर, आपके और सभी देवताओं, मुनियों तथा अपने गुरुदेव के आशीर्वाद से मैं अपनी तीनों रानियों को देता हूँ।

कौशल्या : राजन्! खीर ग्रहण करने से पहले हम तीनों बहनें सभी ऋषियों, मुनियों, देवताओं और पुरोहितों को प्रणाम करती हैं।

दशरथ : तुम बड़ी हो कौशल्ये! खीर का पहला भाग तुम लो। और कैकेयी, यह दूसरा भाग तुम ग्रहण करो। और सुमित्रा, लो यह तीसरा भाग तुम्हारा है।

कौशल्या : देखिये यह चौथा भाग बचाइये नहीं। सुमित्रा हम सब में छोटी है न, यह भाग भी इसी को दे दीजिये।

दशरथ : ठीक है। सुमित्रा, यह लो यह भाग भी तुम्हारा। अब पूरे अनुनय-विनय से ऋषि श्रृंग से अपने वीर, सौम्य, दयालु और पराक्रमी पुत्र होने का आशीर्वाद हम प्राप्त करें।

[राजा तथा तीनों रानियाँ ऋषि श्रृंग के चरणों में शीश झुकाते हैं।]

दशरथ : ऋषिवर! यज्ञ सम्पन्न कराकर आपने हमें कृतार्थ कर दिया। हम और अवध की जनता आपकी आभारी और ऋणी हैं। हमें आशीर्वाद दीजिए।

श्रृंग : राजन्! तुम्हें अपनी तीनों रानियों से पराक्रमी, यशस्वी और आज्ञापालक, प्रजाहितकारी पुत्र प्राप्त होंगे।

दृश्य पाँच

[राजा दशरथ अपने महल के एक बड़े कक्ष में चिन्तातुर और उत्सुक बैठे हैं। एक दासी का दौड़ते हुए आना]

दासी : जय हो राजा दशरथ की! चक्रवर्ती सम्राट का राज्य बना रहे!

दशरथ : **(उत्तेजित स्वर में)** बताओ, बताओ, दासी शीघ्र बताओ, तुम

क्या शुभ बताने आयी हो ।

दासी : **(बहुत प्रसन्न स्वर में)** महाराज पिता बन गये हैं महारानी कौशल्या को पुत्र हुआ है ।

दशरथ : **(प्रसन्न होकर)** पुत्र हुआ है ? तुम सच कह रही हो दासी ? रघुकुल का सूर्य उदय हो गया है । **(आकाश की तरफ दोनों हाथ जोड़कर)** हे ईश्वर ! तू बड़ा ही कृपालु है ।

दासी : महाराज ! इतना सुन्दर बालक तो हमने कभी नहीं देखा ।

राजा : ओह, इतना सुन्दर है । **(माला उतारकर देते हुए)** ले यह माणिक माला ले ले । यह तेरा उपहार है ।

दासी : धन्य हों महाराज ! आप धन्य हैं ! आपका यश चारों दिशाओं में फैलता रहे ।

राजा : जाओ, रानी से कहो कि हम अभी, इसी क्षण कुमार को देखने आ रहे हैं ।

दासी : जो आज्ञा महाराज ! अभी जाकर कहती हूँ । **(चली जाती है)**

राजा : **(ऊँचे स्वर में)** सुमंत्र ! सुमंत्र ! तुम कहाँ हो सुमंत्र !

[सुमंत्र का सामने आना]

सुमंत्र : जी महाराज ! आज्ञा दें ।

राजा : (हर्ष से गद्‌गद भाव से) तुमने सुना सुमंत्र ? हम पिता हो गये । कौशल्या ने पुत्र जन्मा है । रघुकुल का दीपक जल उठा है । अनन्त प्रकाश···

सुमंत्र : **(प्रसन्न भाव से)** बधाई हो महाराज ! अवध के जन-जन की ओर से लाख-लाख बधाइयाँ लें ।

राजा : ओह, मैं कितना भाग्यशाली हूँ । सुमंत्र, चलो पहले गुरु वशिष्ठ को बताते हैं । सुनकर वह कितना प्रसन्न होंगे ।

[दूसरी दासी का प्रवेश]

दासी : महाराज की जय हो ! महाराज का नाम अमर रहे ! महाराज चार पुत्रों के पिता हो गये हैं ।

राजा : **(प्रसन्न होकर)** क्या कहती हो दासी—चार पुत्रों का पिता ?

दासी : महाराज ! ऐसा लगता है जैसे साक्षात् भगवान ने आपकी गोद में जन्म लिया है । बड़ी रानी और मँझली रानी के एक-एक तथा छोटी रानी के एक साथ दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं ।

राजा : सुन रहे हो सुमंत्र । हमारे चार पुत्र हुए हैं । प्रभु की इच्छा देखी तुमने ! रघुकुल में चार-चार सूर्य एकसाथ उदित हुए हैं ।

सुमंत्र : यह आपके सद्‌कर्मों का फल है महाराज । यह सब आपके पुण्य

प्रताप का फल है।

राजा : नहीं सुमंत्र ! यह ईश्वर की हम पर कृपा है। यह देवताओं, ऋषियों का आशीर्वाद है। यह सब शृंगी ऋषि और गुरु वशिष्ठ की असीम कृपा का प्रसाद है। यह हमारी प्रजा की शुभकामनाओं का फल है।

सुमंत्र : महाराज ! आज अवध से बढ़कर भाग्यशाली राज्य और कौन होगा। आज्ञा हो तो बधाई की नौबतें बजवायी जायें। नगर में मिष्टान्न वितरण कराया जाय। समारोहों का आयोजन किया जाय।

राजा : हाँ-हाँ, अवश्य किया जाय। साधुओं, गरीबों को खुले हाथ राजकोष से स्वर्ण मुद्राएँ दी जायें। अंग-वस्त्र दिये जायें। सबको भर-पेट भोजन कराया जाय। ब्राह्मणों को गायों का दान किया जाय। नगर को खूब सजाया जाय। घर-घर खुशियों के गीत गाये जायें और भगवान को उसकी कृपा के लिए धन्यवाद दिया जाये। मन्दिरों में प्रार्थनाएँ की जायें।

सुमंत्र : हम अभी सारे नगर में, सम्पूर्ण अवध में हर्ष के नगाड़े बजवा कर घोषणा करा देते हैं।

राजा : राजकोष चाहे खाली हो जाय किन्तु कोई भी व्यक्ति राजमहल से खाली हाथ न लौटे। कोई भी ब्राह्मण बिना गाय के न जाये।

सुमंत्र : ऐसा ही होगा महाराज ! इससे भी अधिक होगा।

[राजमहल की ओर से वशिष्ठ का आगमन]

सुमंत्र : वह देखिये महाराज ! गुरु वशिष्ठ इधर ही आ रहे हैं।

राजा : हाँ-हाँ, आ रहे हैं। चलो, चल कर उनकी अगवानी करें।

[दोनों प्रणाम करते हैं।]

वशिष्ठ : चिरंजीवी रहो ! सदा सुखी रहो ! दशरथ, बहुत प्रसन्न दिख रहे हो आज।

राजा : गुरुदेव ! इन चरणों की कृपा से हम पिता हो गये हैं। आपने एक बार कहा था न कि आप जिस कुल के पुरोहित होंगे वह कुल कभी समाप्त नहीं हो सकता। आपको याद है न ?

वशिष्ठ : दशरथ ! तुम कहो न, क्या कहना चाहते हो। हमें सब याद है।

सुमंत्र : गुरुदेव ! महाराज चार पुत्रों के पिता हुए हैं।

वशिष्ठ : चार पुत्रों के ? तीनों रानियाँ पुत्रवती हो गयी हैं न ?

राजा : जी गुरुदेव ! तीनों ही पुत्रवती हो गयी हैं। सुमित्रा को दो पुत्र हुए हैं।

वशिष्ठ : तुम्हारे चारों पुत्र महान् और प्रतापी हों। जब तक सृष्टि रहेगी तुम्हारे इन चारों पुत्रों का सुयश बना रहेगा।

राजा : आप धन्य हैं गुरुवर। चलिये, कृपा कर उन बालकों के मस्तक पर अपना वरद् हस्त रख दीजिये।

वशिष्ठ : दशरथ ! हम तुम्हारी उत्सुकता को समझ रहे हैं। चलो हम भी बालकों को देखना चाहते हैं।

राजा : चलिये गुरुदेव ! सुमंत्र, आओ तुम भी चलो।

दृश्य छः

[वाचक नगर में नगाड़ा बजाकर घोषणा कर रहा है]

वाचक : सुनो, सुनो ! नगरवासी ध्यान से सुनें ! जन-जन सुने, कलकल बहती सरयू सुने ! ये धरती सुने, ये आकाश सुने ! ये दिशाएँ सुनें, ये पवन सुने !

भीड़ : कहो, कहो, क्या घोषणा है ?

वाचक : महाराज दशरथ के घर चार पुत्र-रत्न पैदा हुए हैं।

भीड़ : चार पुत्र ? महाराजा दशरथ की जय हो ! अवध की जय हो !

वाचक : और सुनो। बड़ी रानी कौशल्या और मँझली रानी कैकेयी के एक-एक तथा छोटी रानी सुमित्रा के दो पुत्र हुए हैं।

भीड़ : (हर्ष से) राजा दशरथ की जय ! अवध राज की जय !

वाचक : नगर में घर-घर मंगल गीत गाये जावें। दीप जलाये जावें। मिष्टान्न बाँटा जावे। नृत्य और संगीत के आयोजन किये जावें। नगर को तोरण द्वारों, ध्वजों और पुष्पमालाओं से सजाया जावे। (**नगाड़ा बजाता है।**)

[भीड़ में से हर्ष के स्वर आते हैं]

वाचक : और सुनो। राज्य में जितने भी ब्राह्मण हों उन्हें महाराज की ओर से गायों और स्वर्ण मुद्राओं का दान दिया जावेगा। साधुओं, भिखारियों को वस्त्र और मुद्राएँ दान में दी जावेंगी। राजमहल में समस्त प्रजा को मिष्टान्न वितरण होगा।

[फिर नगाड़ा बजाता है।]

दृश्य सात

[रानी कौशल्या के कक्ष में दशरथ]

राजा : कौशल्ये ! कितना सुन्दर है यह बालक। इसके मुँह की मुस्कान, इसके नयनों की दीप्ति, इसके कपोलों की लाली देखो न, मन करता है बस देखता रहूँ। एकदम अपलक देखता ही रहूँ।

कौशल्या : राजन् ! आप भी तो बचपन में ऐसे ही दिखते होंगे।

राजा : (हँसकर) हमारा हास्य करती हो !

कौशल्या : हास्य ! हम भला आपसे हास्य भी न करें। लेकिन यह तो हास्य नहीं है। देखिये इसकी नाक, इसके होंठ आपसे नहीं मिलते हैं ? **(हँसती है)**

राजा : (हँसकर) हाँ-हाँ, क्यों नहीं मिलते ! देखो न ये आँखें, इनकी चमक, इनका विनय, यह क्या तुम्हारी आँखों से नहीं मिलते ? **(दोनों हँसते हैं।)**

कौशल्या : देखिए जरा दूर ही रहिये। इतने पास न आइये। अभी बालक ही तो है, आपकी दाढ़ी देखकर डर जायेगा।

राजा : (हँसकर) अच्छा-अच्छा। हम तो तुम्हें डरावने लगते हैं न ?

कौशल्या : आप तो बात को ऐसे मोड़ लेते हैं कि बस यह कला कोई आप से सीखे।

राजा : अच्छा सुनो। तुम्हें पता है कि हमारी प्रजा कितनी प्रसन्न है आज। स्थान-स्थान पर कितने भव्य आयोजन हो रहे हैं ? नगर कितना सुन्दर सजाया गया है ?

कौशल्या : हमें क्या पता, हम कोई नगर में घूम रहे हैं !

राजा : घूम तो हम भी नहीं सके अभी तक। तुम्हारे पास से गया था तो साधुओं, धर्मात्माओं, ब्राह्मणों, स्वजनों का आशीर्वाद लेने में ही रहा। लेकिन लोगों ने जो बताया वही तुम्हें बता रहा हूँ।

कौशल्या : कैकेयी और सुमित्रा के बालक भी तो बहुत सुन्दर हैं न ?

दशरथ : मेरे चारों ही पुत्र दिव्य हैं। सुन्दर हैं। ऐसा लगता है कि जैसे भगवान ने स्वयं तुम्हारी गोद में जन्म लिया है।

कौशल्या : राजन् ! मुझे भी ऐसा ही लगता है जैसे भगवान स्वयं मेरी गोद में जन्मे हैं।

दशरथ : भगवान की हम पर महान् कृपा है, कौशल्ये ! महान कृपा है। अब चलूँ जरा कैकेयी और सुमित्रा को भी देख आऊँ।

दृश्य आठ

[कई दासियाँ हँसती-बोलती महल के सामने के द्वार से आ रही हैं। राजा दशरथ रानी के कक्ष से उसी द्वार की ओर जा रहे हैं]

पहली सखी : अरी देखो-देखो, राजा दशरथ रानी के महल की ओर से लौट रहे हैं।

दूसरी सखी : हाँ, हाँ, वे महारानी कौशल्या के भवन की ओर से ही आ रहे हैं।

पहली सखी : जानती हो, प्रातःकाल से अब तक राजा कितना दान कर चुके हैं ?

दूसरी सखी : लगता है, सारा कोष लुटा देंगे। लाखों गायें स्वर्ण मुहरों के साथ ब्राह्मणों को दे चुके हैं।

पहली सखी : जब महाराज मुहरें बाँटते, वस्त्र बाँटते थक गये तो अब महामंत्री सुमंत्र बाँट रहे हैं। दोनों हाथों से बाँट रहे हैं।

दूसरी सखी : जानती हो, दिनभर सहस्रों थाल ईख के रस में पका हुआ सुवासित मिष्टान्न बँटता रहा है।

पहली सखी : हाँ री ! सारी अयोध्या आज दुल्हन-सी सजी है। हर घर में मंगल गान हो रहे हैं।

दूसरी सखी : चलो ! रानी कौशल्या के भवन में हम भी चलें। वहाँ तीनों रानियाँ चारों ललाओं के साथ सखी-सहेलियों, दास-दासियों से घिरी बैठी होंगी।

पहली सखी : हाँ-हाँ, सखी, शीघ्र चलो। कितना मधुर मंगल गान हो रहा है !

[सोहर-गान राम-जन्म का]

दृश्य नौ

[रानी कौशल्या का महल। कौशल्या गवाक्ष पर खड़ी हैं। रानी कौशल्या को ढूंढते हुए राजा का महल में आना।]

दशरथ : कौशल्ये ! कौशल्ये ! कौशल्ये, तुम यहाँ खड़ी-खड़ी राजपथ की ओर क्या देख रही हो ?

कौशल्या : आर्य ! देखिये न, राम अभी तक नहीं लौटा। सूर्य उदय होने से पहले ही घर से निकल गया था, अब यह दोपहर भी ढल रही है।

राजा : तो क्या हुआ, आता ही होगा। वे चारों भाई गुरु वशिष्ठ के साथ आखेटक में गये हुए हैं। धनुर्वेद सीख रहे हैं न। आते-जाते भी तो

देर लग ही जाती है।

रानी : दो-चार घड़ी भी आँखों के सामने नहीं रहता है तो मन कितना उदास हो जाता है।

राजा : (हँसकर) तुम तो माँ हो कौशल्ये ! ममता से भरी माँ। तुम्हारा यह सोचना उचित है। किन्तु हम तो पिता होकर भी राम को थोड़ी देर भी न देखें तो बेचैन रहते है। राम मे हमारे प्राण बसते हैं। हमारी आत्मा बसती है।

रानी : (हँसकर) क्यों नही, क्यो नही। लेकिन राम को ही क्या, मैं तो भरत, लखन, शत्रुघ्न को भी उतना ही प्यार करती हूँ।

राजा : तुम्ही क्यो ? हम नही करते क्या ? राम हमारे प्राण हैं तो भरत हमारी साँस है, लक्ष्मण हमारी धड़कन है और शत्रुघ्न हमारी नस-नस मे बहने वाले रक्त की तरह है। इन चारो के बिना दशरथ हो ही नही सकते। वो देखो रानी, उधर देखो।

रानी : क्या देखूँ ? किधर देखने को कह रहे है आप ?

राजा : उधर सरयू के तट से राजपथ की ओर आते हुए मुनि वशिष्ठ को देख रही हो तुम ?

रानी उधर ? हाँ, हाँ, आर्य ! उनके पीछे-पीछे चारो भाई भी आ रहे है।

राजा : तो जाओ, तुम जाकर उनके स्नान और भोजन की व्यवस्था करो। मै मुनि वशिष्ठ की अगवानी करता हूँ।

दृश्य दस

[राजा दशरथ, वशिष्ठ और सुमत्र बैठे है।]

वशिष्ठ . दशरथ ! इस तरह चुप क्यो हो ? सुमंत्र कहता था कि तुम मुझसे कुछ पूछना चाहते हो।

राजा : हाँ गुरुदेव ! श्री चरणो मे एक प्रार्थना अवश्य करना चाहता था।

वशिष्ठ : हा तो, कहो क्या कहना चाहते हो राजन् !

सुमंत्र . गुरुदेव ! महाराज विनयशील है। महाराज अब चौथी अवस्था मे है। युवराज राम की आयु अब सोलह साल की हो चुकी है। महाराज चाहते है कि आपके आशीर्वाद से उनका विवाह किसी कुलीन राजा की···

[द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल : महाराज की जय हो ! महामुनि विश्वामित्र जी पधारे हैं। मैं उन्हें सादर यहाँ ले आया···

दशरथ : (**सुमंत्र सहित अपने आसन से उठकर आगे बढ़कर विश्वामित्र को प्रणाम करते हुए**) हमारे धन्यभाग हैं मुनिश्रेष्ठ कि आप की चरण-धूलि हमारे महल तक पहुँची। आवें, आसन ग्रहण करें।

वशिष्ठ : आओ ! मुनि विश्वामित्र आओ। इधर आकर मेरे समीप बैठो।

विश्वामित्र : नमन है मुनि वशिष्ठ। कहो कैसे हो ?

वशिष्ठ : हम सुखपूर्वक तपस्यालीन रहते हैं। अपने आने का, इस तरह अकस्मात आने का प्रयोजन बताओ मुनि !

विश्वामित्र : (**क्रोध भाव से**) प्रयोजन ? तुमने ठीक पूछा वशिष्ठ ! क्या हम मुनि लोग यज्ञ, तप, अनुष्ठान करना छोड़ दें ? धर्म, आस्था, विश्वास, साधना को हाथ जोड़कर अन्याय और दमन के आगे घुटने टेक दें हम लोग ?

वशिष्ठ : ऐसा सोचने का कारण है मुनि ! आप तो वर्षों पूर्व से एक महान यज्ञ के अनुष्ठान में लगे हुए हैं। आपकी तपस्या तो देवताओं में भी चर्चा का विषय बनी हुई है।

विश्वामित्र : देवताओं में चर्चा का विषय ? (**जोर से हँसकर**) लेकिन क्या धरती के इन चक्रवर्ती सम्राटों में भी कभी इस बात की चर्चा हुई है ? क्यों राजा दशरथ, तुमने कभी हमारे यज्ञ, हमारी तपस्या के बारे में सोचा ? वनों, कन्दराओं में तपस्या और साधना कर रहे ऋषियों, मुनियों, साधुओं की सुरक्षा के लिए···

दशरथ : (**बीच में ही बोल पड़ते हैं**) क्षमा करें मुनिश्रेष्ठ ! जब इस धरती पर आप ऐसा महान तपस्वी, महान पराक्रम हो तो हम ऐसों को, मुझ दशरथ जैसे अकिंचन राजाओं को चिन्ता की आवश्यकता ही क्या है।

विश्वामित्र : आवश्यकता ही क्या है ? सुन रहे हो वशिष्ठ ! इनको, इन जैसों को हमारे लिए सोचने की आवश्यकता ही क्या है ? राजन् ! ज्ञान, धर्म, दानशीलता, विनय और सद्विचार तथा शक्ति किसी एक की धरोहर नहीं हैं।

राजा : मुनिवर ! हमने कब कहा कि यह किसी एक की धरोहर हैं। किन्तु इनकी प्राप्ति भी तो असाध्य है। हर किसी को तो यह नहीं मिल जाते ?

विश्वामित्र : नहीं मिल जाते यह हम जानते हैं। लेकिन जिन्हें मिल जाते हैं वह

इन्हें कितना निभा पाते हैं, यही जानने के लिए, देखने के लिए हम तुम्हारे पास आये हैं।

राजा : मेरे पास ? मुझ अकिंचन के पास ? ऋषिवर ! मैं तो आपके चरणों की धूल के बराबर भी नहीं हूँ। फिर भी मुनिदेव मुझे किसी कार्य के, किसी सेवा के योग्य समझें तो आज्ञा करें। हम वह कार्य प्राण रहते अवश्य करेंगे।

[कौशल्या का राम के साथ प्रवेश]

राजा : आओ, आओ, रानी कौशल्ये, रुक क्यों गयीं ? राम, तुम भी आगे आओ। देखो आज हमारे यहाँ ऋषिकुल में श्रेष्ठ विश्वामित्र जी पधारे हैं।

[दोनों प्रणाम करते हैं।]

विश्वामित्र : हमारा आशीर्वाद है कि तुम्हारा यह बेटा महान पराक्रमी बने। क्यों वशिष्ठ, क्या सिखा रहे हो इसे आजकल ? वेद, नीति और व्याकरण में तो तुम पारंगत अधिकारी विद्वान हो। सिखाया इसे ?

वशिष्ठ : हाँ, विश्वामित्र ! वह तो यह सीख चुका है। वह आजकल धनुर्वेद सिखा रहा हूँ। बहुत कुछ सीख लिया है। बाण चलाने में राम अद्वितीय है।

विश्वामित्र : अच्छा, क्यों राम बेटे ! वशिष्ठ ठीक कहते हैं न ?

राम : यह तो मुनिवर, हमें गुरुदेव का ही आशीर्वाद है।

विश्वामित्र : राजन् ! तुम्हें पता होगा कि हम पिछले कई वर्षों से तप कर रहे हैं। उस तपस्या का पूरा होना हमारे लिए बहुत आवश्यक है। हमारे लिए ही नहीं, विश्व-कल्याण के लिए भी। धरती के धन-धान्य में श्रीवृद्धि के लिए भी।

राजा : हम जानते हैं मुनिराज !

विश्वामित्र : किन्तु राक्षसराज **(समुन्द और उपसमुन्द के दुराचारी बेटे)** मारीच और सुबाहु यज्ञ में बराबर विघ्न डाल रहे हैं।

रानी : विघ्न डाल रहे हैं ? क्या करते हैं वह ?

विश्वामित्र : वह हमारे यज्ञ में मांस डाल देते हैं, हमें ध्यानमग्न होने ही नहीं देते। हमारे चारों ओर दैत्याकार पत्थर फेंकते रहते हैं। हमारे यज्ञस्थल के चारों ओर मृगशावकों और सिंहों को दौड़ाते रहते हैं।

रानी : उन्हें इस बात का भी भय नहीं रहता कि आप उन्हें शाप दे देंगे ?

विश्वामित्र : शाप मैं दे नहीं सकता। यह उस यज्ञ के नियम के विरुद्ध है वरना

वह यज्ञ अधूरा रह जावेगा।

राजा : हमें यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ मुनिवर! हमें ऐसा अनुमान नहीं था।

विश्वामित्र : किन्तु चक्रवर्ती सम्राट दशरथ! तुम्हारी सहायता मिल जाय तो यज्ञ बिना विघ्न-बाधा के पूरा हो सकता है।

राजा : मुझे आज्ञा दें श्रीवर! मैं किस योग्य हूँ स्वयं नहीं विचार पा रहा हूँ। यदि मैं मारीच और सुबाहु को मार सकता हूँ तो मैं सहर्ष तैयार हूँ।

विश्वामित्र : राजा दशरथ! मुझे कुछ समय के लिए तुम्हारे इस पुत्र की आवश्यकता है। तुम्हारे राम की!

राजा : **(चौंक कर)** मेरे राम की?

रानी : **(उसी तरह चौंक कर अनायास कह पड़ती हैं)** हमारे बेटे की?

विश्वामित्र : क्यों, तुम दोनों सुनते ही इस तरह चौंक क्यों गये?

राजा : मैं आपका आशय समझा नहीं मुनिदेव!

विश्वामित्र : **(हँसकर)** क्यों, इसमें समझने-न समझने की क्या बात है?

राजा : नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता—यह कदापि नहीं हो सकता। मुनिवर क्षमा करें, मैं यह नहीं कर सकूँगा।

विश्वामित्र : **(हँसकर)** तुम तो रघुवंशी राजा हो दशरथ। अपनी बात से पीछे न हटने वाले हो तुम तो।

राजा : राम को इस कठिन काम के लिए मैं नहीं दे सकूँगा। यह अभी बालक है। राक्षस तो इसने अभी देखे तक नहीं। वनों का कठिन जीवन क्या है यह तो इसने कुछ भी नहीं देखा है।

विश्वामित्र : वह राजमहल में बैठकर तो नहीं दिखायी देंगे! **(स्वर कठोर हो जाता है)**

रानी : **(विनय के स्वर में)** राजा से ऐसा न माँगिये मुनि कि राजा उसे दे न पावें।

विश्वामित्र : क्या न माँगें? हम राजा से उसका साम्राज्य तो नहीं माँग रहे?

राजा : वह मैं अभी दे सकता हूँ। आप कुछ भी माँग लें मुनि! मैं सब कुछ दे सकता हूँ। केवल राम को न माँगें!

विश्वामित्र : **(गम्भीर स्वर में कुछ रुक कर)** हम राम का अहित करने नहीं आये हैं। हमसे इसका हित ही होगा। हम इसे ख्याति दिलाने के लिए आये हैं। यह राक्षसों से मेरे यज्ञ की रक्षा कर सकता है।

राजा : **(बहुत विनीत स्वर में)** कैसे कर सकता है। यह कभी युद्ध में भी तो गया नहीं। युद्ध की सारी विद्याएँ भी तो जानता नहीं। उन

विशाल और भयंकर राक्षसों से यह नहीं लड़ सकेगा मुनि !

विश्वामित्र : मैं इसे वह सारी शस्त्र-विद्या भी सिखाऊँगा जो मैं जानता हूँ। और वह विद्या मैं राम को ही सिखाना चाहता हूँ।

राजा : मुनिवर ! क्षमा करें मुझे। मैं अपनी समस्त बलशाली, युद्ध-निपुण सेना को लेकर स्वयं आपके साथ चलता हूँ और आपके यज्ञ की प्राण रहने तक रक्षा करूँगा।

विश्वामित्र : (कुपित होकर) मुझे सेना और तुम्हारा पराक्रम नहीं चाहिए दशरथ ! मेरा युद्ध तो रावण से है। रावण नहीं चाहता कि मेरा यज्ञ पूरा हो सके। मारीच और सुबाहु को रावण भेजता है। इस कुचक्र के पीछे असली हाथ तो रावण का है।

राजा : तब फिर सोचिये तो ! रावण से तो मैं भी युद्ध नहीं कर सकता, भला राम क्या करेगा।

विश्वामित्र : राम को तुम नहीं जानते राजन् ! राम को मैं जानता हूँ। मैं इसे इस लायक बनाऊँगा। रावण एक पुरुष नहीं है, वह एक कठिन स्वभाव है। रावण एक शक्ति नहीं है, वह एक चलते रहने वाला कुचक्र है। वह एक देश का राजा ही नहीं है, वह बुराइयों की कभी भी समाप्त न होने वाली एक अतल गहराई है।

राजा : तब···तब राम क्या कर सकेगा !

विश्वामित्र : राम उसे जीतेगा। विश्वामित्र रावण को जीवित नहीं रहने देना चाहता। इसके लिए मुझे इस राम की आवश्यकता है जिसे मैं अपने यज्ञ की रक्षा करवाने के साथ-साथ वह विद्या भी सिखाऊँगा जो मैं केवल राम को ही सिखाना चाहता हूँ, जिसे सीख भी केवल राम ही सकता है।

वशिष्ठ : ठीक है दशरथ, विश्वामित्र की बात मान लो। मैं जानता हूँ कि विश्वामित्र कितने विलक्षण और बात के धनी हैं।

विश्वामित्र : वशिष्ठ ! बात के धनी क्यों, हठी क्यों नहीं कहते मुझे ?

वशिष्ठ : (हँसकर) नहीं, अब वह शब्द तुम्हारे लिए अच्छा नहीं लगता। तुम जिस भावना से जिस उद्देश्य को पूरा करने के लिए मेरे शिष्य राम को ले जा रहे हो वह अपने आप में महान् तो है ही, तुम्हारे सामने मुझे भी छोटा बना देता है। राजा से मैं कहूँगा कि राम को जाने दें।

रानी : गुरुदेव ! आप भी कहते हैं कि राम को जाने दें।

वशिष्ठ : रानी। तुम समझती हो कि गुरु क्या अपने शिष्य को उसके माता-पिता से कम चाहता है। मैं राम का भला चाहता हूँ। तुम और

दशरथ भी उसका बुरा नहीं चाहोगे—यही सोचकर कह रहा हूँ।

दशरथ : आप राम का भला चाह रहे हैं। राम को वन में महान् बलशाली राक्षसों की माँद में डाल देना चाहते हैं। आप मेरे कुलगुरु हैं। कुछ तो सोचिये।

विश्वामित्र : ठीक है राजन्! रहने दो वशिष्ठ, मैं चलता हूँ फिर। राजा दशरथ का वचन कितना पक्का होता है मैंने देख लिया। मोह किसी ज्ञानी पुरुष को भी कितना बुद्धिहीन और डरपोक बना देता है इसे वशिष्ठ तुम स्वयं भी देख लो।

दशरथ : मुझे आप अज्ञानी ही कह लें। मुझे आप झूठा ही कह लें। मैं इस किशोर राम को नहीं छोड़ सकता। मैं इसके बिना जीवित भी नहीं रह सकता।

वशिष्ठ : राजा दशरथ! मुनि विश्वामित्र की बातों को ठीक से समझने की कोशिश करो। तुम राम को केवल अपना ही बना कर क्यों रखना चाहते हो। उसे सबका, जन-जन का क्यों नही होने देना चाहते। इस धरती का हर प्राणी राम को अपना कह सके यह क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगता।

दशरथ : मैंने कहा न, मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकूँगा।

वशिष्ठ : केवल अपनी ही क्यों सोचते हो राजन्। समस्त मानव जाति के लिए, समस्त धरती के कल्याण के लिए, सारी कुटिलता और दुराचार को समाप्त करने के लिए, समूची बुराइयों के संसार को ध्वस्त करने के लिए विश्वामित्र जिस यज्ञ की रचना कर रहे हैं, उसके लिए राम की आवश्यकता समझकर ही वह ले जा रहे हैं। यही राम के हित में भी है।

रानी : हमारा राम हमसे दूर रहे यह हम सोच भी नहीं सकते गुरुदेव।

वशिष्ठ : कहा न, राम को इतना सीमित और छोटा न होने दो कि वह केवल दशरथ, कौशल्या का होकर ही रह जाय। उसे सबका हो जाने दो। तुम्हारा तो वह है ही। यही मुनि चाह रहे हैं। यही मुनि करेंगे भी। राम भी अब समझदार है, इससे ही पूछ लो कि वह क्या चाहता है।

राम : माँ! मुझ जाने दो, मना मत करो। पिता जी! आपके आशीर्वाद से मुनिश्रेष्ठ के चरणों में मैं सदा सुखी और सुरक्षित रहूँगा।

दशरथ : यह तुम कह रहे हो राम?

कौशल्या : बेटे, तुझे अकेले भेजते मन काँपने लगता है।

राम : तू तो माँ बस माँ ही है। इतना ही घबड़ाती है तो मैं लक्ष्मण को भी साथ ले लेता हूँ।

कौशल्या : राम···!

विश्वामित्र : राम, तुम ठीक कहते हो। तुम्हारे साथ लक्ष्मण भी मेरे यज्ञ की रक्षा मे रहेगा तो तुम्हें अकेलापन भी न लगेगा।

राम : हाँ कहिये पिताजी। मेरे मोह मे अपना वचन न जाने दीजिए। माँ! आँसू पोंछ लो और मुस्कराओ।

राजा : ठीक है, मुनिश्रेष्ठ! सचमुच मै मोह में सारा ज्ञान खो बैठा था। भला आपसे अधिक राम की रक्षा क्या मै कर सकूँगा। चलो कौशल्ये, राम-लक्ष्मण को मुनि के साथ विदा करने की तैयारी की जाय।

दृश्य ग्यारह

[वन-पथ। राम-लक्ष्मण मुनि विश्वामित्र के साथ जा रहे है। सध्या होने को है।]

[वन की शाम का दृश्य]

विश्वामित्र : देख रहे हो राम! कितना रमणीय वन है यह।

राम : देख रहा हूँ मुनि! बहुत रमणीय वन है यह। लक्ष्मण, देखो। उधर पेडो के पार देख रहे हो तुम! सूर्य लाल थाली की तरह पेडो पर जैसे गिरा जा रहा है।

लक्ष्मण : भैया! वो देखो। उधर कोई आश्रम है। कोई तपोवन-सा लगता है। शायद ऋषि लोग रहते है वहाँ।

विश्वामित्र : लक्ष्मण ठीक कहता है राम! वह तपोवन ही है। यहाँ पर बहुत सारे ऋषि आज भी तप करते है, यज्ञ करते है, साधना करते है। यहाँ सदैव ही बडा मगलमय वातावरण रहता है।

राम : मुनि! कौन-सा तपोवन है यह?

विश्वामित्र : बेटे राम! यह बडा प्राचीन तपोवन है। वास्तव मे इस तपोवन की भी अपनी अलग कहानी है।

लक्ष्मण : मुनिवर! क्या कहानी है इस तपोवन की?

विश्वामित्र : देखते हो न राम कि लक्ष्मण कहानियो मे कितना रस लेता है। मार्ग मे मैने तुम लोगो को जितनी भी कथाएँ बताई लक्ष्मण हर कहानी को बड़े ध्यान मे सुनता रहा और बीच-बीच मे बड़े अच्छे

प्रश्न पूछता रहा।

राम : लक्ष्मण अपने ज्ञान को बढ़ाने के लिए प्रश्न करता है मुनिवर! आप इससे रुष्ट तो नहीं होते हैं न?

विश्वामित्र : न-न, मैं भला रुष्ट क्यों होऊँगा। तुम दोनों को अपार ज्ञान दे देने और शस्त्र-विद्या में पारंगत बना देने के लिए ही तो मैं तुम सुकुमार राजकुमारों को माँग कर आनन्द-भवन से इन बीहड़ वनों में ले आया हूँ। जीवन का सही अर्थ निरन्तर सुख भोगने से नहीं मिलता, वह तो कठिनाइयों और संघर्ष में तप कर ही स्पष्ट होता है।

लक्ष्मण : तो महर्षि! हमें इस आश्रम की कथा बता दें। मन में उत्सुकता हो रही है।

विश्वामित्र : लक्ष्मण, यह आश्रम भगवान रुद्र का तपस्थल है। यहाँ पर एक बार मन अशांत हो जाने पर वर्षों तक शिव जी ने तप किया था।

राम : गुरुदेव! शिवजी का मन अशांत क्यों हो गया था?

विश्वामित्र : राम! भगवान शिव दक्ष प्रजापति के जामाता थे, सती उनकी पत्नी थी। लेकिन दक्ष प्रजापति शिव से प्रसन्न नहीं रहते थे।

लक्ष्मण : क्यों, वह शिव से प्रसन्न क्यों नहीं रहते थे गुरुदेव?

विश्वामित्र : (हँसकर) लक्ष्मण! तुमने अच्छा प्रश्न किया। बड़े सटीक प्रश्न करते हो तुम। शिव ठहरे औघड़। गले में मुण्डमाला, शरीर में भस्म, जटाजूट, नागों के आभूषण, मृगछाला पहनना, नन्दी बैल की सवारी, भूत-पिशाचों से प्रेम, श्मशानों में रहना। भला ऐसे व्यक्ति को कोई प्रजापति जामाता के रूप में पसन्द करेगा?

लक्ष्मण : बड़े भैया! गुरुदेव ठीक कहते हैं। शिवजी हैं तो अद्भुत। कोई भला आदमी चाहे कि इनसे गले मिल लूँ तो मिल नहीं सकता।

राम : लेकिन लक्ष्मण! शिव दया, क्रोध और बीभत्स के अद्भुत संगम हैं। एक ओर वे सृजन के देवता हैं तो दूसरी ओर वे प्रलय और विनाश के देवता भी हैं।

विश्वामित्र : तुम लोग तो गुण-दोष पर बातें करने लगे हो। मैं तो कह रहा था कि दक्ष प्रजापति उन्हें पसन्द नहीं करते थे। यह बात शिव भी अच्छी तरह जानते थे और उनकी पत्नी सती भी। शिवजी ने निश्चय कर रखा था कि मेरे ससुर मुझे मान-सम्मान नहीं देते तो मैं भी उनके घर कभी जाऊँगा ही नहीं।

राम : यह तो शिवजी ने ठीक ही सोचा।

विश्वामित्र : किन्तु राम ! लड़की तो लड़की ही है। वह अपने मायके को, अपने माँ-बाप को भूल थोड़े ही सकती है। सुनो। तुम लोगों को एक घटना सुना देता हूँ जो अशांत शिव के वन में तपस्या करने का कारण बनी थी।

[दृश्य बदलता है]

दृश्य बारह

[कैलाश पर्वत पर शिव ध्यानमग्न है। सती पास में बैठी है। आकाश में रथों के जाने के स्वर]

सती : (**शिव को झकझोर कर**) स्वामी ! स्वामी ! देखिये तो। ध्यान तो छोड़िये। सुनिये नाथ ! आपके गण क्या समाचार लाये है। सुना आपने ? आकाश में एक के बाद एक जाते हुए इन रथों की गर्जना सुन रहे है आप ?

[शिव ध्यानमग्न है]

सती : कितने ध्यानमग्न रहते है आप ? मैं तो बस ऊब रही हूँ। सुनिये तो। स्वामी, आखे तो खोलिये। (**शिव को झकझोरती है। शिव ध्यान भग करते हैं।**)

शिव : क्या बात है सती ? मेरा ध्यान भग क्यो किया ?

सती : यह भी कोई ध्यान है स्वामी ! न अपनी चिन्ता, न अपनी पत्नी की चिन्ता। सदा ध्यान मे ही डूबे रहते हो। कभी सोचते भी हो कि सती बेचारी अकेली है।

शिव : प्रिये ! जगत के कल्याण के लिए ही तो ध्यानमग्न रहता हूँ। तुम्हें मेरे ध्यानमग्न होने से कष्ट होता है, मैं जानता हूँ।

सती : प्रभु ! आपके गण समाचार लाये है कि मेरे पिता के घर महायज्ञ होने जा रहा है। सभी ऋषि, सभी देवता, सभी यक्ष, सभी किन्नर, सभी लोग वहाँ निमंत्रित है। मेरी सभी बहनें भी अपने पतियों सहित बुलाई गयी हैं। केवल नही बुलाया गया है तो मुझे और आपको।

शिव : (**हँसकर**) मैं जानता हूँ सती ! तुम्हारे पिता को मैं अन्य देवताओं जैसा सुखी और सम्पन्न नही लगता हूँ। वह मेरे आचरण से, मेरे व्यवहार से, मेरी वेशभूषा से अप्रसन्न रहते हैं। मैं भी उनके लिए अपना आचरण, अपना व्यवहार बदल तो दूंगा नहीं।

सती : जब मै आपके साथ प्रसन्न रह कर जी रही हूँ तो इसमे मेरे

पिता को क्या कष्ट है ? वह इतना बड़ा यज्ञ कर रहे हैं, इतने लोग बुलाये हैं, सभी बहनें बुलाई हैं, हमें भी बुला लेते तो मेरा इस तरह अनादर तो नहीं होता।

शिव : सात लड़कियों में से एक को न बुलाकर उन्होंने अपनी ही हँसी करायी है।

सती : स्वामी ! मेरे पिता जी की हँसी हो या न हो, मेरा अपमान तो हो ही गया। आखिर मैं भी तो उनकी बेटी हूँ। मैं भी कुछ करूँगी ही।

शिव : तुम क्या कर सकती हो ? नहीं बुलाया तो नहीं बुलाया।

सती : नाथ ! आपको साथ लेकर मैं भी जाऊँगी। हम जावेंगे तो वे हमें अपने घर से निकाल तो देंगे नहीं। कम से कम अन्य लोगों को तो पता नहीं चल पावेगा कि हमें निमंत्रण नहीं दिया गया था।

शिव : पागल हो गयी हो क्या ? इतना गिरा हुआ और महत्वहीन समझती हो तुम शिव को, कि बिना निमंत्रण के शिव चला जावेगा दक्ष के घर ! न सही उनका जामाता, क्या सामान्य देवताओं के बराबर भी नहीं हूँ मैं ? देखता हूँ बिना मुझे बुलाये कैसे यज्ञ पूरा होता है दक्ष का।

सती : प्राणनाथ ! एक बेटी ससुराल में अपने एक लाख अपमान सह लेगी। मायके में अपमान हो, उपेक्षा हो यह नहीं सह सकती। आप इस तरह अपना सम्मान लेकर बैठ जावेंगे, तो इतने बड़े यज्ञ में मेरे न होने पर लोग क्या समझेंगे मुझे ?

शिव : लोग समझेंगे कि तुम मर गयी हो। तुम्हारे जाने पर जिन उपेक्षित निगाहों से तुम्हारे पिता-माता और दूसरों द्वारा तुम्हें देखा जायेगा सती, उससे तो मर जाना अधिक सम्मानजनक है। हम वहाँ नहीं जायेंगे तो धरती फट नहीं जायेगी। हम चले जावेंगे तो दक्ष प्रजापति हमारे पाँवों पर पड़कर अपने अपराध की क्षमा तो माँग नहीं लेंगे।

सती : मुझे और आपको क्यों नहीं बुलाया गया—इस बात पर मैं उनसे लड़ूंगी। वे हमें सम्मानित न करें किन्तु इस तरह संसार में हमें अपमानित करने से उन्हें कौन-सा सम्मान मिल जायेगा। मैं ललकार कर पूछूंगी पिता जी से। चुपचाप यहाँ बैठकर मैं यह अपमान, यह तिरस्कार नहीं सहूँगी।

शिव : ठीक है। तुम्हारी हठ मैं जानता हूँ। तुम जाना चाहो तो जाओ। किन्तु निश्चय ही बता दूं कि कुछ न कुछ अनिष्ट अवश्य होगा।

सती : देखूँगी देवेश्वर ! अनिष्ट भी देखूँगी। आप नहीं जाना चाहते तो मुझे आज्ञा दीजिए।

शिव : तुम्हारी यही इच्छा है, यही होना है तो जाओ। मेरे गण तुम्हारे साथ रहेंगे। नन्दी को मैं कह देता हूँ, वह तुम्हारे साथ रहेगा।

दृश्य तेरह

[दक्ष प्रजापति का घर। यज्ञ की भीड़भाड़। मंगल ध्वनियाँ। स्वस्तिवाचन। सामूहिक बातचीत के स्वर। शिव-गणों के साथ सती यज्ञ-मण्डप में पहुँचती है। सभी देवता बैठे हैं।]

माँ : (**सती को देखकर**) बेटी सती ! तू आ गयी। अच्छा किया तूने।

सती : माँ ! पिता जी इतना बड़ा यज्ञ करें और उनकी बेटी सती भला न आवे, यह कैसे हो सकता था !

माँ : मेरे जामाता भी आये हैं न ?

सती : न, वे नहीं आ सके।

माँ : (**हर्ष से दक्ष की ओर बढ़कर**) देखिये न राजन् ! अपनी बेटी सती भी आ गयी। आपको प्रणाम कर रही है। अब मुझे कितना संतोष हुआ। मेरी सभी बेटियाँ आ गयीं।

दक्ष प्रजापति : तो हमारे जामाता देवाधिपति शंकर जी भी आये हैं क्या ?

सती : नहीं पिताजी ! अभी तो नहीं आये। यों उनका क्या, आ भी सकते हैं।

दक्ष प्रजापति : (**व्यंग्य के स्वर में**) बिना निमंत्रण के भी आ सकते हैं ?

भीड़ के स्वर : बिना निमंत्रण ? शिव जी को निमंत्रण नहीं दिया गया था क्या ? सती को भी नहीं ?

सती : (**क्रुद्ध होकर पर संयत स्वर में**) पिताजी ! देवताओं, ऋषियों, यक्षों की इस यज्ञसभा में इस तरह कहकर आपको अपनी बात हल्की नहीं कर देनी चाहिये थी।

दक्ष प्रजापति : लगता है, बम भोले के साथ रहकर मेरी बेटी बड़ी समझदार हो गयी है।

सती : पिता जी ! क्षमा करें। मेरे पति को न बुलाने का ये देवतागण क्या अर्थ लगा रहे होंगे ? मुझे नहीं बुलाया इस बात पर मेरे

बगल खड़ी मेरी बहनें क्या सोच रही होंगी ? (**यज्ञ की तरफ बढ़कर**) आचार्य, यज्ञ प्रारम्भ करें। व्यर्थ विलम्ब, हो रहा है।

आचार्य : पूज्य ब्रह्मा जी, विष्णु, इन्द्र, वरुण, पवन, अग्नि आदि सभी देवतागण, दक्ष के सभी जामाता, अपना स्थान ग्रहण करें। अग्नि देव को नमन कर हम उनसे यज्ञ में प्रविष्ट होने की प्रार्थना करते हैं। आप लोग अपना-अपना यज्ञ-भाग भी प्राप्त करें।

सती : सबके स्थान सुरक्षित हैं, सबके भाग रखे गये हैं। शिव जी का भाग कहाँ है ? मेरे पति का स्थान कहाँ है ? (**गरजकर**) पिता जी ! यह क्या हो रहा है। उनको बुलाया नहीं था किन्तु देवताओं की पंक्ति से उनका स्थान तो नहीं हटाना चाहिए था। जामाताओं के साथ से उनका भाग तो नहीं उठवा लेना चाहिए था।

आचार्य : राजन् ! इस यज्ञ का आचार्य होने के नाते मैं भी कहूँगा कि महान शिव का स्थान होना चाहिए। उनके बिना यज्ञ···

दक्ष प्रजापति : जो मुझे उचित लगा वही मैंने किया है आचार्य ! आप मंत्रपाठ करें। यज्ञ में देर न करें।

सती : (**चारों ओर सब को देखकर। अपना क्रोध पीती हुई**) सभी देवता लोग चुप हैं ? माँ, तुम भी चुप हो ? बहनो, क्या तुममें से किसी को भी नहीं लग रहा है कि यह अन्याय हो रहा है। अनर्थ हो रहा है (**आवाज ऊँची करके**) मैं यह यज्ञ बिना शिव को स्थान दिये नहीं होने दूँगी।

दक्ष : और सती ! कान खोलकर सुन लो। मैं यहाँ शिव को स्थान नहीं दूँगा। बिना शिव के यज्ञ होगा। मंत्र पढ़े जायें ऋषिराज !

सती : (**भयंकर आवेश के स्वर में**) मेरे शिव का इतना बड़ा अपमान ! मेरे पति के सम्मान की इतनी बीभत्स हत्या ? और देवतागण चुप हैं ? यह अग्नि चुपचाप प्रज्वलित हो गयी ? आकाश को कोई लज्जा नहीं ? पृथ्वी को कोई ग्लानि नहीं ? दिशाओं में कोई हाहाकार नहीं ? हवा और जल चुपचाप बह रहे हैं ? सूर्य पत्थर की तरह बैठे प्रकाश देते जा रहे हैं ? (**चिल्लाकर**) सुनें, आप सब सुनें, देखें मैं अपने शिव के अपमान का बदला लेती हूँ। बिना मेरे शिव को देवस्थान दिये यह यज्ञ नहीं होगा ?

[भयंकर आवाज। वायु में कम्पन्न, दिशाओं में हाहाकार]

भीड़ के स्वर : यह क्या हो गया। दौड़ो, दौड़ो। उठा लो उसे। यह क्या हो गया। सती यज्ञ-कुण्ड में कूद पड़ी है। वह जल रही है। उठाओ,

उठाओ।

दक्ष प्रजापति : (**चिल्लाकर**) यह क्या किया इस लड़की ने ? यज्ञ अपवित्र कर दिया।

आचार्य : यज्ञ तो यज्ञ, पता नहीं अब क्या होगा ? शिव की सती को देखिये—वह निर्जीव हो गयी है। वह समाप्त हो गयी है।

[माँ-बहनों के रोने के हल्के स्वर]

दक्ष प्रजापति : होने दो उसे निर्जीव। मेरा इस तरह मुँह काला कर सकती थी यह लड़की। देवतागण ! रुकिये। आप लोग लौट क्यों रहे हैं। आप मेरे पूज्य हैं। न लौटिये अभी। यज्ञ मैं फिर शुरू कराता हूँ। दूसरी यज्ञवेदी बनवाता हूँ।

आचार्य : दक्ष राजा, अनर्थ हो गया है। सभी देवता लौट गये हैं। सती का मर जाना शिवजी को किस सीमा तक विचलित कर देगा—आप समझ क्यों नहीं रहे हैं। देखिये उनके गण यज्ञ सभा में घुस आये हैं। नन्दी भयंकर क्रोध में हैं।

माँ : मेरी बेटी ! ईश्वर ! यह क्या हुआ ? (**बहनों का रोना**)

आकाशवाणी : सती समाप्त हो गयी है। शिव विधुर हो गये हैं। कैलास पर्वत काँप रहा है। भगवान शिव जब ध्यान तोड़ेंगे और उनके गण उन्हें समाचार देंगे तब क्या होगा ? देवतागण सोच लें। देवराज इन्द्र सोच लें। दक्ष प्रजापति सोच लें। यक्ष और किन्नर सोच लें। (**हाहाकार के भयंकर स्वर**)

[दृश्य बदलता है]

दृश्य चौदह

राम : मुनि जिस तरह दक्ष ने किया शिव का अपमान।
पतिव्रता सती ने उचित किया देकर अपने प्राण॥

विश्वामित्र : हे राम ! आगे की बात सुनो
शिव को जब मिला समाचार सुनो
दिग्-दिगन्त थे सब काँप रहे
सृष्टि का सब रुका व्यापार सुनो।

लक्ष्मण : हम होते तो, भैया राम तो प्रलय धरा पा ला देते।
धरती पर पटक देते आकाश, मँजीरा सा इन्हें बजा देते॥

विश्वामित्र : शंकर भी कम क्रोधी न थे, भूकम्प बन गये साक्षात
प्रलय का प्रभु रूप धरा बन करके स्वयं वज्रपात।

नटराज ने ताण्डव नृत्य किया लय में भी और लास्य में भी
घन से रोये जगतपिता, रोये छन्दों में भी और भविष्य में भी।

राम : प्रलय देवता ने प्रलय ढा दी, मुनि आगे की कथा सुनाएँ।

लक्ष्मण : शान्त हुए शिवशंकर कैसे, मुनि हमें यह भी बतलायें।

विश्वामित्र : हाहाकार मच गया सृष्टि में छा गया भयंकर अंधकार।
तब देवों ने विष्णु सहित की शान्त हो जाने की पुकार।।

राम : गुरु चर अचर का संकट देख, कुछ शिव ने भी किया विचार ?

विश्वामित्र : हाँ, क्यों न करते, शिव हैं क्षमाशील दया के भी अवतार।

लक्ष्मण : मुनि शान्त शिव सृष्टि ज्यों की त्यों लगी चलने।

विश्वामित्र : हाँ लक्ष्मण सूरज निकला, फूल खिले फिर पेड़ों पर फल लगे फलने।

लक्ष्मण : सती हो गई भस्म। अपने में टूटे शिव तप करने आये थे तब
इस वन में।

राम : गुरुदेव ! इस रमणीक तपोवन की यह शिव से जुड़ी कथा थी।

विश्वामित्र : हाँ, यह भी थी। देख रहे हो झील उधर शिव के मन की व्यथा थी।

राम : देख रहा हूँ झील मुनिवर क्या उसका इतिहास रहा था ?

विश्वामित्र : तारक के संकटग्रस्त देवताओं से ब्रह्मा ने कहा था।
यदि शिव पुत्र करें उत्पन्न तब तारक मर सकता है,
शिव का मेधावी पुत्र देवों का संकट हर सकता है।

राम : विधुर शिव से कैसा पुत्र कैसा ब्रह्मा का यह उपाय ?

लक्ष्मण : देवों के सम्मुख हुई सती भस्म, यह अब कैसी कामना हाय !

विश्वामित्र : हिमाचल राजा के घर राम, सती ने फिर था जन्म लिया,
संगिनी शंकर की ही बनने का था उसने संकल्प किया।
इसीलिए कामदेव को, देवों ने लक्ष्मण फिर किया तैयार।
शिव का तप यह भंग करे, करने देवताओं का उद्धार।।

राम : फिर से जन्म लिया सती ने मुनिवर हिमाचल के घर पर।

विश्वामित्र : वह माया थी मायापति की जगत जननी पार्वती पर।।
पुष्प धनुष ले कामदेव जी चले शिव का तप करने भंग,
पहुँचे शिव के पास काम जी, शिव बैठे थे नंग-धड़ंग।
हुए काममय जड़ और चेतन
काम वेग से ढके हुए मन,
शिव पर काम ने मारे पंचसर
धरती काँपी थी थर-थर।
शिव भी होकर काम से आहत,
भूल गये जप-तप की चाहत,

शंकर को क्रोध भयंकर आया
तब प्रभु ने त्रिनेत्र घुमाया।
किया कामदेव को भस्म वहीं पर
त्राहि-त्राहि मच गई मही पर।

लक्ष्मण : काम तो मुनिवर ! अब भी शेष है।

विश्वामित्र : हाँ, शिव की दया से निश्चित शेष है।
शिव निकट आकर रति लगी बहुत रोने
मेरा पति क्यों भस्म किया अब कौन रहा मेरे होने।
दयानिधान पिघल कर रति से लगे इस तरह कहने
अंगहीन हो काम आज से हर मन में लगेगा रहने।

राम : तब पार्वती से शिव का मुनिवर कैसे हुआ विवाह ?
कैसे शिव से बात हुई तब, कैसे निकली आगे राह ?

विश्वामित्र : विष्णु सहित सब देव तभी पहुँचे लेकर प्रस्ताव
पार्वती हैं सती-अंस प्रभु ! उनसे करें विवाह।
पहले तो शिव हँसे मुस्काये, फिर प्रस्ताव किया स्वीकार
हिमाचल के घर नारद पहुँचे तब ले शिव के सुखद विचार।

दृश्य पन्द्रह

[शिव की बारात आ रही है। हिमालय के घर बारात की तैयारी हो रही है।]

दोनों सखी : देखो पार्वती ! यों लजाओ नहीं। दूल्हा तुमसे अधिक सुन्दर होगा भी तो हम कोई उसे नजर थोड़े ही लगा देंगे। (**हँसती है**)

दूसरी सखी : पार्वती जिसके लिए दिन-रात स्वप्नों में खोई रहती थी वह कुछ ही क्षणों में सज-धज कर आ रहा है। इसलिए थोड़ी देर पार्वती को स्वप्नों में खो लेने दो।

माँ : अरी बेटी पार्वती ! तू सज गई न। देखो, बारात समीप ही आ गई है। पार्वती को अब सजाने में देर न करो। उसे वरमाल डालनी है। बाराती ये न कहें कि ये पर्वतवासी बड़े आलसी लगते हैं।

पहली सखी : चाची ! सज तो गई है पार्वती। तुम जाओ तो हम उसे शीशा तो दिखावें। तुम्हें देख कर वह लजा रही है।

पार्वती : (**मुस्कराकर**) निगोड़ी कहीं की बक-बक किये जा ही रही है !

माँ, तुम यहीं रहो। ये लोग सब मिलकर मुझे परेशान कर रही हैं।

माँ : मैं तेरे पास बैठी रहूँ। जानती है, उधर कितना काम पड़ा है। तेरे पिता तो मेहमानों की ही अगवानी करते-करते थक गये हैं।

पार्वती : (**सखियों की ओर उलाहने से इशारा करके**) तो इन सब को भी अपने साथ ले जा माँ। मैं अपने आप सँवर लूँगी।

दूसरी सखी : अच्छा जी, अपने आप सँवर लेंगी राजदुलारी जी!

पहली सखी : अपने आप सँवरने का शौक हो तो कल सँवर लेना।

दूसरी सखी : हाँ जी, आज तो हमें अपना मन भर ही लेने दो। (**हँसी**)

माँ : (**हँसते हुए**) अच्छा-अच्छा, सँवारो जी भर कर सँवारो। मैं थोड़ा और काम देख लूँ।

पार्वती : बड़ी ओछी हो तुम। कितना सजाओगी आखिर ?

पहली सखी : देखो-देखो। गाजे-बाजों की आवाज आ रही है। बारात आ गई शायद। चलें बाहर चल कर देखें तो।

सभी : हाँ-हाँ, आ गई लगती है, चलो चलें। (**सब हँसते हुए जाती हैं।**)

[घबराई-सी पहली सखी का लौट कर आना।]

पहली सखी : हाय दइया! हम तो मर गये। पार्वती! मुझे पकड़ो, मेरा सिर चकरा रहा है।

पार्वती : क्यों, क्या हुआ ?

पहली सखी : (**उसी घबराहट में**) रुको, रुको। साँस ले लेने दो, बताती हूँ। बताती हूँ।

[किलकारी मारते हुए अन्य सखियों का आना]

दूसरी सखी : सँभालो, इनको सँभालो। यह सब मूर्छित हुई जा रही हैं।

पार्वती : क्या हुआ, क्या हुआ सखियो ?

दूसरी सखी : अनर्थ ! भयंकर अनर्थ !

पार्वती : बता न, हुआ क्या ? इस तरह डरी हुई, घबड़ाई हुई क्यों हो ?

दूसरी सखी : (**तेज साँस लेती हुई**) उस पहली से पूछो। मेरा मन बुरी तरह धड़क रहा है।

पार्वती : तुम सब इस तरह डरी हुई क्यों हो ? चुप क्यों हो गई हो ? कोई तो बोलो ?

पहली सखी : ऐसी बारात तो कभी किसी ने नहीं देखी होगी।

[माँ का आना]

माँ : बेटी ! क्या हुआ। तुम सब लोग इस तरह क्यों चिल्ला रहे थे।

दूसरी सखी : (**डरे-सहमे स्वर में**) वाह री, शिव की बारात, चाची ! देखो !

तुमने भी बारात देखी ?

माँ : क्यों क्या हुआ ?

दूसरी सखी : चाची ! भयंकर लोग हैं। किसी के तो सिर नहीं—केवल धड़ ही धड़। किसी के आधे धड़ पर सौ-सौ सिर। किसी के चेहरे पर आँख न कान, न मुँह और किसी चेहरे पर आँखें ही आँखें। किसी के कोई हाथ नहीं तो किसी के दस-दस हाथ। किसी के माथे पर लम्बे-लम्बे दाँत तो किसी के कमर से लटके हुए हाथ और कन्धों से लटके हुए पाँव। ऐसी बारात कभी किसी की देखी थी चाची !

पहली सखी : कोई सुई से पतले शरीर वाला, तो कोई पर्वत से भी मोटे आकार वाला। किसी का मुँह पीछे तो किसी का पीठ पर लटका हुआ। किसी की आँखें सिर पर आकाश की तरफ तो किसी की आँखें घुटनों पर। कोई इतना बौना कि धरती पर धरा हुआ सा और कोई इतना लम्बा कि आकाश तक पहुँचा हुआ। ये कोई बारात तो नहीं है चाची। भूतों का जलूस है।

माँ : ऐसा नहीं हो सकता। यह सब झूठ है।

दूसरी सखी : और दूल्हा तो सबसे बढ़कर है चाची।

माँ : (**उत्सुक होकर**) कैसे बढ़कर है ? कैसा है दूल्हा ?

दूसरी सखी : नंग-धड़ंग, शरीर पर भभूत मले हुए। सिर पर जटाजूट का मुकुट, गले में साँपों की हँसुली, हाथों में साँपों के कंगन, कमर पर बाघम्बर बाँधे, नरमुण्डों की माला पहने, बैल पर सवार, हाथ में त्रिशूल और डमरू। देखने में डरावना। चाची, ये सब क्या है ? यह कैसा दूल्हा है ? यह कैसी बारात है ?

माँ : नहीं, यह हमारे साथ छल हुआ है। बेटी पार्वती, तू इधर आ। तू उसे वरमाल नहीं पहनायेगी। मेरी इतनी सुन्दर बेटी क लिए ऐसा भयानक दूल्हा नहीं हो सकता। मैं तुझे गोद में लेकर पहाड़ से कूद पड़ूंगी। तब भी मैं यह शादी नहीं होने दूंगी।

पार्वती : क्या कहती हो माँ ! मैं सब जानती हूँ, मेरे पति कैसे हैं ? क्या हैं ?

माँ : (**विचलित होकर**) जानती है तू उसे ? तो इन्हें बता दे कि वह नरमुण्डों की माला पहनने वाला, साँपों का गलहार पहनने वाला, भूत-प्रेतों के साथ रहने वाला नहीं है। कह दे बेटी, कि वह ऐसा नहीं है, कह दे। बेटी ! तू इन सबको बता दे कि ये सब झूठी हैं। इन्होंने कुछ गलत देखा है। ये सब भ्रम में हैं।

दोनों सखी : हम झूठी हैं तो चाची, आप जाकर स्वयं देख क्यों नहीं लेतीं ?

माँ : नारद मुनि का हमने क्या बिगाड़ा था ! उन्होंने तो कहा था कि मेरी पार्वती के लिए शिव से बढ़कर कोई पति हो ही नहीं सकता।

पार्वती : माँ ! बहकावे में नहीं आया करते। मेरे पति वही हैं। उन्हें ही मैंने पति चाहा है। मैंने उन्हीं को पाने के लिए तपस्या की थी। वह जैसे भी हैं। मैं उन्हीं को वरमाला पहनाऊँगी। वह देखो, मुनि नारद जी भी आ गये। माँ, वह इधर ही आ रहे।

[बाहरी द्वार से नारद जी का आना]

नारद : (**मुस्कराकर**) नारायण ! नारायण ! शिव की बारात देखकर, शिव का स्वरूप देखकर तुम सब चिन्तित हो गये क्या ?

माँ : (**क्रोध से**) मुनिवर ! हमने आपका क्या बिगाड़ा था। मेरी इस फूल-सी सुकोमल कन्या को क्या इससे अच्छा पति कोई नहीं मिल सकता था। (**उपेक्षा भाव से**) सब कहते हैं, नारद धूर्त है। यह धूर्तता हमें नष्ट कर गयी।

नारद : न-न, इससे उपयुक्त और कौन वर होता इस कन्या के लिए महारानी ! जन्म-जन्मान्तर से यह पति-पत्नी हैं। हमारे और आपके कहने से क्या हो जायेगा। नारायण, नारायण !

माँ : (**क्रोध से**) हूँ ! जन्म-जन्मान्तर से ? कैसा जन्म-जन्मान्तर ?

नारद : (**विनोद से**) रानी ! यह पार्वती जो आपकी कोख से उत्पन्न हुई है पूर्व जन्म में दक्ष प्रजापति की पुत्री सती थी।

माँ : (**आश्चर्य से**) क्या कहा मुनि ! यह सती थी ?

नारद : हाँ। शिव की पत्नी थी वह। पति के अपमान का बदला लेने यह दक्ष प्रजापति के यज्ञ में भस्म हो गई थी। फिर उसी जगतपिता शिव से ब्याह करने यह आपके घर जन्मी है। इन पर आपका नहीं शंकर भगवान का ही हक है।

माँ : (**खुश होकर**) वास्तव में मेरे जमाई शंकर भगवान हैं न ?

नारद : नारायण, नारायण ! आप जाकर स्वयं देख लीजिए महारानी !

माँ : पार्वती ! चलो बेटी, उन्हें वरमाल पहनाओ। तुम्हारे पिता को लेकर मैं भी तुम दोनों की आरती उतारने आ रही हूँ।

अंक दो

दृश्य-पहला

[गहन वन में घने विशाल वृक्षों की छाँव में बना ऋषि आश्रम । दूर से नदी की कल-कल ध्वनि आ रही है। चिड़ियाँ चहचहा रही हैं। प्रातःबेला का समय]

विश्वामित्र : राम, ओ राम ! लखन ! कितनी गहरी नींद में सो रहे हैं। सुकुमार हैं न, इन बीहड़ वनों में दिन-भर चलते-चलते थक जाते हैं बेचारे। राम बेटे !

[कुटी के द्वार पर खड़े जल से भरा कमण्डल हाथ में लिए हुए विश्वामित्र पुकार रहे हैं।]

राम : ऊँ ऽ अँ ! जी गुरुदेव प्रणाम। **(सोने से जागने का भाव, उठकर बैठ जाते हैं)**

विश्वामित्र : उठो राम। देखो न, शुक्रतारा उदित हो चला है। ब्राह्म मुहूर्त हो गया बेटे। लक्ष्मण को भी जगा दो।

राम : जी मुनिवर ! लक्ष्मण ! भइया ! प्रातः होने को है।

लक्ष्मण : **(जगने की मुद्रा में)** ओह, प्रातः होने को है। गुरुदेव, प्रणाम भइया, दण्डवत नमन !

विश्वामित्र : हम स्नान कर आये हैं। तुम लोग जाओ। नदी-तट पर स्नान करके आओ। मैं तब तक पूजा कर लेता हूँ।

[दूर से आता भयंकर राक्षसी स्वर । भारी गर्जना। हुंकार]

राम : यह कैसा स्वर है मुनिदेव

विश्वामित्र : हम अब अपने आश्रम आ गये हैं न। यहाँ राक्षस मेरी पूजा-अर्चन के समय, तपस्या के समय अक्सर बाधा पहुँचाने आ जाते हैं।

लक्ष्मण : यह स्वर और निकट आ रहे हैं भइया, हमें अभी स्नान के लिए नहीं जाना चाहिए।

राम : तुम ठीक कहते हो लक्ष्मण। मुनि ! हम आपके पूजा-अर्चन के बाद ही स्नान करने जायेंगे।

विश्वामित्र : क्यों ?

राम : अन्यथा ये राक्षस आपको दुःखी करेंगे, कहीं ये आपको···

विश्वामित्र : तुम कहना चाहते हो कि कहीं ये मुझे मार न डालें। इतना बल-हीन मैं होता तो राम ! ये मुझे अब तक जीवित न छोड़ते।

राम : मेरा यह आशय नहीं है, मुनि ! हम हैं तो आपकी पूजा में कोई विघ्न नहीं होना चाहिए।

विश्वामित्र : तो तुम समझते हो कि तुम रहोगे तो मेरी पूजा में कोई विघ्न डालने आयेगा ही नहीं। बड़े पराक्रमी हो गये हो तुम राम, बड़े बलशाली हो गये हो तुम लोग।

राम : न-न, मुनिवर ! हम ऐसा कभी नहीं सोचते।

विश्वामित्र : तुम शायद सोचते हो कि मैं तुम्हारे पिता से तुम्हें यही कहकर माँग लाया था कि तुम मेरी तपस्या में विघ्न डालने से राक्षसों को रोकोगे। इसीलिए तुम्हें लग रहा होगा राम कि तुम बहुत समर्थ हो।

लक्ष्मण : नहीं-नहीं, मुनि, आप ऐसा न सोचिये। किन्तु हम इतने असमर्थ भी नहीं हैं कि हमारे रहते कोई आपको छू भी दे।

विश्वामित्र : कोई हमें छू भी दे, लक्ष्मण ! तुम दो भाइयों के रहते कोई हमें छू भी दे। यह असम्भव है क्या ?

[आकाश में वही भयानक स्वर]

विश्वामित्र : सुन रहे हो लक्ष्मण, इन स्वरों को ?

लक्ष्मण : सुन रहा हूँ, सुन रहा हूँ। पता चल जाये कि यह स्वर कहाँ से आ रहा है तो मैं वहीं टूट पड़ूँगा।

विश्वामित्र : हमें इसकी आवश्यकता नहीं है कि कौन स्वर कहाँ से आ रहा है। ये स्वर आते हैं। ये राक्षस आते ही रहते हैं। हमें इनसे इतना अधिक नहीं डरना चाहिए। जाओ, तुम लोग स्नान करके आओ।

राम : आपकी आज्ञा है मुनि, हम जावें !

विश्वामित्र : हाँ, जाओ। शीघ्र लौटना।

शिव : चलो लक्ष्मण, चलें।

[दोनो का जाना। जाते-जाते पेडों के बीच दूर जाकर गुम हो जाते है।
विश्वामित्र पूजा कर रहे है, ताडका का हुकारते हुए आना]

ताडका : (**भयंकर हास्य के साथ**) अरे विश्वामित्र! तुम फिर पूजा करने लगे हो क्या?

विश्वामित्र : हॉ-हॉ, मै पूजा कर रहा हूँ! क्या करना है तुझे?

ताडका : मुनि! मै तुम्हे खा जाना चाहती हूँ।

विश्वामित्र : तुम! तुम यक्षिणी मे राक्षसी हो गयी। राक्षसी के आगे और किस योनि मे जाना चाहती हो तुम?

ताडका : (**भयकर हँसी हँसना**) हा हा हा हा। लो ये मास के लोथडे फेंक रही हूँ मै, लो ये पशुओ की हड्डियाँ फेक रही हूँ मै। करो पूजा··· और पूजा करो···हा हा हा हा।

विश्वामित्र : (**क्रोध में**) चाण्डाल, तू पीछे चली जा। हट जा। मुझे पूजा करने दे।

ताडका : नही करने दूंगी। कभी कही करने दूंगी (**विकराल हँसी हँसना**)

विश्वामित्र : मै तुम्हें भस्म कर दूंगा पापिन!

ताडका : तू नही कर सकता भस्म मुझे। तू नही कर सकता। ले तेरी पूजा की बेदी पर यह मास का टुकडा।

विश्वामित्र : ताडका! मैं तुम्हे मार डालूंगा।

ताडका : (**हँसकर**) तू मुझे मार डालेगा। हा हा हा। तू मुझे मार डालेगा (**हँसती है। देर तक हँसती रहती है।**)

विश्वामित्र : भाग जा ताडका, तू भाग जा। क्या तू मेरा क्रोध जानती नही।

ताडका : जानती हूँ, खूब जानती हूँ। इसीलिए तो छेड रही हूँ। ऋषि! अपना पराक्रम दिखाते क्यो नही? चुप क्यो हो? हा हा हा हा! (**हँसती है**) मुनि, तेरी आज की पूजा तो गयी। कल फिर आऊँगी। (**हुकारे मारते हुए चली जाती है।**)

[मच पर अँधेरा। सीन फेडअप। मच पर प्रकाश उभरता है। सुबह का समय]

विश्वामित्र : राम! अरे लखन! आज तो तुम लोग ब्राह्म मुहूर्त से भी पहले जाग गये थे। अभी कहाँ से आ रहे हो?

राम : हम दोनो भाई नदी तीर तक स्नान करने गये थे। स्नान करके आ रहे है।

[फिर भयकर स्वर। फिर हाहाकार। फिर अजीब-सी

हुंकार]

राम : मुनि ! कल दिन-भर, कल रात-भर आपने मुझे और लक्ष्मण को धनुष के बहुत से कौशल दिखाये और बताये। युद्ध की जो बारीकी आपने बताई है वह मुझे अच्छी तरह आ गयी है।

विश्वामित्र : राम ! रण के जितने कौशल मैंने कल दिन में और रात में तुम्हें सिखा दिये हैं वे सब इस राक्षसी ताड़का के लिए बहुत हैं। न हो तो तुम अन्त में अग्निबाण छोड़ देना। उसे ठीक से सीख गये हो न ?

राम : सीख गया हूँ गुरुदेव ! ताड़का के बारे में आप बता चुके हैं। अब वह राक्षसी आये तो मैं उसके टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा।

लक्ष्मण : भइया ! वह आ जाये इधर एक बार तो मैं स्वयं उसे मिट्टी में मिला दूंगा।

[हाहाकार। प्रलय के स्वर। बवंडर। भयानक हुंकारें]

विश्वामित्र : वह दुष्ट आ रही है। तुम दोनों पूजा-स्थल से थोड़ी दूर रहो।

[ताड़का आती है]

ताड़का : (**हँसकर**) तप कर रहे हो मुनि तुम ? बड़े निर्भीक हो ?

विश्वामित्र : दूर रहो। ताड़का, तुम दूर रहो। तप के समीप मत आओ। वरना आज तुम्हारा अन्त कर दिया जायेगा।

ताड़का : (**विद्रूप हँसी हँसकर**) हा हा हा हा ! हा हा हा हा ! तुम मुनि, मेरा अन्त कर दोगे। लगा दो शक्ति। कर दो अन्त। (**हँसना**)

विश्वामित्र : अब मैं तप पूरा करके रहूँगा। दुष्ट ताड़का, कोई भी राक्षस अब मेरा तप भंग नहीं कर पायेगा।

ताड़का : भंग नहीं कर पावेगा ? ये लो। ये मांस के टुकड़े तेरी तप वेदी पर··· (**हँसना**)

राम : कौन हो तुम, दूर रहो, आगे न आना।

ताड़का : ओह, ये दो बच्चे ! किसे पकड़ लाये हो विश्वामित्र।

लक्ष्मण : तुम जान रही हो अपना अन्त ?

ताड़का : अरे बच्चो ! आओ आज तुम दोनों को प्रेम से खाऊँगी।

राम : मुनि ! आप निश्चिन्त तप करें। इस दुष्टा ने जो मांस के टुकड़े फेंके थे मैंने उन्हें अपने तीर से बहुत दूर फेंक दिया है।

ताड़का : मैं तुम तीनों को ही मार डालूँगी। मैं तप की वेदी ही उठा ले जाऊँगी।

लक्ष्मण : (ललकार कर) जीवित रहना चाहती है राक्षसी तो तुरन्त भाग जा, नहीं तो···

ताड़का : नहीं तो तुम नादान बच्चे ताड़का को जानते नहीं हो। लो उठा-
कर पटक देती हूँ तुम्हें मीलों दूर।

[लक्ष्मण को पकड़ने झपटती है।]

राम : छूना नहीं। लक्ष्मण को छूना नहीं, दूर हट हट, दूर हट। ले मेरे
इस तीर को प्रणाम कर।

[ताड़का का तीर ले आकाश में उड़ जाना।]

विश्वामित्र : ये क्या किया तुमने राम! इस दुष्ट को पहले ही बाण में मार क्यों
नहीं दिया। वह आकाश से भी प्रलय ढा देगी।

लक्ष्मण : देखो भइया! देखो! उसने कितनी धूल उड़ा दी है। अब तो
कुछ दीखता ही नहीं।

राम : घबड़ाओ नहीं लक्ष्मण। सोच-समझकर मैंने इसे अपने सामने और
अपराध करने का अवसर दिया है।

विश्वामित्र : इसे रोको, इसे तुरन्त रोको राम।

राम : आशीर्वाद दीजिये गुरुदेव। यह लीजिये मेरा यह लक्ष्यबेधी बाण
इसके कलेजे में धँस कर इसे समाप्त कर देगा।

[बाण की टंकार]

[आकाश में ताड़का का जोर से चिल्लाना। रोने का
स्वर]

ताड़का : **(स्वर आता है)** मर गयी मैं, मर गयी। मेरा कलेजा जल गया।
मैं मर गयी। **(धरती पर गिरने की आवाज)**

राम : देखिये मुनि, ताड़का का जलता शरीर उधर धरती पर गिर पड़ा
है।

विश्वामित्र : गयी। यह पापन गयी। राम, तुमने मेरी शिक्षा को समझ लिया।
अब मैं तुम्हें अपने सारे शस्त्र देता हूँ! तुम अब अजेय हो। अपनी
शेष विद्या भी मैं तुम्हें शीघ्र सिखा दूंगा, ताकि मेरा मन्तव्य तुम
पूरा कर सको।

राम : आपका आशीर्वाद है, मुनिदेव! हम जनकल्याण में सहयोग दे
सकें, यही आशीर्वाद दीजिए।

विश्वामित्र : आशीर्वाद तो तुम्हारे साथ है ही।

[मंच पर फेडअप। आश्रम के बाहर पेड़ों की छाँह में
राम-लक्ष्मण खड़े हैं।]

लक्ष्मण : भइया, वह देखिये, वन के दक्षिण छोर से यह इतनी धूल कैसी
उड़ रही है?

राम : पता नहीं लक्ष्मण, यह कैसी धूल है। आँधी-तूफान का कोई लक्षण

तो दीखता नहीं।

लक्ष्मण : कोई विपत्ति न आ रही हो। भइया, चलें मुनिवर से पूछा जाय। वह अवश्य जानते होंगे।

राम : चलो, पूछ लेते हैं।

[विश्वामित्र के पास कुटी के पास जाकर]

राम : गुरुदेव ! देखिये वन के उस ओर देखिये। आँधी की तरह वह धूल इस ओर बढ़ती आ रह है। कैसी धूल है यह ?

विश्वामित्र : मैं स्वयं ही तुम्हें दिखाने वाला था। रात में राक्षसों ने ताड़का का मृत शरीर देखा होगा धरती पर पड़ा हुआ। तभी क्रोधित होकर उसका बेटा मारीच अपने मित्र सुबाहु के साथ राक्षस सेना लेकर आ रहा होगा।

राम : सेना लेकर। हम तीन प्राणियों से लडने सेना लेकर आ रहा होगा ?

विश्वामित्र : वह समझ गया होगा न, कि उसकी माँ ताड़का को कोई साधारण वीर नहीं मार सकता।

राम : जो अकेले आदमी से पूरी सेना लेकर लड़ने आ रहा हो उस डर-पोक से क्या लड़ना।

लक्ष्मण : वह लडेगा तो हम भी लड़ेंगे।

राम : क्या आवश्यकता है हमें लड़ने की ! उसे मारने में अपनी शक्ति नष्ट क्यों करें।

लक्ष्मण : लेकिन वह तो आगे बढ़ता ही आ रहा है।

राम : तो लो। गुरुदेव को प्रणाम कर मैं यह तीर चलाकर उन पर भयंकर अग्निबर्षा कर देता हूँ। वह जहाँ हैं वहीं से भाग जावेंगे।

विश्वामित्र : यह तुमने ठीक किया राम। अब वह निश्चित रूप से भाग रहे होंगे। फिर कभी इधर मुड़ने का साहस भी नहीं करेंगे।

राम : यह मारीच-सुबाहु ही तो आपको तप नहीं करने देते थे।

विश्वामित्र : यह रावण के भड़कने पर आकर मेरे तप में विघ्न डालते थे। अब नहीं डालेंगे।

लक्ष्मण : तो अब रावण स्वयं विघ्न डालेगा क्या गुरुदेव ?

विश्वामित्र : नहीं। वह मेरी शक्ति से परिचित है। वह जानता है कि यदि वह स्वयं सामने आ गया तो मैं तप पूरा करने का व्रत छोड़कर उस पर शस्त्र उठा लूँगा और शस्त्र उठा लूँगा तो वह बच नहीं पावेगा।

राम : आप चिन्ता न करें मुनिदेव ! आप तप पूरा करेंगे। यदि रावण स्वयं आ भी जाता है तो उसे हम देख लेंगे।

विश्वामित्र : नहीं राम ! वह महान पराक्रमी है। इतनी शक्ति पाने के लिए तुम्हें अभी और सीखना है। जाओ जो पाठ दिया है दोनों भाई जाकर उसे पूरा करो।

राम : अच्छा गुरुदेव।

[मंच पर अँधेरा होता है। फेड आउट। धीरे-धीरे प्रकाश उभरता है। कैमरा इन ऐक्शन]

[पेड़ों के बीच कुटी दिख रही है। लक्ष्मण सामने के पेड़ों के बीच से कुटी की तरफ आ रहे हैं।]

लक्ष्मण : भइया ! भइया ! देखिये, मैं क्या लाया हूँ। आप कहाँ हैं भइया ?

[राम का कुटी से बाहर आना। उनके पीछे मुनि विश्वामित्र का भी आना।]

राम : लक्ष्मण ! तुम कहाँ चले गये थे ? देखो कितनी देर से मुनि तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। कहाँ चले जाते हो तुम इस वन में ? कितना तो बीहड़ वन है। तमाम तरह के जंगली जानवर और तमाम तरह के राक्षस इस घने वन में घूमते रहते हैं।

विश्वामित्र : लक्ष्मण ! राम ठीक कहता है। तुम तो प्रातःकाल ही इस बीहड़ वन से निकल जाते हो। इधर राम तुम्हारे लिए परेशान रहता है। (**मुस्कराहट**) लक्ष्मण ! बड़े ही वाचाल हो गये हो तुम।

लक्ष्मण : गुरुदेव ! आप हमें वाचाल कह लीजिए लेकिन हम अपने स्वभाव से भी अधिक शान्त रहते हैं।

राम : लक्ष्मण ! तुमसे मैंने कहा था न कि तुम बोला भी कम करो।

लक्ष्मण : भइया ! वही तो करता हूँ अन्यथा जब मारीच-सुबाहु की सेना को भगाने के लिए आपने अग्निबाण छोड़ा था तो मैं बोलने जा रहा था।

राम : क्या बोलने जा रहे थे ?

लक्ष्मण : (**मुस्कराकर**) मुनि, क्षमा करेंगे। भइया, मैं कहने जा रहा था कि उनके लिए अपना अग्निबाण क्यों व्यर्थ कर रहे हैं। आप मुझे क्यों नहीं उनसे लड़ने भेज देते हैं। भइया, सच कह रहा हूँ, हार कर न आता। मुनि को भी कहने को मिलता कि लक्ष्मण भी पराक्रमी है। मेरी शिक्षा सीख रहा है।

विश्वामित्र : लक्ष्मण ! मेरी शिक्षा सीख रहे हो, यह मैं जानता हूँ। मैं चाहता

हूँ तुम दोनों भाई पराक्रमी बनो। तुम हाथ पीछे किये क्या पकड़े हो !

लक्ष्मण : (घबड़ाकर) मुनि ! यह कुछ नहीं है। आपको क्या दिखाऊँ, बस केवल भइया को दिखाने ले आया था।

राम : लेकिन दिखाओ तो लक्ष्मण। यह क्या है तुम्हारे हाथ में ? (लक्ष्मण के पीछे जाकर) तुम तो लक्ष्मण ! दोनों हाथों से यह क्रौंच पक्षी का बच्चा पकड़े हुए हो।

लक्ष्मण : मैंने भइया, इसे तीर नहीं मारा, दौड़कर पकड़ा था। यह तीव्रगति से वन में दौड़ा। मैं भी दौड़ा इसके पीछे-पीछे। मैं इतना तीव्र दौड़ा कि मैंने इसे पकड़ लिया।

विश्वामित्र : लक्ष्मण ! ऐसा बचपना नहीं करते बेटे। देखो, इस पक्षी की माँ इसके बिना कितनी दुःखी हो रही होगी। इसका पिता इसे कहाँ-कहाँ नहीं ढूँढ़ रहा होगा ?

राम : लक्ष्मण ! जाओ इसे तुम वहीं छोड़कर आओ। जहाँ से इसे पकड़ा था।

लक्ष्मण : ठीक है भइया ! अभी छोड़कर आता हूँ। मैं कौतुकवश आपको दिखाने के लिए इसे पकड़ लाया था। मैं इसे सताना नहीं चाहता था।

विश्वामित्र : और भविष्य में भी कभी किसी निर्दोष प्राणी को नहीं सताना।

लक्ष्मण : मुझसे भूल हो गई गुरुदेव ! मैं कल्पना नही कर पाया था कि मेरी जरा-सी भूल के कारण, इसके माँ-बाप दुःखी होंगे।

विश्वामित्र : अच्छा जाओ, इसे छोड़कर आओ।

[लक्ष्मण क्रौंच पक्षी के बच्चे को लेकर फिर उन्हीं पेड़ों की तरफ दौड़ जाते हैं। विश्वामित्र और राम कुटी के बाहर ही चबूतरे पर बैठ जाते

राम : मुनिवर ! आपकी तपस्या बिना बाधा के पूरी हो गयी है। लेकिन हमारी शिक्षा अभी पूरी नहीं हो सकी है। हमें शेष शस्त्र-विद्या भी सिखा दीजिए।

विश्वामित्र : राम ! मैंने जितना तुम्हें सिखा दिया है वह तुम दोनों ने बड़े मनोयोग से सीखा है। अब हम लोग कुछ दिनों के लिए यात्रा पर जावेंगे। मार्ग में तुम लोगों की शिक्षा भी चलती रहेगी।

[अन्तिम वाक्य सुनकर लक्ष्मण लौट आते हैं।]

लक्ष्मण : (प्रसन्नता से) गुरुदेव ! किस देश की यात्रा पर ले चलेंगे आप हमें ?

विश्वामित्र : लक्ष्मण ! हम लोग मिथिलापुरी जावेंगे। बड़ा ही मनोरम नगर

है वह। वहाँ राजा जनक की आयुष्मती पुत्री सीता का विवाह समारोह है। हमें भी आमंत्रित किया है राजा जनक ने।

राम : तो हम लोग चलने की तैयारी करें गुरुदेव ?

विश्वामित्र : अवश्य। कल प्रातःकाल ही हम लोग चल देंगे। ब्राह्म मुहूर्त में ही चल देना उचित होगा। शीघ्र स्नान-पूजा करके तैयार हो जाना। इस समय जाकर अपना पाठ याद करो।

दृश्य दो

[वन-मार्ग पर विश्वामित्र और राम-लक्ष्मण जा रहे हैं। घने वृक्षों के बीच वह दूर से नजदीक आते दिख रहे हैं।]

लक्ष्मण : भइया ! यह वन तो बहुत ही रमणीक है। ऐसा लगता है कि जैसे हम पहले भी इस वन में आये थे।

विश्वामित्र : तुम ठीक कहते हो लक्ष्मण। यह वन लगभग अंगदेश के वन की तरह है।

राम : कौन-सा अंगदेश का वन गुरुदेव !

विश्वामित्र : हाँ, तपस्या के लिए अपनी कुटी में आते समय रास्ते में जो वन मिला था उसके बारे में मैंने तुम्हें बताया था न, कि इस वन में भगवान शिव ने तपस्या की थी और कामदेव ने उन्हें कष्ट दिया था। तब शिव ने कामदेव को अनंग कर दिया था। जहाँ कामदेव अपने अंगों को छोड़कर अंगहीन हुए थे उसी वन का नाम अंगवन पड़ गया था।

राम : सामने देखो लक्ष्मण। कितनी विशाल नदी है। सरयू से भी बड़ी।

लक्ष्मण : हाँ-हाँ, भइया ! कितनी सुन्दर नदी है यह !

विश्वामित्र : यह गंगा नदी है। महान और परम पवित्र।

राम : हम इस पवित्र नदी को प्रणाम करते हैं।

लक्ष्मण : गुरुदेव ! यह नदी कहाँ से आती है। इसका जन्म कहाँ हुआ है ?

विश्वामित्र : यह हिमालय की बड़ी पुत्री है।

राम : हिमालय की ? हिमालय की पुत्री तो पार्वती जी थीं।

विश्वामित्र : गंगाजी पार्वती जी की ही बहिन हैं। तारक असुर से देवताओं की रक्षा के लिए कार्तिकेय ने इन्हीं गंगा जी की कोख से जन्म लिया था।

लक्ष्मण : किन्तु आपने तो बताया था कि कार्तिकेय जी को शिवजी के तेज से जन्म लेना था। इसीलिए तो देवताओं ने कामदेव से निवेदन कर शिवजी का तप भंग करवाया था।

विश्वामित्र : लक्ष्मण, तुम्हारी शंका सत्य है। वास्तव में पार्वती जी से विवाह करने के बाद लम्बे समय तक शिवजी लोक को भूल कर पार्वती के साथ रमण-मग्न रहे। देवता चिन्तित हुए कि इस प्रखर तेज को कौन धारण करेगा। देवताओं ने शंकर जी से निवेदन किया। तब शिव के तेज को अग्नि के द्वारा गंगा जी में स्थापित किया था। वह पार्वती जी बहन थीं। अतः वह तेज उन्होंने धारण कर लिया। उसी से कार्तिकेय का जन्म हुआ और उन्होंने देवताओं को कष्ट देने वाले असुर तारक का संहार किया।

राम : तो गुरुदेव ! गंगा जी ने विवाह नहीं किया था क्या ?

विश्वामित्र : नहीं, वह परम पवित्र बनी रहीं। जन-जन की तृष्णा को शान्त करने वाली गंगा जी का मिलन सागर से अवश्य होता है। उसी मिलन-स्थल का नाम गंगासागर है। लो हम लोग नदी के तीर पर आ गये। अब कोई नौका ली जाये। हमें उस पार जाना है।

[मंच पर क्षणभर अँधेरा होता है, फिर हल्के प्रकाश में नौका से नदी पार करते हुए। पुनः अँधेरा होता है। तब नदी पार के घने जंगल में फिर तीनों आते दिख रहे हैं।]

विश्वामित्र : राम ! मैं अपनी सम्पूर्ण विद्या तुम्हें दे चुका हूँ। जो विलक्षण अस्त्र मेरे पास थे वे भी तुम्हें दे दिये हैं। लेकिन मेरी एक इच्छा है, राम ! तुम्हें उसे पूरा करना होगा।

राम : आप आज्ञा दें प्रभु ! मैं अपना जीवन देकर भी आपकी इच्छा को अवश्य पूरा करूँगा।

विश्वामित्र : नहीं, अभी नहीं, समय आवेगा कि तुम वह कार्य करोगे। प्रत्येक काम का समय आता है। सही समय आने पर ही काम सम्पन्न होते हैं।

राम : आप कृपा कर मेरे योग्य वह कार्य बता दें।

विश्वामित्र : सभी देवता, सभी यक्ष, सभी गन्धर्व रावण से अत्यन्त दुःखी हैं। रावण ने मेरे यज्ञों में भी बाधाएँ डलवाईं और बराबर मेरी तपस्या में विघ्न डालता रहा। लेकिन मैं स्वयं उससे प्रतिकार न ले सका या मैंने लेना चाहा नहीं। मैं यह कार्य तुम्हारे हाथों पूरा देखना चाहूँगा।

लक्ष्मण : भइया ! यह कौन बड़ी बात है। गुरुआज्ञा दें तो हम जाकर तुरन्त रावण से प्रतिकार लेते हैं।

विश्वामित्र : नहीं लक्ष्मण नहीं। वह काम इतना आसान नहीं है। रावण वास्तव में महान प्रतापी और पराक्रमी है। वह जानता है कि उसका अन्त असम्भव है। देवता उसे नहीं जीत सकते। उसे ऋषि भी नहीं जीत सकते। उसे ब्रह्मा ने वरदान दिया है कि उसे साधारण-सा दिखने वाला कोई असाधारण मनुष्य ही जीतेगा। मेरी इच्छा है कि वह काम जब भी समय आवेगा तुम करोगे। इसलिए मैंने तुम्हें युद्ध की सम्पूर्ण शिक्षा दी है।

राम : मैं यह काम अवश्य करूँगा गुरुदेव। अवसर आने पर राम अपने गुरु की यह इच्छा अवश्य पूरी करेगा। मुझे केवल अवसर की प्रतीक्षा रहेगी।

विश्वामित्र : जब मैं अपने योग की, यज्ञ की, तपस्या की बात सोचता हूँ और याद करता हूँ कि रावण ने अनेक राक्षसों को भेजकर मुझे नीचा दिखाने की कोशिश की तो मेरा रोम-रोम जल उठता है। उसने बाधाएँ डाली होतीं तो बहुत पहले ही मेरे यह यज्ञ समाप्त हो गये होते। विश्वकल्याण और जनकल्याण का मेरा व्रत बहुत पहले पूरा हो गया होता, महर्षि पद पाने में विलम्ब का कारण भी यही था।

राम : रावण अपने से अधिक बड़ी तपस्या का पात्र और किसी को नहीं होने देना चाहता है—यही उसकी कमजोरी होगी।

विश्वामित्र : नहीं राम, नहीं। उसका स्वप्न केवल बड़ी तपस्या करना ही नहीं है, वह तो वह कर चुका है। वह स्वयं ईश्वर बनना चाहता है। लेकिन ईश्वर बनने के लिए बुराइयों की नदियाँ बहाने से तो काम नहीं चलेगा। ईश्वर बनने के लिए अच्छाइयों को आग तो नहीं लगा देनी चाहिये।

राम : आप सत्य कहते हैं मुनिवर ! दुष्ट कर्मों से भला किसी को ईश्वरत्व मिल सकता है ? दूसरों से ईर्ष्या करने वाला महात्मा कैसे हो सकेगा ?

विश्वामित्र : हमें यह मानकर चलना चाहिए राम, कि रावण एक भयंकर अभिमान का नाम है। अभिमान तो प्रारम्भ में पनपता ही है। लेकिन जब समय आयेगा तो यह अभिमान भी ढहते हुए दिखाई तक नहीं देगा। मैं चाहता हूँ वह समय शीघ्र आ जाये। मैं देखना चाहूँगा कि रावण अपने दर्प की आग में स्वयं स्वाहा हो रहा है। मैं स्वयं

उसे समाप्त कर सकता हूँ किन्तु वह मेरे योग्य कार्य नही है। इतनी बडी तपस्या करने के बाद, महर्षि पद प्राप्त कर चुकने के बाद मैं ऐसा नही करना चाहता। महर्षि हो जाने के बाद भी एक राक्षस पर मुझे अस्त्र उठाना पडे यह मेरे लिए शोभनीय नही है। महर्षि का सबसे बडा अस्त्र क्षमादान होता है। रावण क्षमादान का पात्र नही है। उसने दण्डकारण्य के सभी ऋषियो, मुनियो को भारी सकट मे डाल रखा है। यही सोचकर मै चुप रह जाता हूँ कि मेरा योग्य शिष्य वह काम करेगा।

राम : अवश्य करूँगा गुरुदेव। आज दिनभर चलते रहने से आप थक बहुत गये है। अब जल पीकर थोडा आराम कर लीजिए। लाइये हम दोनो भाई चरण दबा दे।

विश्वामित्र : (हँसकर) कितना भाग्यशाली हूँ मै, जिसे इतने अच्छे शिष्य मिले है। राजप्रासादो के सारे सुख छोडकर इन जगलो मे दिन-दिनभर फिरते रहने पर भी, कदमूल-फल खाकर पेट भर लेने पर भी, कभी तुम्हारे चेहरो को म्लान नही देखा। हमेशा सुखी ही लगते हो। प्रसन्न ही दीखते हो।

राम : यह तो हमारे पुण्य ही रहे होगे कि आप हमे गुरु के रूप मे मिले।

लक्ष्मण : भइया ठीक कहते है गुरुदेव। इतने महान ऋषि के शिष्य होने मे हमे कितना गर्व अनुभव होता है।

विश्वामित्र : ठीक कहते हो लक्ष्मण। कितने अच्छे हो तुम दोनो सुकुमार। अच्छा राम, अब शाम होने वाली है। यही रुककर विश्राम किया जाय। आओ, इन्ही पेडो के नीचे रात बिताई जाय। जाकर कन्दमूल ले आओ और जल की व्यवस्था करो। कल प्रात ही हमे आगे के लिए चल देना होगा। आगे भी मार्ग कठिन है। किन्तु सायकाल तक हम राजा सुमति की राजधानी विशाला पहुँच जाना चाहते है। राजा सुमति को हमारे मिथिला जाने का समाचार ज्ञात है। वह हमारी प्रतीक्षा कर रहे होगे। कल रात उन्ही के राज्योद्यान मे उनके अतिथि रहेगे। एक लम्बे समय के बाद कल तुम लोग किसी बडे नगर मे रहोगे। मै चाहता हूँ वहा हम शीघ्र पहुँच सके तो तुम लोग नगर-दर्शन, भ्रमण भी कर लोगे।

राम : ठीक है प्रभुवर! हम अभी कन्दमूल और जल लेकर आते है। आप विश्राम करे। आओ लक्ष्मण!

[विश्वामित्र धरती पर बैठ जाते है और राम-लक्ष्मण दूर जाते हुए पेडो के झुरमुट मे अदृश्य हो जाते है।

मंच पर प्रकाश धीमा होते हुए अँधेरा। फेड आउट।]

दृश्य तीन

[मंच पर अँधेरे से धीरे-धीरे प्रकाश (कैमरा इन ऐक्शन) वन पथ पर विश्वामित्र, राम-लक्ष्मण जा रहे हैं। पहले दूर से जाते हुए दिखते हैं। फिर (कैमरा आगे आता है) समीप आते हुए, सामने से]

राम : गुरुदेव ! एक रात यहाँ जितने आराम से रहे, उससे मार्ग की सारी थकान मिट गयी।

विश्वामित्र : हाँ, राजा सुमति ने हम लोगों का बड़ा सत्कार किया।

लक्ष्मण : भइया ! राजा सुमति की राजधानी विशाला भी बड़ी मनोरम थी। शाम को नगर भ्रमण के समय मन आनन्दित हो गया था। दो-चार दिन और रहने को जी चाहता था।

विश्वामित्र : पुत्र लक्ष्मण ! तुम्हें अपनी अयोध्या नगर की, अपनी माँ की, स्व-जनों की याद तो नहीं आ रही है ? इस उम्र में जब तुम्हें अपने घर-नगर का सुख भोगना था, मैं तुम्हें जंगल-जंगल ले जाकर थका रहा हूँ।

लक्ष्मण : याद तो आती है किन्तु आपकी छत्रछाया में जो कुछ सीखने को मिल रहा है गुरुदेव, वह सब उस सुख से कहीं बड़ा सुख है। घर और नगर का सुख तो जीवन-भर भोगना है किन्तु भविष्य-निर्माण का सुख तो इसी समय लेना है। कितना दुर्लभ सुख दे रहे हैं आप हमें ?

विश्वामित्र : (हँसकर) राम ! सुन रहे हो लक्ष्मण की बात। कितना होनहार है यह।

राम : मुनिवर ! आप जो कथाएँ मार्ग में हमें सुनाते रहते हैं उनसे लक्ष्मण को युद्ध-कौशल सीखने से भी अधिक रस मिलता है।

लक्ष्मण : रस तो मिलता ही है भइया। उससे मेरा ज्ञान भी बढ़ता है। हमारे कुलगुरु वशिष्ठ जी तो केवल रण-नीति ही सिखाते थे। गुरुदेव तो इतिहास की अनोखी कथाएँ सुनाकर ज्ञान भी बढ़ाते रहते हैं।

विश्वामित्र : (हँसकर) बड़े वाक्पटु हो गये हो लक्ष्मण तुम। जानते हो हम अब मिथिला के उस पुनीत आश्रम की ओर बढ़ रहे हैं जो कभी

मेरे सिद्धाश्रम से भी महान ज्ञान-तीर्थ था। नदी-तट पर मनोरम वन में बसा यह आश्रम बहुत रमणीक होने पर भी अब मनुष्य-विहीन है। एकदम सुनसान।

राम : प्रभु ! आश्रम और एकदम सुनसान !

विश्वामित्र : हाँ राम, अब वहाँ कोई नहीं रहता। केवल उस आश्रम की मिट्टी उसकी महानता की कहानी कहती रहती है।

लक्ष्मण : गुरुदेव ! कैसी कहानी है इस आश्रम की ? निश्चय ही यह किसी पुनीत इतिहास की याद दिलाती होगी।

विश्वामित्र : सौमित्र ! बड़े चतुर हो तुम। बात के लहजे से पूरा मर्म समझने लगते हो। उस आश्रम की कहानी जब मैं मन में सोचता हूँ तो मन बुरी तरह टूट जाता है बेटे !

राम : मुनिश्रेष्ठ ! तब तो लक्ष्मण वह कहानी सुने बिना रह भी नहीं सकेगा। सुनने से हमारा ज्ञान भी बढ़ेगा और मार्ग बीतते पता भी नहीं चलेगा।

विश्वामित्र : पुत्र राम ! मेरा भी मन करता है कि उस स्थान तक पहुँचने तक वह कथा तुम लोगों को सुना दूँ। मिथिला के उस उपवन में कुछ समय पहले महान ऋषि गौतम का भव्य आश्रम था। वहाँ सैकड़ों-हजारों तपस्वी और शिष्य ज्ञान प्राप्त करते थे। आश्रम के कुल-पति नीतिशास्त्र के महान ऋषि गौतम थे। जिन्हें त्रिभुवन सुन्दरी अहल्या जैसी पत्नी मिली थी और उनका एक नन्हा-सा पुत्र था शतानन्द।

राम : गुरु वशिष्ठ ने हमें भी मुनि गौतम की नीति-विषयक पुस्तकें पढ़ाई थीं। मैं उनकी अपार विद्वत्ता को जानता हूँ। प्रभावित हूँ उससे।

विश्वामित्र : तुम ठीक कहते हो राम। जब हमें नीति के मामले में कोई गूढ़ विचार समझ में नहीं आता था या आर्यावर्त के किसी राजा को किसी नीति-रीति की समझ की आवश्यकता पड़ती थी तो सभी ऋषि गौतम के पास इसी आश्रम में आते थे। सचमुच वे महान थे। नीति के सबसे बड़े ज्ञाता थे वह।

लक्ष्मण : महान थे या हैं भी ?

विश्वामित्र : तुमने अच्छी जिज्ञासा की लक्ष्मण। वह अब भी हैं।

राम : किन्तु उनका आश्रम सुनसान क्यों हो गया गुरुदेव ?

विश्वामित्र : उसी की तो कहानी बता रहा हूँ। वहाँ नित्य वेदों का पाठ होता था। यज्ञ होता था। मंत्रोच्चार होता था। देवता भी वहाँ शिक्षा

पाने आते रहते थे। मिथिला के राजा सीरध्वज जनक को अपने देश के इस ऋषि कुल पर बड़ा गर्व था और वह पूरी शक्ति से इस आश्रम की रक्षा और व्यय-भार की व्यवस्था भी करते थे। राजा जनक के आग्रह पर एक बार देवराज इन्द्र भी नीतिशास्त्र की दीक्षा लेने मुनि गौतम के आश्रम में आये। देवराज इन्द्र के आश्रम में आने का समाचार पहले ही मुनि गौतम को राजा जनक से मिल चुका था।

राम : मुनि को आश्चर्य तो हुआ होगा कि देवराज भी उनसे शिक्षित-दीक्षित होने आ रहे हैं।

विश्वामित्र : आश्चर्य की बात तो नहीं थी राम। विद्वान के लिए सत्ता का महत्व इतना बड़ा नहीं होता। किन्तु देवताओं के राजा आ रहे हैं इसलिए उनके ठहरने की व्यवस्था गौतम ने अपनी ही कुटी में एक अलग कक्ष में कर दी थी। उन्हें शिष्य से भी अधिक, मेहमान मान कर अपनी पत्नी अहल्या को कह दिया था कि देवराज को आश्रम में कोई कष्ट न हो, इसे वह स्वयं देखे। अहल्या ने खुशी-खुशी यह भार अपने ऊपर ले लिया। अहल्या स्वयं भी परम विदुषी और आतिथ्य-सत्कार में विनीत और कुशल थी।

लक्ष्मण : भइया! ठीक ही तो किया उसने। घर आये मेहमानों के सत्कार का भार यों भी गृहिणी पर ही आता है।

विश्वामित्र : एक दिन निर्धारित तिथि को देवराज इन्द्र गौतम आश्रम में शिक्षा पाने आ गये।

दृश्य चार

[गौतम का आश्रम-स्थल। इन्द्र अश्व-रथ पर आते हैं]

अभिनत : आप आ गये देवराज! स्वागत है।

इन्द्र : मैं मुनि गौतम से नीतिशास्त्र की दीक्षा लेने आया हूँ।

अभिनत : देवराज! ऋषिकुल के कुलपति गौतम की ओर से मुझे आपके स्वागत के लिए नियुक्त किया गया है। मैं उपकुलपति अभिनत हूँ।

इन्द्र : मुनि! मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

अभिनत : आपके ठहरने की व्यवस्था मुनि की कुटी में ही है। मुनि इस समय पुस्तकालय में पाण्डुलिपियों के अध्ययन में व्यस्त हैं।

इन्द्र : कब होंगे उनके दर्शन ?

अभिनत : कल पूजन के अवसर पर। प्रातः के यज्ञ में आप रहें। **यज्ञ** सम्पन्न करने के बाद मुनि श्री मिलेंगे और आपको नीतिशास्त्र के मर्म बतायेंगे। अभी उनके घर में उनकी गृहिणी अहल्या आपके निवास और भोजन की व्यवस्था कर रही हैं।

इन्द्र : तो उपकुलपति चलें। हम भी थके हैं। विश्राम कर प्रातः यज्ञ के अवसर पर मुनि को प्रणाम करेंगे।

अभिनत : अवश्य आइये। इधर आइये।

[दोनों ऋषि की **कुटी** की ओर बढ़ते हैं। **कुटी** के **बरामदे में अहल्या खड़ी हैं।**]

अभिनत : देवि ! देखिये देवराज इन्द्र आ गये हैं।

अहल्या : आवें। देवराज इन्द्र अन्दर आ जावें।

इन्द्र : मेरा प्रणाम लें देवि (**ध्यान से देवी के मुख को देखता रहता है**)

अहल्या : शिष्य-शिष्य में भेद होता है देवराज। कहाँ यह घास-फूस की कुटी और जड़ों, फलों, कन्दों का उबला भोजन और कहाँ आप सब ऐश्वर्यों से पूरित देवलोक के राजा। हमारा आतिथ्य जैसा भी है स्वीकार करें। आतिथ्य-सत्कार इस आश्रम के अनिवार्य नियमों में सर्वप्रथम स्थान पर है।

इन्द्र : देवि ! यह आश्रम तो स्वर्ग से भी अच्छा है। और फिर जहाँ ऋषि हों, जहाँ आप हों, देवि ! स्वर्ग कुछ भी नहीं है।

अभिनत : देवि ! कुलपति की आज्ञा थी कि देवराज को कुटी तक पहुँचा दूँ। शेष आप सँभालेंगी। आज्ञा हो तो मैं चलूँ।

अहल्या : अवश्य। देवराज मेरे मेहमान हैं। प्रयत्न करूँगी कि इन्हें कोई कष्ट मेरे रहते होने न पावें।

[अभिनत जाता है।]

इन्द्र : देवि ! आप किस कष्ट की बात कर रही हैं ? देवराज अवश्य हूँ, सुविधाओं से सम्पन्न अवश्य हूँ, किन्तु जब आप जैसी तीनों लोकों की महान सुन्दरी के समीप रहने का अवसर हो तो सारे ऐश्वर्य, सारे सुख, सारी सुविधाएँ व्यर्थ लगने लगती हैं।

अहल्या : (**लजा कर**) आप आवें और अपने कक्ष में विराजें। आपकी इच्छा को देखते हुए मुनि ने जितना हो सका व्यवस्था करा रखी है।

[दोनों कक्ष में आते हैं। इन्द्र कक्ष में आकर]

इन्द्र : वाह ! वाह ! यहाँ क्या नहीं है ? मुनि गौतम कितने महान हैं !

अपना शिष्य मानते हुए भी उन्होंने मुझे देवराज बने रहने की सुविधाएँ दी हैं। देवि ! इतना सोमरस। यह मेरे लिए अधिक है।

अहल्या : आश्रम में यह वर्जित है। शिष्यों के लिए तो विष ही है। फिर भी आप देवराज हैं और यह सब आपके लिए आवश्यक होगा। जीवन पद्धति दो-चार दिन में बदल नहीं सकती, यही सोचकर उपकुलपति ने ऋषि गौतम को बताये बिना यह व्यवस्था कर दी है।

इन्द्र : वास्तव में जब मैं सारे सुख-वैभव से, अपनी अप्सराओं और शची से इतनी दूर हूँ, इस वन में, तो उपकुलपति का यह प्रसाद मेरा मन स्थिर रख सकेगा।

अहल्या : **(हँसते हुए गुरुपत्नी और शिष्य की संभव समीपता बनाने के भाव से)** रूप से तुम जितने सुन्दर हो, विचारों से इन्द्र, तुम उतने ही रोचक हो। अब अपने इस कक्ष में हाथ-मुँह धोकर विश्राम करो। मैं भोजन दे जाऊँगी यहीं।

इन्द्र : देवि ! आप कितनी स्नेहमयी हैं। यहाँ क्यों ? मैं आपके पास रसोई में आकर ही भोजन कर लूँगा। आप क्यों कष्ट करेंगी ? भोजन बन जावे तो आप बता दें।

अहल्या : बस-बस, देवराज ! देवलोक के नियन्ता होकर भी, सभी देवताओं के सिरमौर होकर भी, तुम क्या मेरी रसोई में आकर भोजन करोगे ?

इन्द्र : तो क्या हुआ, यहाँ तो मैं दीक्षा लेने आया हूँ। आप मेरे पूज्य कुल-पति की पत्नी हैं। मैं आपको क्यों कष्ट दूँ।

अहल्या : रहने भी दो देवराज। शिष्य होने के साथ ही साथ तुम्हें कुलपति ने मेहमान भी माना है। तुम्हारे रहने-सहने, भोजन आदि का पूरा भार मुझे सौंपा है।

इन्द्र : आपको सौंपा है ? सचमुच देवि ! आप कितनी महान हैं। किन्तु मैं नहीं चाहूँगा कि कमल के फल की पंखुड़ियों से भी कोमल आपके हाथों को, पाँवों को मेरे कारण कष्ट उठाना पड़े।

अहल्या : **(गम्भीर होकर)** कैसा कष्ट इन्द्र ?

इन्द्र : आप महान हैं देवि !

अहल्या : यह क्या महान-महान लगा रखी है। मेरे गौतम के शिष्य हो तुम ! मेरा भी कोई अधिकार है तुम पर। देवराज हो तो क्या हुआ। चलो वस्त्र बदलो और विश्राम करो।

इन्द्र : अवश्य। मैं ऋषि शिष्य तो हूँ ही देवि ! मैं विश्राम करता हूँ। किन्तु आप भोजन स्वयं लेकर मेरे कक्ष में न आइयेगा। मुझे अच्छा नहीं लगेगा। केवल बता दीजिएगा। मैं वहीं आपके पास आ जाऊँगा।

अहल्या : अच्छा बाबा। अच्छा। तुम तनिक विश्राम तो करो।

इन्द्र : देवि ! पता नहीं क्यों रम्भा, शची, मेनका आदि को देखने के बाद आज मुझे लग रहा है कि अब तक मैंने पूर्ण और निर्मल सुन्दरता को देखा ही नहीं था। आस्था और आदर के साथ अपने मन की बात कह देना गलत न समझें। क्षमा करें।

अहल्या : इन्द्र ! नीतिशास्त्र से तुम्हारी इस बात का भी कोई सम्बन्ध है क्या ? (**बिगड़ने का भाव चेहरे पर स्पष्ट उभरता है।**)

इन्द्र : है अवश्य। इन्द्रियों की इच्छा के अनुकूल ही कोई विचार ग्रहण किया जा सकता है। वह चाहे आचार का विचार हो, नीति का विचार हो या अर्थ का। आप अन्यथा न लें देवि ! वास्तव में जीवन का सार्थक अर्थ शिव, सुन्दर और सत्य को समझ सकने में ही है।

अहल्या : लगता है, तुम नीति का नहीं सुन्दरता का बोध लेने आचार्य गौतम के पास आये हो।

इन्द्र : मुझे भी ऐसा ही लगता है, देवि ! आर्ये ! मुझे भी इस आश्रम में आने के बाद ऐसा ही क्यों लग रहा है ?

अहल्या : देवराज ! मैं तुम्हारी गुरुपत्नी हूँ। अतः केवल देवराज न होकर शिष्य की परम्परा के बारे में भी इस आश्रम में तुम्हें शिक्षा लेनी होगी। अभी तुम विश्राम करो। भोजन बनाने जा रही हूँ। मेरा शतानन्द भी इस समय सोया है। जग जायेगा तो कुछ भी नहीं करने देगा।

[मंच पर प्रकाश धीमा पड़ता है। अँधेरा। फिर प्रकाश उभरता है और उसी पर्णकुटी का दूसरा कक्ष]

दृश्य पाँच

[उसी पर्णकुटी के अपने कक्ष में ऋषि गौतम और अहल्या। बगल में शतानन्द सोया है।]

गौतम : अहल्ये ! क्या शतानन्द सो गया है।

अहल्या : हाँ आर्य ! शत अभी कुछ देर पहले ही सोया है।

गौतम : प्रात:काल से ही पूजा, यज्ञ, पठन-पाठन, विचार-विमर्श का ऐसा सिलसिला जुट जाता है कि अपने शतानन्द को हम थोड़ा भी समय नहीं दे पाते।

अहल्या : आपकी इस व्यस्तता ने तो नाथ ! मुझे भी त्रस्त कर रखा है। दिन-भर कितने ऋषि, आचार्य और श्रद्धालु बाहर से आ जाते हैं। मैं तो उन्हीं का आदर-सत्कार करते-करते थक जाती हूँ। शतानन्द तो बेचारा दिन-भर माधवी के पास ही रहता है।

गौतम : इधर जब से देवराज इन्द्र मेरे आश्रम में दीक्षा लेने आये हैं तब से आश्रम में भीड़ और भी बढ़ गयी है।

अहल्या : जिस दिन सीरध्वज जनक उनसे भेंट करने आये थे उस दिन तो हाल और भी बुरा हो गया था।

गौतम : हम जानते हैं अहल्ये, हम जानते हैं। यदि आश्रम में रहने वालों को तुम्हारा स्नेह न मिले, अभ्यागतों को तुम्हारा आदर-सत्कार न मिले तो गौतम का यह ऋषिकुल कभी भी ऋषिकुल नहीं रह जावेगा। देवराज इन्द्र भी तुम्हारे सत्कार से सदैव प्रसन्न ही लगते हैं।

अहल्या : स्वामी, मैं तो यही प्रयत्न करती हूँ कि देवराज जितने दिनों के लिए भी आये हैं हमारे आतिथ्य से सुखी ही रहें। किन्तु···

गौतम : किन्तु, किन्तु क्या ? कहते-कहते रुक क्यों गयी अहल्या ?

अहल्या : मुझे इन्द्र की बातें अच्छी नहीं लगतीं। मुझे उसका चलन भी अच्छा नहीं लगता।

गौतम : (**हँसकर**) क्यों ऐसा क्या है इन्द्र में ?

अहल्या : कुछ है या नहीं, किन्तु उसका व्यवहार मुझे तो अच्छा नहीं लगता।

गौतम : (**हँसकर**) तुम्हारी सुन्दरता मन में पचा नहीं पाता होगा वह। देवेन्द्र है न ! अप्सराओं से घिरा रहने वाला।

अहल्या : उसे अपनी अप्सराओं की तरह का व्यवहार अपनी गुरुपत्नी से तो नहीं करना चाहिए।

गौतम : हाँ, मैं भी देखता हूँ कि इन्द्र की आँखों में कामुकता छलकती-सी रहती है। यज्ञ के समय भी वह, टकटकी लगाकर, तुम्हारी ओर ही देखा करता है। इसी विलासिता ने तो देवताओं को तोड़ कर रख दिया है। जब-तब राक्षस इनसे लड़ते रहते हैं और ये हारने पर भी भोग-विलास की जिन्दगी नहीं छोड़ सकते।

अहल्या : अभी इन्द्र कितने दिन आश्रम में रहेंगे !

गौतम : **मैं शीघ्र ही उसे दीक्षा देकर** वापस कर दूंगा। ऐसे लोगों के **ऋषिकुल में आ जाने से बाहरी तौर पर** तो आश्रम की प्रतिष्ठा बढ़ती है किन्तु अन्दर ही अन्दर आश्रम की प्रतिष्ठा को घुन लग जाता है ।

अहल्या : अच्छा, अब सो जाइये आर्य । ब्राह्म मुहूर्त में ही आप स्नान के लिए चले जाते हैं । अब रात्रि के प्रहर ही कितने शेष हैं ?

गौतम : कितना भाग्यशाली पति हूँ मैं अहल्ये, तुम जैसी पत्नी को पा कर !

[दोनों चुप सो जाते हैं ।]

[गौतम हाथ में कमण्डल लिए द्वार से बाहर जाते हुए]

गौतम : अहल्ये ! अहल्ये ! (**धीमे स्वर में**) देखो मैं स्नान करने जा रहा हूँ । द्वार पर अर्गला लगा दो । तुम उनींदी हो, कहीं भूल न जाना ।

अहल्या : मैं अभी लगा दूँगी नाथ ! आप आइये ।

[मंच पर अँधेरा]

[एक छाया कक्ष में प्रवेश करती है । जहाँ अहल्या सोई है वहीं वह छाया झुकती है ।]

इन्द्र : (**फुसफुसाती आवाज में**) अहल्ये ! अहल्ये ! आओ, मेरी बाँहों में आओ अहल्ये !

अहल्या : अरे, आप ! आर्य, आप लौट क्यों आये ?

इन्द्र : अभी पौ फटने में बहुत देर है । सोचा तब तक तुम्हारे साथ, तुम्हारे पास रहूँ । लो, लो, मैं तुम्हारी बाँहों में लिपट जाना चाहता हूँ ।

अहल्या : तुम ! (**चौंककर**) तुम आर्य गौतम नहीं हो ? तुम इन्द्र हो क्या ?

[मंच पर प्रकाश फैलता है । इन्द्र स्पष्ट दीखता है ।]

इन्द्र : (**ठठाकर**) कितनी पहचान रखती हो तुम अहल्ये ! अप्सराएँ जिसका साथ पाने के लिए तरसती रहती है वही इन्द्र तुम्हारे कितने समीप है ! मेरे विशाल वक्ष में अपना सिर छुपा लो अहल्ये !

अहल्या : (**क्रोध से चिल्लाकर**)पापी ! दुष्ट ! देवताओं का राजा होकर भी इतना घृणित काम करते तुझे लज्जा नहीं आती ? (**साँस तेज चलती है**) घिनौने पशु ! मुझे छोड़ दे । मैं कहती हूँ मुझे छोड़ दे ।

इन्द्र : **(हँसते हुए)** इच्छा को न रोक पाना मेरी दुर्बलता है और जिसके लिए इच्छा करूँ उसे पा लेना मेरी महानता है अहल्या ! इसी-लिए तो देवराज का पद मिला है ।

अहल्या : **(क्रोध से पागल हुई-सी)** तुम देवराज नहीं, पापराज हो । ले मैं थूकती हूँ तेरी महानता पर । मुझे अकेली पाकर, मुझे अबला समझकर तू अपने पापी शरीर से मेरी पवित्रता को नष्ट कर देना चाहता है । **(दोनों में छीना-झपटी हो रही है)** दुष्ट, हट जा, मुझे मत छू । मत कर मुझे अपवित्र । छोड़ दे । छोड़ दे मुझे । मुझे छोड़ दे ।

[मंच पर अँधेरा]

[शतानन्द के जगकर रोने की आवाज़ । मंच पर वही छीना-झपटी]

अहल्या : हाय, मै कहीं की नहीं रही । पापी, तेरा सत्यानाश हो जाय । मैं हाथ जोड़ती हूँ, मुझे छोड़ दे । **(जोर-जोर से चीखती है, रोती है । चिल्लाकर)** ये धरती फट क्यों नहीं जाती है । यह आकाश गिर क्यों नहीं पड़ता है ?

इन्द्र : मैं शची को तेरी दासी बना दूँगा । तुझे देवलोक की रानी बना दूँगा । क्या नहीं है मुझमें अहल्या ? मेरा पौरुष, मेरा वैभव, मेरी शक्ति, मेरी सुन्दरता । मुझमें सब कुछ तो है ।

अहल्या : **(आर्तनाद करती-सी, चीखती हुई-सी)** तू पशु है । तू अधम । तू धोखेबाज है, कपटी है तू । तू देवताओं और पौरुष के नाम पर कलंक है । मैं आर्य गौतम से कहकर तुझे भस्म करा दूँगी । **(रोती है जोर-जोर से । शतानन्द भी रो रहा है ।)**

[बाहर भीड़ का कोलाहल । कोलाहल बढ़ता है । कुटी के बाहर प्रकाश उभरता है]

भीड़ के स्वर : कुलपति की कुटी में क्या हो रहा है । **(चीखने-चिल्लाने और रोने के स्वर)** उपकुलपति अभिनत, आप अन्दर जाकर देखें ।

अभिनत : नहीं । आचार्य इस समय स्नान करने गये हैं । उनकी अनुपस्थिति में मैं कैसे अन्दर जाऊँ !

[इन्द्र का अचार्य की कुटी से बाहर निकलकर भीड़ को धकिया कर हुए भाग निकलना ।]

भीड़ : देवराज इन्द्र हैं । इन्द्र अन्दर से निकलकर आ रहे हैं । गुरुपत्नी के पास से ।

अभिनत : **(आश्चर्य के स्वर में)** आश्रम में इतना बड़ा पाप हो गया ?

कुलपति की अनुपस्थिति में दीक्षा लेने आया हुआ शिष्य गुरु की प्रतिष्ठा को आग लगाकर फूँक गया है। इतना घोर अनर्थ—इस पवित्र आश्रम में ?

भीड़ : ऋषि आ रहे हैं। देखो गौतम ऋषि आ रहे हैं।

[दूर से गौतम कुटी की ओर आते हुए दिख रहे हैं। कुटी के पास भीड़ में आकर]

गौतम : मेरी कुटी के आगे यह कैसी भीड़ है, अभिनत ? सारा आश्रम मेरी कुटी पर क्यों एकत्र हुआ है ? क्या हो गया ?

[सब मौन]

गौतम : तुम लोग मौन क्यों हो ? क्यों चुप हो तुम लोग ? अहल्या तो ठीक है न ? शतानन्द को तो कुछ नहीं हुआ है न ?

अभिनत : (**बुझे स्वर में**) आचार्य ! आप अन्दर जाकर पूछ लें।

गौतम : अन्दर जाकर पूछ लूँ ? ऐसा क्या हो गया है ? अहल्ये ! अहल्ये ! ये कैसी भीड़ जमा है ? तुम अन्दर हो क्या ?

[अहल्या रोती हुई कुटी के द्वार तक आकर]

अहल्या : (**रोते हुए**) स्वामी ! पापी इन्द्र ने मुझे कहीं का नहीं रखा। मुझे अकेली पाकर वह दुष्ट आपका रूप धरकर मेरे पास आया।

गौतम : (**आश्चर्यचकित होकर**) मेरा रूप धरकर ? तुमने उसे पहचाना नहीं अहल्ये ?

अहल्या : (**रोते हुए**) पहचान लिया था, नाथ ! मैंने उसे दुत्कारा। भरसक विरोध भी किया। किन्तु आर्य, वह तो अधम पशु था। मेरा कोई दोष नहीं है प्रभु ! मेरा दोष बिल्कुल नहीं है।

गौतम : उस पापी ने गुरुपत्नी के साथ··· ! अबला समझकर एक पतिव्रता के सतीत्व पर डाका डाला उस धूर्त ने ? सुन रहे हो आश्रमवासियो ! ऋषि, आचार्य, शिष्यगण ! सब सुन रहे हो ? देवराज ने, देवताओं के श्रेष्ठ राजा ने एक साध्वी सती का शीलभंग किया है। मेरे आश्रम में आये हुए ये देवतागण सुन रहे हैं न कि उनके देवाधिपति ने क्या कर्म किया है यहाँ—मृत्युलोक में आकर ?

अभिनत : (**सहमे स्वर में**) हाँ, ऋषि ! हम सबने इन्द्र को आपकी कुटी से भागते हुए देखा है ? आचार्या के चीखने-चिल्लाने का स्वर सुनकर हम सब यहाँ एकत्र हो गए थे।

गौतम : (**क्रोध से चिल्लाकर**) तो इस पशुता, इस दुराचारिता, इस जघन्य अपराध के लिए इन्द्र को दण्डित करने के लिए देवसभा

से कहा जाएगा । आप कहेंगे देवतागण ? ऋषिगण आवाज उठायेंगे ?

[सब मौन रहते हैं ।]

अहल्या : **(दर्द-भरी आवाज में)** दण्ड का नाम सुनते ही आप सब चुप क्यों हो गए ? दण्ड देवराज को देना है, इसलिए सब मौन हो गए हैं क्या ? एक अबला के शील और सतीत्व की किसी को चिन्ता नहीं ? और वे देवराज हैं, समर्थ हैं, इसलिए जो चाहें पाप कर लें ? वह तब भी क्षम्य हैं ? वह तब भी महान हैं ? पूज्य हैं ?

गौतम : **(धीमे आहत स्वर में)** दु:खी मत हो अहल्ये ! आर्यावर्त के लोग, देवलोक के देवता उसे दण्ड दें या न दें किन्तु मेरी तपस्या अभी इतनी दीन नहीं हुई है । मैं उसे शाप देता हूँ कि पापी इन्द्र ! जिस काम शक्ति के कारण तूने गुरुपत्नी से बलात्कार किया, तेरी उस शक्ति को समाप्त कर मैं तुझे नपुंसक बनाता हूँ ।

भीड़ : इतना भयंकर शाप ? देवराज को मुनि ने शाप दे दिया ।

अहल्या : मुनि ने शाप दे दिया तो आप सब फिर मुखर हो गए ? दण्ड की बात आयी तो सारे आश्रमवासी चुप हो गए ? मैंने अपने हाड़-मांस से सींचा था इस आश्रम को । किसी का क्या बुरा किया था मैंने ? कोई तो कह देता कि पापी इन्द्र को प्राणदण्ड देकर उसकी बोटी-बोटी जंगली जानवरों को खिला देनी चाहिए । मेरा सम्पूर्ण सतीत्व एक ही क्षण में नष्ट कर दिया उस पापी ने **(जोर-जोर से रोती है)**

अभिनत : कुलपति ! देवराज इन्द्र ने जो भी किया वह बहुत ही नीचतापूर्ण जघन्य और अमानवीय था । हम सब इसकी कटु शब्दों में भर्त्सना करते हैं । आप इस आश्रम के अधिष्टाता हैं और आश्रम की अपनी मर्यादा है अत: धर्म के आचरण के अनुसार अब देवि अहल्या कुलपति की धर्मपत्नी रहने के योग्य नहीं रह गई हैं । दु:ख और पश्चाताप के साथ हमें यह कहना पड़ रहा है । अब प्रश्न यह है कि आचार्य क्या उन्हें स्वीकार करेंगे ?

गौतम : स्वीकार करने न करने की क्या बात है अभिनत ? इसमें अहल्या का क्या दोष था ?

अभिनत : दोष उनका बिलकुल भी नहीं है यह हम सब मानते हैं, किन्तु प्रश्न उठता है कि क्या समाज, ऋषिकुल उन्हें स्वीकार करेगा ? समाज की आलोचना का क्या उत्तर होगा कि ऋषि-पत्नी अब पवित्र नहीं रहीं ।

गौतम : सब खड़े तो हैं। आश्रमवासी बोलते क्यों नहीं ? अहल्या दोषी है क्या ?

[सब मौन रहते हैं।]

अहल्या : आर्य ! वे सब चुप ही रहेंगे। मेरी आत्मा स्वयं कहती है कि मैं अब पतित हो चुकी हूँ। आपकी पवित्र आत्मा को कलंकित करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। आश्रम की प्रतिष्ठा बनी रहनी चाहिए।

गौतम : क्या कहती हो अहल्या ? नदी और नारी इस तरह अपवित्र नहीं होती। तुम पतित हुई नहीं बलात् कर दी गई हो। मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ। मुझे यह संसार स्वीकार चाहे न करे। मैं कुलपति चाहे न रहूँ। नीति का ज्ञाता मैं हूँ। नैतिकता का निर्णय मैं दूँगा।

अहल्या : नहीं, यह नहीं हो सकता। आप शतानन्द को लेकर यहाँ से जावें। इस अपवित्र आश्रम में अब न रहें। मैं अपनी नियति को झेलूँगी। यहीं रहकर मैं तपस्या करूँगी। पश्चाताप में तिल-तिल कर गलना होगा मुझे।

गौतम : तपस्या करोगी ? क्या तपस्या करोगी ? किसलिए पश्चाताप करोगी ? क्या अपराध है तुम्हारा ? नारी होना तो अपराध नहीं है ? ऐसे समर्थ और महान लोगों को क्षमा करके असहाय और शोषित को दोषी मानने वाले समाज से हमें लड़ना होगा। पश्चाताप अपराधी को करना चाहिए। अपराध इन्द्र ने किया है उसे अस्वीकार करे यह समाज ! तुम्हारा क्या अपराध है ?

अहल्या : नाथ ! आप न समझें मेरा अपराध, लेकिन इस समाज को कौन समझायेगा ! पुरुष तो बलशाली है, उसका क्या बिगड़ता है। दोष तो निर्बल का ही होता है। स्त्री तो भ्रष्ट मान ली जाती है। मैं स्त्री हूँ इसे क्या आप मेरा अपराध नहीं मानते। जब तक समाज मुझे स्वीकार न करने योग्य समझे, आप जैसी पवित्र आत्मा से मुझे दूर ही रहना चाहिए। हाँ, जिस दिन समाज मुझे स्वीकार करने योग्य समझेगा मैं आपके पास चली आऊँगी।

गौतम : ऐसा न करो अहल्ये ! इतना कठोर दण्ड तुम्हें नहीं इन्द्र को मिलना चाहिए। वर्ना इस समाज में इन्द्र पैदा होते रहेंगे और निरपराध अहल्याएँ अपना घर-संसार सूना कर इसी तरह अपने को मिटाती रहेंगी।

अहल्या : नियति को स्वीकार होगा तो हम अवश्य मिलेंगे। समाज का मन भी कभी बदलेगा प्रभु ! आर्य मेरा प्रणाम लें। मुझे अपने निश्चय

पर अटल रह सकने का आशीर्वाद दें। इस आश्रम को त्याग कर आप मेरे शतानन्द को लेकर कहीं और जाकर बस जाएँ।

गौतम : अहल्ये ! यह क्या हो रहा है ? यह कैसा निश्चय कर रही हो तुम ? कितना कठोर निर्णय है तुम्हारा यह ?

अहल्या : मेरा शतानन्द यशस्वी और विद्वान हो। उसे समाज तिरस्कृत न करे इसलिए भी मेरा यह सब करना आवश्यक है नाथ ! मैं पत्थर बनकर भी जी लूँगी किन्तु आपको और शतानन्द को लोग कभी, किसी कारण अपमानित, लांछित न करें—यही तन और मन से चाहती हूँ।

गौतम : ठीक है। ऐसा ही चाहती हो तुम, तो मैं इसी क्षण से इस आश्रम को भंग करता हूँ। यह आश्रम अब समाप्त होता है। ऋषिकुल के लोग जा सकते हैं।

अभिनत : आचार्य का निर्णय किसे नहीं मान्य होगा। इस घटना से सभी आश्रमवासी दुःखी हैं। माँ अहल्या हम सबको क्षमा करेंगी। हम उनकी कोई मदद नहीं कर सकते इसका हमें बड़ा दुःख है। उनकी निर्दोष आत्मा हमें धिक्कार अवश्य रही होगी किन्तु इस समाज की जिस तरह की मान्यताएँ प्रचलित हैं, उसके आगे हम सब विवश हैं। आर्यावर्त के इस नीतिशास्त्र के महान ऋषिकुल का जिस तरह विघटन हो रहा है, वह उन सबके माथे पर कलंक का टीका लगा रहा है जो सामाजिक मान्यताओं की विसंगतियों को समझकर भी बदल सकने में असमर्थ हैं और देवराज जैसे सबल सत्ताधारी की निर्लज्जता को भी मूक और अबस होकर सहते रहने के लिए विवश हैं। आचार्य हमें क्षमा करेंगे। आचार्य से तो हम क्षमा माँग सकने के अधिकारी तक नहीं हैं, किस मुँह से किस मन से क्षमा माँगें ?

गौतम : तब भी मैं तुम्हें क्षमा करने के लिए अहल्या से एक बार पति के अधिकार के नाते अवश्य कहूँगा।

अहल्या : आप सब जहाँ भी रहें, सुखी रहें।

दृश्य छः

[वही ऋषिकुल किन्तु शांत और सुनसान]

विश्वामित्र : देख रहे हो राम ! कितना सुनसान है यह तपोवन। यही था मुनि

गौतम का ऋषिकुल।

राम : मुनिवर ! यह गौतम का ऋषिकुल था ? अब इतना शांत है यह ? किसी प्राणी के रहने का यहाँ कोई संकेत मिल रहा है।

लक्ष्मण : भइया ! उधर अभी भी कुछ कुटियाँ हैं। वो उधर देखिये, बरगद के वृक्षों के समीप।

विश्वामित्र : लक्ष्मण ! हम लोग अभी वहाँ चलेंगे। आज भी बेचारी अहल्या धूप, वर्षा और शीत को सहती हुई पत्थर बनकर भी अपने उद्धार के लिए तपस्या में बैठी होगी।

राम : गुरुदेव ! तपःशालिनी उस देवी के दर्शन हमें करने चाहिए।

विश्वामित्र : ठीक है, आओ वह आश्रम समीप ही है।

[तीनों कुटिया की तरफ आते हैं। एक कुटी के द्वार से अन्दर झाँक कर विश्वामित्र कहते हैं।]

विश्वामित्र : देवि अहल्ये ! देवि ! देखिये तो आपके आश्रम में कौन-कौन आये हैं ? आँख खोलकर देखिये तो देवि !

अहल्या : **(आँखें खोलकर नींद से जगने के भाव से कुटी से बाहर आकर)** कौन ? कौन हैं आप लोग ? इतने वर्षों के बाद मेरे आश्रम में कोई मनुष्य ? आप···आप ! आप ! मुनि विश्वामित्र मेरे आश्रम में ?

विश्वामित्र : **(हँसने के भाव से)** इतना आश्चर्य हो रहा है देवि आपको ?

अहल्या : मेरा प्रणाम लें महर्षि। ऐसा लगता है कि जैसे मैं भूल ही गयी थी कि मनुष्य कैसा होता है। कितने लम्बे समय के बाद मुँह खोला है किसी से बोलने को। मेरे पश्चाताप ने कैसी जड़ शिला बना दिया है मुझे ? पत्थर बनी हुई पड़ी हूँ मैं इस आश्रम में। वर्षों से पड़ी हूँ। मुझे न भूख लगती है, न प्यास। न मुझे धूप लगती है, न ठण्ड, न मुझे वर्षा का आभास है, न ग्रीष्म का। कितनी जड़ हो गयी हूँ मुनि मैं ? मुझ पतिता का शरीर जल भी तो नहीं सका। इस पवित्र मिट्टी ने मेरे अपवित्र शरीर को अपने में मिलने भी तो नहीं दिया।

राम : तपस्विनी माँ ? मैं राम आपके चरण छूकर प्रणाम करता हूँ।

लक्ष्मण : पवित्र मूर्ति माँ ! चरणों में नतशिर मुझ लक्ष्मण का प्रणाम भी स्वीकार करें।

अहल्या : राम और लक्ष्मण ? ऋषिवर ! ये कौन हैं ? इतने विनम्र और इतने मीठे वचन बोलने वाले ये किसके राजकुमार हैं ?

विश्वामित्र : देवि ! ये दोनों भाई अयोध्या के राजा दशरथ के बेटे हैं।

अहल्या : अयोध्या के राजा दशरथ ? वे महान हैं। वह सदाचारी राजा ऐसे

पुत्रों को पाकर कितने धन्य हैं ! मुनि मैं आपके-इनके सत्कार के लिए अभी कुछ कन्दमूल ले आती हूँ। आप रुकें।

विश्वामित्र : न-न देवि ! इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

अहल्या : आवश्यकता इसलिए है कि इनके और आपके पवित्र चरणों ने मुझे और इस आश्रम को पवित्र कर दिया है। मेरी मरी हुई चेतना फिर से लौट आयी है। पत्थर बन गये मेरे इस शरीर में जैसे फिर से प्राण आ गये हैं। मैं आप लोगों का यहाँ पर और सत्कार ही क्या कर सकूँगी। (**उठकर वन की तरफ चली जाती है।**)

[विश्वामित्र और राम-लक्ष्मण पेड़ों की छाया में पुराने चबूतरे पर बैठ जाते हैं।]

राम : गुरुदेव ! दुःख इतना बड़ा भी होता है—दुःख किसी को इतना भी तोड़ सकता है, यह मुझे आज पहली बार लगा है।

विश्वामित्र : एक ऋषि और दो राजकुमार एक साथ उसके पास आये हैं—इस सुख में यह बेचारी लगती है जैसे सारे दुःख भूल गयी है। इसे यह लगा है कि ऋषियों, तपस्वियों की ओर से मैंने तथा राजाओं और प्रजा की ओर से तुमने इसे निर्दोष मानकर सम्मान दे दिया है।

राम : इसमें झूठ भी क्या है प्रभु ! इसमें संदेह भी क्या है ?

लक्ष्मण : भइया ! गुरुदेव ने जो कहानी इस बेचारी अहल्या देवी की हमें सुनाई उसके अनुसार हम भी यदि इसे निर्दोष न मानें तो यह इस बेचारी के साथ अन्याय होगा।

[कन्दमूल-फल लेकर अहल्या का आना। धो-धोकर कन्दमूल-फल सबको देना]

अहल्या : क्या कह रहे थे तुम बेटे लक्ष्मण, कि कुछ अन्याय हो गया। मैं ठीक से सुन नहीं सकी। मेरे आश्रम में मुनि श्री के साथ तुम लोग आ कर एक पतिता का आतिथ्य ले रहे हो। मैं तुम्हारे समाज से, समाज की मान्यताओं से बहुत डरती हूँ। तुम भी मेरा आतिथ्य पाने से समाज से बहिष्कृत न कर दिये जाओ कहीं ?

राम : गुरुदेव ! देवि को समाज से इतना डर क्यों ?

विश्वामित्र : राम ! यह दूध की जली है, बेचारी ! हालांकि सब जानते थे यह निर्दोष हैं पर ऋषिकुल ने अपनी प्रतिष्ठा के लिए इन्हें जान-बूझ कर भी ठुकरा दिया। इन्हें निर्दोष मानकर भी आज तक राजा सीरध्वज जनक को साहस नहीं हुआ कि उन्हें अपनाकर समाज का सम्मान दिला दें। अहल्या का बेटा शतानन्द अपने पिता गौतम से

सारी विद्याओं और सारे वेदों-पुराणों का मर्म सीख लेने के बाद भी, और राजा सीरध्वज जनक के कुल-पुरोहित होने के उपरान्त भी, अपनी माँ को सामाजिक स्वीकार दिला सकने का साहस नहीं कर सका। नीतिशास्त्र के विश्वविख्यात ऋषिकुल का आचार्य, परम तपस्वी गौतम भी अपनी पत्नी को निर्दोष मानकर समाज से उसे निर्दोष स्वीकार नहीं करा सका।

राम : लेकिन गुरुदेव, हमें निर्णय लेना होगा। देवि अहल्या निर्दोष हैं। मैं अवध की जनता की ओर से इन्हें निर्दोष घोषित करता हूँ।

अहल्या : तुम धन्य हो बेटे राम! सचमुच राम, तुमने मेरा उद्धार कर दिया। मैं जानती थी कि कोई ऐसा राम कभी आयेगा जो मुझे नया जीवन देगा। इतने वर्षों बाद ही सही, कोई तो आया, किसी ने तो कहा कि मैं निर्दोष हूँ।

विश्वामित्र : देवि ! हम मिथिला जा रहे हैं। मार्ग में ऋषि गौतम का आश्रम भी पड़ेगा। हम चाहते हैं आपको गौतम ऋषि के पास पहुँचा दें।

अहल्या : इसमें मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? गौतम तो वर्षों से मेरी राह देख रहे होंगे। उनसे मिल कर ही मेरा जन्म सफल हो सकता है। वे तो मेरे देवता हैं। उनके चरणों में ही मेरी गति है। किन्तु आप उन्हें और मेरे शतानन्द को राम द्वारा मुझे सामाजिक स्वीकृति देने की बात बता दें। वह स्वयं आकर सम्मान के साथ मुझे ले जावें, यही उचित होगा।

विश्वामित्र : जैसी देवी की इच्छा हो। वास्तव में नारी के सम्मान की रक्षा होनी ही चाहिए ! क्यों राम ?

राम : जी हाँ ! यही उत्तम विचार है किन्तु मैं पूरे सम्मान के साथ देवी माँ को गौतम आश्रम तक ले चलता हूँ। मेरा विश्वास है वहाँ पूरा ऋषिकुल इनका स्वागत करेगा।

विश्वामित्र : यही ठीक रहेगा देवि ! आप हमारा आग्रह मान लें।

अहल्या : आपकी आज्ञा तो देवाज्ञा है ऋषि !

[दृश्य बदलता है]

दृश्य सात

[मिथिला नगर के बाहर राज-उद्यान में विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण ठहरे हुए हैं। राजा जनक आते हैं]

राजा जनक : महर्षि विश्वामित्र को मैं मिथिला का राजा जनक आदर सहित प्रणाम करता हूँ।

विश्वामित्र : चिरंजीव भव ! राजा सीरध्वज, कहो तुम्हारा यज्ञ ठीक से निर्विघ्न सम्पन्न हो रहा है न ?

शतानन्द : मैं मिथिला का राजपुरोहित शतानन्द भी मुनि को सादर प्रणाम करता हूँ।

विश्वामित्र : ओह ! शतानन्द ! कुशल से तो हो न ?

शतानन्द : मुनिश्री ! आपका आशीर्वाद है।

जनक : ऋषिवर ! अब मुझे लगता है कि मेरा यज्ञ आपके श्रीचरण मिथिला में पड़ने के बाद, अवश्य ही सफल होगा।

विश्वामित्र : जनकपुरी में प्रवेश करते ही मैंने पहले देख लिया था कि नगर में यज्ञ की बड़ी चहल-पहल है। अनेकों साधु, मुनि, ऋषि और विद्वान, ब्राह्मण नगर में आये हुए हैं। तुम्हारा यज्ञ अनुष्ठान भला क्यों नहीं सफल होगा ?

जनक : मुनिवर ! आप अपने शिष्यों-साधुओं के साथ पधारे हैं। मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ। मार्ग में कष्ट तो बहुत हुए होंगे ?

विश्वामित्र : न-न, कष्ट कैसा। हम तो साधक हैं, साधु हैं, हमें कैसा कष्ट। हाँ, मेरे साथ ये राजकुमार हैं। इनको हो सकता है कष्ट हुआ हो।

जनक : मैं मुनिवर से पूछना ही चाह रहा था कि आपके साथ ये राजकुमार कौन हैं ? इस आयु में यह वन-वन आपके साथ कैसे घूम रहे हैं ?

विश्वामित्र : यह अयोध्या के चक्रवर्ती सम्राट राजा दशरथ के पुत्र हैं : राम और लक्ष्मण। मेरे तप में राक्षस विघ्न डाल रहे थे। इन्होंने ही राक्षसों को मारकर मेरा तप पूर्ण करवाया। इन्होंने ही वर्षों से उपेक्षित पड़ी आर्य शतानन्द की माँ अहल्या देवी को सामाजिक समान देकर ऋषि गौतम के आश्रम में पहुँचाया है। ये दोनों भाई बड़े वीर और पराक्रमी हैं। मैंने इन्हें युद्ध-कौशल और शस्त्र-विद्या सिखायी है। राम तो धनुर्वेद में अजेय हो गया है।

जनक : वास्तव में ऋषि ! आपने हमें धन्य कर दिया। राजा दशरथ हमारे मित्र हैं। ऐसे शुभ अवसर पर इन राजपुत्रों को हमारे अतिथि बनाकर आपने हम पर बड़ा उपकार किया है।

शतानन्द : और मेरी उपेक्षिता माँ को पुनः मेरे पिता के आश्रम में लाकर इन्होंने मेरा भी उपकार किया है। मैं इन राजकुमारों को दोनों

हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

विश्वामित्र : मैंने इन्हें तुम्हारी माँ की दुःखभरी कहानी बता दी थी शतानन्द, ये स्वयं भी उस तपस्विनी के दर्शन करना चाहते थे।

शतानन्द : यह संयोग ही है कि मेरी माँ के दुःख भोगने का समय बीत रहा होगा तभी इन राजकुमारों की कृपा उस पर हुई। अब आप लोग विश्राम करें। थके-माँदे हैं।

[दृश्य बदलता है।]

दृश्य आठ

[राज-उद्यान में राम और लक्ष्मण]

राम : लक्ष्मण! मुनिश्रेष्ठ को विश्राम करने दो। चलो हम लोग इस उद्यान के बाहरी द्वार तक हो आवें।

लक्ष्मण : भइया, मैं तो नगर की ओर भी जाना चाहता था। चलें बाहरी द्वार से भी तो नगर दिखेगा ही।

राम : लक्ष्मण! धनुष-बाण ले लो। नयी जगह है। बिना अपने अस्त्र के नहीं रहना चाहिये।

लक्ष्मण : ठीक है भइया, आइये चलें।

[दोनों उद्यान के द्वार की ओर जाते हैं]

लक्ष्मण : (**ठिठक कर**) भइया, वो देखिए बाहरी द्वार की ओर से राजा जनक के पुरोहित शतानन्द इधर आ रहे हैं।

राम : हाँ-हाँ, लक्ष्मण, वही तो हैं। रुको, आओ। इस चबूतरे पर बैठ जायँ। शायद वह इधर हमारे पास ही आ रहे हैं।

शतानन्द : (**आते हुए मुस्कराकर**) अवध के राजकुमार नंगे पाँव नगर की ओर कहाँ जा रहे हैं।

राम : आचार्य! हम तो बस यों ही इधर निकल आये थे। गुरुदेव आराम कर सकें इसीलिए वहाँ से हट गये थे।

शतानन्द : राजकुमार राम! आपका इस तरह नंगे पाँव राजधानी में घूमना अच्छा नहीं लगेगा। राजा जनक के इस यज्ञ में तमाम मुनि, ऋषि, वेदज्ञ, ब्राह्मण तथा दूसरे अतिथि आये हुए हैं। फिर आप हमारे पड़ोसी देश अवध के राजकुमार हैं। हमारे माननीय अतिथि। आप इस तरह नगर में निकल जायेंगे तो नगरवासी राजा जनक को क्या कहेंगे?

लक्ष्मण : बुद्धिमते ! हमारे भइया राम ऐश्वर्य की उन ऊँची मचानों से उतरकर बहुत पहले जमीन पर आ चुके हैं। हम वे राजकुमार नहीं हैं जो राजमहलों में सजाने की वस्तु हों और महल से बाहर निकलें तो रथों पर या हाथियों पर ही, सैनिकों के रक्षा-कवच के बीच ही निकलें।

राम : लक्ष्मण ठीक कहता है देव ! हम तो वन-वन घूमने वाले तपसी युवक हैं। जब तक पाँवों में काँटे न चुभें हमें नींद ही नहीं आती। हमारे गुरुदेव ने हमें हर स्थिति में रह सकने का पूरी तरह अभ्यस्त बना दिया है।

शतानन्द : क्यों नहीं। जो विश्वविजयी राजा होकर भी, वर्षों कठिन तप करके वनों में हिंसक पशुओं के बीच रहकर, अन्न और वस्त्र त्याग कर, राजपद से हटकर, न केवल ऋषि ब्रह्मर्षि हो सकते हैं। ऐसे गुरु को पा जाना, ऐसे गुरु की शिक्षा लेना, सभी के लिए तो सहज नहीं है। राम ! आप धन्य हैं कि विश्वामित्र जैसे गुरु आपको मिले।

राम : क्या कहा आचार्य आपने, विश्वविजयी राजा···राजपद छोड़कर मुनि ऋषि और ब्रह्मर्षि बन गये···क्या हमारे गुरुदेव पहले कभी राजा थे !

शतानन्द : राजकुमार ! आपको नहीं पता क्या ? आप महर्षि विश्वामित्र के बारे में जानते ही नहीं कि वह पहले क्या थे ?

लक्ष्मण : भइया, आचार्य शतानन्द से हम अपने गुरुदेव की पूर्वकथा जान लें। वह तो अपने बारे में कभी कुछ बताते नहीं। कभी कुछ सुनाने का मन होता भी है तो केवल हमारे राजपुरोहित मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी की बात लेकर बैठ जाते हैं कि वशिष्ठ से वह स्वयं श्रेष्ठ हैं। केवल यही सिद्ध करते हैं।

शतानन्द : वशिष्ठ को अपने से श्रेष्ठ न मानना ही तो ऋषि विश्वामित्र की कमजोरी है। अब वह वशिष्ठ से बोलते हैं, उन्हें बराबरी का मानते तो हैं उनसे अब पहले की तरह शत्रुता तो नहीं ठानते।

राम : आइये आचार्य ! आप यहाँ बैठें। कोई और काम तो नहीं आपको ?

शतानन्द : न-न, मैं तो राजा जनक को छोड़कर एक बार फिर आपका, मेरी माँ का उद्धार करने के लिए, आभार मानने आया था। आप दोनों भाई बैठे हैं तो मैं भी बैठ जाता हूँ। यज्ञ कर्म तो अब कल प्रातः प्रारम्भ होना है। इस समय मुझे और कोई विशेष काम

नहीं है।

राम : लक्ष्मण को ऐसी कथाओं में बड़ा रस मिलता है आचार्य ! इसलिए वह सुनने को बहुत उत्सुक रहता है। ऐसी कथाओं से मेरा भी ज्ञान बढ़ता है।

लक्ष्मण : आप हमारे गुरुदेव की कथा हमें सुनायें। हम भी तो उनके बारे में जानें।

शतानन्द : आयु में उनसे बहुत छोटा होने पर भी मैं उनकी कथा जानता हूँ। मेरे पिता गौतम उनके समकालीन हैं। उन्होंने ही मुझे उन के बारे में बताया था। प्राचीन काल में कुश नाम के जो प्रसिद्ध राजा हुए थे। उनके बलशाली पुत्र थे राजा गाधि। राजा गाधि के पुत्र हुए विश्वामित्र। यह क्षत्रिय वंश था। विश्वामित्र क्षत्रिय वंश के बड़े तेजस्वी और बलवान राजा थे। शत्रु इनसे काँपते थे। प्रजा के यह बड़े उदार पालक थे।

लक्ष्मण : भइया ! यह तो आश्चर्यजनक लगता है कि गुरुदेव पहले राजा थे, तपस्वी बाद में हुए।

शतानन्द : हाँ। तपस्वी होने से पहले राजा विश्वामित्र बड़े पराक्रमी राजा थे। एक बार अपनी रानी, पुत्रों, अमात्यों, सेनापतियों, सैनिकों सहित पृथ्वी की यात्रा पर निकले। नगर-नगर, वन-वन होते दल-बल सहित पहुँच गये मुनि वशिष्ठ के आश्रम में। आर्यावर्त में तब मुनि वशिष्ठ का बड़ा नाम था। उनका आश्रम साधकों का प्रमुख केन्द्र था। धूमिल संध्या के समय पूरी अक्षौहिणी सेना के साथ राजा विश्वामित्र वहाँ पहुँचे।

दृश्य नौ

[दृश्य बदलता है। मंच पर प्रकाश फेडआउट होता है, फिर से प्रकाश उभरता है। वशिष्ठ ऋषि का आश्रम। ऋषिकुल की वेदमन्त्र हलचल। वेदों के पाठ के स्वर। भगवत कथाओं के स्वर। एकाएक दूर से हजारों घोड़ों, रथों के आने के स्वर]

वशिष्ठ : देवदत्त ! केशवन्त ! यह कैसे स्वर आ रहे हैं ? जाकर उस पहाड़ी से देखो तो मेरे आश्रम की ओर कौन आ रहा है ?

दो शिष्य : (**घबड़ाये स्वरों में**) मुनि श्री ! मुनि श्री ! गुरुदेव ! ···

वशिष्ठ : **बन्धुश्रवा ! पान मित्र ! क्या हुआ, तुम लोग इतने घबड़ाये से कहाँ** से आ रहे हो ?

बन्धुश्रवा : मुनिवर ! (**घबराहट के साथ जल्दी-जल्दी बोलते हुए**) हम पहाड़ी से आ रहे हैं। बड़ी विशाल सेना इधर आ रही है। आश्रम की ओर।

वशिष्ठ : विशाल सेना (**सोचते हुए**) आश्रम की ओर ? आश्रम की ओर विशाल सेना के आने का मतलब क्या है ? क्यों पान मित्र, तुम बन्धुश्रवा के साथ थे ?

पान मित्र : हाँ, गुरुदेव ! यह सच कहता है। वह विशाल सेना हाथियों, घोड़ों, रथों, पैदल सैनिकों के साथ धूल उड़ाती हुई इधर ही आ रही है।

वशिष्ठ : (**सोचकर**) इधर ही आ रही है, इस आश्रम की ओर ? देवदत्त, केशवन्त जाओ, पता तो करो। वे इधर क्यों आ रहे हैं ?

देवदत्त : हाँ गुरुदेव ! सेना के बिगुल बजते हुए समीप ही आ गये हैं। हमें सावधान हो जाना चाहिए।

वशिष्ठ : सावधान ? कैसा सावधान ? हम आश्रम छोड़कर भाग जावें क्या ?

देवदत्त : हाँ लगता तो ऐसा ही है कि हमें तुरन्त आश्रम छोड़कर भाग जाना चाहिए।

केशवन्त : गुरुदेव ! ऐसा तो कभी नहीं हुआ। हमारे आश्रम की ओर इतनी बड़ी सेना लेकर आज तक कोई नहीं आया।

वशिष्ठ : बेटो ! मैं साधक हूँ। मैंने हमेशा सभी का भला चाहा है। मेरे आश्रम पर कोई क्यों सेना लेकर चढ़ाई करेगा। जो दूसरों का भला चाहता है उसका बुरा करने कोई क्यों आयेगा ? फिर मैं अवध के राजा का पुरोहित भी हूँ। जो आ रहा है उसे क्या अवध के राजा का भी डर नहीं है ?

देवदत्त : मुनि ! देखिये, वे आ गये हैं। सेनाएँ आश्रम तक पहुँच भी गयी हैं।

वशिष्ठ : उन्हें आ जाने दो। भयभीत क्यों होते हो।

[सेना सहित, रानी, पुत्रों, अमात्यों के साथ राजा विश्वामित्र का आना और आते ही मुनि वशिष्ठ के चरणों पर गिर पड़ना।]

विश्वामित्र : मुनिश्रेष्ठ ! सम्पूर्ण पृथ्वी पर अपनी विश्व-विजयी सेना के साथ चलते-चलते आपके आश्रम का पता लगा तो मन हुआ

आपके दर्शन अवश्य करूँ। क्षमा करें मुनि ! मैं लोभ सम्हाल न सका। आपके आश्रम पर आ गया। आपको असुविधा अवश्य हुई होगी। किन्तु आपके दर्शन पाने की बड़ी इच्छा थी, सो आ गया।

वशिष्ठ : राजा विश्वामित्र ! आप मेरे आश्रम में ?

विश्वामित्र : मुनिवर ! दर्शन पा लिये। हम धन्य हो गये।

वशिष्ठ : मेरा आशीर्वाद लो राजा विश्वामित्र ! आपने बहुत अच्छा किया। मैं भी तो धन्य हुआ आपको पाकर। अभी तक अवध राज का पुरोहित था, अब आपके आ जाने से लगता है पूरी पृथ्वी का पुरोहित हो गया हूँ।

विश्वामित्र : पूरी पृथ्वी के पुरोहित तो आप हैं ही। आपकी विद्वत्ता, आपका शास्त्र-ज्ञान केवल अवध राज तक ही क्यों पूरे संसार में व्याप्त रहना चाहिए। मैं भी मुनि, इसीलिए आया था।

वशिष्ठ : किसलिए ?

विश्वामित्र : कि आपके ज्ञान का प्रकाश समस्त विश्व को मिले। केवल अवध को नहीं।

वशिष्ठ : अभी मुझे केवल अवध तक ही सीमित रह जाने दो। अभी मुझे केवल अपने आश्रम तक ही रह लेने दो। राजन् ! आप सेना, परिवार, सहित मेरे आश्रम में आये हैं, आज रात्रि में आप सेना, परिवार सहित मेरे अतिथि रहेंगे।

विश्वामित्र : न-न, मेरे पास सेना के लिए, मेरे परिवार के लिए भोजन की सारी व्यवस्था है।

वशिष्ठ : वह होगी। मैं मानता हूँ कि इतनी बड़ी सेना लेकर आप जा रहे हैं तो व्यवस्था तो होगी ही। किन्तु आज आप मेरे आश्रम में आये हैं, मेरे अतिथि हैं। आतिथ्य स्वीकार करें।

विश्वामित्र : मेरे साथ एक अक्षौहिणी सेना है। मुनि, आप इस सबकी व्यवस्था कैसे कर पायेंगे ?

वशिष्ठ : जब मैंने आप सबको अपना अतिथि मान लिया है तो शेष मेरा उत्तरदायित्व है कि मैं आपका आतिथ्य ठीक से करूँ।

विश्वामित्र : मैं मना नहीं करता मुनि ! किन्तु वह आपके लिए सरल नहीं होगा।

वशिष्ठ : आप रुकें। सेना को भी मेरे आश्रम में रुकने को कह दें। मैं पूरी तरह, जैसा भी हो सकेगा, सत्कार करूँगा।

विश्वामित्र : आपकी आज्ञा है तो हम आपके आश्रम में सपरिवार, सेना सहित आज रात-भर रुक जाते हैं।

[सामने बँधी कामधेनु गाय के पास जाकर]

वशिष्ठ : शबले ! ओ मेरी चितकबरी गाय। इधर आ न। शबले ! देख ये राजा, इनकी रानी, इनके पुत्र, इनकी सेना यहाँ मेरे आश्रम में टिके हैं। शबले ! सबको अपनी इच्छा का खाना चाहिए। तू रे चितकबरी शीघ्र सबको सबकी पसन्द का खाना दे दें। सैनिकों को सैनिकों का मांसयुक्त खाना दे दे। सबको रोटी, चावल, दाल तरह-तरह की तरकारी, चटनी आदि मिर्च, अचार देना और गन्ने के मधुर रस में पकाई खीर भी।

विश्वामित्र : आश्चर्य है मुनि ! यह गाय वास्तव में कामधेनु है। इस चितकबरी ने मुँह माँगा भोजन प्रत्येक को दे दिया है। अन्त में गन्ने के रस से बनी सुगंधित खीर दे दी है। हम सब तृप्त हो गये हैं मुनि ! यह कामधेनु धन्य है।

विश्वामित्र : रानी ! क्या ऐसी गाय कभी तुमने देखी थी जो जैसा चाहो वैसा दे दे ?

रानी : अपने जीवन में इससे पहले तो कभी देखी नहीं थी राजन् ! सोच रही हूँ, यह गाय अपने पास हो तो सारी पृथ्वी का राज भी इसके सामने फीका है।

वशिष्ठ : महारानी ठीक कह रही है। (**हँसते हैं**) कहाँ राज-सुख और कहाँ वन में घास-फूस खाकर साधुओं को दूध देने वाली यह गाय। (**हँसकर**) आपने भी महारानी अच्छी उपमा दी मेरी चितकबरी को।

रानी : मुनिश्रेष्ठ ! यह गाय क्या रत्न भी दे सकती है ? धन भी दे सकती है ?

वशिष्ठ : (**हँसकर**) महारानी ! यह क्या नहीं दे सकती ? रत्न भी, धन भी, सेना भी, वीर भी, भूमि भी, बल भी, सब कुछ। जो आप इससे माँगिये जितना भी माँगिये यह तुरन्त देगी। आपके साथ यह एक अक्षौहिणी सेना है, मैं इससे अभी कहूँ तो यह पचास अक्षौहिणी सेना अस्त्र-शस्त्रों के साथ दे देगी।

रानी : राजन् ! यह तो अद्भुत है। यह तो आश्चर्यजनक है। आर्य ! क्या ऐसी एक गाय मुझे नहीं मिल सकती।

विश्वामित्र : प्रिये ! मुझसे तो युद्ध और वीरों की बात करो। सुख और ऐश्वर्य की बात करो। गाय के बारे में तो मुनि वशिष्ठ से ही पूछो।

वशिष्ठ : (**ठठाकर**) महारानी ! ऐसी गायें कोई दो-चार या दस-बीस नहीं हैं। यह तो केवल एक है जिसे कामधेनु कहा जाता है। यह केवल

मेरे पास है। मेरे तप के कारण, मेरी साधना के कारण।

विश्वामित्र : प्रिये ! तुम इसे लेना चाहती हो क्या ?

रानी : अवश्य, राजन् ! इसे कौन नहीं लेना चाहेगा ? किसी गृहिणी के लिए तो यह कितना बड़ा वरदान है। राजन् ! विश्वामित्र जैसे विश्वविजयी राजा की पत्नी होने पर भी मेरे भाग्य कहाँ कि मुझे कामधेनु मिल जाय।

विश्वामित्र : इतनी उदास मत हो प्रिये ! विश्वामित्र ने अब तक जो चाहा उसे मिला है। मुनि ! आप रानी की बात सुन रहे हैं। हमें आपकी यह चितकबरी गाय चाहिए। इसके बदले आप हमसे एक लाख गाय ले लें।

वशिष्ठ : राजेश्वर विश्वामित्र ! क्या कह रहे हैं आप ? असम्भव कभी सम्भव होता है क्या ?

विश्वामित्र : मैं इसके अलावा भी दस हजार सोने के क्षेत्रों से मढ़े हुए रथ दूँगा आपको।

वशिष्ठ : (व्यंग्य के स्वर में) बस, इतना ही ?

विश्वामित्र : मैं एक लाख सोने के हौदों वाले हाथी भी दे दूँगा।

वशिष्ठ : यह सब आप ही देंगे या महारानी भी कुछ देंगी ?

रानी : मैं इस गाय को तौलकर इससे सौ गुना माणिक-मुक्ता, हीरे-जवाह-रात दे दूँगी। यह गाय आप हमें दे दें।

वशिष्ठ : महारानी ! यह मेरी माँ है। यह मेरी बेटी है। यह मेरी पूजा भी है और यही मेरा संकल्प भी है। यह मेरी शक्ति भी है और अखण्ड तपस्या भी। इसे मैं किसी को भी, किसी कीमत पर भी नहीं दे सकता।

विश्वामित्र : रानी ! मैं मुनि को इस गाय के बदले अपना सम्पूर्ण राज्य दे दूँ तो।

रानी : राजन् ! मैं तो चाहूँगी कि मुनि इस गाय को हमें देकर वन छोड़ें और चक्रधारी राजा बनें।

वशिष्ठ : (क्रोध में) आप चक्रधारी राज्य छोड़ें और हम वनवासी उसे लें, यह बड़ी भारी अनुकम्पा है आपकी। हमने मन से, निष्ठा से आपका सत्कार किया तो आप हमें खरीदने पर उतारू हो गये।

विश्वामित्र : (अपमानित अनुभव कर क्रोध से) विश्वामित्र जैसा चक्रवर्ती सम्राट किसी बैरागी, तपस्वी को सम्मान दे देता है, यह बहुत बड़ी बात है। हमने मुनि, आपको भी सम्मान दे दिया किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं है कि हम अपनी रानी की, अपनी प्रियतमा की छोटी-सी

इच्छा अपने सम्पूर्ण राज को दांव पर लगा कर भी पूरी न कर सकें।

वशिष्ठ : **(क्रुद्ध होकर)** अपने आश्रम में आते लोगों का सत्कार करना हमारा धर्म है। वह धर्म हमने निभाया। अब आप अपनी रानी की इच्छा पूरी करें या न करें इससे हमें क्या लेना-देना है।

विश्वामित्र : बात बढ़ जावेगी। हम आपका अनादर नहीं करना चाहते। आप जो भी बदले में चाहें हम देने को तैयार हैं किन्तु यह गाय हम अवश्य लेंगे, हमारी रानी इसे चाहती है।

वशिष्ठ : मैंने कहा न, यह मेरी माँ है। मेरी बेटी है। राजन् ! मेरी माँ का, मेरी बेटी का सौदा करने आये हैं आप ?

रानी : मुनि ! आप विश्वामित्र के अखण्ड राज से अलग नहीं हैं। यहाँ थल पर, जल पर, नभ पर इनका पूरा-पूरा अधिकार है। राजाज्ञा है कि आपकी यह गाय अब राजा विश्वामित्र की गाय है। इस पर आपका अधिकार समाप्त किया जाता है।

वशिष्ठ : **(क्रोध में)** रानी ! किसी मामूली राजा की रानी होकर इतना बड़ा घमण्ड न करो कि किसी ऋषि से टकरा जाओ। ऋषि, विद्वान, राजा से बहुत बड़ा होता है।

रानी : **(बिफरकर)** सुन रहे हो राजन् ! यह वन वृक्षों के बीच बैठा रहने वाला साधु कहता है कि वह राजा विश्वामित्र से बड़ा है। वह अपनी एक गाय से हमारे इतने बड़े राज्य को तुच्छ समझ रहा है। कहता है विद्वान राजा से भी बड़ा होता है। राजा कह रहा है, रानी कह रही है तब भी एक अदना-सी गाय वह नहीं दे पा रहा है।

विश्वामित्र : रानी ! मेरी प्रिय रानी ! रूठ क्यों रही हो ? ये महर्षि हैं। ये महान विद्वान हैं।

रानी : होंगे। राजा से यह महर्षि बड़े हैं तो मैं राजा की रानी हुई ही क्यों ? किसी ऋषि की पत्नी क्यों न हुई। वन में रहती, सुख से तो रहती। **(रोने लगती है।)**

विश्वामित्र : रोओ नहीं, रानी ! तुम मुझे जैसे क्षत्रिय वंशी चक्रवर्ती सम्राट की रानी होकर रोओ नहीं। तुम या तो इस कामधेनु को लोगी या मैं स्वयं राजा नहीं रह जाऊँगा। चुप करो, मेरी प्रिया ! तुम चुप करो।

[क्रोध से गरजते हुए विश्वामित्र]

विश्वामित्र : वशिष्ठ ! तुमने राजा विश्वामित्र का आदरभाव देखा, हठ नहीं

देखा है। मुनि, तुमने मेरे बल को नहीं देखा है केवल मेरी विनम्रता को देखा है। एक गाय के लिए तुमने मुझ जैसे बड़े राजा का, मेरी विदुषी रानी तक का अपमान कर दिया?

वशिष्ठ : (नम्र होकर) मैंने अपमान नहीं किया है राजन्! मेरी विवशता है कि मैं यह गाय आपको नहीं दे सकता।

विश्वामित्र : अब मुझे तुमसे गाय माँगनी भी नहीं है। कोई है! सेनापति से कहो कि आश्रम में बँधी इस चितकबरी गाय को ले चलें। जो भी इसे ले जाने का विरोध करे उसे तुरन्त मौत के घाट उतार दो।

वशिष्ठ : (हाथ जोड़कर) राजन्! आप मेरे अतिथि हैं। ऐसा अन्याय न करें कि मुझे भी कटुता के लिए विवश हो जाना पड़े।

विश्वामित्र : (कड़कती आवाज में) सेनापति, जाओ, गाय ले आओ। इनकी कटुता हम देखेंगे।

[सेनापति चला जाता है।]

रानी : (संयत भाव से) राजन्! इतनी बात बढ़ जाने पर भी अगर मुनि गाय नहीं देते हैं तो रहने दीजिये। मुझे नहीं चाहिये यह गाय।

विश्वामित्र : रहने दीजिये? क्या रहने दीजिये? इतना बड़ा राजा होकर भी मैं अपनी रानी की मामूली-सी इच्छा पूरी नहीं कर पा रहा हूँ। मैं अपना सारा राज्य भी इस गाय के बदले देने को तैयार हो गया। सारे रत्न, मुद्राएँ, स्वर्ण, घोड़े, हाथी, करोड़ों गायें तक। लेकिन मेरे इस अनुनय से मुनि ने समझा कि मैं बहुत ही निर्बल और कातर हो गया हूँ!

रानी लेकिन आप राजा हैं। संसार में आपका यश है। यह मुनि हैं। ऋषि हैं। दुनिया से दूर वन में रहते हैं। आपकी अपार शक्ति की इनसे क्या तुलना हो सकती है।

वशिष्ठ : (आसन से उठकर कमण्डल से जल पीते हुए) महारानी! मुनि-ऋषि किसी राजशक्ति से डरते नहीं हैं। लेकिन आप लोग मेरे आश्रम पर आये हुए हैं, मेरे अतिथि हैं, मैं नहीं चाहता कि राजा विश्वामित्र को अपनी और मुझे अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना पड़े।

रानी : (मुस्कुराकर) इसमें शक्ति दिखाने का प्रश्न ही कहाँ आता है। राजन् के पास एक अक्षौहिणी सेना है। भयंकर अस्त्र-शस्त्र हैं। स्वयं भी उनके बराबर शस्त्र चलाना कोई नहीं जानता। भला ऋषि को वह क्या शक्ति दिखायें। आप वन में रहने वाले निहत्थे

ऋषि और साथ में थोड़े से शिष्यगण।

विश्वामित्र : ऋषि होने के कारण ये अपने को राजाओं से भी अधिक शक्तिशाली मानते हैं।

रानी : ये मानें। मैं तो नहीं कहूँगी आर्य ! कि मेरी एक छोटी-सी इच्छा के लिए आप किसी ऋषिकुल से टकरायें।

वशिष्ठ : **(कुटी के द्वार की ओर बढ़कर)** महारानी ! देखिये वो सामने देखिये मेरी चितकबरी गाय सैनिकों द्वारा ले जायी जा रही है। आप उन्हें मना कर दें। ऐसा न करें वह।

रानी : राजन् ! हाँ, उन्हें मना कर दीजिये। मुनि के आश्रम से हम बलात् उनकी गाय क्यों ले जावें ?

विश्वामित्र : वह गाय मैंने तुम्हें उपहार में दे दी है। अब उस गाय को मुझसे कोई भी नहीं छुड़ा सकेगा।

वशिष्ठ : **(क्रोध से कांपते हुए)** राजा विश्वामित्र ! अपनी गाय को मैं भी तुमसे नहीं छुड़ा सकूँगा क्या ?

विश्वामित्र : **(हँसकर)** मुनि ! इस गाय को मेरे सैनिकों से तुम भी नहीं छुड़ा सकोगे। युद्ध करना है तो हम तैयार हैं। **(अपनी जगह से उठकर इशारा करते हुए)** रानी, तुम उधर उस रथ में बैठो। मुनि वशिष्ठ का घमण्ड मैं तोड़ूँगा। देखूँ तो कितना बड़ा धुरन्धर है यह।

वशिष्ठ : विश्वामित्र ! मेरे आश्रम से अपनी सेना के साथ चुपचाप निकल जाओ। वरना तुम्हारी धूल भी बच न पावेगी।

रानी : यह कैसा विवाद है। राजा अपनी विशाल सेना के साथ हैं और दूसरी ओर मुनि अपने थोड़े से चेलों के साथ हैं। ऐसे में युद्ध होगा क्या ?

वशिष्ठ : रानी ! इनके तीर-तलवारों के साथ हमारे चिमटा-कमण्डल चलेंगे। विजय सत्य की ही होती है। मैं इस युद्ध को जीतूंगा।

विश्वामित्र : ऋषि ने मेरी वीरता को ललकारा है। मैं लड़ूँगा। लड़ूँगा प्रिये ! तुम इस रथ पर इन सैनिकों के साथ सुरक्षित जाओ। मैं शीघ्र तुमसे मिलूँगा।

[मंच पर धीरे-धीरे अँधेरा होता है। युद्ध की गर्जना। अस्त्र-शस्त्र चलने के स्वर। नेपथ्य से वशिष्ठ का स्वर—तुम हार गये राजा विश्वामित्र ! तुम हार गये। विश्वामित्र का स्वर—अब मैं तुम्हें तुम्हारे ही अस्त्र से हराऊँगा वशिष्ठ। राज-पाट छोड़कर मैं गहन तपस्या कर तुम पर श्रेष्ठता प्राप्त करूँगा। ओम नमो नमामि

नमः। ओम नमो नमामि नमः। ओम नमो नमामि नमः।]

[दृश्य बदलता है]

[मंच पर प्रकाश]

[छाया दृश्य से ब्रह्मा के पास पर्वत शिखर पर तपस्या करते हुए विश्वामित्र—दोनों छायाएँ बात करते हुए]

ब्रह्मा : आँखें खोलो विश्वामित्र ! तुमने बहुत कठिन साधना की है। हम प्रसन्न हैं तुमसे। विष्णु, शिव, इन्द्र समेत सभी देवता तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हैं।

विश्वामित्र : ओह, भगवान ब्रह्मा ! सृष्टि और प्राणी मात्र के जन्मदाता ब्रह्मा मेरा प्रणाम लें प्रभु।

ब्रह्मा : पिछली तपस्या से तुमने ऋषि पद प्राप्त कर लिया था। वशिष्ठ को हटाने के लिए तुमने ब्रह्मास्त्र माँगा था। मैंने वह तुम्हें दे दिया था। अब फिर यह कठिन तपस्या किसलिए ?

विश्वामित्र : प्रभु ! आप सर्वज्ञ हैं।

ब्रह्मा : राजा से तुम ऋषि हो गये। धनुर्वेद के तुम महान ज्ञाता हो। तुममें शक्ति का भण्डार तो था ही, अब ज्ञान का भी है। वेदों, पुराणों, उपनिषदों के ज्ञान को तुम बढ़ा सकते हो। फिर तुम्हें क्या चाहिए।

विश्वामित्र : मैं वशिष्ठ को नीचा दिखाना चाहता हूँ। विश्वविजयी राजा होकर भी वशिष्ठ से मैं हारा हूँ। उस अकेले ऋषि से शक्ति और ज्ञान दोनों मोर्चों पर मैं बार-बार हारा हूँ। अपने हठ के कारण शक्ति में हार जाने के बाद मैंने राज्य भी छोड़ दिया अपना। कठिन तप करके ऋषि पद पाकर ज्ञान पाकर भी मैं उसे अभी ज्ञान के मोर्चे पर भी नहीं हरा सका हूँ।

ब्रह्मा : तुम वशिष्ठ को समझे नहीं विश्वामित्र ! उसे परास्त कर सकना इतना सरल कभी नहीं था। वह मेरा ही मानस पुत्र है। उसे अपनी साधना और विद्वत्ता के कारण महर्षि पद प्राप्त है। वह अपराजेय है।

विश्वामित्र : किन्तु मैं उसे हराऊँगा। आपने मुझे मेरी तपस्या से प्रसन्न होकर जो ब्रह्मास्त्र दिया था उसे वशिष्ठ ने आपसे पहले ही से पाये हुए ब्रह्माण्ड से काट दिया। मुझ क्षत्रिय को मिला ऋषि पद भी ज्ञान के मोर्चे पर उस ऋषि को नहीं हरा सका क्योंकि वह ब्रह्मर्षि है। अब उसे परास्त करने के लिए मुझे भी ब्रह्मर्षि-पद प्राप्त करना होगा।

ब्रह्मा : लेकिन तुम क्षत्री हो विश्वामित्र। तुम चाहते हो कि मैं अपनी ही

बनायी हुई व्यवस्था को बदल दूँ। अपने ही बनाये नियमों को तोड़ दूँ। ब्रह्मर्षि का पद केवल ब्राह्मण को ही मिल सकता है।

विश्वामित्र : *मैं आपसे, विष्णु से, शिव से भीख नहीं माँग रहा हूँ। तप साधना* की है मैंने ? मैं क्षत्री के घर पैदा हुआ क्या इसलिए ब्राह्मणत्व नहीं पा सकता ? ब्रह्मर्षि क्यों नहीं हो सकता मैं ? वर्ण का आधार आप जन्म को क्यों मानते हैं ? कर्म को क्यों नहीं मानते ? ब्राह्मणत्व का आधार आप विद्या, शास्त्र-ज्ञान और तपस्या को क्यों नहीं मानते ? क्षत्रियत्व का आधार आप शक्ति को क्यों नहीं मानते ? ब्राह्मण अगर शक्तिवान है, ज्ञान में श्रेष्ठ नहीं है तो वह क्षत्री क्यों नहीं हो सकता ? यदि शूद्रकुल में उत्पन्न व्यक्ति महाविद्वान है तो वह द्विजत्व क्यों नहीं पा सकता ? वह सेवक ही क्यों रहे ? अनपढ़ ब्राह्मण और अक्षम, शक्तिहीन क्षत्री कुल-जन्म के आधार पर सेवित ही क्यों रहे ?

ब्रह्मा : वह मेरा काम है। मैंने निर्धारित कर दिया है। संस्कार और वातावरण ही तो कर्म निर्धारित करते हैं।

विश्वामित्र : क्षत्री के घर में पैदा होकर भी मैंने ब्रह्मर्षि बनने के लिए तपस्या की है। मेरा तप अब भी कम है तो मैं और तप करूँगा। मेरा ज्ञान अब भी कम है तो मैं और ज्ञान अर्जन करूँगा। सरस्वती से पूछिये, मैंने उनसे क्या नहीं प्राप्त कर लिया है ? वेद, पुराण, आत्मज्ञान सभी कुछ तो।

ब्रह्मा : ज्ञान तो तुम पा चुके हो। तपस्या में भी कोई कमी नहीं रही।

विश्वामित्र : तो विधाता ! मुझे ब्रह्मर्षि पद क्यों नहीं मिल सकता ?

ब्रह्मा : तुम्हारा तर्क सही है। तुम्हारा कर्म इस योग्य है कि तुम्हें ब्रह्मर्षि का पद दिया जाय। मैं कर्म की श्रेष्ठता को स्वीकार करता हूँ। तुम्हें आज से ब्रह्मर्षि का पद देता हूँ। संसार अब तुम्हें ब्रह्मर्षि करके ही जानेगा। महर्षि विश्वामित्र, ब्रह्मर्षि विश्वामित्र।

विश्वामित्र : (**प्रसन्न भाव से**) मैं ब्रह्मर्षि हो गया। मेरी चेतना में आह ! ये कैसा बदलाव है ? मेरी भावना में यह कैसा बदलाव आ गया। अब मैं वशिष्ठ को परास्त नहीं करना चाहता प्रभु। वह ज्ञानी हैं। मैं उनसे उनके सद्गुण सीखूँगा। मैं जाकर अपने अपराध की उनसे क्षमा माँगूँगा। मैं उनके ज्ञान से अपने ज्ञान में वृद्धि करूँगा। शत्रुता तो अज्ञानी करते हैं। ज्ञान तो प्रेम की भाषा सिखाता है।

ब्रह्मा : सचमुच वह क्षमाशील है। अहंकार तो नीचे को ही होता है। अज्ञान का अंधकार ही नीचता को पनपाता है। तुम्हारे

पास अब अगाध ज्ञान है विश्वामित्र ! तुम्हारे पास विश्व का साश्वत सागर है ऋषि ! जाओ वशिष्ठ से जाकर क्षमा माँगो। कटुता, शत्रुता, अहंकार अब तुमसे बहुत दूर हैं।

विश्वामित्र : वास्तव में मैं धन्य हो गया हूँ। समाज की जिस ऊँचाई पर मैं आज पहुँचा हूँ उसे बनाये रखूं, आप मुझे यही आशीर्वाद दें प्रभु। मैं लोक-कल्याण के लिए समर्पित हो सकूँ मुझे यह शक्ति दीजिए विधाता !

ब्रह्मा : तथास्तु ! ऐसा ही होगा।

[मंच पर अँधेरा]

[पुनः प्रकाश। शतानन्द, राम व लक्ष्मण]

शतानन्द : यह कहानी थी आपके गुरु विश्वामित्र की। अब उनके चरित्र से लगता है कि वह कभी इतने अभिमानी थे।

राम : आचार्य शतानन्द ! अद्भुत कथा थी यह। वास्तव में हमारे गुरु-देव महान हैं। उनकी महानता हमेशा अमर रहेगी। निश्चय ही वह लोक कल्याण के लिए समर्पित और अग्रसर हैं।

[दृश्य-परिवर्तन]

[राजा जनक का भवन। प्रातःकाल ही जनक स्नान-पूजा करके तैयार हो गये। वह अन्तःकक्ष में आते हैं।]

जनक : सुनयना ! रानी सुनयना ! कहाँ चली गयी हो तुम सुनयना।

[सीता का आगे आना]

सीता : जी पिताजी। माँ स्नान कर रही हैं।

जनक : इस समय तक स्नान ही कर रही हैं। बेटी सीते ! यज्ञ के इस अवसर पर सारे आर्यावर्त के ऋषि, महर्षि, ब्रह्मर्षि, राजा, महा-राजा, युवराज पधारे हुए हैं। सैंकड़ों साधु, ब्राह्मण आये हुए हैं। हमें इस समय यज्ञशाला में होना चाहिए था।

सीता : पिताजी ! माँ हर अभ्यागत का भरसक आदर करती तो हैं। इसी कारण उन्हें आज स्नान-पूजा में थोड़ा विलम्ब हो गया है।

जनक : इस समय उन्हें तैयार होकर मेरे साथ होना चाहिए था। आज यज्ञशाला जाने में हमें अनावश्यक विलम्ब हो गया है।

[नेपथ्य से सुयनना का प्रवेश]

सुनयना : मुझे तनिक देर हो गयी आर्य !

जनक : रानी ! तुम आ गयी। हम प्रतीक्षा कर ही रहे थे। वो देखो राजपुरोहित शतानन्द जी भी आ गये। चलो कोई विशेष देर नहीं हुई।

[राजपुरोहित का आना, उन्हें सबका प्रणाम करना]

शतानन्द : चिरजीवी भव ! राजा जनक, मैं यज्ञ प्रारम्भ करा कर आ रहा हूँ। आपकी इस समय वहाँ कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। यहाँ ब्रह्मर्षि भी आने ही वाले होंगे। मैं इसीलिए यज्ञ से उठकर चला आया हूँ।

सुनयना : ब्रह्मर्षि ! कौन ब्रह्मर्षि ? विश्वामित्र मुनि न ?

जनक : हाँ, हाँ, वे हमारे घर में पधारने वाले हैं। यही समय दिया है उन्होंने।

सीता : पिताजी ! सुना है उनके साथ अयोध्या के दो राजकुमार भी आये हैं।

जनक : हाँ बेटी। आये हैं। मैं उनसे मिला था। वे दोनों भाई महान हैं। उन्हें देख लो तो मन उन्हें देखते ही रहने को करता है।

सुनयना : सारे जनकपुर में उन राजकुमारों के आने की हलचल है। सुना वे अद्भुत हैं।

शतानन्द : (हँसकर) वे अद्भुत नहीं हैं अद्वितीय हैं। (गम्भीर होकर) उन्होंने मुनि विश्वामित्र का महान् यज्ञ, महान संकल्प पूरा कराया है। उन्होंने ही ताड़का का वध किया है। उन्होंने ही मारीचि और सुबाहु को परास्त किया है। उन्होंने मेरी निर्दोष माँ को सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाकर फिर से मेरे पूज्य पिताजी से मिलाया है। सचमुच ही वे अद्वितीय हैं।

जनक : काश ! वे ही अद्वितीय राम मेरी प्राण से भी प्यारी बेटी सीता के सुहाग बन पाते।

सुनयना : इसमें आश्चर्य ही क्या है, मेरी रूपवती, गुणवती पुत्री वीर्यशुल्का होगी। यज्ञ पूरा हो जाने के बाद कल आपने धनुष यज्ञ रखा है। जो बहुत पराक्रमी वीर होगा वही शिव जी का यह धनुष चढ़ा सकेगा। धनुष की प्रत्यंचा शायद यह राम ही चढ़ा सकें। ईश्वर करे मेरी वीर्यशुल्का पुत्री उन्हीं की भार्या हो।

जनक : काश ! हमारा भाग्य ऐसा ही होता। अयोध्या के राजा दशरथ के साथ हमारा सम्बन्ध जुड़ता। उनके बड़े पुत्र राम में तो जैसे मोहिनी शक्ति है।

शतानन्द : सीता इस प्रसंग से कुछ लजा सी रही है। क्यों बेटी सीता, तुमने राम को देखा है ?

सीता : लजाने की क्या बात है आचार्य। पिताजी को अयोध्या के राजकुमार राम पसन्द आये हैं तो मैं विरोध भी क्यों करूँ। कल नगर

भ्रमण करते पुष्प वाटिका में उन्हें मैंने भी देखा था।

सुनयना : (उत्साह से) तुझे बहुत अच्छे लगे थे न वह ?

सीता : न माँ, ऐसा नहीं था। (लजाकर) वह तो श्याम हैं, सलोने हैं।

शतानन्द : ठीक है। हम समझ गये। हमारी तो प्रभु से यही प्रार्थना है कि राम धनुष चढ़ा लें। राजन् ! वो देखिये, उधर राजपथ पर ब्रह्मर्षि विश्वामित्र अपने दोनों शिष्यों के साथ इधर ही चले आ रहे हैं।

[सीता चली जाती है। जनक, सुनयना, शतानन्द स्वागत में द्वार की ओर आगे बढ़ते हैं]

जनक : प्रणाम ब्रह्मर्षि। ब्रह्मर्षि, यह मेरी पत्नी है सुनयना।

[सुनयना प्रणाम करती है। विश्वामित्र आशीर्वाद देते हैं।]

विश्वामित्र : राजा सीरध्वज ! ये राजकुमार तुम्हारे पास रखा हुआ शिव-धनुष देखना चाहते हैं। कल धनुष यज्ञ तुमने रखा है न। तमाम राजा, तमाम लोग वीर्यशुल्का सीता को पाने के लिए प्रयत्न करेंगे। उस धनुष को राम-लक्ष्मण एक बार देख लेना चाहते हैं।

जनक : अवश्य देखें मुनि ! अब तक कितने ही राजा उसे देख चुके हैं। राजकुमार भी देखें। आइये, कृपा कर मेरे साथ आइये। मैं वह धनुष दिखाता हूँ जिसकी प्रत्यंचा चढ़ाने वाले को ही पतिरूप में पाने का संकल्प सीता बेटी ने किया है। यह बेटी मुझे यज्ञ भूमि जोतते हुए हल की फाल पर मिली थी। धरती-पुत्री है मेरी सीता। (जनक के साथ सबका जाना।)

[एक सुसज्जित कक्ष में शिवधनुष एक लोहे की पेटी में रखा हुआ है। पेटी में आठ लोहे के पहिये लगे हुए हैं। जनक पेटी खोलकर धनुष दिखाते हैं।]

विश्वामित्र : देख रहे हो राम इस धनुष को ? कितना विशाल और कितना भारी है यह धनुष।

राम : (गौर से देखते हुए) गुरुदेव ! अब तक आपने जितने धनुषों का ज्ञान मुझे कराया है यह उन सब धनुषों से अलग है।

विश्वामित्र : राम ! बेटे ! यह मेरा अन्तिम पाठ है। इसी के लिए मैं तुम्हें यहाँ लाया हूँ। अब तक संसार में इस तरह के केवल दो धनुष बने हैं। ऐसा ही एक धनुष विष्णु भगवान के पास है और यह दूसरा धनुष भगवान शिव को दिया गया था। विश्वकर्मा ने

इन्हें स्वयं बनाया और फिर ऐसा कोई तीसरा धनुष बनाया ही नहीं। राजा जनक ! तुम इस धनुष के तुम्हारे पास रहने की कथा राम को, लक्ष्मण को बता दो।

जनक : (हँसते हुए) बताने में ऐसा क्या हर्ज है। एक बार दैत्यों को मारने के लिए भयत्रस्त देवताओं को भगवान विष्णु और शिव से प्रार्थना करनी पड़ी। मुनि विश्वकर्मा ने देवताओं के कहने पर विष्णु और शिव के लिए दो भीमकाय धनुष अपने हाथों से बनाये। विष्णु और शिव ने उन विनाशकारी धनुषों से देवताओं की रक्षा के लिए प्रलय मचाये हुए सारे दैत्यों का भरपूर संहार कर दिया। उन्हीं में से एक धनुष यह भी है।

विश्वामित्र : राजा जनक, कहानी आगे भी तो है।

शतानन्द : मुनि ! उस कहानी को आगे मैं सुना देता हूँ। दैत्यों का संहार करने के बाद भी शिव के पास धनुष रखा रहा। जब राजा दक्ष प्रजापति के यहाँ सब देवताओं का भोग लगा केवल शिवजी को छोड़कर जो उनके अपने जामाता थे और जब सती जी अपने पति के अपमान के कारण यज्ञ अग्नि में कूद पड़ीं तो शिवजी प्रचण्ड हो उठे। उस समय उन्होंने यह धनुष हाथ में लेकर कहा कि इन देवताओं ने भी मेरा भाग मुझे देने की चिन्ता नहीं की तो मैं इन सारे देवताओं का मस्तक इस धनुष के तीर से काट देता हूँ।

लक्ष्मण : क्या शिवजी ने यह प्रलयकारी संकल्प देवताओं के विरुद्ध ले लिया था जिनकी रक्षा के लिए धनुष बनाया गया था ?

शतानन्द : हाँ ! इस प्रतिज्ञा पर देवता लोग बहुत घबड़ाये। वे सब भय से काँपते हुए भगवान विष्णु के पास गये। ऐसा ही धनुष विष्णु के पास भी था। शिव इस धनुष से देवताओं को मारने के लिए तीर चलाते तो देवताओं की रक्षा के लिए विष्णु को भी अपने धनुष से उन्हें रोकना पड़ता। तब तो प्रलय ही हो जाती।

राम : एक तरफ शिव होते और दूसरी तरफ विष्णु। कितना भीषण युद्ध होता वह। कल्पना करके ही मन काँप रहा है।

शतानन्द : दोनों के पास भीषण अस्त्र थे। सृष्टि के उपकार के विचार से ऐसे भयंकर युद्धों से बचना चाहिए। जब दो बड़ी ऐसी शक्तियाँ परस्पर लड़ पड़ेंगी तो पूरे संसार को नष्ट हो जाने में देर ही क्या लगेगी। विष्णु अपनी प्रतिष्ठा पर तुले थे और शिव अपनी प्रतिष्ठा पर। यह दोनों धनुष इतने भयंकर विनाशकारी थे कि पूरे लोक का विनाश क्षणभर में हो जाता। एक ही तीर से सृष्टि

का सम्पूर्ण विनाश हो जाता था।

राम : *फिर क्या हुआ शतानन्द जी ?*

शतानन्द : देवताओं ने बुद्धि से काम लिया। वे सब शिव की आराधना करने लगे। भगवान शिव तो क्षण में प्रसन्न क्षण में अप्रसन्न। शिव ने देवताओं द्वारा अपनी पूजा देखी तो प्रसन्न हो गये। देवताओं ने कहा कि प्रभु, आपके धनुष ने दैत्यों को मार तो डाला ही है, अब इस धनुष को आप छोड़ दें। इसे अब आप किसी और के विनाश के लिए प्रयोग में न लावें। तब शिव ने देवताओं के आग्रह को मानकर तुरन्त इस महाविनाशकारी धनुष को त्याग दिया।

लक्ष्मण : तब यह धनुष यहाँ कैसे आ गया आचार्य ?

शतानन्द : इस धनुष का किसी के द्वारा दुरुपयोग न हो इस विचार से इसे किसी सुरक्षित जगह रखने का देवताओं ने विचार किया। तब बहुत सोच-विचार कर इस धनुष को राजा जनक के पूर्वज निमि के पुत्र देवरात को सौंप दिया गया। तब से जनक के कुल में इस शिवधनुष की पूजा होती है। इसे अत्यन्त पवित्र मानकर प्राणों की तरह सहेजकर रखा जाता है।

राम : तो राजकुमारी सीता की शादी के लिए इसी धनुष को लक्ष्य क्यों बनाया गया है ?

सुनयना : राजकुमार राम ! मेरी बेटी सीता ने एक बार इसे यों ही पेटी खोलकर अपने हाथों में उठा लिया था। जिसे सैकड़ो बलवान न उठा सके उसे एक लड़की यों ही खेल-खेल में उठा ले यह आश्चर्य तो था ही।

विश्वामित्र : कल इसीलिए राजा ने धनुष-यज्ञ रखा है। सीता बेटी का स्वयंवर। राम ! अब मेरा अन्तिम पाठ यह है कि इस धनुष की अब कोई आवश्यकता नहीं है। यह केवल हम लोगों की विजय-भावना का प्रतीक बनकर पड़ा हुआ है। आज तो पड़ा है, किन्तु कल किसी असुर के हाथ भी आ सकता है। किसी अविवेकी द्वारा इसका गलत इस्तेमाल भी हो सकता है। तब यह समस्त सृष्टि के नाश का कारण बन जावेगा।

राम : जी गुरुदेव ! हमें अब सृजन के इस युग में विनाश के अस्त्र का करना भी क्या है ?

विश्वामित्र : राम ! इसकी पूरी कला जो आचार्य विश्वकर्मा ने दी है देख-सीख लो न। इसके कल-पुर्जे किस तरह के हैं, कैसे प्रत्यंचा चढ़ती है ? कैसे इसे नष्ट करने, तोड़ने का यंत्र इसमें लगा है, उस सबको देख-

समझ लो।

[राम धनुष को छूते हैं और चढ़ाने की कोशिश करते हैं।]

राम : गुरुदेव ! यह उठता तक तो है नहीं। चढ़ेगा कैसे ?

विश्वामित्र : (**हँसकर**) यह तुमसे न उठेगा। चढ़ेगा भी नहीं। इसकी कला है। कलपुर्जे हैं। यह देखो, बीच में यह यन्त्र देख रहे हो न ?

राम : गुरुदेव ! यह तो अद्‌भुत यन्त्र है। किसी धनुष में ऐसा यन्त्र नहीं देखा।

विश्वामित्र : इसके बारे में मैं तुम्हें बता दूंगा। और राजा जनक ! तुम्हारा यह धनुष पूर्वजों से लेकर आज तक पूज्य तो अवश्य है किन्तु मैं नहीं चाहता कि यह अब भी बना रहे। राम ! इसे राजा जनक की प्रतिज्ञा के अनुसार प्रत्यंचा चढ़ाने के बाद तोड़ भी देना है।

जनक : क्या कहा ब्रह्मर्षि, इसे तोड़ देना है ? यह हमारे पास देवताओं की धरोहर है।

विश्वामित्र : सीरध्वज ! अब इसे रखना, बनाये रखना ठीक नहीं। यह जन-कल्याणकारी नहीं रह गया है। कभी भी यह संसार को नेस्तनाबूद कर सकता है। आज ऐसे अस्त्र व्यर्थ हैं। राम ! इसे तोड़ कर खत्म कर देना ही ठीक होगा। इसे तुम ही खत्म कर सकोगे। इसके खत्म होने पर ही संसार का कल्याण सुरक्षित रहेगा। अब इस विकासशील संसार के हित में ऐसे भयंकर अस्त्रों की आवश्य-कता नहीं है।

जनक : ये क्या कह रहे हैं आप ब्रह्मर्षि ! यह शिवधनुष है, इसे तोड़ा नहीं जावेगा। यह अपराध होगा मुनिवर !

विश्वामित्र : अपराध नहीं होगा जनक ! आज विश्व के कल्याण के लिए ऐसे विध्वंसकारी यंत्रों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इनका गलत इस्तेमाल कभी भी हो सकता है। हमने दिखा दिया कि जब हमें आवश्यकता होती है तब हम ऐसे यन्त्र बना सकते हैं, यही बहुत है। ऐसे शस्त्रों को अब मैं समाप्त कर देने के पक्ष में हूँ जो विश्व को नष्ट कर सकते हैं। राम ! यह काम तुम करोगे। जनकल्याण के लिए हम समर्पित भाव से आगे बढ़ रहे हैं। राजा जनक ! इसमें आपका भी सहयोग वांछित है।

[मंच पर धीरे-धीरे अँधेरा]

[दृश्य-परिवर्तन]

दृश्य दस

[राजा जनक का धनुष-यज्ञ। यज्ञ-मण्डप के चारों ओर तमाम राजा, ऋषि, मुनि बैठे हुए हैं। भव्य मण्डप सजा हुआ है।]

शतानन्द : मैं मिथिला राज्य का राजपुरोहित देश-देशों से आये हुए आप सभी बलवान और गुणी राजाओं का राजा सीरध्वज जनक की ओर से स्वागत करता हूँ। दस दिनों से राजा जनक द्वारा बुलाये गये यज्ञ के बाद आज एक नये यज्ञ का शुभारम्भ हो रहा है। धनुष-यज्ञ का। यह किसी साधारण धनुष की पूजा नहीं है। यह एक ऐसे धनुष के···।

एक राजा : (**बीच में रोक कर**) व्याख्यान न दीजिए राजपुरोहित। हम सब राजा इसी दिन की प्रतीक्षा में थे। शीघ्र ही धनुष-यज्ञ प्रारम्भ कराइये और सीता को मण्डप पर लाकर बैठाइये। हम उसका रूप देखना चाहते हैं।

हल्ला : हाँ-हाँ। यही हो। यही होना चाहिये।

राजा जनक : (**कड़क कर**) ये वे राजा लोग बोल रहे हैं जो शिवधनुष चढ़ाने आये हैं! ये राजाओं का मण्डप है या भाटों का?

हल्ला : राजा जनक बोल रहे हैं। सुनो भाई, सुनो।

राजा जनक : एक तो मैंने भगवान शिव की खुशी या नाराजगी का ध्यान रखे बिना यह शिवधनुष यज्ञ रख दिया और दूसरे, यह प्रतिज्ञा कर दी गई है कि इस महान पूज्य धनुष की प्रत्यंचा जो भी वीर चढ़ा देगा वह मेरी प्राणों से भी प्यारी बेटी सीता से ब्याह करने का अधिकारी होगा। लेकिन आप लोगों में ऐसी उतावली होना···ऐसा मर्यादाहीन होने की बात मैं सोच भी नहीं सकता था।

भीड़ में से एक : राजपुरोहित के व्याख्यान की आवश्यकता क्या थी? सीधा धनुष यज्ञ करिये और सीता को सामने रखिये।

जनक : (**क्रोधित होकर**) मुझे नहीं पता था कि मेरे धनुष-यज्ञ में कुछ ऐसे अबोध राजा भी आवेंगे जो धनुष-यज्ञ क्यों रखा गया है, इसके बारे में सुनना भी नहीं चाहेंगे।

शतानन्द : मैं, राजा जनक का पुरोहित शतानन्द, आप पधारे हुए राजाओं को बता रहा था कि यह शिव-धनुष है। जो भी वीर इस धनुष को उठा कर इसकी प्रत्यंचा चढ़ा देगा उसी को जनक की प्राण-

प्यारी बेटी सीता का मंगल हाथ थमा दिया जावेगा—यही राजा सीरध्वज जनक की प्रतिज्ञा है।

जनक : पधारे हुए यशस्वी राजागण ! धनुष-यज्ञ की बात मेरे राजपुरोहित ने बता दी है। हर पिता का यह सपना होता है कि उसकी पुत्री किसी महान पुरुष की पत्नी बने। मेरा भी यही सपना है। यह शिवधनुष उठा पाना कितना कठिन है, मैं जानता हूँ। मेरे यहाँ यह धनुष मेरे पूर्वजों के समय से है। इसके कल-पुर्जे आप बराबर देख-समझ लें तब भी इसकी प्रत्यंचा चढ़ा सकना कोई आसान काम नहीं है। यह सब जानकर भी मैंने यह कठिन प्रतिज्ञा की है।

एक राजा : तब जान-बूझकर इतनी कठिन परीक्षा क्यों रखी अपने ?

जनक : इसलिए कि मेरी प्राणप्रिया बेटी सीता को ऐसा ही वर मिल सके जो पराक्रम में, बुद्धि में, शक्ति में शिव के समान ही हो। एक-एक करके आप आयें और धनुष उठाकर इसकी डोरी चढ़ावें।

भीड़ : चलो भाई चलो। इधर से शुरू करो।

[एक-एक कर तमाम राजा आते हैं। कोई भी धनुष को एक इंच भी नहीं हिला पाता]

एक राजा : मैंने पहले ही कह दिया था कि यह धनुष नहीं पूरा हिमालय है। कोई भी राजा इसे उठाना तो दूर रहा तिल-भर खिसका भी नहीं सका। अब मुँह लटकाकर बैठ क्यों गये हो ! हार मान लो। हम अपने को वीरता और शक्ति से हीन मानकर इस शिवधनुष को प्रणाम करें।

जनक : (**गम्भीर स्वर में**) पधारे हुए इतने राजाओं में से कोई भी इस धनुष को नहीं उठा सका। कितनी गलत और असम्भव प्रतिज्ञा की थी मैंने ? मैं क्या जानता था कि पूरे आर्यावर्त में, समस्त संसार में भी कोई इतना शक्तिशाली और बुद्धिमान राजा होगा ही नहीं जो इस धनुष को उठाकर इसकी प्रत्यंचा चढ़ा सके। मेरी बेटी सीता ने यही धनुष साफ करते, पोंछते समय एक हाथ से उठा लिया था। भला इस लड़की के लिए मैं कैसे वर की कामना करता ? जो उससे शक्तिशाली हो, उसी की न ?

शतानन्द : राजा जनक, इतने अधीर होने की क्या आवश्यकता है। कम से कम सारे विश्व की शक्ति तो देख ली, कौन कितना बली और शक्तिशाली है। यह तो देख लिया न ?

जनक : आचार्य ! आप उस पिता के मन का दर्द नहीं समझ रहे हैं जिसके

सामने उसकी लड़की के आजन्म कुँवारी रह जाने की समस्या आ गई। हाँ एक बार अपनी बेटी को उचित वर भी नहीं दे सका। यह कितनी बड़ी असफलता है मेरी ? यह पृथ्वी वीरों से, शक्तिशाली पुरुषों से हीन तो हो ही गई न ! धिक्कार है इस पृथ्वी के बने रहने पर।

लक्ष्मण : गुरुदेव क्षमा करें। भइया क्षमा करें। अब मुझसे तो ये वचन सुनकर रहा नहीं जाता।

राम : तुम चुप रहो लक्ष्मण। हम यहाँ गुरुदेव के साथ आये हैं। राजा बन कर सीता को ब्याहने नहीं आये हैं।

लक्ष्मण : भइया ! चुप रहने की कोई सीमा होती है ! राजा जनक ने कह दिया कि पूरी पृथ्वी ही वीरता से विहीन है ? हम उनकी यह ललकार चुपचाप सुन लें क्या ?

विश्वामित्र : राम ! लक्ष्मण ठीक कहता है। उसे बोलने दो। वह भी क्षत्रिय है। राजा जनक की बात क्यों सह लेगा ?

लक्ष्मण : (**क्रोध से गरजकर**) क्षमा करें ! राजा जनक ! आपने पूरी पृथ्वी को वीरता से शून्य कहा है। यह हमारे लिए अपमानजनक है।

जनक : मुझे तो यही लगता है कि सारे आर्यावर्त और सारी पृथ्वी के राजा यहाँ आये हुए हैं। फिर कहाँ है किसी की वीरता ? जिस शिवधनुष को मेरी बेटी सीता उठा सकती है उसे एक भी राजा नहीं उठा सका। फिर मैं कैसे मानूं कि पृथ्वी पर वीरता शेष है। ऐसा मानने का क्या आधार रह जाता है मेरे पास ?

लक्ष्मण : (**क्रुद्ध होकर**) आपने जिन राजाओं को बुलाया है केवल उनकी बात कीजिए। वे सब नपुंसक हो सकते हैं। वे सब शक्तिहीन हो सकते हैं। किन्तु पृथ्वी वीरता से विहीन हो गई, यह बात आप मत कहिये।

जनक : पृथ्वी में कौन बचा है जिसे मैंने इस धनुष-यज्ञ में नहीं बुलाया ? मैं इस पृथ्वी को वीर-विहीन न कहूँ तो और क्या कहूँ ?

लक्ष्मण : (**गरजकर**) आप अपनी बात वापस लें कि पूरी पृथ्वी वीरों से शून्य हो गई है। वरना मैं अकेले ही इस धनुष को तो क्या सारी मिथिला को उठाकर समुद्र में फेंक आऊँगा। इस सारे ब्रह्माण्ड को गेंद की तरह ठोकर मार कर आकाश में उछाल दूँगा। मैं अकेले ही सारी सृष्टि को लय कर दूँगा। आपने कैसे कह दिया कि सारी पृथ्वी वीरों से हीन हो गई है ? मैं सम्पूर्ण पृथ्वी को

उठाकर उस शिव की गोद में पटक सकता हूँ जिसका धनुष टूटना इतना असम्भव हो रहा है। यह एक धनुष नहीं ऐसे ही सौ और हजार धनुष विश्वकर्मा बनाकर दे दें तो मैं उन सबको उठाना और चढ़ाना तो क्या अपनी दोनों हथेलियों से मसल कर चूर्ण बनाकर रख दूँगा।

विश्वामित्र : बस करो लक्ष्मण ! इतनी कठोर बात न कहो। राजा जनक विद्वान हैं और ऋषियों का आदर करते हैं। इस तरह उनका अनादर न करो।

जनक : मुनिश्रेष्ठ ! मेरी जो भूल हुई उसके लिए क्षमा चाहता हूँ। मैंने यह सब क्यों कहा था, मेरे मन की हालत आपने समझी होगी।

विश्वामित्र : राम ! अपनी विद्या का अन्तिम पाठ तो मैं तुम्हें पहले ही दे चुका था। अब यहाँ मैं तुम्हारी परीक्षा भी लेना चाहता हूँ। जाकर देखो तो तुमसे शिवधनुष चढ़ता है कि नहीं ?

राम : जो आज्ञा गुरुदेव ! (**जाकर धनुष चढ़ा देते हैं**)
लीजिये गुरुदेव, धनुष तो चढ़ा दिया मैंने। भगवान शिव को प्रणाम कर मैं उनके इस पवित्र धनुष की प्रत्यंचा खींचता हूँ (**धनुष उठा लेना। जोर का धमाका होता है**) लीजिये गुरुदेव, यह मैंने चढ़ाया भी और टूट भी गया।

विश्वामित्र : देख लिया राजा जनक ! यह भयानक धमाका होते ही धरती किस तरह हिल उठी। यह सभागण मूर्छित हो रहे हैं। राजन् ! आपकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई है। मेरे शिष्य ने आपके मन का भार उतार दिया।

लक्ष्मण : भइया ! राजा जनक इतने गद्‌गद हो गये हैं कि कुछ बोल नहीं पा रहे हैं। उनकी आँखों में हर्ष के आँसू हैं।

जनक : मैं धन्य हो गया। यह मिथिला धन्य हो गयी। मेरा वचन, मेरा संकल्प पूरा हो गया। राजकुमार राम ! आपने मेरी प्रतिज्ञा रख दी। सीता बेटी को कुँवारी रहने से आपने बचा लिया। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ! मिथिला में पड़े आपके शुभ चरणों की मैं वन्दना करता हूँ।

विश्वामित्र : राजा सीरध्वज ! मेरे शिष्य राम ने यह काम कर दिया जिसके लिए तुम बहुत चिन्तित थे। राम बेटे ! इधर आओ। (**राम पास आते हैं**) सीता बेटी ! तुम भी इधर आओ। बेटी सीता, मैं यह सुयोग्य वर तुझे सौंप रहा हूँ। अब तुम राम को अपना पति स्वीकार कर वरमाल पहना सकती हो।

शतानन्द : ऋषि ठीक कहते हैं, बेटी ! वरमाल पहनाओ। राजा जनक ! आइये, आगे बढ़िये। रानी सुनयना भी हर्ष से आपूरित होकर आपके पास आ गयी हैं।

जनक : बेटी ! आओ, आगे बढ़कर जयमाल पहनाओ।

[सीता वरमाल पहनाती है। हर्षध्वनि होती है। एक भयंकर धमाके के साथ मुनि परशुराम का प्रवेश]

भीड़ : अरे, मुनि परशुराम आ गये। प्रभु परशुराम आ गये। यहाँ इस समय ऋषि परशुराम आ गये हैं। कुछ अनर्थ तो नहीं होगा?

राजा जनक : मैं राजा सीरध्वज प्रभु परशुराम को साष्टांग प्रणाम करता हूँ।

सुनयना : प्रभु ! मैं जनक-रानी भी सादर प्रणाम करती हूँ।

परशुराम : राजा जनक ! तेरे यहाँ देख रहा हूँ, बड़ी भीड़ है। यहाँ तो तमाम राजा लोग आये हुए हैं।

जनक : प्रभु ! मेरे यहाँ यज्ञ चल रहा था। बेटी सीता का विवाह स्वयंवर भी···।

परशुराम : अच्छा, अच्छा, तभी तमाम ऋषि, मुनि, साधु बैठे हैं। अरे, विश्वामित्र, तुम भी (**लपक कर गले मिलते हैं**) विश्वामित्र, कितने समय बाद देखा है तुम्हें।

विश्वामित्र : राजा सीरध्वज के निमंत्रण में आया हूँ ऋषिवर ! अच्छा हुआ आपके भी दर्शन हो गये।

परशुराम : (**जमीन पर पड़ा शिवधनुष देख क्रोधित होकर**) राजा जनक ! पृथ्वी पर यह शिवधनुष पड़ा है टुकड़ों-टुकड़ों में, किस मूर्ख की धृष्टता है यह ? किसने तोड़ डाला है इसे ?

जनक : क्षमा करें प्रभु ! शान्त हो लें।

परशुराम : (**क्रोध से गरजकर**) मैं शिवधनुष के टुकड़े देखकर भी शान्त हो लूं। यह धनुष तेरे पितामह को इसलिए सौंपा गया था कि वे शान्त पुरुष हैं, धनुष का दुरुपयोग नहीं होगा। और तूने देवताओं की इस धरोहर को तुड़वाकर नाश करा दिया। अरे, यह राक्षसों से कभी भी देवताओं को संकटमुक्त कराने का प्रलयंकारी अस्त्र था। तोड़ डाला इसे !

लक्ष्मण : भइया ! रंग में भंग करने कोई आ ही जाता है।

परशुराम : (**क्रोध से लाल होकर**) कौन छोकरा है यह, जो मेरे मुँह के सामने ऐसा कहने की हिम्मत कर रहा है ? इसे ये भी नहीं पता कि मैं कौन हूँ ? कितना विकट हूँ ?

लक्ष्मण : (**मुस्कराकर कर**) आप कौन हैं, यह तो आपने अपने व्यवहार से

ही बता दिया है। एक जरा-सा धनुष क्या टूट गया आप आसमान सिर पर उठाये हुए हैं। अरे साधु! एक धनुष ही तो टूटा है, जाओ, उसके टुकड़े उठाकर ले आओ और जोड़ लो उसे। रंग में भंग न करो। पता भी है, यहाँ कितना शुभ घटने जा रहा है।

परशुराम : (**क्रोध से काँपकर**) यह कौन लड़का है जो मेरे फरसे का तुरन्त शिकार हो जाना चाहता है? इसे बात करने का तरीका तक नहीं मालूम? क्यों जनक, यह धृष्ट बालक यहाँ कैसे आ पहुँचा है?

लक्ष्मण : साधु! बार-बार राजा जनक से इस तरह क्यों पूछते हो? किसी राजा से किस तरह बोला जाता है यह साधारण-सी बात भी आप नहीं जानते। यह शिष्टाचार तो साधारण आदमी भी जानता है।

परशुराम : अरे, अभद्र! तेरी मौत निश्चित है। तू कुमार नहीं विष की तरह है। ले मेरा कुठार उठता है तेरी गर्दन काटने को (**वार करने को परशु उठाते हैं।**)

विश्वामित्र : (**बीच में आकर**) यह क्या कर रहे हैं परशुराम? आप कुठार रोकिये। यह मेरा ही शिष्य है।

परशुराम : इतना अशिष्ट है तुम्हारा शिष्य, तो विश्वामित्र, इस मूर्ख को बता क्यों नहीं देते कि मैं कौन हूँ?

राम : प्रभु! यह मेरा छोटा भाई है। मैं अयोध्या के राजा दशरथ का पुत्र राम हूँ। यह सचमुच नहीं जानता कि आप कौन हैं? यद्यपि यह इसकी भूल है। लेकिन धनुष तोड़ने का दोषी यह नहीं है। न राजा जनक इसके दोषी हैं। इन्होंने तो धनुष तोड़ने को न केवल मना किया था बल्कि विरोध भी किया था। उसे तो मैंने तोड़ा है। दोषी तो मैं हूँ। यह अपराध मुझसे हुआ ऋषिप्रवर!

परशुराम : (**चेहरे पर आश्चर्य का भाव**) तुमने तोड़ा है? तुम इतने विनीत हो और कहते हो धनुष तुमने तोड़ा है। यह छोकरा, तुम्हारा भाई कितना धृष्ट है और कितना अकड़कर बोलता है। लेकिन राम, मेरे गुरु का धनुष क्यों तोड़ा गया? दशरथनन्दन! तुम्हें इस धनुष का इतिहास पता है? यह हमारी आस्था और संस्कृति का प्रतीक है। यह हमारी शक्ति का और हमारी रक्षा का सम्बल है।

राम : (**सरल भाव से**) होगा प्रतीक। जो प्रतीक जनता के लिए नुक्सान देने वाले हो सकते हों उन्हें नष्ट कर देना ही अच्छा है। मुझे बताया गया कि अगर इसका गलत इस्तेमाल हो जाय तो यह सम्पूर्ण पृथ्वी को, सृष्टि को नष्ट कर सकता है।

परशुराम : (**गरजकर**) मेरे गुरु का धनुष है यह। भगवान शिव शंकर का धनुष है यह। इसे हाथ लगाने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई ?

लक्ष्मण : मुनिवर ! इतना क्रोध करने से तो काम चलेगा नहीं। आपके गुरु का धनुष जिसने भी तोड़ा है वह भी आपके गुरु का भक्त ही होगा। वरना गुरु स्वयं न कूद पड़ते ? आपको कष्ट क्यों होता ? और फिर साधारण-सी बात है कि निर्माण का नियम ही यह है कि यदि कोई पुरानी चीज तोड़ न दी जावेगी तो नयी चीज बनेगी कैसे ? नया निर्माण होगा कैसे ?

परशुराम : (**गरजकर**) तू दुष्ट है। जनक ! इसे तू बता क्यों नहीं देता कि मैं इसे मारकर ही रहूँगा। मेरे क्रोध के बारे में शायद यह जानता नहीं। मुनि विश्वामित्र ! तुम्हीं इसे क्यों नहीं बता देते ?

लक्ष्मण : (**हँसकर**) मुझे मारने वाले तो बहुत पहले मर चुके मुनि ! मेरे लिए जो कहना हो वह मुझसे कहिये। राजा जनक को, मेरे गुरुदेव को क्यों बीच में ला रहे हैं ?

परशुराम : तू मुझे फिर-फिर न चिढ़ा। मैं प्रलय हूँ। मैं वज्रपात हूँ। मैंने इक्कीस बार इस धरती से क्षत्रियों को समाप्त किया है। मैंने अपने पिता के कहने पर अपनी माँ की गर्दन तक काटी है। तूने मुझे यज्ञ कराने वाला साधारण-सा ब्राह्मण समझ रखा है क्या ?

लक्ष्मण : क्षत्री तो मैं भी हूँ, मेरे भइया भी हैं। हमें मार कर दिखाइये तो मानूँ ! जिन क्षत्रियों को आपने मारा वे मरने लायक रहे होंगे या उनकी मृत्यु आ चुकी होगी। आप ज्ञानी हैं तो जाति से क्यों घृणा करते हैं। घृणित तो व्यक्ति हो सकता है जाति नहीं। जो किसी एक जाति का दुश्मन है वह ज्ञानी कैसे हो सकता है ?

परशुराम : जाति से घृणा के कारण नहीं वे सब मेरे क्रोध के कारण समाप्त हुए थे। उन्होंने मेरे क्रोध को नहीं पहचाना था। क्रोध मेरा आभूषण है खल !

लक्ष्मण : (**हँसकर**) ब्राह्मण और ज्ञानी को क्रोध कैसा ? अब तो न आप ब्राह्मण हैं न ज्ञानी !

परशुराम : (**गरजकर**) विश्वामित्र ! देख रहे हो अपने शिष्य को ! मैं इसलिए दया कर रहा हूँ कि यह बालक है, इस अबोध पर क्या वीरता दिखाऊँ !

राम : मुनि, मुझे क्षमा करें। आप महान हैं, मैं अकिंचन हूँ। आप परशुराम हैं, मैं केवल राम हूँ। अब तो मैं धनुष को तोड़ चुका ही हूँ। जोड़ना चाहूँ भी तो वह जुड़ेगा नहीं। अपराध छिपा भी नहीं

रहा। क्रोध न करें मुनि, क्षमा करें उदारता बड़प्पन की निशानी है। ऋषियों-मुनियों-को क्रोध शोभा नहीं देता।

परशुराम : अच्छा! तुमने धनुष क्या तोड़ लिया, अपने को इस योग्य भी मान बैठे हो कि मुझे शिक्षा देने लगे हो?

राम : मैं आपको भला कैसे शिक्षा दे सकता हूँ। कहाँ आप और कहाँ मैं।

परशुराम : देखो राम! तुम्हारी इन चिकनी-चुपड़ी बातों से मेरा क्रोध हल्का नहीं हो सकता। तुम इन भयानक अस्त्रों के विरोधी हो सकते हो किन्तु मैं नहीं हूँ। मैं इन भयानक अस्त्रों को रखने का हिमायती हूँ। वरना हम आततायियों से जीवित नहीं बच सकेंगे। कितनी मुश्किल से तो हमारे पास ये दो धनुष थे। एक शिव के पास था जिसने तमाम दैत्यों सहित त्रिपुरासुर के संसार को नष्ट कर दिया था और दूसरा विष्णु के पास था। जब सती के भस्म होने पर देवताओं के विरुद्ध शिव ने धनुष उठा लिया था तो देवताओं ने आराधना करके कि विष्णु भी धनुष उठा लेंगे तो सृष्टि ही समाप्त हो जायेगी, दोनों से धनुष रखवा दिये थे।

राम : हाँ, शिव का धनुष राजा जनक के पितामह देवरात के पास रखवा दिया गया था और विष्णु का धनुष आपके पितामह ऋषि के पास रख दिया गया था जो आपके पिता जमदग्नि से अब आपके पास आ गया है।

परशुराम : उसी को लेकर तो मैं शिवधनुष तोड़ने वाले से लड़ने आया हूँ। इस धनुष को चढ़ाना या तो विष्णु भगवान स्वयं जानते थे या मैं जानता हूँ। तुम वही राम हो जिसे मैं अब तक नाम से जानता हूँ तो यह धनुष चढ़ाकर दिखा दो। मुझे तभी विश्वास होगा कि तुम्हीं वह राम हो।

विश्वामित्र : बेटे राम! मुनि परशुराम का धनुष ले लो। यह एक धनुष भी अगर रह जायेगा तो पूरी पृथ्वी को एक ही तीर से समाप्त कर सकता है।

राम : मैं आपका आशय समझ गया गुरुदेव! मुनिवर, लाइये यह धनुष! मैं इसे चढ़ाता हूँ।

परशुराम : लेकिन तीर रखकर चलाओ तभी मैं जानूँगा कि तुमने सही चढ़ाया है।

राम : (**धनुष लेकर**) आप कहते हैं तो लीजिये तीर सहित चढ़ाता हूँ।

[**धनुष चढ़ाते हैं**]

परशुराम : आप धन्य हैं राम ! धनुष की प्रत्यंचा तीर के साथ आपने चढ़ा दी है।

राम : किन्तु यह तीर कहाँ भेजूँ। संसार नष्ट तो इससे करूँगा नहीं और चढ़ा हुआ तीर छोड़ना पड़ेगा ही।

परशुराम : यह मेरे हठ के कारण चढ़ाया गया है। इसका भागी मैं हूँ। आप इससे मेरे स्वर्ग जाने की गति रोक दें और मुझे मुक्ति न दें।

राम : तथास्तु ! मैं इसे छोड़ रहा हूँ। यह आपके स्वर्ग जाने के मार्ग मे अवरोध बनकर स्थापित रहेगा। कोई शक्ति इसे हटा नहीं सकेगी।

परशुराम : प्रभु ! मैंने अपने क्रोध में यह भी नहीं सोचा कि कोई साधारण मनुष्य शिव का धनुष तो तोड़ नहीं सकता। तब भी मैं क्रोध में अन्धा बना रहा। मैंने आपको पहचाना ही नहीं। आप मुझे क्षमा करें।

राम : बस मुनि, बस। आप ब्राह्मण हैं। मेरे पाँव छूकर मुझे अपराध का भागी न बनाइये। आपने जिन क्षत्रियों को मारा था वे जातिवादी हो गये थे। जातिवाद से देश नहीं बनता। जो भी जातिवादी होगा उसे कोई न कोई परशुराम मारेगा ही। आपने क्षत्रियों का नाश कर ब्राह्मणों को स्थापित नहीं किया इसलिए कि आप स्वयं जातिवादी नहीं थे। जातिवाद के विरोधी थे। जब भी इस देश में जातिवाद फैले आप अपनी कुठार से उसे नाश करते रहे। इसीलिए मैंने आपको स्वर्ग जाने से रोक दिया है। आप सदैव यहीं रहेंगे, जातिवाद से जूझने के लिए। राष्ट्र की एकता की जड़ों को हिला देने वाले किसी भी जातिवाद की जड़ें अपने परशु से काटते रहेंगे।

परशुराम : आप धन्य हैं राम ! मुझे क्षमा करो। निश्चय ही मैं अपना काम आपके इसी विचार के अनुरूप करता रहूँगा। अच्छा, मुझे विदा दें। राजा जनक ! तुम्हारी पुत्री बड़ी सौभाग्यशालिनी है। यह जोड़ी संसार में पूज्य होगी।

[परशुराम के साथ सभी राम को सिर झुकाते हैं। मंच पर प्रकाश धीमा पड़ते हुए अँधेरा।]

अंक तीन

दृश्य एक

[मंच पर प्रकाश उभरता है। राजा दशरथ का राजमहल। कौशल्या के साथ राजा दशरथ बैठे हैं।]

राजा दशरथ : कौशल्या ! तुम राम के लिए इतना उदास और चिन्तित रहती हो। एक बेचारी सुमित्रा भी है। उसका बेटा भी इतने दिनों से उससे दूर है, वह कभी भूलकर भी उसके लिए मुझसे नहीं पूछती।

कौशल्या : आर्य ! मैं केवल राम के लिए ही नहीं राम और लक्ष्मण दोनों के लिए चिन्तित रहती हूँ। मैं तो कह रही थी कि जब से घर से गये हैं, इतना समय हो गया है पर उनका कोई समाचार नहीं मिला। आखिर हम माँ हैं। इतना ही तो निवेदन किया था कि अपने दूत वनों में भेजकर उनकी कुशल मँगा लें।

दशरथ : वनों में दूत कहाँ-कहाँ जायेंगे। उनका कोई ठिकाना है !

कौशल्या : ऋषि विश्वामित्र का सिद्धाश्रम तो दूतों को मिल ही सकता है। उसे तो सभी जानते हैं।

दशरथ : तुम तो रानी कितनी शीघ्र बात को भूल जाती हो ! मैंने तुम्हें बताया था न कि सिद्धाश्रम मेरे दूत गये थे। मुनि विश्वामित्र अपना यज्ञ पूरा कर वहाँ से राम-लक्ष्मण व अपने शिष्यों-साधुओं सहित मिथिला राज्य की ओर कहीं चले गये थे।

कौशल्या : हाँ-हाँ, मैं भूल गयी थी। राजन् ! आपने बताया था। पता नहीं, यज्ञ पूरा करके गये थे या यज्ञ छोड़कर भाग गये थे।

[द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल : चक्रवर्ती सम्राट की जय हो। महारानी का मंगल हो।

राजा दशरथ : कितनी बार कह दिया कि जब हम अपनी रानियों के साथ एकान्त में बैठे हों तो किसी भी आने वाले से हम नहीं मिलेंगे। जिसे मिलना हो वह राजभवन में कार्य करते समय हमसे मिले।

द्वारपाल : रक्षा करें राजन् ! मिथिला के राजा सीरध्वज के दो दूत आये हैं।

राजा : **(आश्चर्य से)** मिथिला के राजा सीरध्वज के ?

कौशल्या : उसी ओर तो मुनि मेरे बेटों के साथ गये हैं।

राजा : द्वारपाल ! क्या समाचार लाये हैं वह ?

द्वारपाल : राजेश्वर ! उन्होंने इतना ही कहा है कि बहुत ही शुभ समाचार लेकर वे आये हैं जो अभी, इसी समय चक्रवर्ती सम्राट को बताना है। कहें तो अन्दर लिवा लाऊँ ?

कौशल्या : कोई दूत राजन के लिए शुभ समाचार लेकर आवे तो आप पूछने आते हैं ? समाचार जान लेने की उत्सुकता भी आपमें नहीं रहती ? उन्हें तुरन्त आदर के साथ यहीं लिवा लाइये।

द्वारपाल : जो आप आज्ञा दें। वे अभी आते हैं।

राजा : रानी ! मुनि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण के साथ मिथिला की ओर गये थे। वहाँ से समाचार तो हो सकता है किन्तु शुभ समाचार हो सकता है ?

रानी : क्या नहीं हो सकता है ? विश्वामित्र युद्ध-निपुण मुनि हैं। हो सकता है उनके कहने पर राजकुमारों ने मिथिला राज्य ही जीत लिया हो; क्योंकि सुना था उनकी बेटी से विवाह को लेकर काशी नरेश की उनसे अनबन भी चल रही थी और काशी नरेश उनसे हार भी गये थे। उनके हारने के बाद काशी पर अब जनक के छोटे भाई कुशध्वज का राज्य है।

राजा : यह तो मैं भी जानता हूँ।

[द्वारपाल के साथ दो दूतों का आना]

दोनों दूत : महाराज और महारानी की जय हो। हम राजा सीरध्वज के दूत हैं और जनकपुरी से यहाँ आज तीसरे दिन पहुँचकर एक बड़ा ही शुभ समाचार देने आये हैं।

राजा : राजदूत, आपका स्वागत है। हम समाचार सुनने के लिए व्यग्र हैं।

एक दूत : आपके पुत्र राम-लक्ष्मण ने ताड़का, मारीज, सुबाहु आदि राक्षसों का वध कर मुनिश्री विश्वामित्र का यज्ञ पूरा कराया है।

रानी : ओह ! कितना शुभ समाचार है यह।

दूसरा दूत : आपके पुत्र श्री राम ने गौतम ऋषि की साध्वी पत्नी अहल्या का, जो इन्द्र से छली गयी थी, सामाजिक स्वीकार कराकर पुन: उनके पति ऋषि गौतम को सौंपकर जनकपुर में आकर राजा सीरध्वज की प्रतिज्ञा पूरी कर शिवधनुष तोड़कर उनकी बेटी सीता जी को ब्याह लिया है।

राजा : **(खुश होकर)** मेरे बेटे राम ने ? कितना शुभ समाचार है वास्तव में यह ? मैंने राजा सीरध्वज की प्रतिज्ञा के बारे में सुना था। मुझे तभी लगा था कि यह असम्भव प्रतिज्ञा है जो पूरी हो नहीं सकेगी। लेकिन मुझे सहज ही विश्वास नहीं होता कि इसे मेरे बेटे राम ने पूरा कर दिया।

दूसरा दूत : मैं सच कह रहा हूँ। यह लीजिए राजा सीरध्वज मिथिलेश का पत्र और बारात सजाकर चलिये राजन् ! वहाँ आपकी प्रतीक्षा हो रही है।

राजा : **(पत्र लेकर)** सुनो कौशल्ये, सुनो। राजा सीरध्वज ने लिखा है—श्रीमान् राजराजेश्वर चक्रवर्ती सम्राट दशरथ जी ! मैं मिथिला के जनक वंश का राजा सीरध्वज आपको साष्टांग प्रणाम करते हुए यह शुभ समाचार दे रहा हूँ कि अब आप मेरे समधी हो गये हैं। अपनी बेटी सीता के स्वयंवर के लिए जो कठिन प्रतिज्ञा मैंने की थी उसे आपके सुयोग्य राजकुमार श्रीराम ने पूरा कर दिया है। कितना अच्छा है कि हमारे दो घरों का मेल इस तरह हो रहा है। मुझे पूरी आशा है कि आप यह सम्बन्ध सहर्ष स्वीकार कर तुरन्त श्रीराम की बारात लेकर आवेंगे। और वर-वधू को साथ लेकर जावेंगे। मैं जानता हूँ कि अवध और मिथिला के रास्ते वहुत दुर्गम और कठिन हैं। मैं भरसक इन पथों को ठीक करा रहा हूँ। जहाँ पुल बनने चाहिए बनवा रहा हूँ। आपको कोई भी कष्ट नहीं होने दूँगा। आप जितने लोग, जितने रथ, जितने हाथी चाहे लेकर आवें। मैं पथ को सुधार रहा हूँ। मेरी बधाई भी लें और मेरा बार-बार दण्डवत् प्रणाम भी लें।··· सुन कौशल्ये ! तुमने यह पत्र सुना ?

कौशल्या : **(प्रसन्नता से आँखें मूँदकर)** हाँ राजन् ! सुन लिया। मेरा बेटा राम कितना वीर है। कितना भाग्यवान है।

राजा : मेरे बेटे राम की बारात बड़े धूमधाम से जावेगी। **(प्रसन्न भाव से)** राजदूत, आप जाकर महाराज सीरध्वज को हमारी बधाई दें

और प्रणाम कहें। उनसे कहिए कि हमें इस समाचार से, इस सम्बन्ध के जुड़ने से अपार हर्ष हुआ है। लीजिए **(अपने दोनों माणिक हार उतारकर)** यह आपकी भेंट है। द्वारपाल, इनका उचित आतिथ्य-सत्कार होना चाहिए। हमारे सैनिक इन्हें मिथिला तक छोड़ने भी जावेंगे।

द्वारपाल : जो आज्ञा महाराज।

दोनों दूत : आप धन्य हैं, महाराज ! हमारा प्रणाम।

[द्वारपाल के साथ दूत जाते हैं।]

राजा : रानी ! कौशल्ये ! कितने हर्ष के समाचार हैं ये। अरे सुमंत्र कहाँ होंगे ? सुमंत्र ! सुमंत्र कोई है। सुमंत्र को भेजो।

[सुमंत्र कक्ष में प्रवेश करते हैं।]

सुमंत्र : जी, राजेश्वर !

राजा : सुमंत्र ! तुमने कुछ सुना ? अभी-अभी द्वारपाल के साथ जो दूत गये हैं उनसे तुम्हें कुछ सुनने को मिला ?

सुमंत्र : नहीं तो ? **(आश्चर्य का भाव)**

राजा : **(हर्षातिरेक से)** बड़ा ही शुभ समाचार हैं मंत्री। जाओ सुमंत्र, मुनि वशिष्ठ को भी बता कर आओ। वामदेव जी को भी बताओ। नगर में डुगडुगी बजाकर हर्षध्वनि करवा दो। नगाड़ा बजवा दो। घर-घर मिष्टान्न बँटवा दो। आज रात नगर में डगर-डगर में घर-घर में दीप प्रज्वलित करवा दो। साधु, संतों, ब्राह्मणों को भोजन और दान दिलाओ।

सुमंत्र : किन्तु क्या बता दूँ राजन ! शुभ समाचार बताया नहीं।

राजा : महामंत्री, हमारे राम ने राजा सीरध्वज की प्रतिज्ञा पूरी कर दी है। वह उनकी बेटी सीता से शादी करने जा रहे हैं। हमें बारात लाने को बुलावा आया है। राजा जनक हमारे समधी हो गये हैं सुमंत्र।

सुमंत्र : यह तो बहुत बड़ा शुभ समाचार है। अभी सारे नगर में, सम्पूर्ण राज्य में इसकी डुगडुगी बजवा देते हैं। सारे नगर में मिष्टान्न बँटवा देते हैं।

राजा : नगर-भर में मिष्टान्न बँटवा दो। भिखारियों, अपाहिजों को दान दे दो और राज्य-भर में कह दो कि जो भी चाहे बारात में जा सकता है। कल दोपहर तक बारात चल देगी।

[मंच पर प्रकाश धीमा होते हुए अँधेरा हो जाता है]

दृश्य दो

[राजा जनक का महल। भीड़-भाड़। लोगों का आना-जाना। बाजों के स्वर। राजा जनक उत्सुकता से अपने मंत्री के पास खड़े हैं।]

मंत्री : राजन् ! आप बैठिये न। बारात का सब प्रबन्ध हमारे लोग कर रहे हैं।

राजा जनक : मार्ग में बारात को कोई कष्ट तो नहीं हुआ ? सभी पुल बन गये थे न ? मार्ग मैंने रात-दिन हजारों मजदूर लगाकर ठीक कराने को कहा था, ठीक हो गये थे न ?

मंत्री : राजन् ! जैसा आपने चाहा था वह सब हो गया था। बारात बहुत प्रसन्न यहाँ तक आ गयी है।

जनक : कितनी बारात आयी है, सब ठीक स्थान पर ठहर गये हैं न ?

मंत्री : महाराज ! सारे प्रबन्ध मैंने स्वयं ध्यान देकर अच्छे ढंग से कराये हैं। लगभग दस सहस्र बाराती आये हैं। नौकर-चाकर लगे हैं। महाराजा दशरथ और उनके पुत्रों को उनके आचार्यों के साथ राजमहल के दक्षिणी भाग में अलग-अलग पूरी सुविधा के साथ ठहरा दिया है। उनके सभी सम्बन्धी महल के पश्चिमी भाग में टिका दिये हैं। शेष सभी लोग नगर के उपवन में टिका दिये हैं। सबके रहने, ठहरने, भोजन की बहुत उत्तम व्यवस्था कर दी है। जो जैसा चाहे, उसके लिए वैसी व्यवस्था कर दी है।

जनक : यों तो यह ठीक है। हमारे समधी से जाकर और पूछ लो, उन्हें कोई कमी न लगने पाये। कोई कमी हो तो वह भी तुरन्त पूरी कर दो। हमारा सारा राजकोष चाहे खाली हो जाये किन्तु इस समय हमारी लाज रह जाय।

मंत्री : राजन् ! वही होगा। आप निश्चिन्त रहें। शाम को जब बारात द्वार पर आयेगी तो सब आपको प्रसन्न ही मिलेंगे।

दृश्य तीन

[बारात द्वार पर आती है। सबका स्वागत होता है। बारात के बाजे, पटाखे, धूमधाम]

[राजा दशरथ, वशिष्ठ, विश्वामित्र, जनक, शतानन्द,

कुशध्वज आदि। राजा सीरध्वज राजा दशरथ से गले मिलकर अभिनन्दन करते हैं। भाई कुशध्वज भी आगे बढ़कर गले मिलते हैं।]

दशरथ : राजा सीरध्वज ! मैं धन्य हुआ आपको पाकर। आपसे मिलकर कितना प्रसन्न हुआ मैं। लीजिये मिलिये, ये हैं मेरे कुलगुरु वशिष्ठ जी।

सीरध्वज : ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ! बहुत इच्छा थी दर्शन पाने की, जो आज पूरी हो गयी। मैं आपके दर्शन से कृतार्थ हो गया।

राजा जनक : **(शतानन्द की ओर इशारा करते हुए)** ये हैं मेरे राजपुरोहित शतानन्द।

वशिष्ठ : ओह ! शतानन्द ! ऋषि गौतम के विद्वान पुत्र ! कहो, सुख से हो न !

[शतानन्द प्रणाम करते हैं]

वशिष्ठ : मुनि विश्वामित्र ! हमने इन्हें अब तक देखा ही नहीं था। हाँ शतानन्द की विद्वत्ता के बारे में सुना अवश्य था।

विश्वामित्र : **(हँसते हुए)** वशिष्ठ ! शतानन्द ने एक और उत्तम प्रस्ताव रखा है। राजा दशरथ सुनेंगे तो और अधिक प्रसन्न होंगे।

राजा दशरथ : हमारी प्रसन्नता तो मुनिश्रेष्ठ, आपकी प्रसन्नता पर निर्भर करती है।

[सब प्रसन्न होकर हँसते हैं।]

शतानन्द : राजन् ! मेरा सुझाव था कि राजा सीरध्वज की दूसरी पुत्री उर्मिला को भी आप अपने सुयोग्य पुत्र लक्ष्मण के लिए स्वीकार कर लें। उर्मिला जैसी होनहार बेटी के लिए लक्ष्मण हर तरह उपयुक्त वर हैं।

दशरथ : यह तो और भी अच्छा प्रस्ताव है। राजा सीरध्वज स्वीकार करें तो हमें इस प्रस्ताव पर अपार हर्ष है।

राजा जनक : मेरा तो अहो भाग्य ही होगा। अगर मेरी दोनों पुत्रियाँ आपके घर में जा सकें।

[सब हँसते हैं।]

वशिष्ठ : विश्वामित्र ! आपने शतानन्द से बड़ा सुन्दर प्रस्ताव ठीक समय पर रखवाया। निश्चय ही यह उत्तम प्रस्ताव है।

विश्वामित्र : पता नहीं, राजा जनक और दशरथ मानें या न मानें, मेरा तो एक और भी प्रस्ताव है।

राजा दशरथ : वह क्या ! बतावें मुनिश्रेष्ठ। आप हमें आज्ञा दें।

विश्वामित्र : पृथ्वी में इस समय इक्ष्वाकु और जनक कुल से श्रेष्ठ और कौन कुल है। यह सम्बन्ध जितना प्रगाढ़ हो उतना ही शुभ होगा। सीरध्वज के भाई कुशध्वज, जो इस समय काशी के राजा हैं, की भी दो पुत्रियाँ साध्वी, गुणी और विवाह योग्य हैं।

वशिष्ठ : और राजा दशरथ के दो पुत्र और भरत और शत्रुघ्न भी विवाह योग्य हैं। (**हँसकर**) वाह, विश्वामित्र ! कितना सुन्दर प्रस्ताव है। राजा दशरथ ! तुम्हें स्वीकार होना चाहिये। यह चारों विवाह एक साथ सम्पन्न होने चाहिये। विवाह का यह शुभ लग्न चारों पुत्रों और चारों कन्याओं के लिए श्रेष्ठ है।

दशरथ : गुरुदेव ! आपका आदेश सर-आँखों पर ! मैं राजा सीरध्वज के साथ राजा कुशध्वज को भी समधी के रूप में अपनाना चाहता हूँ।

कुशध्वज : मेरे भाई सीरध्वज की तरह वह मेरे लिए भी गौरव ही होगा कि मेरी दोनों पुत्रियाँ भी राजा दशरथ की बहुएँ बनने का सौभाग्य पा सकें।

विश्वामित्र : हो गया। मुनि वशिष्ठ, मुनि शतानन्द, दोनों कुलों के राजपुरोहित मेरी बधाई लें। जिस दिन मैं राम को अपना यज्ञ पूरा करने के लिए माँग ले गया था उस दिन मैंने सोचा भी नहीं था कि जब मैं राजा दशरथ को उनके पुत्र को लौटाऊँगा तो वह दिन इतनी मंगल खुशियों का, अपार प्रसन्नताओं का दिन होगा।

राजा दशरथ : यह आपका ही प्रसाद है प्रभु जो इक्ष्वाकु वंश को मिला है। मैं अपने चारों पुत्रों, रानियों, कुटुम्बियों और प्रजाजनों सहित आपका आभार मानते हुए इस जीवन में आपके अहसान से उऋण नहीं हो सकूँगा।

राजा जनक : आपकी तरह ही मेरा जनक कुल भी मुनि विश्वामित्र का उपकार नहीं भुला सकेगा। उन्होंने मेरे निमंत्रण में पधारकर मेरे जीवन की सर्वाधिक खुशियाँ मुझे दे दी।

[सब खुशी से हँसते हैं ? मंच पर प्रकाश धीमा होता जाता है।]

दृश्य चार

[बारात विदा हो रही है। राम, भरत, लक्ष्मण और सौमित्र के साथ सीता, माण्डवी, उर्मिला तथा सुमति

भी हैं।]

सुनयना : बेटी सीता ! तुम चारों बहिनों को हमारा कोटि-कोटि आशीर्वाद है। अभी तक तुम चारों माँ-बाप के घर की लाड़ली बेटियाँ थीं, अब आज से तुम एक नये जीवन की शुरुआत कर रही हो।

कुशध्वज की पत्नी : दीदी, आप ठीक कह रही हैं। अभी तक ये घर की आशाएँ थीं, अब ये दो घरों की मनोकामनाएँ हो गई हैं। दोनों घरों, दोनों कुलों की प्रतिष्ठा अब इन्हें बनाये रखनी है।

सुनयना : राजा के घर जाकर केवल राजरानियाँ बनी रहना ही तुम्हारा धर्म नहीं है बेटी। सास, ससुर, पति, परिवार, पड़ोस, समाज, सबकी सेवा करना तुम्हारा धर्म है। जनक कुल की बेटियाँ अपने कुल का नाम ऊँचा रखेंगी तो सुनकर हमें भी सुख होगा। हमें भी लगेगा कि हमारा अन्न, हमारा प्यार व्यर्थ नहीं गया।

सीता : माँ ! हम पर भरोसा रखना। जब भी जो कुछ भी सुनोगी हमारे बारे में अच्छा ही सुनोगी।

सुनयना : राम ! आपसे भी यही कहती हूँ बेटे ! कि प्राणों से भी प्यारा अपना यह धन हम आप चारों भाइयों को सौंप रहे हैं। इन्हें अब हमारा नहीं अपना ही जीवन समझ कर सहेजना बेटे ! अभी तक हमारा और आपका घर अलग-अलग था किन्तु आज से दोनों ही घर अब आपके हैं।

राम : आप हमें अलग क्यों मानती हैं। जिस तरह आपकी यह चार बेटियाँ हैं उसी तरह हम भी अब चार बेटे हैं आपके। हम जानते हैं कि अयोध्या की तरह अब मिथिला भी हमारा अपना घर है। दोनों घरों की प्रतिष्ठा बनी रहे, इसी में हमारी प्रतिष्ठा होगी। दोनों घरों का अपनापन बना रहे, यही हमारा ध्येय होगा।

[जनक, कुशध्वज, शतानन्द का आना]

सीरध्वज : राम ! इधर आते-जाते हमने आपके शब्द सुन लिये हैं। हम विदा के इस मौके पर आपसे और कह भी क्या सकते हैं। बस। बेटे हमारे ये हाथ जुड़े हैं। इनकी मर्यादा बनाये रखना राम। जिस तरह मेरे यह हाथ जुड़े हैं इसी तरह से दोनों घरों को जोड़-कर रखना। किसी को कभी यह पता भी न लगे कि इनके बीच में क्या है, क्या हो रहा है। इक्ष्वाकु कुल महान कुल है, आज जनक कुल से आपने इससे जोड़ दिया है। यह जोड़ बना रहे राम। हम इतना ही निवेदन कर सकते हैं आपसे।

राम : आप विश्वास रखें पिताजी। आप ऐसा ही होने का आशीर्वाद दें

हमें ।

सीरध्वज : हम क्या हमारा रोम-रोम आशीर्वाद दे रहा है राम। रानी चलो, इन्हें बाहर ले चलो। वहाँ महाराजा दशरथ, मुनि वशिष्ठ, विश्वामित्र जी आदि प्रतीक्षा में हैं ।

[विदा-गीत होता है। विदा-गीत पार्श्व में हो रहा है। मंच पर प्रकाश धीमा होता है ।]

दृश्य पाँच

[राजा दशरथ, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि खड़े हैं। राजा जनक, रानियाँ तथा राम, भरत व सीता आदि आते हैं ।]

दशरथ : राजा सीरध्वज ! अब आप लौटें हम आपके बड़े आभारी हैं। बारात की जो आवभगत आपने की, हमारी जो प्रतिष्ठा आपने बढ़ायी हम उसके लिए आपके बहुत-बहुत आभारी हैं। राजा कुशध्वज ! अब आप लोग लौटें।

सीरध्वज : क्या कहते हैं सम्राट आप ? आपके पुत्रों ने, आपने हमें पृथ्वी पर सिर उठाकर चलने योग्य बना दिया है। आपकी जितनी भी सेवा हम कर सकें उतना ही कम है। आपके विशाल हृदय में हमारे लिए स्थान बना रहे यही हमारी आकांक्षा है। हमें क्षमा करें सम्राट ।

दशरथ : मन विदा होने को नहीं हो रहा है किन्तु जाना तो है ही। अब हमें जाने दें । हमारा प्रणाम लें आप लोग ।

[गीत चलता रहता है । सब आगे बढ़ते हैं। विदा की शहनाई बज रही है। पालकियाँ, रथ, हाथी, घोड़े सजे हैं । मंच पर धीमा प्रकाश। दृश्य बदलता है ।]

अंक चार

दृश्य एक

[अयोध्या का राजमहल। काफी हलचल है। हर्ष के स्वर, मंच पर दासियों का आना-जाना।]

एक दासी : अरे सुनो उधर सरयू पार के उपवन से बारात के बाजे सुनाई पड़ रहे हैं। चलो परछन-स्वागत की तैयारियाँ जल्दी-जल्दी करें।

दूसरी दासी : उधर से तीनों रानियाँ आ रही हैं। तुम जल के कलश मुख्य द्वार पर धर आयी हो न।

पहली दासी : हाँ, हाँ, रख आई हूँ।

[रानियों का समीप आना]

दोनों दासियाँ : रानियों को हमारा प्रणाम ! राजकुमार राम की बारात बाजों के स्वर आ रहे हैं। महारानी, लगता है कि बारात समीप ही आ गई है।

कौशल्या : राजकुमार राम की ही क्यों, तुमने सुना नहीं। दूत समाचार लाये हैं। हमारी चार बहुएँ आ रही हैं।

दासियाँ : चार बहुएँ ! सचमुच ! चारों भाइयों की बारात आ रही है !

कौशल्या : हाँ-हाँ, चलो तुम लोग भी मुख्य द्वार की ओर चलो। वहाँ सब मंगल-गान गा रहे हैं। चलो कैकेयी, सुमित्रा हम लोग चलें।

[शहनाई बज रही है। भीड़-भाड़, चहल-पहल। धीरे-धीरे शहनाई का स्वर धीमा होता है और मंगल-गीत उभर आता है]

पहली दासी : महारानी, देखिये उधर देखिये, ऊँचे-ऊँचे छत्रों से सजे रथ दिखाई

देने लगे हैं ।

दूसरी दासी : हाँ, वो दिख रहे हैं । देखो, देखो बारात आ गई ।

कौशल्या : कितने दिनों बाद मेरा राम आज मेरे पास आ रहा है । कितनी भाग्यशाली हूँ मैं कि आ रहा है तो बहू भी साथ में ला रहा है ।

पहली दासी : वो जो रथ सबसे आगे है उसी में हमारे राम और उनकी दुल्हन होगी ।

दूसरी दासी : उसके बाद वाला रथ राजकुमार भरत का होगा, फिर लक्ष्मण का और तब सौमित्र का । देखो कितनी सुन्दर लग रही है बारात रथों के पीछे हाथी, फिर घोड़े । अयोध्या कितनी सुन्दर लग रही है आज ।

[मंगल गीत। मंच पर धीरे-धीरे प्रकाश धीमा होता है। दृश्य बदलता है ।]

दृश्य दो

[राजमहल में कौशल्या अपने कक्ष में बैठी है। राम-लक्ष्मण का प्रवेश]

राम : माँ, प्रणाम !

लक्ष्मण : प्रणाम, माँ !

कौशल्या : अरे राम ! लक्ष्मण ! इधर बैठो बेटे। मेरे पलंग पर बैठो न।

राम : माँ ! लक्ष्मण के साथ नगर का भ्रमण करने चला गया था। कितने दिनों बाद तो नगर में लौटे हैं हम लोग। नगर के लोग जिधर देख लेते वहीं घेरे ले रहे थे । कोई कुशल-मंगल पूछता है तो कोई पूछता है इतने दिनों कहाँ रहे ? क्या-क्या किया ? किस तरह रहे ?

कौशल्या : तुम लोगों के बिना तो बेटे यह नगर जैसे बड़ा उदास-उदास-सा हो गया था । नगरवासी राजमहल के द्वारपालों से, द्वार-रक्षकों से जब-तब आकर पूछते रहते थे कि राम कब आ रहे हैं। लक्ष्मण कब लौट रहे हैं। अब तुम लोगों को देखकर कितने खुश होंगे सब ।

लक्ष्मण : भइया ! सुना बड़ी माँ तो आपके लिए बहुत चिन्तित रहती थीं। माँ कह रही थीं कि वह जब-तब इन्हें समझाती रहती थीं। सुना

पिताजी भी अक्सर अधीर हो जाते थे।

कौशल्या : सचमुच राम ! सुमित्रा में अद्‌भुत साहस है। वह ढाढ़स न देती रहती तो मेरा मन तो जाने क्या कर लेता। जब भी कोई बुरा सपना देख लेती तो मन ही मन काँप जाती थी। सुमित्रा को बुलाकर बताती तो वह कहती—कुछ नहीं दीदी, यह तुम्हारे मन का डर है। इस तरह मन छोटा न किया करो।

राम : और माँ ! लक्ष्मण भी कम साहसी नहीं है। राक्षस तो इसके नाम थर्राते थे। यह तो उन्हें खोज-खोज कर मारता था। मुझसे लड़ता था कि मुझको ही सभी राक्षसों से निपट लेने दो, आप बैठे रहो।

कौशल्या : बेटे ! तुम लोगों को राक्षसों से डर नहीं लगता था। सुना बड़े-बड़े भयावने राक्षस मार डाले तुम लोगों ने ?

लक्ष्मण : डर कैसा माँ ? डर तो हमसे उन्हें हो गया था। हम तो उन्हें चींटी की तरह मसल डालते थे। भइया ने तो एक तीर से ताड़का जैसी भयानक राक्षसी को भस्म कर दिया था।

राम : हाँ माँ ! लक्ष्मण ठीक कहता है। जब हम लोग मिथिला में राजा जनक का धनुष-यज्ञ देख रहे थे तो राजा जनक की बात पर तो लक्ष्मण ने ऐसा क्रोध दिखाया कि लगता था कि बिना धनुष चढ़े ही राजा जनक लड़की दे देंगे। सारे राजा काँपने लगे थे।

लक्ष्मण : क्या करता भइया ! उन्होंने बात ही ऐसी कह दी थी।

कौशल्या : (मुस्कराकर) क्या कह दिया था उन्होंने लक्ष्मण बेटे ?

लक्ष्मण : (**जोश में**) माँ ! वह कहने लगे—पृथ्वी वीरों से हीन हो गई है। वीरता पृथ्वी से समाप्त हो गई है। भला यह बात हम लोग सुन सकते थे !

[कौशल्या हँसती है।]

राम : (**हँसकर**) और माँ, ऋषि परशुराम को तो इसने इस तरह डाँटा, इस तरह लताड़ा कि उनका क्रोध भी इसके क्रोध के आगे त्राहि-माम-त्राहिमाम बोल उठा।

कौशल्या : ऋषि परशुराम से भिड़ गया था क्या यह ? तुमने रोका क्यों नहीं, वह महाक्रोधी हैं।

लक्ष्मण : (**हँसकर**) फिर भइया ने उनका क्रोध शान्त कर दिया था माँ। उन्होंने मुझे फिर गले लगा लिया था।

कौशल्या : बड़ा ढीठ हो गया है लक्ष्मण !

राम : माँ ! आज हमारे गुरुदेव विश्वामित्र जी अपने सिद्धाश्रम को

वापस जा रहे हैं। इस समय हम पिताजी को लेकर उनके पास जा रहे हैं। तुम तीनों माताएँ, भरत, शत्रुघ्न को साथ लेकर वहीं आ जाओ। उन्हें बिदा करोगी न !

कौशल्या : हाँ, हाँ। तुम्हारे पिताजी बता रहे थे कि वह अब रुकना नहीं चाहते हैं। आज उन्हें जाना है। उनकी हम पर कितनी बड़ी कृपा है।

राम : तो हम चलें माँ ?

कौशल्या : हाँ, हाँ। तुम लोग चलो। मैं अभी कैकेयी, सुमित्रा के साथ आती हूँ।

[राम, लक्ष्मण प्रणाम करके कक्ष से बाहर जाते हैं। मंच पर प्रकाश धीमा होता है। दृश्य-परिवर्तन]

दृश्य तीन

[राजा दशरथ के महल का एक कक्ष। राम वस्त्र बदल रहे हैं। सीता पास में बैठी है।]

राम : (**सीता के कंधे पर स्नेह से हाथ रखकर**) सीते ! तुम्हारा उलाहना, तुम्हारा क्रोध मैं समझ रहा हूँ।

सीता : नाथ ! मैंने क्रोध तो नहीं किया ? इतना ही तो कहा कि सूर्य निकलते ही आप राजमहल से निकल जाते हैं और सूर्य डूब जाने के बाद ही घर वापस लौटते हैं। न भोजन की चिन्ता, न दिन-भर चलते-चलते थक जाने की चिन्ता, न मेरी चिन्ता और न अपनी चिन्ता। आर्य ! ऐसे कब तक चलेगा ? कितने दिन तक ?

राम : (**मुस्कराते हुए**) देखो, कब तक चलता है। फिलहाल तो ऐसे ही चलेगा। दूसरा कोई चारा है नहीं। विवाह के बहुत दिनों बाद तक तो मैं तुम्हें समय देता रहा, दिन-दिन भर, रात-रात भर हम साथ बने रहे। किन्तु सीते ! परिस्थितियाँ कुछ बदल गई हैं। समय हमेशा होता तो एक ही है किन्तु एक होकर भी वह अपने हर क्षण की अलग-अलग पहचान छोड़ जाता है। समय के हर क्षण की पहचान पा सकना बड़ा कठिन काम है।

सीता : नाथ ! इधर आराम से बैठिये न। आइये, मैं आपके पैर दाब देती हूँ। आप तो आजकल साधारण-सी बात को भी बड़ी पेचीदा बनाकर कहते हैं। अपनी तो समझ में कुछ आता

नहीं।

राम : (**मुस्कराकर**) जनकनन्दिनी ! राजा विदेह जैसे परम विद्वान की पुत्री होकर भी तुम कितनी सरल और भोली हो। आओ तुम भी इधर आओ। मेरे समीप बैठो न।

सीता : बस-बस, रहने दीजिये, मैं ठीक हूँ। आप आराम से बैठें न। चक्रवर्ती सम्राट के इतने बड़े वीर और विद्वान पुत्र भी इतना परेशान रहा करेंगे तो औरों का, साधारण लोगों का क्या हाल होगा ?

राम : औरों का ? किन औरों का ? किन साधारण लोगों की बात कह रही हो ?

सीता : उन साधारण लोगों का जो दिन-भर मेहनत करते हैं और रात को सुख-चैन से खाते-सोते हैं। न उन्हें वैभव से मतलब, न शक्ति से मतलब, न वीरता और विद्वत्ता से मतलब।

राम : (**जोर से हँसकर**) वास्तव में, जानकी ! वे ही परम सौभाग्यशाली हैं। उन्हें न तो अपने नाम और प्रतिष्ठा के डूबने का डर है, न वैभव और शक्ति का उन्माद या डर है, न किसी और के बराबरी में खड़े हो जाने का डर है। उन्हें अपनी सुख और शान्ति के छिन जाने का भी डर नहीं है। वे जिन्हें तुम केवल 'और' कह रही हो, वास्तव में वे परम सुखी हैं। वे जहाँ हैं उन्हें उससे नीचे उतरने का कोई खतरा नहीं है। उन्हें बड़ी आकांक्षाएँ सजाने का शौक भी नहीं होता।

सीता : (**हँसकर**) वे परम सुखी हैं तो छोड़िये यह राजपाट और चलिये वनों में कन्दमूल-फल खावें, घास-फूस की झोंपड़ी बनाकर नदी किनारे बस जायँ। जहाँ केवल आप रहें और मैं रहूँ। मैं आपकी जी भरकर सेवा करूँ और आप भी मुझे जी भरकर प्यार करें। इस इतने बड़े राजकाज से, इतने अधिक वैभव से, इस इतने बड़े साम्राज्य से क्या करना है, जहाँ आर्य की सीता आर्य का एक क्षण का प्यार पाने को तरसती रहे।

राम : जानकी ! बात तो तुम सही कहती हो। अब तक वनों में मुनि विश्वामित्र के साथ था तो इन तमाम चिन्ताओं से दूर था। राज-सुख से तो वन-सुख अच्छा लगता है। तुम ठीक कहती हो। कोई बिताने दे तो मैं पूरा जीवन वनों में रहकर ही बिता देना चाहूँगा।

सीता : (**मुस्कराकर**) ऐसा न कहिये नाथ ! मैं तो बात की बात में कह

गई थी । चक्रवर्ती सम्राट के पुत्र हैं आप । वह भी बड़ी रानी से उत्पन्न सबसे बड़े पुत्र । चक्रवर्ती सम्राट बनेंगे आप । दिशा-दिशा आपकी आज्ञा मानेगी । जन-जन आपकी आज्ञा के बिना हिल नहीं सकेगा। सारे राज भर में बच्चा-बच्चा आपकी आज्ञा के लिए तरसा करेगा । इस उत्तरदायित्व से आप कैसे बच सकते हैं । प्रजा की सुख-सुविधा का सारा ध्यान आप ही को तो रखना होगा ।

राम : सीते ! इन दिनों मैं इसी काम तो सुबह से शाम तक व्यस्त रहता हूँ । पिताजी वृद्ध हो गये हैं । महामन्त्री सुमंत्र स्वभाव से सीधे हैं । देख रहा हूँ राजभर में अव्यवस्था बढ़ती जा रही है । अधिकारी जैसा मन में आता है वैसा आदेश दे रहे हैं । युद्ध सैनिक शिविरों में पड़े अपना स्वास्थ्य बना रहे हैं । सुरक्षा सैनिक अपराधियों से मिलकर धन पैदा करने में लगे हैं । बड़ी अराजकता-सी सारे राज्य में फैल गई है । ऋषियों का, मुनियों का, ब्राह्मणों का, विद्वानों का, साहित्यकारों का आदर घटता जा रहा है ।

सीता : तो इसके लिए उत्तरदायी कौन है ? किसकी शिथिलता से यह सब हो रहा है ?

राम : उत्तरदायी तो राजा होने के नाते पिताजी हैं । महामंत्री सुमंत हैं । किन्तु किसी को उत्तरदायी कह देने से तो जनता को राहत नहीं मिल पाती सीते ! मैंने जाकर देखा है कि पिताजी की उदारता का लाभ उठाकर समाज विरोधी तत्त्व दिन-दहाड़े मन-मानी करने लगे हैं ।

सीता : यह तो उचित नहीं है आर्य ! यह तो किसी भोलेभाले राजा के मीठे स्वभाव का गलत लाभ उठाने वाली बात हुई न !

राम : करूँ क्या, पिताजी ने तो शासन-अनुशासन की कठोरता छोड़कर गाय सरीखे सुमंत्र जी पर सब राजकाज छोड़ दिया है । राज की प्रजा अपने को हर क्षण असुरक्षित समझे, ऐसे में बड़ा पुत्र होने के नाते बिना कोई अधिकार पाये भी, मेरा कर्त्तव्य हो जाता है कि प्रजा के दुःख-सुख का साथी बना रहूँ । यही काम मैं कर रहा हूँ ।

सीता : स्वामी ! यह तो बहुत बड़ा काम है जिसे आप कर रहे हैं । प्रजा को, जनता को लगे कि शासन के उच्च शिखरों पर बैठा हुआ कोई तो है जो उनके साथ है, उनके दुख-दर्द का साथी है ।

राम : तुमने उलाहना दिया न, लेकिन सीते, मैं आजकल सुबह से शाम

तक यही कर रहा हूँ। जनता को विश्वास दिला रहा हूँ कि मैं उनके साथ हूँ। इसमें लोगों को लग रहा है कि सर्वोच्च सत्ता उनके साथ है और इससे सुरक्षा सैनिक भी चौकन्ने हो रहे हैं कि जब राम स्वयं घूम-घूम कर जनता की सुरक्षा की निगरानी भी कर रहे हैं तो वे सभी सचेत रहें।

सीता : नाथ ! मेरा उलाहना नहीं था वह। मुझे यह बात ज्ञात थी ही नहीं। आप जनता के साथ रहें। उनके जन-नायक बनें। उनके हितैषी रहें। यह सबसे बड़ा यज्ञ है, यह सबसे बड़ा तप है कि गरीब से गरीब, असहाय से असहाय व्यक्ति भी अपने को सुरक्षित और सुखी मानकर जिन्दगी जियें।

[द्वारपाल आता है।]

द्वारपाल : राजकुमार, क्षमा करें। राजकुमार की, राजकुमारी की जय हो !

राम : (**चौंककर पलंग से खड़े होकर**) क्यों द्वारपाल, क्या बात है ?

द्वारपाल : क्षमा करें, राजकुमार ! आपको इसी समय चक्रवर्ती सम्राट ने राजसभा में बुलाया है।

राम : इसी समय (**कुछ सोचते हुए**) ठीक है, मैं आ रहा हूँ। तुम जाओ।

[द्वारपाल चला जाता है।]

सीता : इस समय राजसभा में बुलाये जाने का क्या अर्थ हो सकता है नाथ ?

राम : अर्थ ? (**हँसकर**) पिताजी की आज्ञा।

दृश्य चार

[राजा दशरथ की राजसभा। दशरथ मुख्य आसन पर हैं। दाहिने बड़े आसन पर मुनि वशिष्ठ हैं। उनके दाहिने ऋषि वाम हैं। दशरथ के बायें आसन पर सुमंत्र हैं। राम राजसभा में आते हैं।]

राम : पिताजी को, मुनिश्रेष्ठ को, मुनि को महामंत्री को, सभी अमात्यों, रथियों, सभासदों को मैं राम प्रणाम करता हूँ।

दशरथ : राम ! तुम ठीक समय से आ गये। आज दिन-भर राजसभा में हो रही असम्भव घटनाओं की चर्चा होती रही। बार-बार सभासदों ने बताया कि इन लज्जाजनक घटनाओं को कम करने में तुम

सहयोग कर रहे हो मेरे प्रशासन का। यह बात ठीक है न ?

राम : जी, पिताजी ! सहयोग तो क्या कर सकता हूँ किन्तु मैं अपना काम कर रहा हूँ।

दशरथ : सुन रहे हैं गुरुदेव ! राम के प्रशासन में हस्तक्षेप करने की बात जो सभासदों ने उठाई वह सही निकली है न ?

वशिष्ठ : दशरथ ! उसे हस्तक्षेप नहीं सहयोग ही कहो। हस्तक्षेप का तो अर्थ ही कुछ और होता है।

दशरथ : मेरा आशय गुरुदेव, राज्य-शासन मे राम के सहयोग से ही है। राम के सहयोग से प्रशासन सुधर रहा है। मेरा बेटा है वह। इस नाते जनता उसे सम्मान दे रही है, उसका जहाँ वह जाता है स्वागत कर रही है। प्रशासन के सूत्र भी मेरा पुत्र होने के नाते उसकी आज्ञा को महत्त्व दे रहे हैं तो उसमें इसका कोई दोष तो है नहीं।

वशिष्ठ : कोई दोष नहीं है। राजसत्ता को सही-सही चलाने में, प्रशासन को चुस्त बनाने में तुम्हारा ही बेटा क्या कोई भी नागरिक मदद कर सकता है राजन्।

दशरथ : इस राजसभा में मैं यही तो कहना चाह रहा था। राम ने राजसभा में आकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया। अब मैं इस अपराध के लिए राम को एक दण्ड देना चाहता हूँ।

वशिष्ठ : दशरथ ! क्या दण्ड दे रहो तुम ?

दशरथ : गुरुदेव ! आपका आशीर्वाद लेकर मैं राम को अपना बड़ा पुत्र होने के नाते, बड़ी रानी का पुत्र होने के नाते, अवध का युवराज बनाना चाहता हूँ। राजसभा से उसके शीघ्र राज्याभिषेक करने की प्रार्थना करता हूँ।

वशिष्ठ : राजा दशरथ ! हमारा आशीर्वाद भी राम के साथ है। वह सभी गुणों, विद्याओं से सम्पन्न है। उसके हाथों यह देश सुरक्षित रहेगा, जनता सुखी रहेगी। इसमें देर क्यों की जाय। कल अच्छा मुहूर्त है। राज्याभिषेक कल होगा।

दशरथ : गुरुदेव ! आपकी वाणी सत्य होगी। राजसभा का मैं आभारी हूँ। सुमंत्र ! तुरन्त पूरे राज्य में राम के राज्याभिषेक की घोषणा करवा दो। सारी जनता को इस उत्सव में आमंत्रित किया जाय।

दृश्य पाँच

[कौशल्या का कक्ष। राजभवन में कौशल्या और सुमित्रा बैठी हैं। राम का आना।]

कौशल्या : सुमित्रा ! मेरा राम दिन-दिनभर, रात-रातभर प्रजा के बीच घूमता रहता है। न इस माँ के पास आने का समय रहता है, न बेचारी जानकी के पास।

सुमित्रा : दीदी ! भरत को उसके मामा ले गये हैं ननिहाल। मेरा शत्रु भी उसके साथ गया है। हमारे महाराज ठहरे वृद्ध। राज्य में इधर सुना है बड़ी-बड़ी अजीब घटनाएँ घटने लगी हैं। और तो और, कुछ सिरफिरे लोग चोरी, डकैती, राहजनी तक करने लगे हैं।

कौशल्या : लेकिन हमारे महामंत्री तो कहते हैं, प्रजा बड़ी सुखी है। बहुत खुशहाल है।

सुमित्रा : दीदी ! लक्ष्मण बता रहा था कि अब तो हालत काफी सुधर गई है। हमारा राम दिन-दिनभर प्रजा के बीच घूमता रहता है। लोग राम को अपने बीच पाकर धीरज से रहते हैं। अधिकारी भी राम को जनता में देखकर अपना काम ठीक से करते हैं। मेरा लक्ष्मण तो दीदी, एक क्षण भी राम को नहीं छोड़ता है। राजा के बेटे हैं, जनता के बीच आते रहते हैं, लोगों से सम्पर्क बनाये रखते हैं, तो अधिकारी भी सचेत रहते हैं।

कौशल्या : हाँ, सुमित्रा ! पिछले पाँच सालों से मेरा राम इसी तरह से सुबह से शाम तक व्यस्त रहता है।

[राम का द्वार से अन्दर आना]

(**प्रसन्न भाव से**) लो ये आ भी गया।

राम : (**कक्ष में आते ही**) अरे, यहाँ दोनों माताएँ बैठी हैं। दोनों ही मेरा प्रणाम लें। माँ, मैं एक समाचार देने आया हूँ।

कौशल्या : तू और समाचार ! राज के दूत मर गये हैं क्या कि समाचार देने भी तू ही आवे।

राम : यह समाचार ऐसा है माँ कि मुझे ही तुम्हारे पास आना चाहिए था। इस समाचार के साथ माँ का आशीर्वाद मिलना भी आवश्यक है।

सुमित्रा : सुन रही हो दीदी। राम आशीर्वाद लेने आया है। लगता है हमारा बेटा युवराज हो गया है।

राम : हाँ माँ ! आज राजसभा में पिताजी के आग्रह पर मुझे युवराज बनाना स्वीकार कर लिया है। कल ही गुरु वशिष्ठ ने मेरा राज्या-

भिषेक तय कर दिया है।

कौशल्या : **(हर्ष से)** मेरे राम, तू अयोध्या का राजा बनेगा ! ईश्वर की यही इच्छा है।

राम : माँ, इसमें इतना हर्ष और आश्चर्य भी क्या है। राजा का बड़ा पुत्र हूँ। बड़ी रानी का पुत्र हूँ। युवराज तो मुझे बनना ही पड़ेगा।

कौशल्या : नहीं राम, युवराज तुझे नहीं बनना था। केकय-नरेश को जब तेरे पिता ने हराया था तो कैकेयी अपनी सुन्दरता के कारण राजा को संधि में मिली थी। तब केकय-राजा ने तेरे पिता से सन्धि में यह शर्त रखवायी थी कि केवल कैकेयी का पुत्र ही अवध का राजा होगा। तेरे जन्म के बाद इसी बात से तो मैं हमेशा दबी-दबी रहती थी।

राम : तो क्या है माँ ! भरत मेरा भाई है, वह राजा हो जाय मुझे तो वह स्वीकार है। भरत में और मुझमें अन्तर ही क्या है ?

[सीता दरवाजे के बाहर से कक्ष की ओर आ रही है।]

सुमित्रा : दीदी ! सीता भी आ गयी ! बहू को शुभ समाचार तो दे दो।

कौशल्या : आओ बहू ! आओ। तुम्हें पता है कि नहीं मेरा राम कल युवराज होने जा रहा है। अवध का राजा बनेगा वह।

सीता : **(हर्ष से)** माँ ! आप सच कह रही हैं ?

राम : सीते ! माँ तुमसे झूठ भी कहेंगी क्या ? सुनो सीते ! गुरुदेव ने कहा है, हमें अभी से कुछ धार्मिक अनुष्ठान करने होंगे। रात-भर मुझे जमीन पर सोना होगा। तुम जाकर शीघ्र अनुष्ठान की तैयारी करो।

सीता : इसमें कौन सौ जनम लगते हैं। अभी जाकर कर दूंगी। माँ के पाँव छूकर आशीर्वाद ले लूँ। **(कौशल्या व सुमित्रा के पाँव छूती है।)**

कौशल्या : सौभाग्यवती हो बहू ! राम बेटे, जाकर बहन कैकेयी से भी आशीर्वाद तो ले लो। वह सुनकर बहुत खुश होगी।

राम : जी, माता जी, मैं भी यही सोच रहा था। **(जाते हैं।)**

[दृश्य बदलता है।]

दृश्य छः

[देवताओं की सभा। सभी देवता, विष्णु, इन्द्र आदि बैठे हैं।]

इन्द्र : भगवान विष्णु ! अन्य देवताओं के साथ आपने मुझे इस क्षीर-

सागर में बुलाया है। मेरे योग्य सेवा बताइये भगवन् ! मुझे आज्ञा दीजिये।

विष्णु : देवराज इन्द्र ! शायद तुम्हें स्मरण होगा कि एक बार देवताओं की सभा में मुझे आमन्त्रित कर आप लोगों ने मुझसे कहा था कि मदान्ध राक्षस राज रावण देवताओं, यक्षों, किन्नरों और गन्धर्वों को बड़ा कष्ट दे रहा है। ब्रह्मा ने उसे जो वरदान दिया है उससे वह अपराजित हो गया है। देवता, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरों से वह अजेय है। वे उसे नहीं मार सकते।

इन्द्र : देवाधिदेव ! यह प्रार्थना हम सभी देवताओं ने आपसे की थी। आपसे इसी के लिए मनुष्य रूप रखकर रावण का प्रतिकार करने का निवेदन भी किया था। क्योंकि मनुष्य को बहुत हीन समझ कर उसने ब्रह्मा जी से वरदान माँगा ही नहीं था कि वह मनुष्य के लिए भी अपराजेय रहे।

विष्णु : और इसीलिए अंशत: राजा दशरथ के घर मनुष्य रूप में मैंने जन्म भी ले लिया। रावण के सहयोगी ताड़का, सुबाहु, मारीच को मैंने तमाम अन्य बीहड़ राक्षसों सहित मुनि विश्वामित्र के आदेश से समाप्त कर दिया।

इन्द्र : वह हमें पता है भगवन्। उसके लिए हम आपके आभारी हैं। वे राक्षस सभी मुनियों, ऋषियों, वेदज्ञों को बड़ा कष्ट देते थे। वह तो आपने बड़ा उत्तम कार्य किया। लेकिन अभी बहुत काम शेष है। यदि इस उद्देश्य की पूर्ति में हम भी कुछ सहयोग कर सकते हैं तो आप हमें आज्ञा दें प्रभु !

विष्णु : राजा दशरथ ने मुझे अपना बड़ा पुत्र होने के नाते युवराज पद देने का निर्णय ले लिया है। अवध की राजसभा भी यही चाहती है। मैं अवध का राजा हो जाऊँगा तो रावण और दूसरे आततायी राक्षसों को नष्ट कैसे कर सकूँगा; क्योंकि अवध से या अन्य राज्यों से उसकी कोई दुश्मनी नहीं है, न भविष्य में होने की कोई सम्भावना दिख रही है लेकिन मैं जिस उद्देश्य से पृथ्वी पर जनमा हूँ उसके लिए मुझे तो रावण तक पहुँच सकने, उससे युद्ध कर सकने की राह चाहिये। आगे की राह तो मैं बना लूँगा लेकिन सभी देवता आग्रह करें तो देवी सरस्वती यह काम कर सकती हैं कि मुझे युवराज पद न मिले और मुझे अयोध्या किसी तरह छोड़नी पड़ जाय।

सरस्वती : भगवान ! आप स्वयं आदेश कर देते मुझे। इसके लिए सभी देव-

ताओं को बुलाने की क्या आवश्यकता थी।

विष्णु : मैं कह देता तो निश्चय ही तुम मान जाती सरस्वती। किन्तु तुम्हारा भी देव समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान है। तुमसे देवताओं के हित में कोई काम लेना है तो देवताओं को तुमसे ऐसा आग्रह स्वयं करना चाहिये। देवताओं को सारा घटनाक्रम पता भी रहना चाहिये।

इन्द्र : आप आज्ञा करें प्रभु ! हम देवी सरस्वती से हर तरह का विनय करने को तैयार हैं।

विष्णु : मैंने सारी स्थिति सोच ली है। राजा दशरथ की पत्नी कैकेयी विघ्न पैदा कर सकती है। किन्तु वह स्वयं विघ्न पैदा करेगी तो समाज उसे धिक्कारेगा। इतिहास उसे क्षमा नहीं करेगा। यों भी वह नेक विचार की है। मैंने चाहा है वह किसी के बहकावे में आकर विघ्न पैदा करे। विघ्न वही पैदा कर सकती है क्योंकि उसके द्वारा विघ्न पैदा करने का बड़ा सबल कारण है। ठोस आधार है।

इन्द्र : आप बतावें कि वह किसके बहकावे में आकर विघ्न पैदा कर सकती है।

विष्णु : शादी के समय उसके साथ दासी के तौर पर एक कुबड़ी मंथरा आयी थी। वह कैकेयी की वड़ी ही विश्वसनीय दासी है। सरस्वती ! तुम मंथरा में ऐसी बुद्धि डाल दो कि वह राम के अभिषेक से चिढ़ कर कैकेयी को इस बात के लिए तैयार करे कि वह राजा से राम को लम्बा वनवास दिला दे और भरत को राज-तिलक। उसके मन में मंथरा सौतिया डाह पैदा करे। राम के प्रति उसके मन में अब तक जो कुछ भी ममता और स्नेह है उसे वह बदल दे। ऐसी बुद्धि दो सरस्वती उसे।

इन्द्र : किन्तु भगवन् ! क्या रानी की ऐसी कुटिल बात राजा मान जावेंगे ? वह रानी द्वारा इतने विवश तो नहीं किये जा सकते। आखिर राम उनके बड़े पुत्र हैं।

विष्णु : वह विवश हो जावेंगे, क्योंकि एक बार युद्ध में राजा दशरथ को विशेष सहायता देने पर रानी कैकेयी ने दो वर माँगे थे और कहा था, ये वर वह तब ले लेगी जब आवश्यकता होगी। वही दोनों वर वह अब ले सकती है। उसके लिए यही उपयुक्त समय है—यही मंथरा उसे समझायेगी।

सरस्वती : यह अनुचित काम है। सरस्वती कभी ऐसा अनुचित काम नहीं

करती भगवन !

इन्द्र : देवि ! यह देवताओं के हित का काम है। आप ऐसा करेंगी तो हम सभी देवताओं का परम कष्ट दूर होने का मार्ग बनेगा।

सरस्वती : देवराज ! मैं सुबुद्धि देती हूँ। मुझे किसी को कुबुद्धि देने के लिए, आपको दबाव नहीं डालना चाहिए।

विष्णु : देवि सरस्वती ! मान भी लो। अच्छे परिणाम के लिए गलत काम करना भी पड़े तो क्या बुरा है। अन्यथा मैं भी तो लक्ष्य से भटक जाऊँगा न ! मैंने अयोध्या का राजा बनने को तो मनुष्य रूप नहीं धरा न। मैं राजसुख भोगने के लिए तो स्वर्ग छोड़कर पृथ्वी पर नहीं गया हूँ ?

सरस्वती : भगवन ! आप कहते हैं कि ऐसा कार्य मुझे एक बड़े उद्देश्य को पूरा करने के लिए अवश्य ही करना है। तो मैं अभी जाकर मंथरा की बुद्धि हरकर उनमें कुबुद्धि पैदा करती हूँ।

विष्णु : देवि ! ऐसा उपकार करने के लिए सभी देवता, ऋषि और स्वयं मैं भी तुम्हारा आभार मानेंगे।

दृश्य सात

[कैकेयी का कमरा ! मंथरा दासी आती है ! कैकेयी पलंग पर लेटी है।]

मंथरा : रानी कैकेयी ! सोई हो क्या ?

कैकेयी : नहीं, सोई तो नहीं हूँ। (**उठकर बैठ जाती है।**)

मंथरा : वैसे भी तुम्हारा सो जाना ठीक है।

कैकेयी : क्यों, मेरा सो जाना ठीक क्यों है !

मंथरा : राजा की प्यारी हो न, सो तुम्हारा सो जाना ही ठीक है।

कैकेयी : मंथरा ! तू तो पहेली बुझाने लगी है।

मंथरा : और अब पहेली न बुझाऊँ तो क्या जान दे दूँ ?

कैकेयी : (**मंथरा के समीप आकर**) बात क्या है, आखिर तू इस तरह खिन्न होकर तो पहले कभी नहीं बोलती थी।

मंथरा : (**मुँह बनाकर**) राजा की रानी आप हैं। सबसे अधिक प्यार राजा आपको करते हैं और तब भी राजा की बात आपको मैं बताऊँ ? अँधेर होना था सो हो गया।

कैकेयी : (**मंथरा का कंधा पकड़कर**) तू पहेली में ही बात करेगी कि कुछ

साफ-साफ भी कहेगी ?

मंथरा : रानी ! तुम तो राजकुमार भरत को अपने ननिहाल भेजे हुए हो न ? तुम्हें तो मायका चाहिए। अपने घर में जो हो रहा है उससे तुम्हें क्या मतलब ?

कैकेयी : देख मंथरा ! तुझ कुबड़ी को क्रोध में इतनी तनी हुई मैंने कभी देखा नहीं है। वात क्या है ? मुझे सच-सच क्यों नहीं बताती ?

मंथरा : **(आँखें तरेर कर)** तेरी सौत कौशल्या के सुपुत्र राम अवध राज के युवराज होने जा रहे हैं कल। भरत ननिहाल में हैं और राम राज पा रहे हैं। कुछ समझ भी है। रानी, राम राजा हो जाने के बाद भरत को गले लगायेगा ! भरत को और क्या चाहिये।

कैकेयी : **(हर्षित स्वर में)** मंथरा ! यह तूने कितना शुभ समाचार दिया। राम अवध का राजा होगा इससे बड़ा शुभ हो भी क्या सकता है। ले मंथरा, यह मेरी हीरों की माला ले तू। चल मैं अभी जाकर दीदी को बधाई दूँगी। मैं राम को आशीर्वाद दूँगी और अपने प्रियतम राजा के प्रति आभार प्रकट करूँगी।

मंथरा : कितनी भाग्यशाली है कौशल्या रानी। कल उसका बेटा राजा होगा। वाह री नियति, तू भी क्या खेल खेलती है। राजा प्रेम करें कैकेयी को, मँझली रानी को और राजतिलक करें कौशल्या के बेटे का। वाह रे प्रेम ! वाह रे प्रपंच !

कैकेयी : **(क्रोध से)** मंथरा ! तेरी तो अकल मारी गयी है। इसे तू प्रपंच कहती है ! राम क्या केवल कौशल्या का ही बेटा है। मेरा बेटा नहीं ? मेरे भरत से अधिक मानता है वह मुझे ! राम अवध का युवराज हो रहा है। उसे ही तो अवध का राजा होना है। इससे बड़ा सुख और हो भी क्या सकता है ?

मंथरा : बड़ा सुख तो है ही रानी। राम राजा होंगे। कौशल्या राजमाता होंगी। तुम कौशल्या पर चँवर डुलाओगी और भरत राम पर। तुम दासी बन कर रहोगी और भरत मामूली-सा सेवक। लक्ष्मण तो राम का तन और मन है, उसे तो राजा राम राज्य का सर्व-सर्वा बना देगा। और शत्रुघ्न तो लक्ष्मण का सगा भाई है, उसका राम कुछ बिगाड़ना भी नहीं चाहेंगे। सौतेला तो भरत है न ! और भरत से राम को एक डर भी रहेगा कि कभी प्रजा राम का विरोध कर उन्हें राजसत्ता से हटाना चाहेगी भी तो राम जानता है, तब राजा भरत होगा।

कैकेयी : ठीक तो है, भरत राजा होगा भी तो वह अपने बड़े भाई राम का

आज्ञा-पालक ही बना रहेगा। दोनों में अन्तर क्या है ?

मंथरा : राम यह अवसर आने ही नहीं देगा। उसे भरत से ही तो डर रहेगा। लक्ष्मण, शत्रुघ्न से नहीं। राजा होने के बाद कब किस कारण, किस समय राम भरत को अपने मार्ग से हटा दे कौन कह सकता है ?

कैकेयी : (**चिल्लाकर**) मंथरा ! आखिर तू नीच बुद्धि की है न। तू दासी है न। राजवंश के खून के संस्कार तू समझ भी कैसे सकती है। राम अपने भाई भरत को मरवा देगा यह तुझ जैसी कुल्टा ही सोच सकती है। जा तू चली जा यहाँ से। (**क्रोध से काँपने लगती है।**)

मंथरा : मैं तो चली ही जाऊँगी। मैं अब स्वयं ही ऐसी बुद्धिहीन रानी के साथ रहूँगी नहीं। तुम आज खुश हो लो, कल से तुम्हें फिर जिन्दगी-भर रोना ही रोना है। आज मैं दासी हूँ तेरे पाँव दाबती हूँ। कल से तू दासी होगी और कौशल्या के पाँव दाबेगी।

कैकेयी : (**गरजकर**) नीच दासी ! तू नहीं जानती कि मैं राजा दशरथ की सबसे प्रिय रानी हूँ।

मंथरा : रही होगी। कल से दशरथ की सुनेगा कौन ? राजा तो राम होगा। आज्ञा तो उसकी चलेगी। तेरे भरत को राम के, सीता के पाँव धोने हैं वह धोये। हम तो छोटे लोग हैं। बड़े लोगों से उनकी भलाई की बात भी किस हैसियत से करें ? नहीं मानती है तो रहने दे, मुझे कौन रानी बनना है ? मेरा बेटा कौन राजा हुआ जा रहा है। हम तो दासी हैं, तुम्हारे पाँव दाबने से अब क्या लाभ ? रानी कौशल्या के पाँव क्यों न दाबूँ कि पूरे राज्य पर, नौकर-चाकरों पर, महल-रनिवास पर अपना दबदबा तो रहेगा।

कैकेयी : (**कुछ सोचती हुई-सी**) रुको, रुको मंथरा। मुझे थोड़ी देर सोचने दो। जैसा तुम कह रही हो कि कल से तुम कौशल्या के साथ रहोगी ऐसा ही महल के सभी दास-दासी तो नहीं कहने लगेंगे ?

मंथरा : कौन नहीं कहेगा ? तुम्हारा अपना बनकर कौन चाकर रहना चाहेगा ? कल से तुम हो क्या ? कल से तो कौशल्या महारानी हैं, राजमाता हैं।

कैकेयी : (**गंभीर होकर**) मंथरे ! मुझे लग रहा है तुम ठीक कह रही हो। आखिर मैं राम की सौतेली माँ हूँ। सौतेली माँ को भला कौन सौतेला बेटा चाहेगा। लेकिन मंथरे ! तू बता मैं अब क्या करूँ ? और हो भी क्या सकता है ?

मंथरा : तुम क्या नहीं कर सकती हो ? दशरथ जैसे वीर और बुद्धिमान राजा को अंगुली पर नचाने वाली कैकेयी को मैं बताऊँ कि वह क्या करे ? अपने बेटे को कैसे राजा बनाए। समय कभी-कभी हाथ आता है किन्तु वह पानी से भी पतला होता है। हाथ में आते ही उसे पकड़ लेना चाहिए। वह बह जाना, निकल जाना चाहे तो भी उसे छोड़ना नहीं चाहिए।

कैकेयी : राजा निश्चय कर चुके हैं। कल राम का तिलक है। राजसभा निर्णय दे चुकी है। मैं कैसे इतने बड़े निर्णय को बदल सकती हूँ ? मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है।

मंथरा : समय ही किसी की बुद्धि छीन लेता है। किन्तु महारानी ! मैं तुम्हारी बुद्धि समय के हाथों छिनने नहीं दूँगी। याद है, एक बार देवराज इन्द्र मे असुर राजा शम्बर का भयंकर युद्ध हुआ था। उसी युद्ध में राजा दशरथ तुम्हें साथ लेकर देवराज इन्द्र की ओर से··· ।

कैकेयी : (**याद करते हुए**) हाँ···हाँ···हाँ···मुझे याद आया मंथरा, मुझे याद आया वह भयंकर युद्ध। आर्य, बुरी तरह···बुरी तरह ···मंथरा, हाँ याद आया··· (**सिर पकड़ लेती है।**)

दृश्य आठ

[युद्धभूमि की भयंकर आवाजें। तीरों के चलने की ध्वनियाँ। भयंकर टंकारें]

राजा दशरथ : रानी कैकेयी ! देखो असुर कितने प्रचण्ड हैं। मेरा कोई भी तीर लक्ष्य तक पहुँचने ही नहीं देते। ऐसा तो कभी नहीं हुआ था रानी ! ···ऐसा तो कभी नहीं हुआ था···किसी भी युद्ध में।

रानी : आप रुकिये, मैं अपना धनुष भाँजती हूँ। मेरे तीर एक-एक को धराशायी कर देंगे राजन् !

राजा : न-न, तुम रहने दो। अन्यथा लोग कहेंगे राजा के तीर व्यर्थ गये। (**हँसता है**) लो मेरा ये तीर गया, कोई असुर बचेगा नहीं (**तीर जाने का स्वर**) अरे, यह तीर भी कट गया, बड़ा मायावी असुर है यह। आह ! मेरे कलेजे पर किसी ने तीर मार दिया है। आह ! आह !

रानी : आर्य ! मेरे हाथ पर टिक जायें। मेरे कंधे पर सिर धर दें। लीजिए, ये तीर मैंने खींच दिया है। रक्त की धारा बह निकली

है, नाथ ! रथ पीछे करो सारथि।

[एक तीर सनसनाता हुआ सारथि के सीने में आ धँसता है।]

सारथि : आह, महाराज ! मैं गया। मैं···मैं···। (**रथ से गिर पड़ता है।**)

राजा : सारथि भी···गया···देखो रा···नी···रा···नी !

रानी : स्वामी ! यह पानी पीजिए। लीजिए पानी पीजिए। असुर निरंतर बढ़ रहे हैं। आगे आ रहे हैं। गिरियेगा नहीं। होश में आइये नाथ ! सारथि नहीं रहा तो क्या हुआ —मैं सारथि बन रही हूँ। रथ को युद्धभूमि के मध्य से हटाकर ले जा रही हूँ। पीछे···दूर पीछे। नाथ ! सम्हल कर बैठिये, मैं रथ को इस युद्धभूमि से बाहर ले जा रही हूँ।

राजा : कैकेयी···!

रानी : (**हर्ष से**) राजन् ! रथ से उठिये नहीं। मैं अभी रक्तस्राव रोकने की बूटी देती हूँ। (**धम्म से रथ से उतरती है। पुनः रथ में आकर बूटी को हाथ से भींचते हुए**) लीजिए, मुँह खोलिये, दो बूँद मुँह में जाने दीजिए। अभी सारा बहता खून रुक जायेगा।

राजा : (**बेहोशी में**) रानी···मे···री···रा···नी !

[साँय-साँय तीरों के आने के स्वर]

रानी : आर्य ! देखिए न, असुर निरन्तर हमारी ओर बढ़ते चले आ रहे हैं। मैं रथ और आगे सुनसान वन में ले चलती हूँ।

[घोड़ों की टापें। रथ के दूर जाने के स्वर। मंच पर अँधेरा]

[**दृश्य बदलता है।**]

दृश्य नौ

[निर्जन वन। रथ बँधा है। रथ पर राजा दशरथ पड़े हैं। पास में कैकेयी बैठी है।]

राजा : ओह ! (**आँखें खोल कर**) मैं कहाँ हूँ। यह कौन-सी जगह है ? कहाँ आ गया हूँ मैं ?

रानी : राजन् ! असुरराज शम्बर से युद्ध हार जाने के बाद मैं रणभूमि से आपको बाहर ले आयी थी। आप बुरी तरह तीरों से बिंधकर घायल हो गये थे। सारथि भी समाप्त हो गया था। मैं आपके

रथ की सारथि बनकर आपको इस निर्जन वन में लाकर आपका उपचार कर रही हूँ। अब हम युद्धभूमि से बहुत दूर हैं।

राजा : रानी ! तुम कितनी महान् हो। तुम न होती तो दशरथ बच पाता आज ? आज अवध अनाथ हो जाता। कैकेयी ! तुम नहीं जानती कि तुमने कितना बड़ा उपकार किया है मुझ पर, अवध की जनता पर।

रानी : नहीं-नहीं, ऐसा न कहें। मैंने वही किया जो ऐसी स्थिति में किया जा सकता था, जो करना चाहिए था।

राजा : रानी ! मुझे रणभूमि से हटाने, स्वयं सारथि बनने के लिए मैं तुम्हें दो वर दूंगा। तुम जो चाहो दो वर मुझसे माँग लो।

रानी : (**बिगड़कर**) यह वर माँगने का समय है कि प्राण सुरक्षित लेकर घर पहुँचने का ? नाथ ! आपको बचाकर क्या मैं स्वयं सनाथ नहीं हुई, स्वयं नहीं बची ?

राजा : फिर भी तुम्हारे ये दो वचन मुझ पर उधार रहे। जब चाहो माँग लेना। रघुकुल के राजा का वचन है। झूठ न होने देना। कभी भी माँग लेना प्रिये !

रानी : ठीक है आर्य ! जब आवश्यकता समझूँगी माँग लूंगी।

[मंच पर अँधेरा होता है। धीरे से प्रकाश। फिर वही दृश्य जो सात में था।]

दृश्य दस

मंथरा : रानी ! यही दो वर तेरे राजा पर उधार हैं। एक वर तो तू यह माँग कि वह तुरन्त राम को चौदह वर्ष का वनवास दें। दूसरा वर यह माँग कि तेरे बेटे भरत को राजतिलक दें।

कैकेयी : (**प्रसन्न होने के भाव से**) मंथरा ! तूने युक्ति तो सही निकाली। किन्तु चौदह वर्ष के वनवास का क्या मतलब ? एक ही वर्ष बहुत है।

मंथरा : रानी ! चौदह वर्ष इसलिए कि तब तक भरत राज्य पर छा चुका होगा। राम लौटकर उखाड़ना भी चाहेगा तो उखाड़ नहीं सकेगा। बारह वर्ष बाद उसका राज्य पाने का अधिकार भी नहीं रह जावेगा। या यों कहूँ कि चौदह वर्ष अरण्य में रहकर राम राम रह ही नहीं जायेगा। वह जंगली मनुष्य हो चुका होगा जिसे

अवध की जनता अयोध्या मे आने पर बन्दर की तरह दौड़ाने लगेगी।

कैकेयी : (हँसकर) हाँ···हाँ, तू ठीक कहती है मंथरा। मैं बात समझ गयी।

मंथरा : तो जा, आभूषण उतार दे। काले कपड़े पहन ले। कोप मना। बिफर जा। पलंग पर नहीं भूमि पर लेट जा। अस्तव्यस्त हो जा। राजा दशरथ तेरे पास आज यह समाचार देने अवश्य आवेंगे। बस तभी उनसे ये दो वर माँग लेना। पूरा नाटक गम्भीर होकर करना रानी। तब देख तेरा बेटा राजा बनता है कि नहीं? ननिहाल से तुरन्त बुलाया जाता है कि नहीं! कौशल्या की बाँदियाँ तेरे पीछे दौड़ती हैं कि नहीं! स्वयं कौशल्या तेरे पाँव दाबती है कि नहीं! तेरी जिन्दगी बदल जाती है कि नहीं!

कैकेयी : तो ले, ये तोड़े मैंने आभूषण। (आभूषण फेंकती है) ये ले! ये ले! मैं भी राजा को आज अपना असली क्रोध दिखाऊँगी जो राजा ने आज तक न देखा होगा।

दृश्य ग्यारह

[कैकेयी का कोप भवन (निदेशक चाहें तो कोप भवन का दृश्य अलग बना लें जैसी कि परम्परा है, या चाहें तो कैकेयी के कक्ष में ही यह दृश्य दिखा सकते हैं।) कैकेयी सारे आभूषण आदि कमरे के फर्श पर फेंक कर बाल फैलाकर भूमि पर रोती हुई पड़ी है। राजा दशरथ का प्रवेश।]

राजा दशरथ : प्रिये! यह मैं क्या देख रहा हूँ। तुम्हारा यह हाल? यह तुम्हें क्या हो गया है। मैंने तो ऐसा कुछ भी नहीं किया था कि तुम मुझ पर नाराज होकर इस तरह कोप करो। फिर वह कौन है जिसने प्राणों से भी प्यारी मेरी कैकेयी को रुष्ट किया है। तुम उसे जितनी भी कठोर से कठोर सजा देना चाहो दे सकती हो।

[कैकेयी सिसकती रहती है।]

दशरथ : (कैकेयी के पास बैठकर प्रेम से उसके कंधे पर हाथ रखकर) प्राणप्रिये! उठो। मुझे बताओ न, बात क्या है?

कैकेयी : (बिफर कर) मुझसे पूछ रहे हैं? (जोर से सिसक कर) मेरा मन अशान्त है। मैं कुछ कह नहीं पाऊँगी। मुझे मेरे हाल पर

छोड़ दीजिए। (**फिर सिसकती है।**)

दशरथ : मन अशान्त है ? क्या मुझे भी सही बात नहीं बता सकोगी ?

कैकेयी : आपके लिए मैं हूँ ही क्या चीज ? मेरी हस्ती भी क्या है आपके लिए ? आपने देवासुर संग्राम में घायल हो जाने पर मुझे दो वर दिये थे। उसके बाद फिर कभी याद रहे वे आपको ? (**सिसकती रहती है।**)

दशरथ : हाँ, हाँ, याद आया। दण्डकारण्य में वैजयन्तनगर के असुर राजा शम्बर से जो देवराज इन्द्र का भयंकर युद्ध हुआ था उसमें तुमने मुझे बचाया था। मुझे याद है मैंने तुम्हें दो वर माँगने को कहा था। तुमने तब नहीं माँगे थे। तुम्हीं ने कहा था, जब आवश्यकता होगी माँग लूंगी। प्रिये ! वे तुम्हारे दो वर मेरे पास सुरक्षित हैं।

कैकेयी : सुरक्षित हैं तो आज वे दो वर आप मुझे दीजिये। आप इक्ष्वाकु-वंशी राजा हैं। धर्मात्मा हैं। सच के लिए प्राण भी दे देते हैं। है न ?

दशरथ : यह कहने की आवश्यकता क्यों पड़ी ? मैं अपने वचन से कभी टला हूँ क्या ? तुम माँगो तो सही रानी ! समुद्र को छोड़कर सारी पृथ्वी, पृथ्वी की सारी वनस्पति, सारे रत्न जो भी तुम्हें चाहिए मैं दूंगा। तुम माँगो तो।

कैकेयी : डरती हूँ राजन् ! माँगू भी और आप मुकर जायें कहीं।

दशरथ : कैकेयी ! अब तक ऐसा कभी तुमने देखा है कि जो बात मैंने कह दी वह पूरी नहीं हुई है। और फिर आज···आज तो प्रिये, उसके अलावा भी कुछ माँगो।

कैकेयी : तो पहला वर तो राजन् ! मुझे यह दो कि राम के राज्याभिषेक के लिए जो सामग्री तैयार की गई है कल उसी से मेरे बेटे भरत का राजतिलक हो।

दशरथ : भरत का राजतिलक ?

कैकेयी : हाँ आर्य ! राम की जगह भरत का। और दूसरा वर मैं माँगती हूँ कि राम को तपस्वी वेश में वल्कल पहन कर चौदह वर्षों तक दण्डकारके बीहड़ वनों में रहना होगा।

दशरथ : (**आश्चर्य से**) कैकेयी ! यह तुम सही कह रही हो ? न-न, तुम हास्य कर रही हो रानी ! क्योंकि ऐसा वर तुम नहीं माँग सकती। राम तो तुम्हें भरत से भी प्यारा है। राम के लिए तुम्हारे मन में ऐसी बात भला कैसे आ सकती है ? तुम्हारा हास्य भी कितना मर्मभेदी होता है। है न ?

कैकेयी : (**रूठे स्वर में**) हास्य भला मैं क्यों करूँगी ? मैं अपने भरत को अवध का राजा बना देखना चाहती हूँ। मैंने जो माँगा है राजन्! वह सचमुच माँगा है। मुझे यही दो वर चाहिए और कुछ नहीं।

दशरथ : (**जोर से चीखकर**) पापिन ! दुष्टा ! मूर्ख ! पतिता ! यह तूने क्या माँगा मुझसे ? तुमने मुझसे वह माँग लिया जो मैं दे ही नहीं सकता। जिसे देने का मैं अधिकारी भी नहीं हूँ। तू इतनी बड़ी कुल्टा क्यों बन गयी है ? अनर्थ न माँग प्रिये, अनर्थ न माँग।

कैकेयी : मेरे भरत का राजतिलक हो। राम को चौदह साल का वनवास हो—यही दो वर मुझे चाहिये आर्य !

दशरथ : (**गरजकर**) तुझे यही दो वर चाहिए ? दुष्टा ! तूने सीधे-सीधे यह क्यों नहीं कहा कि तुझे राजा दशरथ के प्राण चाहिए। मूर्ख रानी, तू समझती है कि प्राणों से भी प्रिय अपने बेटे राम को मैं दण्डकारण्य जैसे बीहड़ जंगली जानवरों से भरे वन में, वल्कल पहना कर छोड़ दूँ ? तूने सोधे-सीधे यह क्यों नहीं कहा कि राम को मैं प्राणदण्ड दे दूँ। मैं बड़ी खुशी के साथ भरत को राज्य दूंगा। तेरा भरत अवध का राजा हो जावेगा। किन्तु प्रिये ! राम को वन में न भेज।

कैकेयी : राम, राम, राम। इस राम से मैं ऊब गई हूँ राजन् ! कितना चाहते हो राम को ! राम के बाद भी आपके तीन पुत्र हैं।

दशरथ : तुम तो रानी, राम से ऊब गई हो। लेकिन राज्यकर्ताओं ने, जनता ने कभी भी मेरे राम की कोई शिकायत नहीं की है। उन सबकी इच्छा पर ही मैंने युवराज-पद के लिए राम को ही चुना था।

कैकेयी : आपने, आपकी राजसभा ने चुना होगा राम को। लेकिन मैंने तो नहीं चुना।

दशरथ : रानी ! मैं कल ही भरत को ननिहाल से तुरन्त बुलाकर राज-तिलक कर दूँगा। भरत ही अवध का राजा होगा।

कैकेयी : लेकिन राम को वनवास भी देना होगा ताकि मेरा बेटा निष्कंटक राज करता रहे। और राजमाता बनने का अधिकार मेरा हो।

दशरथ : मैं राम की शपथ लेकर कहता हूँ कि तू एकछत्र राजमाता रहेगी। मैं कौशल्या को कहूँगा कि वह तेरी बाँदी बनकर रहे। तेरी सेवा करती रहेगी वह। उस पर मैं इतना भरोसा कर सकता हूँ किन्तु मेरी रानी, तू मेरे राम को वनवास न दे। मेरा राम, भरत का

सेवक बनकर अयोध्या में ही रहे। क्या इतना भी तू नहीं कर सकती।

कैकेयी : मैं राम को अवध में नहीं रहने देना चाहती। भरत को भी मैं जानती हूँ। राम के रहते भरत राज्य-शासन नहीं लेगा। भरत के नगर में आने से पहले ही राम वन को चला जाय तभी यह सम्भव हो सकेगा।

दशरथ : कैकेयी ! इतना बड़ा अनर्थ करने पर तुल गयी तू। यह तुझे अचानक क्या हो गया है। तू मेरे प्राण तो ले ही रही है मुझसे ऐसे वचन लेकर, मैं अपनी प्रतिज्ञा के कारण बाध्य भी हूँ, लेकिन अपने जीवन-भर तू भी रोती-कलपती रहेगी रानी ! हे राम !

राजा : (बेहोश होकर) मेरे राम ! ओह···रानी ! ओह···मेरा राम कहाँ···

रानी : मैंने राम को यहीं बुलवाया है, राजन् ! आप संयत रहिये।

राजा : राम को बुलाया है तुमने रानी ! मेरा काँपता स्वर तब तक डूबने नहीं देना। राम को आने दो रानी ! मेरे राम को आने दो। मैं उसे एक झलक देखकर दम तोड़ना चाहता हूँ।

[मंच पर अँधेरा होता है फिर प्रकाश उभरता है। राम कैकेयी के कक्ष में आते हैं।]

राम : क्या आज्ञा है माँ ? और यह क्या माँ, पिताजी भूमि पर क्यों पड़े हैं ? क्या हो गया पिताजी को ? पिताजी, आँखें खोलिए। राजवैद्य को···

कैकेयी : राम ! एक बार युद्ध में राजा ने मुझे दो वर माँगने को कहा था। वह वर मैंने आज माँग लिये तो राजा शायद देना नहीं चाहते ! इसी से दुःखी हो···

राजा : (गरजकर) देना नहीं चाहता ? अरी पतिता ! तू ऐसा लांछन न लगा। लगता है मेरे प्राणों से भी तेरी प्यास नहीं बुझेगी।

राम : क्या वर माँगे थे माँ ! बताइये तो। पिताजी वह वर देने में इतने असमर्थ क्यों हो रहे हैं ?

कैकेयी : मैंने माँगा था कि अवध के राजसिंहासन पर भरत को बिठाया जाय।

राम : यह तो बहुत अच्छी बात है माँ। यह तो माँ, आपको वर नहीं मुझे वरदान देने जैसा है। पिताजी ! इतनी-सी बात से आप चिन्तित क्यों हैं ? भरत हर तरह से राज्य सँभालने के योग्य है। भरत से अधिक उपयुक्त इस काम के लिए और कौन हो सकता है ? और

दूसरा क्या वर माँगा था माँ ?

कैकेयी : यही कि तुम वल्कल पहनकर चौदह वर्षों तक दण्डकारण्य में विचरण करो।

दशरथ : राम ! ...मेरे राम !

राम : बस, इतनी-सी बात के लिए पिताजी, आप दुःखी हो रहे हैं। ऐसा वचन माँग कर तो पिताजी, माँ ने मेरी साध पूरी कर दी। यही तो मेरी आकांक्षा थी।

दशरथ : नहीं राम ! ऐसा नहीं होगा। मैं तुम्हें वन नहीं जाने दूँगा। मुझे झूठा हो जाने दो। किन्तु राम, मैं तुम्हें जंगली ज़ानवरों, राक्षसों के बीच नहीं छोड़ सकता।

राम : जंगली जानवर और राक्षस मेरा कुछ नहीं कर सकते। मैं वहाँ बहुत सुखी रहूँगा। मुझे तो वन में रहने, विचरने की आदत पड़ी हुई है।

दशरथ : नहीं। यह नहीं होगा राम। आह ! आह ! (**शिथिलतावश धरती पर सिर टेक लेते हैं।**)

राम : माँ ! मैं अभी आज ही वन चला जाऊँगा। पिताजी का वचन पूरा होगा। पिताजी, चैतन्य होइये। चौदह साल का समय होता ही कितना है। मुझे आशीर्वाद दीजिए, पिताजी ! माँ, आप भी मुझे आशीर्वाद दीजिये।

दशरथ : नहीं, नहीं। राम, ऐसा न करो। ऐसा न करो राम (**कराहने लगते** हैं।)

दृश्य बारह

[कौशल्या के महल का कक्ष। कक्ष में कुछ पूजा-सामग्री रखी है। सुमित्रा साथ में है। दोनों हर्ष में झूम-सी रही हैं। समय प्रातःकाल सूर्योदय से पहले का]

कौशल्या : देख बहिन सुमित्रा ! दासी से कहा था कि ब्राह्ममुहूर्त में ही मेरी पूजा का सामान तैयार कर देना। स्नान कर मैं शिवजी की पूजा कर लूंगी। लेकिन ये दासियाँ कितनी ढीठ हो गयी हैं कि इतनी देर कर दी। अभी मुझे अपने राम के राज्याभिषेक की तैयारी भी तो करनी है। (**मन्दिर की तरफ इशारा करके**) लो यह देखो, अभी तक नैवेद्य भी नहीं लाया गया है।

सुमित्रा : तुम पूजा पर बैठो दीदी ! मैं स्वय जाकर नैवेद्य की सामग्री मँगवाती हूँ ।

कौशल्या : इनकी लापरवाही तो देख सुमित्रा ! इतनी खुशी के दिन भी ये दासियाँ जल्दी-जल्दी काम नहीं कर सकतीं ।

सुमित्रा : देखो दीदी ! **(दूर से आती दासी की ओर इशारा कर)** वह आ गया नैवेद्य, आप पूजा करें ।

दासी : **(कक्ष में आकर)** महारानी ! पूजा-सामग्री ।

कौशल्या : अब नींद खुली तुम लोगों की ? देख रही हो, कितना समय हो गया है ?

सुमित्रा : चलो, कोई बात नहीं दीदी ! अब जल्दी पूजा कर लो ।

कौशल्या : अपने शिव का पूजन मैं अभी किये देती हूँ । फिर बहू सीता को भी तो तैयार करना होगा । उसका पति अवध के राजसिंहासन पर अभिषेक पाने जा रहा है । उसे युवराज के बगल में राजसिंहासन पर बैठना होगा राजसभा में ।

सुमित्रा : दीदी ! तुम जल्दी से पूजा कर लो न । हम-तुम अभी चलकर सीता को सजा देंगे ।

कौशल्या : आओ, तुम भी आ जाओ सुमित्रा ! भगवान शिव की आरती कर लें हम ।

सुमित्रा : दीदी ! देखो **(बाहर द्वार से आते राम की ओर देखकर)** राम आ रहा है । कितने लम्बे-लम्बे डग रखते हुए आ रहा है अपना राम । कितना अच्छा लग रहा है । बिल्कुल अवध का राजा जैसा ।

राम : **(आते ही दोनों माताओं को प्रणाम करके)** माँ ! मैं अभी वन को जा रहा हूँ । मुझे आशीर्वाद दो ।

कौशल्या : वन को जा रहे हो ? यह क्या कह रहे हो तुम राम ? तुम्हारा तो राज्यपद पर अभिषेक होने जा रहा है अभी । **(आशंका से स्वर भीग उठता है ।)**

राम : अब मेरा नहीं माँ, राज्याभिषेक तो मेरे भाई भरत का होने जा रहा है । मुझे तो भरत के राज्याभिषेक से पहले ही चौदह वर्ष के लिए दण्डकारण्य की ओर चल देना है ।

कौशल्या : **(काँपती हुई भीगे स्वर में)** ऐसे बोल न बोल न मेरे राम ! ऐसी अनर्थ की बातें मत कर बेटे ! शुभ अवसर पर ऐसा क्रूर हास्य नहीं करते बेटे !

सुमित्रा : **(आश्चर्य और अविश्वास के स्वर में)** दीदी ! यह क्या कह रहा

है राम ?

राम : यही सच है छोटी माँ ! माँ, मैं सच कह रहा हूँ। इसमें लेशमात्र भी हास्य नहीं है।

कौशल्या : **(अचेत होती-सी, बहुत धीमे स्वर में)** ऐसा सच भी न कह बेटे कि मेरे ऊपर पहाड़ ही टूट पड़े। भला ऐसा सच किस काम का कि मेरे ऊपर वज्रपात ही हो जाय।

राम : यह पिताजी की प्रतिज्ञा को पूरा करने का प्रश्न है माँ। मँझली माँ को पिताजी ने कभी दो वर माँगने का वचन दिया था। उन्होंने आज वह दो वर माँग लिए हैं। एक में मुझे बनवास और दूसरे से भरत को राज्यतिलक।

कौशल्या : **(क्रोध से उबल कर)** इतनी पतित हो गयी है कैकेयी ? भरत को राज्यतिलक दिला देती, कौन मना कर रहा था ? किन्तु तुम्हें वनवास क्यों दे रही है वह ?

सुमित्रा : **(क्रोध से)** उसका दिमाग फिर गया है क्या ? दीदी, हमारे राम जैसे देवता पुरुष को उसने बनवास देना चाहा है। यह तो हद हो गयी ?

राम : इसमें क्रोध करने या दुःखी होने की क्या बात है ? मुझे बनवास स्वीकार है। आप दोनों मुझे आशीर्वाद दें।

कौशल्या : आर्य ने तुम्हारा वन जाना स्वीकार कर लिया है बेटे ? उन्होंने कह दिया है कि तुम चौदह साल भीषण वनों में रहो ?

राम : उन्होंने वचन तो माँ को दे ही रखे हैं। वह माँग रही हैं तो उन्हें पूरा कर देना चाहिए। पिताजी की प्रतिष्ठा क्यों गिरे ? उनका वचन झूठा नहीं होगा माँ !

कौशल्या : देखो बहन सुमित्रे ! राजराजेश्वर जिसे सबसे प्रिय रानी मानते रहे, जिसके रूप-सौन्दर्य पर सदा मोहित रहे, उसी ने कितनी बुरी तरह डस लिया राजा को आज ?

सुमित्रा : आश्चर्य है दीदी, कि राम जैसे बेटे को बनवास देने की बात उठ आयी है। भला इससे बड़ा अँधेर भी कुछ हो सकता है ?

राम : लेकिन माँ, मेरी आत्मा कहती है कि मुझे जाना चाहिए। हमारे रघुकुल की यह रीत चली आ रही है, प्राण चाहे चले जायँ, पर वचन न जाने पायें। फिर पिताजी का वचन क्यों जाये ? क्या प्रतिष्ठा रह जावेगी फिर रघुकुल की ?

कौशल्या : **(सिर पकड़कर आँखें बन्द कर)** देखो सुमित्रा ! मेरा तो सिर घूम रहा है। मैं गिरने को हो रही हूँ। क्या होने जा रहा था, क्या

हो रहा है यह ? मेरा राम वनवासी होकर रहेगा सुमित्रा ? तू कैकेयी से कह दे कि मैं हमेशा-हमेशा के लिए उसकी दासी बनी रहूँगी। मेरा राम भी उसके बेटे का दास बना रहेगा। लेकिन मेरे राम को वन न जाने दो बहन ! मेरे राम को वन न जाने दो **(रोते हुए सुमित्रा के कन्धे पर सिर टेक देती है। फफक-फफक कर रोने लगती है।)**

सुमित्रा : मैं क्या कर सकती हूँ दीदी ! तुम तो जानती हो कि हमारे राजा अपने वचन के कितने पक्के हैं। राम को वे प्राणों से भी अधिक चाहते हैं। तो इस दुष्ट कैकेयी ने उनकी गर्दन पर ही हाथ रख दिया है।

कौशल्या : नहीं बहन ! मेरा राम वन नहीं जाएगा। उसे रोक लो बहन। कुछ करो, कुछ करो सुमित्रा ! किसी कीमत पर भी ऐसा न होने दो। **(बेहोश हो जाती है।)**

सुमित्रा : दीदी ! दीदी ! आँखें खोलो दीदी ! दीदी ! आँखें तो खोलो !

राम : माँ मूर्छित हो गई हैं, छोटी माँ ! इन्हें सचेत करो। **(पास रखा जलपात्र उठाकर)** यह लो, इन्हें पानी पिलाओ।

सुमित्रा : दीदी ! दीदी ! **(पलंग पर बिठाकर, मुँह में जल डालती है)** देखो दीदी ! राम तुम्हें कुछ कह रहा है। आँखें खोलो दीदी !

राम : माँ को सचेत करो, छोटी माँ ! **(द्वार की ओर देखकर)** सीता आ रही है, वह माँ को देखकर और घबड़ायेगी।

[सीता का आगमन]

सीता : आर्य ! मैं माँ के पास आयी थी। माँ ने कहा था कि प्रातः ही वह शिव का पूजन करेंगी। मुझे भी बुलाया था माँ ने।

राम : सीते ! माँ तो सो रही हैं। तुम शिव की पूजा कर लो न।

सीता : मैं कैसे कर लूँ ? माँ ही पूजा करेंगी। उन्हें जगाइये न ! खुशी के लहराते सागर के बीच कोई माँ क्या इस तरह सो सकती है। छोटी माँ ! आप बतायें, बड़ी माँ रुष्ट क्यों हैं। अभी घड़ी-भर बाद आर्य का राजतिलक होना है। सभी तैयारियाँ पूरी हो रही हैं।

सुमित्रा : **(रोते हुए)** बहू ! बड़ा अनर्थ होने जा रहा है। दीदी अचेत पड़ी हैं।

सीता : **(आश्चर्य से)** अचेत पड़ी हैं ? अनर्थ होने जा राहा है ? कैसा अनर्थ छोटी माँ ? **(कौशल्या के पास पहुँचकर)** माँ ! आँखें खोलिये माँ। **(मुँह पर जल के छींटे डालती है।)**

कौशल्या **(सचेत होते हुए)** ओह ! मेरे राम ! ओह ! ओह ! **(आँखें खोल-**

कर) बहू ! तुम आ गयी। मेरा राम कितनी बुरी खबर लेकर आया है। सुना तूने ?

सीता : (**आश्चर्य के स्वर में**) कैसी खबर माँ ! आर्य ! (**राम की ओर मुड़ कर**) कुछ बताइये तो, बात क्या है ?

राम : (**मुस्कराकर**) सीते ! माँ बुरी खबर कह रही हैं लेकिन बुरा कुछ भी तो नहीं है। राजतिलक मेरा नहीं भरत का होगा। मुझे वन जाना होगा।

सीता : वन जाना होगा ? यह कैसा निर्णय है ? कब तक के लिए वन जाना होगा आपको ? राजतिलक आपका क्यों नहीं होगा ?

सुमित्रा : बहू ! चौदह वर्ष के लिए वन में रहना है।

सीता : चौदह वर्ष के लिए ? किसलिए जाना है ? आपने क्या तय किया है आर्य ?

राम : मैं जाऊँगा। मुझे जाना होगा सीते !

सीता : जाना होगा ? क्यों जाना होगा ? ऐसा क्या है नाथ !

राम : पिताजी की आज्ञा है। मुझे उनकी आज्ञा माननी होगी।

सीता : पिताजी की आज्ञा है ? पिताजी ने आज्ञा दी है कि आप चौदह वर्ष वन में रहेंगे ?

राम : हाँ, पिताजी की आज्ञा है। उन्होंने मँझली माँ को वचन दिया है।

सीता : मँझली माँ को ? (**कुछ सोचती हुई-सी**) तो नाथ, मैं भी आपके साथ चलूँगी।

राम : तुम ! मेरे साथ वन चलोगी ?

सीता : क्यों, आप आश्चर्य से क्यों पूछ रहे हैं ?

राम : सीते ! तुम्हें यहाँ रहकर माँ की सेवा करनी होगी। तुम वन का वह कठिन जीवन नहीं झेल सकती।

सीता : आपसे अलग मेरा कोई और जीवन नहीं है नाथ ! मैं माँ से आज्ञा ले लूँगी। ऐसा न करिए कि आप जंगल में कष्ट का जीवन बितायें और मैं यहाँ राजसुख भोगती रहूँ।

राम : नहीं सीते ! ऐसा हठ नहीं किया करते। मैं तो वन में रहने का आदी हो चुका हूँ। मुझे वहाँ कोई कष्ट नहीं होगा ?

सीता : तो आपके साथ रहकर मुझे ही कौन-सा कष्ट होगा ? बल्कि आपकी सेवा का सौभाग्य ही तो मिलता रहेगा।

कौशल्या : राम ! बहू ठीक कहती है बेटे ! तेरे साथ रहेगी तो कष्ट कुछ कम होंगे।

सीता : माँ ठीक कहती हैं, आर्य ! मुझे साथ रह दीजिए। मैंने अग्नि को

साक्षी मानकर आपको जीवन-साथी माना है। मुझे इस तरह अपने से दूर न कीजिए। एक-दूसरे के सुख-दुःख में साथ रहने की प्रतिज्ञा की है हमने।

कौशल्या : हाँ राम ! तुमको वन जाना ही है तो सीता को भी साथ ले जाओ। अकेले तो नहीं रहोगे। आपस में सुख-दुःख जो भी होगा, बाँट लोगे।

सुमित्रा : दीदी ठीक कहती हैं राम ! सीता को साथ रखने से कम से कम एकदम अकेलापन तो नहीं रहेगा।

राम : अच्छा, तो चलो सीते ! फिर देर क्यों की जाय '

[लक्ष्मण का प्रवेश]

सीता : लो लक्ष्मण आ रहे हैं। लगता है क्रोध में हैं।

लक्ष्मण : भइया ! अभी-अभी जो मुझे सुमंत्र ने बताया क्या वह सत्य है ?

राम : (**मुस्कराकर**) सुमंत्र क्या तुमसे कुछ झूठ बतायेंगे ?

लक्ष्मण : तो आज प्रलय हो जावेगी। अवध की सेनाएँ आज मुझसे भयंकर युद्ध करेंगी। ऐसी आज्ञा देने वाले पिताजी को और ऐसी कुटिल माँ को मैं अपने प्रतिकार से अवश्य अवगत करा दूंगा। मँझली माँ को मैं आज बता दूँगा कि अगर वह हमें सौतेला समझती हैं तो सौतेले कैसा व्यवहार करते हैं यह भी देख लें।

राम : ऐसा क्रोध नहीं करते लक्ष्मण। यह बुरी बात है। वे हमारे मात-पिता हैं। वे पूज्य हैं। उनकी चरण-धूलि हमारे सिर पर है। उनकी कोई भी आज्ञा हमारे लिए बुरी नहीं हो सकती। उसमें हमारा हित ही होगा।

लक्ष्मण : माता-पिता हैं ? अपनी सन्तान के लिए माता-पिता क्या ऐसा ही करते हैं भइया ! आपको वन भेज देने और भइया भरत को युवराज बनाने में कौन-सा अपना हित दिख रहा है आपको ? मुझे रोकिए नहीं। जिस भइया भरत को राज दिलाने के लिए यह कुचक्र रचा गया है मैं उस सारे कुचक्र को ही समाप्त कर दूंगा। (**सुमित्रा की ओर देखकर**) तुम्हारी सौगंध लेकर कहता हूँ माँ ! अगर शुत्रघ्न ने भी भइया भरत का साथ दिया तो मैं उसे भी मार डालूँगा। मैं इस धरती को आग लगा दूंगा आज। मैं इस अवध के महलों को ध्वस्त करके रख दूँगा। वह कौन है जो राम को राजसिंहासन पर बैठने से रोक सकता है ? किसमें है इतनी शक्ति, मैं भी देखूँगा आज।

राम : लक्ष्मण मैं कहा न, यह और किसी का नहीं मेरा निर्णय है। अवध

का राजा भरत होगा और मैं वन जाऊँगा। इसमें भरत का या माता-पिता का क्या दोष है ?

लक्ष्मण : भइया ! ऐसा अनिष्टकारी निर्णय अगर आप लेना चाहें तो क्षमा करें, आप भी नहीं ले सकते। आप वन नहीं जायेंगे। मैं स्वयं अपने प्राण देकर भी आपको ऐसा निर्णय लेने से रोकूँगा।

राम : (हँसकर) इसमें अनिष्ट की क्या बात है ? राम का ही राजा होना इतना आवश्यक है क्या ? भरत इस योग्य नहीं है क्या ? मेरा तो मन राजधानी से अधिक जंगल में सुखी रहता है, तुम तो जानते ही हो। यह तो मेरी कामना पूरी हो रही है, लक्ष्मण ! वन ने ही तो मुझे जीवन जीना सिखाया है।

लक्ष्मण : तो आप अकेले नहीं जायेंगे।

राम : अकेले कहाँ ? मेरे साथ सीता भी तो जा रही है।

लक्ष्मण : भइया ! मुझे भी ले चलिये। मैं आपके बिना नहीं रह सकूँगा।

राम : तुम यहीं रहो लक्ष्मण ! माता-पिता की सेवा करो तुम। मेरी ओर से यह काम तुम्हीं को करना होगा।

लक्ष्मण : मुझे मत रोकिए भइया ! मुझे चलने दीजिए। मैं यहाँ आपसे अलग रह ही नहीं सकूँगा। मैं आपसे कभी अलग नहीं रहा तो आज मना क्यों करते हैं ? मुझे आज्ञा दीजिए भइया राम ! अपने साथ चलने की आज्ञा दीजिए मुझे।

सुमित्रा : मेरा लक्ष्मण ठीक कह रहा है राम ! तुम्हारी और सीता की सेवा करेगा यह। साथ ही तुम दोनों का मन बहलाता रहेगा। तुम्हारे दुःख-कष्ट बाँट लेगा।

राम : छोटी माँ भी कह रही हैं, तो ठीक है। लक्ष्मण ! तुम चल सकते हो।

दृश्य तेरह

[राम, लक्ष्मण, सीता का माँ कौशल्या, सुमित्रा, गुरु वशिष्ठ, वामदेव सहित राजा दशरथ के पास जाना। रानी कैकेयी का कोप-भवन। राजा दशरथ भूमि पर पड़े हैं। कैकेयी पलंग के पाये पर बैठी है। वशिष्ठ सहित सम्पूर्ण मण्डली कोप-भवन में आती है।]

कैकेयी : (झुककर) गुरुदेव के चरणों में प्रणाम करती हूँ।

वशिष्ठ : कैकेयी ! यह क्या है ? चक्रवर्ती सम्राट इस तरह धरती पर बेसुध पड़े हुए हैं ?

राम : गुरुदेव ! कारण जानकर भी, कारण पूछ कर माँ को ताड़ित न कीजिए। अब तो माँ, मैं वल्कल पहन कर, धनुष-तूणीर धारण कर आपसे और पिताजी से बिदाई लेने आया हूँ। सीता और लक्ष्मण भी मेरे साथ जा रहे हैं।

कैकेयी : वन तो राम केवल तुम्हें जाना था। सीता और लक्ष्मण क्यों जा रहे हैं ?

राम : हाँ माँ ! पिता जी की आज्ञा तो मेरे लिए ही है। किन्तु अपनी इच्छा से सीता और लक्ष्मण भी जाना चाहते हैं। माँ और छोटी माँ भी यही चाहती हैं।

कैकेयी : यदि ये जाना ही चाह रहे हैं तो मुझे क्या आपत्ति हो सकती है। लेकिन बड़ी दीदी व सुमित्रा को आपत्ति न हो।

लक्ष्मण : जब बड़े भ्राता वन जा रहे हैं, उनके जाने पर धरती नहीं धँस सकती, किसी की छाती नहीं फट सकती, तो हमारे जाने में क्या है ?

कैकेयी : वह आर्य की इच्छा से हो रहा है।

लक्ष्मण : आर्य की इच्छा से तो भइया भरत को युवराज भी बनाया जा रहा है। बड़े भाई को वन भेजकर छोटे भाई का राजतिलक हो रहा है !

राम : लक्ष्मण ! इस तरह की तीखी बात न करो। मन को शांत करो लक्ष्मण !

लक्ष्मण : भइया ! मन की भी तो सीमा है। कैसे इस तरह इन बातों से शांत कर लूँ मैं अपने मन को ?

कैकेयी : राजा ने राम को वन भेजने की आज्ञा दी है लक्ष्मण ! इसलिए उन्हें राजसी वस्त्र व अलंकरण त्याग देने होंगे। उनके साथ तुम्हें या सीता को भी जाना है तो तपस्वी के भेष में वल्कल पहन कर कैसे रह सकोगे तुम लोग ? राजसी वस्त्रों में तुम लोग रहना उचित नहीं समझोगे। यह नहीं कि राम तपस्वी रहें, शेष उसके साथ सेना की तरह पीछे-पीछे जावें। राजवस्त्रों में जावें।

दशरथ : ओह, राम ! कैकेयी दुष्टा। यह तू क्या कह रही है। गुरुदेव ! आप सुन रहे हैं ?

वशिष्ठ : हाँ, सुन रहा हूँ राजा दशरथ ! तुम तो संज्ञाशून्य हो, कुछ सुनते हो, कुछ नहीं सुनते हो। किन्तु कैकेयी, तेरा सर्वनाश हो। राम

वल्कल में है। लक्ष्मण वल्कल में है। तू चाहती है कि घर की लाज सीता बेटी भी वल्कल पहन कर घूमे। निर्लज्जे! सोच तो, तू क्या चाह रही है?

दशरथ : गुरुदेव! यह मेरी बहू को भी निर्वस्त्र कर देना चाहती है। दुष्टा, पापिन, कुल्टा, मेरे राम को नंगा कर देने से मन नहीं भरा तेरा? मेरी बहू को भी नंगा करेगी तू ?

राम : पिताजी! आप इतने व्याकुल क्यों होते हैं। सीते! तुम भी वल्कल पहन लो। हम वनवासी हैं। वनवासियों के वेश में ही हमें रहना भी चाहिए।

दशरथ : ऐसा न कर राम! गुरुदेव! आप राम को रोकिये कि वह बहू को वन न ले जावे। ले जावे तो मेरी बहू राजसी बनकर ही जावेगी। मैंने राजबहू को वन जाने की आज्ञा नहीं दी है।

वशिष्ठ : राजा दशरथ! कैकेयी के कहने से तो सीता वल्कल पहनेगी नहीं। कैकेयी ने जो वर लिए हैं तुमसे, उससे राम को वनवास हो सकता है, सीता और लक्ष्मण को नहीं। वे दोनों स्वेच्छा से बन जा रहे हैं तो राजा भी उन्हें रोक नहीं सकता।

कैकेयी : लेकिन गुरुदेव, वे महाराजा के वचन के अनुरूप राम के साथ वन जा रहे हैं। अतः तीनों ही वल्कल पहनें, यही उचित होगा।

वशिष्ठ : रानी! तू तो वास्तव में मूर्खता और पागलपन की सीमा लाँघ रही है। मैं भी इस कुल का गुरु हूँ। सीता बेटी अपने पति की आज्ञा से जावेगी भी तो राजसी वस्त्रों में ही जावेगी। क्यों महारानी कौशल्या, मैंने गलत कहा है क्या?

कौशल्या : मैं बोलूँ क्या गुरुदेव? मेरे पति ने अपने प्राणप्रिय बेटे को चौदह साल तक बीहड़ वनों में भटकते रहने का आदेश दिया है—मेरी सौत ने मेरे बेटे का हक काटकर अपने बेटे के राजतिलक का आयोजन मुझसे छुपा कर किया है—मैं चुप हूँ। मेरी दूसरी सौत ने चौदह साल तक वन में रहने वाले मेरे बेटे के साथ अपने बेटे को भी कर दिया है—मैं चुप हूँ! गुरुदेव, मुझे चुप ही ही रहने दीजिए। मैं अपने पति की प्रतिज्ञा के विरोध में भी नहीं बोल सकती। मैं अपनी सौत कैकेयी की इच्छा के विरोध में भी क्या बोलूँ गुरुदेव, मेरे राम को वन जाने दीजिए। मुझे चुप रहने दीजिए।

दशरथ : मेरी कौशल्ये! तुम्हीं मेरी रानी हो। यह कैकेयी तो मेरे लिए बहुत बड़ा धोखा सिद्ध हुई है। कौशल्ये! राम को वन न जाने

दो। रोक दो राम को।

कौशल्या : मैं रोक दूँ राम को? जब राम वल्कल पहन जाने को तैयार है, तब मैं रोक दूँ राजन्! अपनी इस कैकेयी के पाँव पकड़ कर गिड़-गिड़ा कर क्यों नहीं कहते कि मेरे राम को क्षमा कर दे। राज न सही उसे वनवास तो न दे यह।

दशरथ : कौशल्ये! तू मेरी है री! तू तो यह न कह कि मैं इस नागिन के पाँव पकड़ूँ। तुझे भी कौशल्ये, यह अच्छा नहीं लगेगा कि राम जैसे प्रतिभावान बेटे के लिए मैं इस कुल्टा के पाँव पकड़ूँ। देखना यह जीवन-भर रोयेगी। मेरे लिए भी रोयेगी और अपनी करनी पर तो पछता-पछता कर रोयेगी।

राम : पिताजी! हम वन जाने के लिए आपसे विदा लेने आये हैं। हमें जान दीजिए। भरत के राजतिलक के लिए मैंने सैनिक संदेश उसके ननिहाल ही भिजवा दिया है। उसके आने से पहले ही मुझे वन चले जाना है।

दशरथ : नहीं, नहीं, नहीं, राम···नहीं।

वशिष्ठ : राम! दशरथ तुझे कभी आज्ञा नहीं देंगे। तुझे जाना है तो तू चल। चल आगे बढ़।

कौशल्या : बहन कैकेयी, अभी आज्ञा दे कि मैं अपने बेटे को वन के लिए छोड़ आऊँ, फिर तेरी दासी तो हूँ ही। तेरे पाँव दाबते रहना होगा मुझे। मुझे शरण में रखना बहन।

दशरथ : नहीं, नहीं, राम! तुम वन नहीं जाओगे।

राम : पिताजी! वन तो मेरा घर है। मुझे वहाँ कष्ट नहीं होगा। मुझे जाने दीजिए।

दशरथ : कितना बड़ा अन्याय हो रहा है यह। दुष्ट रानी, मेरे राम को रोक ले। रोक ले कुल्टा, उसे रोक ले। मैं तेरे पाँवों पर अपना सिर रख कर तुझसे अपने राम की भीख माँगता हूँ। देख, वो जा रहे हैं। मेरी रानी, हठ छोड़ दे, मेरी प्रार्थना मान ले। उन्हें रोक ले। दुष्टा! तू नहीं मानेगी। मैं जीवित···भी···क्यों···हूँ। मेरे राम···!

[दृश्य बदलता है]

[राजपथ पर नगर-निवासियों की भीड़ के साथ राम जा रहे हैं।]

कौशल्या : मेर राम? बेटा, मैं भी तेरे साथ चलूँगी। मैं तेरे बिना अयोध्या में नहीं रह सकूँगी।

राम : (हँसकर) क्या बात करती हो माँ ! पिता जी की हालत तुमने देखी तुम्हें पिताजी की सेवा करनी होगी माँ !

कौशल्या : जिस तरह गाय बछड़े के बिना नहीं रह पाती और आगे-आगे बछड़ा जाता है तो पीछे-पीछे गाय भी जाती है उसी तरह मैं भी बेटे तेरे पीछे-पीछे आती रहूँगी।

राम : नहीं माँ, नहीं। पति की सेवा ही स्त्री का परम धर्म होता है माँ। तुम पिताजी की सेवा करो, मैं लौट कर तुम्हारी और पिताजी की जी भरकर सेवा करूँगा। जाओ, अब लौट जाओ।

कौशल्या : कैसे लौटूँ बेटे ! क्या मन लेकर लौटूँ। सब कुछ तो चला जा रहा है। मैं क्या लेकर लौटूँ। (रोती है)

सीता : माँ, लौट जाइए अब। छोटी माँ आप भी लौट जाएँ।

राम : अवध के नागरिक भी हमारा प्रणाम लें। अब आप सब लौट जाइये।

नागरिक : (सामूहिक स्वर में) नहीं, हम अपने राम के साथ ही चलेंगे। हम सब अब इस नगर में नहीं रह सकेंगे। हम भी वनवासी होकर रहेंगे।

राम : ऐसा पागलपन ठीक नहीं। आप सब लोग लौटें। भरत के राज-तिलक समारोह में जावें आप लोग।

नागरिक : नहीं, यह नहीं हो सकता। हम साथ चलेंगे। हमें रोकिए नहीं युवराज !

[सुमंत्र का रथ लेकर आना।]

सुमंत्र : युवराज राम ! महाराज की आज्ञा है कि आप रथ से जावेंगे। अवध की सीमा के पार तक मैं आपके रथ से ले जाऊँगा।

राम : इसकी क्या आवश्यकता है। हम तो यों ही चलने के अभ्यस्त हैं महामंत्री।

सुमंत्र : मान भी लीजिए। दुखी महाराज की यही इच्छा है।

राम : (हँसकर) पिताजी की इच्छा है तो चलो, चले चलते हैं। माँ, आप लौटें। प्रजाजन, आप सब भी लौटें।

[नर-नारियों के रोने के स्वर।]

समवेत स्वर : नहीं, हम भी चलेंगे। नहीं, हमें भी चलने दीजिये।

अंक पाँच

दृश्य एक

[राम, लक्ष्मण, सीता और सुमंत्र रथ पर जा रहे हैं।]

लक्ष्मण : भइया ! लगता है, आगे फिर कोई नदी आ रही है।

सुमंत्र : राजकुमार ! अभी आपने तमसा, गोमती और सई नदी पार की। अब हम लोग गंगा नदी की ओर बढ़ रहे हैं।

राम : लक्ष्मण ! गंगा इन नदियों से कहीं विशाल है। तुम तो पहले भी देख चुके हो।

लक्ष्मण : देख तो चुका हूँ भइया। किन्तु गंगा नदी तो ऐसी हैं कि उन्हें बार-बार देखने को मन करता है। निर्मल, अबाध और गम्भीर।

[रथ रुकने के शब्द]

राम : रुक क्यों गये सुमंत्र ?

सुमंत्र : गंगा जी पास में ही बह रही हैं, राजकुमार ! यहाँ से नाव लेनी पड़ेगी। वह समीप ही निषादों की बस्ती है। उन्हें बताना होगा।

सीता : पता नहीं निषाद कब आवेंगे। क्यों न हम लोग सीधे घाट पर ही पहुँच जावें महामंत्री ? वहाँ नाव होगी। कोई निषाद भी होगा ही।

सुमंत्र : अवध के राजकुमारों को निषादराज से बताये बिना सीधे घाट पर ले जाऊँगा तो निषादराज बुरा मानेंगे। निषाद-बस्ती तक आप लोग आयें और उन्हें पता भी न चले, स्वागत-सत्कार भी न कर पावें ? कितना बुरा मानेंगे वे ?

राम : इन्हीं सब बारीकियों के लिए तो महामंत्री होते हैं। हम तो सीधे

घाट पर ही रथ रोकते। हम राज-रस्मों की इन बारीकियों को क्या जानें?

लक्ष्मण : भइया! अब हम कैसे राजा, कैसे राजकुमार? न हम राजा रहे, न रहे राजकुमार। निषादराज राजकुमार समझकर हमारा सत्कार कर भी लेंगे तो उन्हें हमसे कोई लाभ तो होना है नहीं। महामंत्री चाहें तो रथ बढ़ा लें। हम लोग घाट पर ही पहुँचें। वहीं गंगा पार करने का कोई उपाय कर लेंगे।

सुमंत्र : वो देखिए! राजरथ देखकर निषादराज स्वयं अपने बन्धुओं, ग्रामवासियों सहित इधर ही आ रहे हैं।

[निषादराज का ग्रामवासियों सहित आगमन। रथ को गौर से देखकर]

निषादराज : अवधराज की पताका? अयोध्या नरेश का रथ! ओह! हम धन्य हुए। श्रीमन्! हम धन्य हुए। मैं निषादराज आप सबको प्रणाम करता हूँ।

सुमंत्र : निषादराज! महाराजा दशरथ के महामंत्री सुमंत्र का प्रणाम लें। ये हैं हमारे बड़े राजकुमार श्री राम, उनकी धर्मपत्नी सीता जी और उनके छोटे भाई श्री लक्ष्मण।

निषादराज : धन्य हैं। हम सब धन्य हैं। यह धरती, यह गाँव धन्य है कि आप सब पधारे। आइये, रथ को मेरे गाँव की ओर ले चलिये।

राम : निषादराज! हम राजकुमार अवश्य हैं किन्तु इस समय वनवासी हैं। नगर-बस्ती में हमें नहीं जाना है। हमें आप शीघ्र नदी पार करा दें। हम नदी पार जाकर ही कहीं रात्रि-विश्राम करेंगे।

निषादराज : आप नगर-बस्ती में नहीं जावेंगे? वनवासी हैं? यह कैसी पहेली है?

राम : सुमंत्र! निषादराज को हमारे यहाँ आने का कारण बता दीजिये।

सुमंत्र : बताता हूँ राजकुमार! (**निषादराज के समीप आकर उनके कान में बताते हैं।**)

निषादराज : ऐसा है? यह तो घोर निन्दनीय काम है। किन्तु हम कर भी क्या सकते हैं। अच्छा, आप लोग गाँव में नहीं जा सकते तो रुकिये। यहीं रुकिये। हम यहीं आपका सत्कार करेंगे। दूध है, दही है, फल हैं, मिष्टान्न है। आप रुकिये तो, शीघ्र नदी पार कराऊँगा। देखो अच्छन! दौड़कर जाओ। और सुरतियारे, तू भी जा! जोधामन, तुम भी जाओ। दूध के, दही के, मिष्टान्नों के मटके, फलों के टोकरे तुरन्त लेकर आओ।

राम : यह बहुत होगा निषादराज ! हमारी इच्छा कुछ भी लेने की नहीं है। हमें बस नदी पार करा दो।

निषाद : राजकुमार राम ! आपको संदेह है क्या कि मैं आपको नदी पार नहीं कराऊँगा। आप आये हो तो कुछ मेरा भी तो धर्म है। मुझे भी तो अपना धर्म निभाने दीजिये।

राम : धर्म है तो आपको हम धर्मभाई बना लेते हैं। जैसा मेरा भाई लक्ष्मण वैसे ही मेरे भाई आप। चलो हमें नदी पार करा दो।

निषाद : नाव घाट पर लगवा रहा हूँ नाथ ! नाव तो लगने दीजिये। आइये रथ से उतरिये तो, कि रथ सहित पार जावेंगे ?

राम : न-न, रथ सहित नहीं। महामंत्री सुमंत्र ! रथ तो अब आप लौटा ले जाइये।

सुमंत्र : राजकुमार राम ! नहीं मैं आपको छोड़कर नहीं जाऊँगा। रथ चाहे छोड़ दूँगा किन्तु मैं तो आपके साथ चलूँगा।

राम : ऐसा आग्रह आपके लिए तो सत्याग्रह होगा किन्तु मैं इसे दुराग्रह ही कहूँगा।

सुमंत्र : मेरा आग्रह चाहे सत्याग्रह हो, चाहे दुराग्रह किन्तु मेरा मनाग्रह तो वह है ही। मैं लौटकर, आपको छोड़कर अवध नहीं जा सकूँगा। जाऊँगा भी तो किस मुँह से अवध जाऊँगा अब ? मैं वहाँ जाकर लोगों से क्या कहूँगा ? महाराज से, महारानी से क्या कहूँगा कि आपको कष्ट का जीवन जीने के लिए छोड़कर आ गया ?

सीता : महामंत्री ! आप इतना संकोच क्यों कर रहे हैं ? क्या अवध की जनता नहीं जानती कि आप हमें वन में छोड़ने आये हुए हैं ? क्या हमारे सास-ससुर नहीं जानते कि आप हमें रास्ते तक पहुँचा कर वापस जावेंगे ?

सुमंत्र : बिटिया ! ऐसा नहीं है। सब जानते हैं। किन्तु तुमने देखा नहीं कि विदा के समय घरवाले ही नहीं नगरवासी भी कितना रो रहे थे। सभी तो राम के पीछे दौड़े-दौड़े आ रहे थे कि हम भी वन चलेंगे। मैं तुम लोगों को अकेले छोड़ कर लौटूँगा तो अयोध्या में सभी लोग मुझे पागल बना देंगे। कहेंगे, उन्हें जंगल में डाल आये और स्वयं राजसुख भोगने आ गये ? मैं क्या उत्तर दूँगा ?

लक्ष्मण : देखा भइया ! हमारे पिताजी ने तो इतना गहरा सोचा नहीं किन्तु उनके महामंत्री बहुत ही गहरा सोच रहे हैं। हमें तो वन-वन भटकना ही है, किन्तु महामंत्री जी ! आप लौटने में इतना

घबरा क्यों रहे हैं ?

सुमंत्र : नहीं, राजकुमार लक्ष्मण ! आप गलत सोच रहे हैं। हमारे राजा का राम को और आपको वन भेजने का मन कतई नहीं था। उन्हें तो यह सब बेमन से करना पड़ा था। मेरी दिक्कत तो यही है कि जब मैं लौटूंगा तो अपने राजा को क्या उत्तर दूंगा ?

राम : कहना, राम अपनी पत्नी और भाई सहित सकुशल गंगा पार हो गये थे। अधिक और कहना भी क्या है ? कह देना, हम वन में रहने के अभ्यस्त हैं; हमें कोई कष्ट नहीं होगा। वह अपना मन दुखी न करें।

निषादराज : घर से दूध और मिष्टान्न आ गया है। आप सब लें और घाट पर चलें।

राम : महामंत्री ! आप भी कुछ लें तब वापस जावें।

सुमंत्र : ठीक है राजकुमार ! चलिए आप लोग कुछ लेंगे तो मैं भी ले लूंगा।

[सब लोग दूध-मिष्टान्न लेते हैं।]

सुमंत्र : तो राजकुमार राम ! लक्ष्मण ! बेटी सीता ! आप लोग जाओ। नाव में बैठो। मैं लौट ही जाऊँगा। न भी अवध तक जा पाऊँगा तो क्या है ? श्री राम (**रोते हुए**) लक्ष्मण बेटे ! (**रोकर**) सीता बहू ! अपने तन की, मन की चिन्ता रखना। (**रोकर**) मैं कितना अभागा हूँ कि यहाँ तक साथ आकर भी लौट रहा हूँ। (**रोते हुए**) राम ! हमें न भूलना। बेटे लक्ष्मण ! मैं भाग्यहीन लौट तो जा रहा हूँ किन्तु मेरे प्राण, मेरा मन रहेगा तुम्हीं लोगों के साथ।

लक्ष्मण : महामंत्री ! (**सुमंत्र के समीप जाकर कान में कहते हैं**) आप अयोध्या जाकर उर्मिला से भी अवश्य मिल लेना। उससे कहना कि मुझे वन में कोई कष्ट नहीं होगा। वह अपनी और सास-ससुर की चिन्ता करे मेरी नहीं। दिन बीतते समय नहीं लगता। हम शीघ्र सकुशल लौटेंगे। चौदह साल होते ही कितने हैं।

सुमंत्र : ठीक है लक्ष्मण ! तुम निश्चिन्त रहो। मैं उसे समझा दूंगा।

लक्ष्मण : उसे देखते-समझाते रहना सुमंत्र ! हमारे आते समय वह बहुत दुखी थी। उसे दुखी न होने देना।

सुमंत्र : (**नाव के समीप आकर**) जाने कितने दुःख देखने होंगे मुझे ! पहले तो राजा दशरथ से मिलना होगा। फिर रानी कौशल्या और सुमित्रा से, उसके बाद उर्मिला से।

सुमंत्र : निषादराज ! कृपा कर अब शीघ्रता कीजिये। मेरे सामने ये लोग गंगा पार हो जायें। दिन रहते मैं भी कुछ दूर निकल जाऊँगा।

निषाद : बस जी ! ये देखिये, नाव तैयार है। चलने-भर की देर है।

राम : हाँ सुमंत्र ! पिताजी का, माँ का, मँझली और छोटी माँ का ध्यान रखना। वह दुखी न रहें। बेचारी उर्मिला से कहना कि उसके त्याग, उसकी सहनशीलता, उसके धीरज की हम सब प्रशंसा कर रहे हैं। सचमुच वह महान है। अब वहाँ उसी को सबको सम्हालना है।

सीता : हम उसे साथ नहीं ला सके इसी का दुःख है। जहाँ तीन थे वहाँ चार भी हो सकते थे। कोई थोड़ा समय नहीं है, चौदह साल बिताने हैं।

लक्ष्मण : माँ ! मैं आपकी और भइया की सेवा के भाव से आया हूँ। वन में रहना है। पता नहीं क्या-क्या करना पड़े। उर्मिला को साथ लाकर मैं आपकी सेवा उतनी अच्छी तरह न कर पाता।

निषाद : यह एक छोटे भाई का बड़े भाई के लिए बहुत बड़ा त्याग है। चौदह सालों तक पत्नी से दूर रहना। लक्ष्मण ! आप अद्भुत हैं।

राम : लक्ष्मण ऐसा त्याग करते हैं निषादराज ! लेकिन मुझे उर्मिला के प्रति स्वयं दुख हो रहा है। उसे पति से दूर करके मैंने उसके साथ अन्याय किया है।

सुमंत्र : राजकुमार राम ! अब जो भी हुआ, ठीक है। आप लोग नाव पर बैठें। मुझे आज्ञा दें।

सीता : हाँ चलें, नाव पर बैठें हम लोग, दिन छिपने वाला है।

सुमंत्र : राजकुमार राम ! **(रोते हुए)** चलें आप। मुझे क्षमा करना बेटे कि तुम्हें यों ही वन जाने के लिए छोड़कर लौट रहा हूँ और बेटे लक्ष्मण ! तुम्हें शायद महाराज के प्रति मन में थोड़ा क्रोध है। बेटे, वह तुम्हारे पिता हैं। जानते हो, राम को वन भेजने का उन्हें कितना दुःख हुआ है। यह उनकी महान विवशता थी बेटे ! यह धर्मसंकट उनके जीवन में पहली बार आया था। जिस आघात में वह टूटकर बिखर गये हैं बेटे !

लक्ष्मण : पिताजी को दुःख क्यों न होगा ? अपने बच्चे को वन के खूँखार जानवरों के बीच कौन छोड़ देता है। मैंने तो विरोध इसलिए किया कि पिताजी ने यह सब करने से मना क्यों नहीं किया ? 'ऐसा

वचन निभाना भी किस काम का जिसमें अपना ही सर्वनाश हो जाय।

राम : लक्ष्मण ! अब इस बात पर विवाद करने से कोई लाभ तो होगा नहीं। पिताजी को इतना कमजोर भी हमारे लिए क्यों होना था कि अपना वचन तोड़कर संसार की निगाहों में अपनी प्रतिष्ठा ही खो देते। हमारा कर्तव्य है कि उनकी प्रतिष्ठा बनी रहे। हम वन के लिए चल दिये हैं। अब यह सब कहने की क्या आवश्यकता है ? महामंत्री को विदा दो। सुमंत्र, आप अब जावें।

सुमंत्र : बेटी सीते (**रोकर**) सब कह रहे हैं तो लौट रहा हूँ मैं। (**रोते हुए**) बेटी, इन दोनों भाइयों का ध्यान रखना। तुम स्त्री हो, ध्यान रख सकती हो। राजकुमार राम और लक्ष्मण समझदार हैं, ये भी तुम्हारा पूरा ध्यान रखेंगे।

सीता : महामंत्री ! आप चिन्ता न करें, आप लौटें। देखिए हमारी नाव तैयार है। आप आज्ञा दें तो हम लोग उसमें बैठें।

सुमंत्र : आज्ञा की क्या बात है, आप लोग बैठें।

[सुमंत्र राम-लक्ष्मण से गले मिलते हैं। सब लोग नाव में बैठते हैं। नाव आगे बढ़ती है। सीता के स्वर सुनाई पड़ते हैं।]

सीता : प्रणाम महामंत्री ! ॐ नमो गंगे तरंगे पापहारिणे ! हे गंगा माँ, वनवास का समय पूरा कर मैं अपने पति और देवर के साथ सकुशल लौट आऊँगी तो मैं पूरे हर्ष और उत्साह से तेरी पूजा करूँगी। मुझे अवसर देना माँ। गंगा माँ ! मुझे ऐसा अवसर देना। ॐ नमो गंगे तरंगे पापहारिणे··· !

[मंच पर धीरे-धीरे प्रकाश कम हो जाता है। नाव नदी पर उतरती-चढ़ती पार जा रही है। अँधेरा।]

[दृश्य बदलता है।]

दृश्य दो

[नदी के रेत के पार खेत, पेड़-पौधे। राम, लक्ष्मण, सीता और निषादराज चल रहे हैं।]

राम : निषादराज ! अब आप लौटिये न, रात होने को है। आप कहाँ तक साथ चलेंगे ?

निषादराज : अवधेश ! यह क्षेत्र मेरा परिचित है। मैं चाहूँगा कि जहाँ भी आप रात्रि-विश्राम करें, मेरे साथ रहते सुख से कर सकें। मैं वहाँ पर रहने, ठहरने, भोजन-पानी की सब व्यवस्था कर दूँ।

राम : कैसी व्यवस्था ? हमें क्या सुख ? क्या दुःख ? निषादराज ! हम तो वनवासी हैं। सुख से रहने के लिए तो हम वनवासी हुए नहीं हैं। तुम्हारा बहुत आग्रह था अपनी बस्ती शृंगबेरपुर में रात बिताने का, लेकिन हम नगर-बस्ती में रह नहीं सकते। वहाँ से गंगा पार करके आ गये हैं तो निषादराज, अब हम कहीं भी किसी पेड़ के नीचे पड़कर सो रहेंगे। गंगातट पर आपने मिष्टान्न और फल-दूध का भोजन करा ही दिया है। अब क्या है ? रात ही तो काटनी है। कहीं भी भूमि पर, पत्थरों पर पड़कर सो रहेंगे। रात बीत जावेगी। प्रातःकाल आगे का रास्ता ले लेंगे !

निषादराज : आप सुकुमार हैं। मुझे आपने मित्र माना है। आपकी पत्नी ने कभी ऐसा जीवन देखा तक नहीं है प्रभु ! खुले आकाश के नीचे पत्थर-कंकड़ों पर आप लोग कैसे सो पायेंगे ? मुझे कचोट-सी हो रही है मन में।

सीता : निषादराज ! आर्य ने आपको मित्र माना है। मित्र को मित्र का भला चाहना चाहिए। हमारा भला इसी में है कि आर्य अपना संकल्प निभा सकें। हमें वनवास भोगना है तो किसी का सहयोग लेकर सुख से कैसे रह सकते हैं हम ?

निषादराज : मैं समझ रहा हूँ राजकुमारी ! मन तो करता नहीं किन्तु आप कहते हैं तो चलिए लौटता हूँ। अवध राजकुमार राम के संकल्प में मैं आड़े नहीं आना चाहूँगा। लौटता हूँ। राजकुमार राम ! कल आप प्रयागराज में संगम पर स्नान करियेगा और थोड़ी ही दूर पर भरद्वाज जी का आश्रम है, वहाँ हो लीजियेगा। मुनि भरद्वाज आपको देखकर प्रसन्न होंगे।

राम : ठीक है मित्र ! हम ऐसा ही करेंगे। अब आप लौट चलें। रात होने को है।

निषादराज : आप तीनों प्राणी मेरा प्रणाम लें। मैं लौटता हूँ। आप लोग सदा सकुशल रहें, यही प्रार्थना है।

[प्रकाश मंच पर धीमा होता है फिर प्रकाश उभरता है। तीनों चल रहे हैं।]

लक्ष्मण : वह देखो भइया ! उधर कोई आश्रम आ गया।

सीता : लक्ष्मण ! निषादराज ने बताया नहीं था कि प्रयागराज के बाद

मुनि भरद्वाज का आश्रम पड़ेगा। यह वही आश्रम होगा।

राम : सीता ठीक कहती है लक्ष्मण ! आओ, मुनिश्री से मिलें। टीले पर बसा यह आश्रम मुनि भरद्वाज का ही है। **(आश्रम की ओर बढ़ते हैं।)**

[आश्रम में आकर]

राम : मुनिश्रेष्ठ को अयोध्या के राजा दशरथ का श्रेष्ठ पुत्र वनवासी राम अपने भाई लक्ष्मण व पत्नी सीता सहित प्रणाम करता हूँ।

भरद्वाज : राजा दशरथ के पुत्र राम ? अच्छा, अच्छा, राम ! इधर आओ मेरे समीप आकर बैठो तुम तीनों प्राणी।

[तीनों मुनि के समीप आकर बैठते हैं।]

राम : मुनिश्रेष्ठ ! आपके दर्शन पाने की बड़ी इच्छा थी।

भरद्वाज : प्रयागराज के संगम में स्नान किया ?

राम : जी, किया ?

भरद्वाज : मैं जानता था, तुम लोग यहाँ अवश्य आओगे।

लक्ष्मण : **(कान में)** भइया ! मुनि ने कैसे जान लिया था। ये त्रिकालदर्शी हैं क्या ?

भरद्वाज : लक्ष्मण बेटे ! तुम राम के कान में जो बात कह रहे हो मैं उस प्रश्न का उत्तर दे दूँ क्या ?

लक्ष्मण : भइया के कान में मैंने जो कहा था उसे आप जान गये ? आश्चर्य है मुनि !

भरद्वाज : **(हँसकर)** लक्ष्मण मेरी परीक्षा लेना चाहता है। शायद संतों की सिद्धि पर उसे विश्वास नहीं है।

राम : ऐसा नहीं है प्रभु ! ऐसा नहीं है ! लक्ष्मण किसी प्रसंग पर अपनी उत्सुकता रोक नहीं पाता—केवल जिज्ञासावश !

भरद्वाज : उस उत्सुकता का भी तो समाधान होना चाहिए राम। मन में बात निरुत्तरित नहीं रहनी चाहिए।

राम : समाधान की आवश्यकता क्या है ? हम आपका त्याग, तप, साधना जानते हैं। मैं तो आपसे एक आवश्यक निर्देश लेने आया हूँ। हमें तो आप यह बता दें मुनि कि हम अभी किस जगह रहने का स्थान बनावें ? हम वनवासी हैं। हमें वन में ही कहीं रहना होगा।

भरद्वाज : राजकुमार राम ! तुम्हारा प्रश्न ठीक है। तुम वनवासी तो हो किन्तु लोग चौथी अवस्था में वनवासी होते हैं। तुम युवावस्था में ही हो गये हो। तुम्हारी सौतेली माँ को इस उम्र में तुम्हें वानप्रस्थी साधु नहीं बनाना चाहिए था।

लक्ष्मण : मुनिश्रेष्ठ ! भइया को हमारी माँ कैकेयी राजा नहीं होने देना चाहती थी। अब वानप्रस्थी बना दिया है तो बना दिया है। हम भी तो पीछे हटने वाले नहीं।

भरद्वाज : तो तुम लोग मेरे आश्रम में रहो। यहाँ देख ही रहे हो, मेरे कितने शिष्य रहते हैं। यहाँ ब्रह्मचारी भी हैं और वानप्रस्थी भी। तुम भी किसी कुटी में जाकर रहो न ? स्नान और जलपान के लिए समीप ही गंगा जी हैं।

राम : न-न-न ! हम यहाँ ठहरेंगे नहीं। हमें तो दण्डकारण्य की ओर आगे बढ़ना है। आगे हम कहाँ पर सुरक्षित-सी जगह कुटी बना लें, जहाँ हमें ऋषि-मुनियों का भी सान्निध्य प्राप्त हो सके। गहन वन में रहने का सुख भी मिल सके।

भरद्वाज : तो राम ! तुम जाकर चित्रकूट पर बसो। घना जंगल भी है, पहाड़ भी है, नदी तट भी है। आस-पास ऋषि-मुनि भी तपस्या करते रहते हैं।

राम : मुनि ! आप बता रहे हैं तो अवश्य ही हम वहीं बसेंगे। लक्ष्मण ! सीते ! चलो हम लोग जाकर चित्रकूट में बसेरा डालें।

भरद्वाज : राम ! तुम्हारी यह अवस्था तो नहीं थी कि तुम जंगल में घूमते रहो। इस सुकुमार पत्नी और भाई को लेकर वन-वन घूमते रहो। तुम्हारे साथ अन्याय हुआ है राम।

राम : अब यह विचार न करिये मुनिदेव ! हमें आगे जाने दीजिये। हमारे भाग्य में जो है हमें उसे अपने कर्म से जोड़ देने दीजिये। हमें क्षमा करें। आगे जाने दें। आपका दर्शन पाकर हम कृतार्थ हुए हैं।

भरद्वाज : जाओ राम ! मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। तुम हो, बेटी सीता है, धनुर्धर लक्ष्मण है। भला तुम्हें वन में भी कष्ट क्या हो सकेगा। जाओ भाग्य को अपने कर्म से जोड़कर देखो तो ? तुम केवल भाग्यवादी नहीं हो, उसे कर्म से जोड़ते रहो यही प्रसन्नता है। वास्तव में राम, भाग्य कुछ नहीं होता है। मनुष्य जो कर्म करता है वही भाग्य का फल बनता है।

राम : मुनि ! इस देश में मनुष्य भाग्यवादी अधिक हो गया है, कर्मवादी कम रह गया है। वरना भाग्य का निर्धारण तो कर्म करता है। वह भी आज का किया कर्म। सदियों पहले किया हुआ कर्म नहीं।

भरद्वाज : (हँसकर) मैं भी राम ! अपने शिष्यों से यही कहता हूँ कि चुपचाप सोचते न पड़े रहो कि कल तुम्हें जो भी मिलेगा वह पिछले

कार्यों का फल मिलेगा। तुम जो करोगे वही पाने के अधिकारी भी तुम बनोगे।

राम : (हँसकर) मुनिश्रेष्ठ! मनुष्य हर समय अच्छा कर्म करे, अपने मन के अनुसार अच्छा कर्म करे तो हम अगले क्षण उसका अच्छा ही फल मिलता है और फिर आत्मा को संतोष तो रहता है कि मैंने अच्छा काम किया। जो भी फल मिलेगा अच्छा ही मिलेगा।

लक्ष्मण : किन्तु ऐसा होता है क्या ? और आज ऐसा होता है क्या कि आप भला करें, सुकर्म करें और उसका फल आपको भी अच्छा मिले ?

राम : होता क्यों नहीं है ? अच्छे कर्म हमेशा मनुष्य के साथ रहते हैं लक्ष्मण !

लक्ष्मण : तो माँ कैकेयी का भला आपने कब नहीं चाहा ? भरत भइया का कौन-सा भला आपने नहीं किया ? यह भला करने का ही फल था कि जब राम राजा होने जा रहे थे तो माँ कैकेयी ने राम के द्वारा की गई सभी अच्छाइयों को भुलाकर राम को चौदह साल का वनवास दे दिया—केवल इसलिए कि उसका बेटा भरत राजा होकर निष्कंटक राज भोग सके !

सीता : तुम ठीक कह रहे हो लक्ष्मण। आजकल तो किसी का भला करो तो वह काटने आता है।

भरद्वाज : राम ! (हँसकर) लक्ष्मण सही तो कहता है कि राम ने कैकेयी का अच्छा ही चाहा, बदले में राम को इतनी लम्बी अवधि का वनवास क्यों दिया रानी ने ! (हँसते हैं) लक्ष्मण स्पष्ट कहता है, अच्छी बात है। यह बहुत ही होनहार है। मुझे लगता है, संकट के समय यह हर तरह से तुम्हारी रक्षा कर सकेगा।

राम : गुरुदेव ! लक्ष्मण पर यह विश्वास मुझे भी है।

भरद्वाज : राम ! ऐसा भाई बड़े भाग्य से मिलता है। तुम बड़े सात्त्विक हो, प्रेम से बात करते हो, सबसे स्नेह करते हो, उदार हो। लक्ष्मण शायद उग्र है, क्रोधी है, साफ बात कहता है, भले-बुरे की परख भी जानता है। वास्तव में राम, वीरता तो तुम दोनों में ही है, किन्तु वीरता की बात छोड़ भी दूँ तो तुम अकेले लक्ष्मण के बिना अधूरे हो। लक्ष्मण वास्तव में तुम्हारा पूरक है। विनम्रता और कठोरता का कैसा सम्मिश्रण है तुम दोनों में !

राम : (हँसते हैं) ठीक कह रहे हैं मुनिश्रेष्ठ !

भारद्वाज : नहीं, हँसो नहीं राम। अगर लक्ष्मण नहीं होगा तो राम सचमुच अधूरा होगा। मैं यही कामना करता हूँ राम, लक्ष्मण सदैव तुम्हारे

साथ रहे। तुम एक-दूसरे के पूरक बने रहो।

राम : अच्छा, अब हम आज्ञा लेंगे मुनिश्रेष्ठ ! प्रणाम स्वीकार करें।

[लक्ष्मण-सीता भी प्रणाम करते हैं।]

भरद्वाज : मेरा आशीर्वाद तुम लोगों के साथ रहेगा। अपना उद्देश्य पूरा कर तुम शीघ्र लौटोगे।

[मंच पर धीरे-धीरे अँधेरा होता है। दृश्य बदलता है।]

दृश्य तीन

[रानी कौशल्या का महल। राजा दशरथ पलंग पर पड़े हैं। कौशल्या उनके पैताने बैठी है।]

दशरथ : कौशल्ये ! सुमंत्र लौटा क्या ? राम जाते समय मेरी हालत देखकर परेशान था। मुझे विश्वास है कि राम, लक्ष्मण और बहू लौट आये होंगे। मेरी हालत पर क्या उन्हें दया नहीं आयी होगी ? देखो वे लौट आये होंगे।

कौशल्या : आर्य ! ऐसे भाग्य हमारे कहाँ हैं ? उन्हें लौटना होता तो जाते ही क्यों ?

दशरथ : राम-लक्ष्मण नहीं लौटेंगे तो हम जिन्दा नहीं रहेंगे कौशल्ये ! हम जिन्दा नहीं रह सकेंगे।

[महामंत्री सुमंत्र दूर से महल की ओर आते दिखते हैं। कौशल्या उधर ही देखकर]

कौशल्या : महामंत्री सुमंत्र आ गये। वह इधर ही आ रहे हैं।

दशरथ : आ गये ? (**उत्सुक होकर**) कहाँ हैं वह ?

कौशल्या : महल की ओर आ रहे हैं। रथ से महल तक आने में भी तो समय लगेगा न ?

दशरथ : (**परेशान भाव से**) कितना समय लगेगा ? वह शीघ्र आते क्यों नहीं ?

[सुमंत्र कक्ष में प्रवेश करते हैं।]

सुमंत्र : महाराज और महारानी को प्रणाम !

दशरथ : सुमंत्र ! तुम अकेले आये हो ? राम कहाँ है ? लक्ष्मण कहाँ है ? मेरी बहू कहाँ है ?

सुमंत्र : महाराज ! ··· (**सिसकने लगता है।**)

दशरथ : ठीक है, रोओ। तुम भी रोओ सुमंत्र ! मैं तो रो रहा हूँ। ये राम की बेचारी माँ रो रही है। उधर अपने महल में अभागिन सुमित्रा रो रही है। सारी प्रजा रो रही है, सारा देश रो रहा है। तुम भी रोओ। राम हमें इसी लायक बना कर छोड़ गया कि हम रोयें। और हम थे भी किस लायक ?

सुमंत्र : महाराज ! मैंने बहुत मनाया। मैं बहुत गिड़गिड़ाया। किन्तु राम नहीं माने तो नहीं माने। लक्ष्मण तो उनसे भी आगे। मैं तो राजन्, अपने प्राण वहीं छोड़कर केवल इस पापी शरीर को आपके लिए किसी तरह यहाँ तक लौटा लाया हूँ।

दशरथ : तुम्हारे इस पापी शरीर को मैं बैठकर निहारूँ क्या ? अवध के इतने कुशल महामंत्री होकर भी तुम राम-लक्ष्मण को लौट आने के लिए मना नहीं सके ? रथ तो कोई भी सारथि चला लेता। सुमंत्र को रथ लेकर भेजने का और अर्थ क्या था। केवल रथ हाँकने व उन्हें बेसहारा छोड़ देने को ही तो हमने तुम्हें भेजा नहीं था !

सुमंत्र : क्षमा करें महाराज ! भरसक प्रयत्न करके भी मैं असफल रहा।

दशरथ : देखो, अब तुम सब पूरी निर्लज्जता से देखो कि मैं किस तरह तड़पता रहता हूँ। किस तरह छटपटाता रहता हूँ। देखो कि मेरे प्राण कितने बेशर्म हैं कि बेटे वनों में भटककर वानप्रस्थ जीवन भोग रहे हैं और मैं ऐसा बाप हूँ कि इस चौथी अवस्था में भी राजसुख भोग रहा हूँ।

सुमंत्र : राजन् ! आप स्वयं इतने अधीर हो जायेंगे तो हमें कौन सम्हालेगा? इस दुखी प्रजा को कौन सहारा देगा ?

दशरथ : वो देगी···वो कैकेयी ! उसका बेटा भरत। और कौन है जो सम्हाल सके, सहारा दे सके। सम्हाल सकने वाला, सहारा दे सकने वाला तो वन में भटक रहा होगा ? सुमंत्र ! तुम उन्हें कहाँ तक छोड़ आये ? कैसे थे वह ? बहुत दुखी थे क्या ? हाय, मेरे राम ! हाय, मेरे लक्ष्मण ! जाने कहाँ होंगे तुम ?

सुमंत्र : मैं गंगा तीर पर नाव से प्रयागराज की ओर जाने के लिए उन्हें बिठा कर तब लौटा हूँ जब राजकुमार ने आगे रथ लेकर चलने को मना कर दिया। वे तीनों प्राणी ठीक थे। मंगलमय थे।

दशरथ : **(बेचैनी में बड़बड़ाते हुए)** हे राम ! मेरे राम ! हाय लक्ष्मण ! ओह ! ओह ! मेरे राम ! ओह ! आह ! राजा जनक सुनेगा तो बेटी सीते ! मुझे क्या कहेगा ? उसकी फूल-सी कन्या को जंगल की कँटीली झाड़ियों में क्या नंगे पाँव भटकने देने के लिए बहू बना-

कर लाया था मैं ?

कौशल्या : महामंत्री ! आप जायँ। बहुत थके होंगे ! राजवैद्य को कहला दीजिएगा कि थोड़ी देर में महाराज का फिर परीक्षण कर लें।

सुमंत्र : (**भरे गले से**) ठीक है महारानी !

दशरथ : कौशल्ये ! मेरा अन्त आ गया है प्रिये ! दुनिया की कोई शक्ति, कोई औषधि मुझे बचा नहीं सकेगी।

कौशल्या : इतने बेचैन क्यों होते हैं आप ! कहाँ गया आपका साहस ? धैर्य ?

दशरथ : जब अन्त आ गया है तो साहस-धैर्य क्या कर लेगा ? मुझे किसी का शाप है कि मेरी मृत्यु पुत्र-वियोग से होगी। और कौन-सा पुत्र-वियोग होना है अब ?

कौशल्या : क्या शाप था ?

दशरथ : शाप पाने से पहले का सारा दृश्य आज मेरी आँखों के आगे ऐसा घूम रहा है जैसे वह बहुत पहले की नहीं आज की, इसी क्षण की घटना है। जैसे मैं जंगल में इसी समय आखेट करने पहुँचा हुआ हूँ। सेना बहुत पीछे छूट जाती है और मैं सरयू के किनारे-किनारे घनघोर जंगल में पहुँच जाता हूँ।

कौशल्या : आखेट से, पुत्र-वियोग से और शाप से क्या मतलब ?

दशरथ : मतलब ही तो बता रहा हूँ रानी। एक-एक क्षण आँखों के सामने घट रहा है न ? वही याद कर रहा हूँ।

कौशल्या : क्या ? कैसी याद ? क्या घट रहा है नाथ आँखों के सामने ?

दशरथ : कौशल्ये ! तुम जानती ही हो कि आखेट का मुझे कितना चाव था। मैं शब्दवेधी बाण चलाने में दक्ष था। घने वन में सरयू के तट पर घुड़-घुड़-घुड़-घुड़ का स्वर मैंने सुना। मैं समझा कोई जंगली हाथी सरयू में पानी पी रहा है। मैंने उस घुड़-घुड़ के शब्द पर तीर मार दिया।

कौशल्या : फिर क्या हुआ नाथ ?

दशरथ : जब मैं नदी तट पर पहुँचा तो एक युवक मेरे तीर से आहत होकर कराह रहा था। उसे देखकर मैं सन्न रह गया।

[दृश्य छाया-चित्र में]

[दृश्य बदलता है। जंगल का दृश्य। नदी का किनारा आहत युवक के पास राजा दशरथ। हाथ में धनुष-तीर लिये हुए।]

दशरथ : अरे-अरे ! मेरा बाण तुमको लग गया ? बालक, तुम कौन हो ? क्षमा करना, तुम्हें मेरा ही तीर लगा है।

श्रवण : **(कराहते हुए)** कहीं के राजा लगते हो तुम ? **(कराहता है।)**

दशरथ : हाँ, मैं अवध का राजा हूँ बेटे। गलती से मैंने तुम पर तीर चला दिया। मैं तेरा अपराधी हूँ बेटे ? मैं तुझसे क्षमा माँगता हूँ।

श्रवण : **(कराहते हुए, पीड़ा से छटपटाते हुए क्रोध के स्वर में)** आँखें बन्द करके तीर चलाते हो क्या ? मुझ निर्दोष के प्राण लेने कहाँ से आ गये तुम ? **(कराहता है)** मेरे माँ-बाप अंधे हैं। मैं काँवर में बिठाकर उन्हें तीर्थस्थलों की यात्रा करा रहा था। समीप ही वे बैठे प्यास से तड़प रहे हैं **(कराहते हुए)** बहुत प्यासे हैं वह।

दशरथ : ओह, मुझसे बड़ा पाप हो गया है। मुझे ब्रह्महत्या का दोष लगेगा।

श्रवण : **(कराहते हुए)** नहीं, ब्रह्महत्या का दोष नहीं लगेगा, क्योंकि मेरे पिता वणिक हैं और मेरी माँ शूद्र। तब भी हत्या तो तुमने की ही है। **(कराहते हुए)** मेरे माँ-बाप को असहाय कर दिया तुमने राजन् ! लो मेरे शरीर से अपना यह तीर निकाल लो। बहुत पीड़ा हो रही है।

दशरथ : रुको, रुको, मैं निकाल देता हूँ। **(तीर खींचते हुए)** ये लो तीर निकल गया। अरे यह बालक तो निर्जीव हो गया। इसके तो प्राण गये। अब क्या होगा ! चलूँ इसके प्यासे माता-पिता को पानी तो पिला दूँ।

[पात्र में जल भरकर श्रवण के माँ-बाप को ढूँढ़ता हुआ उनके समीप पहुँचता है।]

दशरथ : लीजिए, जल लीजिए।

श्रवण के पिता : जल लीजिए ? **(चौंककर)** कौन हो तुम ! तुम कहाँ से पानी लाये हो ? हमारा श्रवण कहाँ है ?

दशरथ : क्षमा करें मुझे। मैं अवध का राजा दशरथ हूँ। अनजाने में मुझसे एक भयानक अपराध हो गया है।

पिता : अपराध ! कैसा अपराध ? हमारा श्रवण कहाँ है ?

दशरथ : भूल से मैंने जंगली जानवर समझकर श्रवण पर तीर चला दिया। उसकी मृत्यु हो गयी है बन्धु।

माता-पिता : क्या कहा ? श्रवण को तुमने मार दिया।

माँ : तू सच कह रहा है पापी ! **(रोते हुए)** नहीं, यह नहीं हो सकता।

पिता : राजन् ! हमारे श्रवण ने तेरा क्या बिगाड़ा था ? दुष्ट राजा ! तूने हम अंधों की लाठी छीन कर तोड़ डाली ? **(रोते हैं।)**

दशरथ : मित्र ! यह अपराध मुझसे अनजाने ही हो गया। मैं क्या करूँ ?

इसे मैं सुधार भी तो नहीं सकता ।

माँ : (**रोते-सिसकते हुए**) ढीठ ! मेरे बेटे का वध करके तू हमारे सामने जल लेकर आ गया ? थू ! मैं थूकती हूँ तेरी इस दया पर ! मेरे भगवान जैसे बेटे के प्राण ले लिए तूने । नीच ! हम तेरा लाया पानी पियेंगे ? बेटे के हत्यारे के हाथ से पानी पियेंगे हम ? (**जोर-जोर से रोने लगती है ।**)

दशरथ : क्षमा करो माँ ! आप लोग प्यासे हो, पानी तो पी लो । फिर मैं आप दोनों को अपने राजमहल ले जाऊँगा । आपको जीवित रहने तक कोई कष्ट नहीं होने दूँगा । आप मेरे माँ-बाप की तरह रहेंगे वहाँ ।

[माँ के रोने का स्वर]

पिता : (**सिसक कर**) तू हमें अपने महल में ले जावेगा ? क्या है तेरे महल में ? जो हमारा श्रवण हमें अपने प्यार से देता था वह सब तेरे महल में मिलेगा हमें ?

दशरथ : वह प्यार तो मैं नहीं दे सकूँगा किन्तु जो पाप मुझसे हो गया है उसका प्रायश्चित हर तरह से करूँगा । कोई कष्ट नहीं होने दूँगा । मैं अभी अपने रथ पर आपको ले चलूँगा ।

माँ : (**रोते हुए**) मेरा श्रवण क्या सचमुच गया । हम अब अनाथ हो गए ? मैं क्या सचमुच अब पुत्रहीन हो गई हूँ राजन् ! हमने जाति की, धर्म की, समाज की सारी मान्यताएं तोड़कर विवाह किया था । केवल मेरा श्रवण प्रमाण था हमारी साहसिकता का; समाज से लड़कर परम्पराएँ, गलत विश्वास तोड़ने का । ओ निर्दयी राजा ! तूने उसे भी मिटा दिया ।

पिता : प्रिये ! अब इसके सामने विलाप करने से क्या लाभ है ? अपने बेटे के बिना जीवित तो हम रह नहीं सकेंगे । चलें उसे सरयू को समर्पित तो करें ।

माँ : (**रोती हुई**) चलिए शीघ्रता कीजिए, उस पर चील-कौवे न आवें···

पिता : अवध नरेश ! हमें हमारे बेटे के पास ले चलिए । यह आपका हम पर बहुत बड़ा उपकार होगा । उसे सरयू को सौंपकर हम भी अन्न-जल ग्रहण किए बिना सरयू में समाधि ले लेंगे ।

माँ : लेकिन अवध के राजा, सुन । हमारी ही तरह तेरी मृत्यु भी अपने पुत्र के वियोग में ही होगी । तू भी अपने बेटे के वियोग में ही हमारी ही तरह छटपटाकर तड़प-तड़पकर ही मरेगा ।

दशरथ : ऐसा दुर्वचन न कहो माँ !

माँ : कहूँगी, अवश्य कहूँगी ? मेरे कलेजे पर जो आग जल रही है। हम जिस तरह से असहाय हो गए हैं, तेरा अन्त भी ऐसा ही होगा। तुझे भी उस दिन लगेगा कि तू असहाय है। तेरा कोई नहीं है।

[दृश्य बदलता है]

[कौशल्या के कक्ष में राजा पलंग पर पड़े हैं।]

कौशल्या : नाथ ? आप यह सब याद क्यों कर रहे हो। हमारा राम, हमारा लक्ष्मण, हमारी बहू शीघ्र ही लौट आवेंगे। तब तक आप साहस रखें।

दशरथ : साहस ? रानी ! यह साहस ही है जो अभी तक छूटा नहीं है। वरना राम के जाते ही मेरे प्राण चले जाने चाहिए थे। हमसे सहा नहीं जा रहा है। हम जा रहे हैं। देखो सुमित्रा को भी बुला लो। मेरे भरत, शत्रु कहाँ हैं ? वे अभी ननिहाल से नहीं लौटे क्या ? छोटी रानी कहाँ है ?

सुमित्रा : आर्य ! मैं यहीं हूँ आपके पास ! भरत-शत्रुघ्न को बुलाया गया है। राम ने ही बुलाने को कह दिया था। वह आते ही होंगे।

दशरथ : सुमित्रा ! हम जा रहे हैं। हाय राम ! हाय लक्ष्मण !

सुमित्रा-कौशल्या : नाथ (**रोते हुए**) ऐसा न कहिए।

सुमित्रा : यह नहीं होगा, नाथ ! यह नहीं होगा। राम-सीता हमसे दूर हैं। मेरा लक्ष्मण भी मेरे पास नहीं है। मेरी छोटी बहू मन-मन-भर के आँसू रो रही है। बेचारी उर्मिला ! आप भी चले जावेंगे तो हमारा क्या होगा ? हमें कौन सँभालेगा ? (**रोती है।**)

दशरथ : हाय राम! ···हाय लक्ष्मण ! राम (**हिचकियाँ**) ओह ! ओह ! राम !

कौशल्या : (**चीखकर**) राजन् ! नहीं। नहीं।

सुमित्रा : ये क्या हो गया दीदी। (**चीखकर रोती है।**)

[मंच पर धीरे-धीरे अँधेरा होता है। दृश्य बदलता है]

दृश्य चार

[दशरथ का राजमहल। कैकेयी मंथरा के साथ बैठी बात कर रही है। राजकुमार भरत-शत्रुघ्न का आना]

भरत : माँ ! (**प्रणाम करते हैं।**)

कैकेयी : मेरा भरत ? जुग-जुग जियो बेटे । (**भरत का सिर सीने से लगा लेती है।**)

शत्रुघ्न : माँ ! (**प्रणाम करते हैं**)

कैकेयी : अरे शत्रुघ्न, खुश रहो बेटे ! तुम लोग अभी आ ही रहे हो ।

भरत : माँ ! नगर आज कुछ सूना-सूना-सा लग रहा है। राजपथ पर जहाँ सवारियों की चहल-पहल रहती थी सब कुछ शान्त-सा लगा। राजमहल में भी कोई चहल-पहल नहीं है। ऐसा सन्नाटा तो यहाँ कभी नहीं रहता था ?

कैकेयी : भरत ! तू कितना थका-थका सा लग रहा है। आकाशचारी विमान से नहीं आये बेटे ?

शत्रुघ्न : मँझली माँ ! हमें बुलाने के लिए गुरुदेव ने दूत को रथ लेकर भेजा था, हम उसी रथ मे आये हैं।

भरत : नाना हमें आने कहाँ देते थे। वह तो गुरुदेव ने तुरन्त आने का आदेश दिया था वरना हम अभी कहाँ आ पाते !

शत्रुघ्न : मँझली माँ ! उस पर भी तो नाना जी ने और मामा जी ने रथ में जाने क्या-क्या सामान, बहुमूल्य धन, अमूल्य उपहार भर दिये।

भरत : माँ ! पहले ये बताओ कि पिताजी कहाँ हैं ? हम तो सोच रहे थे वह यहीं तेरे पास होंगे। इसीलिए सीधे यहीं आ गए हम !

कैकेयी : बेटे ! वो देखो, मंथरा पानी और मिष्टान्न ले आयी है। थके हो तुम दोनों, ले लो।

भरत : पहले पूज्य पिताजी से तो मिल लेने दो माँ। वह कहाँ हैं ? बड़ी माँ के पास हैं क्या ?

कैकेयी : बेटे तुम्हारे पिताजी···(**रोने लगती है।**)

भरत : (**चौंककर**) माँ ! कहाँ हैं पिताजी···?

शत्रुघ्न : (**घबड़ाये स्वर में**) पिताजी को क्या हुआ है माँ ? कहाँ हैं वह ?

मंथरा : तुम्हारी दुःखी माँ कैसे बता पावेंगी बेटे ! महाराज यह असार संसार छोड़ गए हैं।

भरत : यह नहीं हो सकता (**काँपते स्वर में**) यह नहीं हो सकता। यह कभी नहीं हो सकता।

[भरत रोने लगते हैं। शत्रुघ्न दीवार पर सिर टेक कर सिसकने लगते हैं।]

कैकेयी : (**सिसकते हुए**) रोते क्यों हो बेटे ! धीरज से काम लो। तुम समझदार हो।

भरत : ऐसी भी क्या बीमारी थी कि हमें समाचार तक देने का समय नहीं मिला। पिताजी का अन्तिम दर्शन तो हम कर लेते। उनके अन्तिम शब्द तो हम सुन लेते **(रोते हैं)** माँ, क्या हमारे लिए कोई आदेश कर गए हैं ? **(सिसकते हैं।)**

शत्रुघ्न : बड़े भइया और मँझले भइया भाग्यवान हैं जो अन्तिम समय में उनके पास रहे।

भरत : बड़े भइया और लक्ष्मण अन्तिम समय पिताजी के पास थे, यही हमारे लिए शुभकर है शत्रुघ्न !

कैकेयी : आर्य के पास उस समय वे भी नहीं थे। **(सिसकते स्वर में)** दण्डकारण्य गये बेटे। वह बनवासी हो गये हैं। राम, लक्ष्मण और सीता।

भरत : **(आश्चर्य के स्वर में)** वनवासी ? बड़े भइया और लक्ष्मण और भाभी भी ?

शत्रुघ्न : भइया ! माँ क्या कह रही हैं ? यहाँ यह सब क्या हो गया है ?

भरत : माँ ! यह तुम क्या कह रही हो—भइया राम, और वनवासी ? क्या अपराध कर दिया था हम लोगों ने ? क्यों देश छोड़कर चले गए वह ? क्या कष्ट था उन्हें यहाँ ? क्या पिताजी का···उनके चले जाने के कारण ही···

कैकेयी : वन जाना राम को स्वीकार था बेटे। उन्हें बाध्य नहीं किया गया था।

भरत : माँ ! आप साफ-साफ क्यों नहीं बतातीं ? क्यों वन चले गए वह ? किसी ने ऐसा क्या अपराध कर दिया था कि उन्हें घर ही छोड़ देना पड़ा ?

मंथरा : राजकुमार ! महारानी बताने में हिचक रही हैं। इतनी देर से यह भी नहीं बता पा रही हैं कि अवध के राजा अब हमारे भरत हैं। वह अवध की राजमाता हो गई हैं अब।

शत्रुघ्न : पिताजी की मृत्यु, बड़े भ्राता राम का वन जाना, आपका अवध का राजा होना, यह सब क्या पहेली है भइया ?

कैकेयी : बेटे, भरत ! यह सब तेरे लिए ही किया गया है। तू अवध का एकछत्र राजा बन सके, इसीलिए।

भरत : मैं अवध का एकछत्र राजा बन सकूँ ? लेकिन क्यों ? बड़े भइया के होते मैं राजा बनूँ ? माँ, तुम सारी बात बताती क्यों नहीं ?

मंथरा : महाराज ने अवध का राजतिलक राम को करने की घोषणा कर दी थी राजकुमार ! क्योंकि आप अयोध्या में नहीं थे। आपके यहाँ

न रहने से यह कुचक्र रचा जा रहा था कि राम को राजा बनाकर राजकुमार भरत को आजीवन सेवक बने रहने दिया जाय।

कैकेयी : हाँ बेटे, मंथरा ठीक कह रही है। तेरे पीछे यह कुचक्र रचा जा रहा था कि राजसत्ता राम को सौंप दी जाय और तुम-हम टके के तीन हो जायँ।

शत्रुघ्न : हूँ ! फिर क्या हुआ ?

मंथरा : हुआ क्या ? मैं महारानी के पाँव न पकड़त तो राजकुमार, वही होता जो महाराज ने चाहा था। राम राजा हो जाते, बड़ी महारानी राजमाता हो जातीं और भरत राम के चाकर हो जाते और तुम्हारी माता बड़ी महारानी की दासी हो जातीं।

शत्रुघ्न : (**क्रोध से दाँत पीसते हुए**) भइया! लगता है मंथरा ने कोई बहुत बड़ा काम कर दिखाया है। जरा पूछिये तो, जो महाराज ने चाहा था वह फिर कैसे नहीं हुआ ?

मंथरा : मैंने महारानी को आगा-पीछा सुझाया। मैंने याद दिलाया कि महाराज से वे दो वरदान माँग लीजिए जो महाराज के पास वर्षों से धरोहर थे।

भरत : माँ ! कौन से दो वरदान माँगे तुमने ?

कैकेयी : बेटे ! एक से तुझे राजतिलक और दूसरे से राम को चौदह वर्ष दण्डाकारण्य में वनवासी जीवन बिताने का।

भरत : (**क्रोध की अधिकता से शिथिल होकर दीवार पर पीठ टिकाकर**) ये तूने क्या किया माँ ? माँ, तूने यह क्या कर डाला ? तेरी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये थे क्या ? तेरी जीभ जल क्यों नहीं गयी! बड़े भइया जैसे संत के लिए तूने यह कितना बड़ा अपराध कर डाला, तू जानती है माँ ? यह सब सुनकर तो तुझे अब माँ कहने का भी मन नहीं हो रहा है। तुझे माँ कहकर 'माँ' शब्द को अपवित्र नहीं करना चाहिए। कितना बड़ा अँधेर कर दिया तूने ?

शत्रुघ्न : भइया, पहले तो इस कुबड़ी की प्रार्थना करनी चाहिए जो सारे विनाश की जड़ है। जिसने यह करतूत की है। जिसने इस कुल की हँसी-खुशी को आग लगा दी है। (**मंथरा को पकड़कर लात मारते हुए**) इसके कूबड़ पर यों लात मार-मार कर (**मंथरा के सिर को दीवार पर पटक कर**) इसके सिर को यों दीवार पर पटक-पटक कर तोड़ देना चाहिए।

मंथरा : (**चिल्लाती है**) हाय ! मुझे मार डाला। बचा लो महारानी ! अरे बचा लो। भलाई करने का तो समय ही नहीं रहा अब।

भरत : छोड़ो, छोड़ दो इसे सौमित्र ! इस बेचारी का क्या दोष ? यह तो दासी थी। इसकी कितनी बुद्धि हो सकती थी। यह किसी कुल की ऊँचाइयों को क्या पहचानती है ? इसे छोड़ दो।

शत्रुघ्न : भइया ! मैं इसके पापी खून की एक बूंद भी बाकी नहीं रहने दूंगा। मुझे इसकी हड्डी-हड्डी तोड़ देने दो। मैं इसकी बोटी-बोटी काट डालूंगा।

[पीटता है। मंथरा जोर-जोर से रोती-चिल्लाती है]

भरत : छोड़ो भी सौमित्र ! इसे छोड़ दो। जब मेरी माँ ने ही हमारे घर के सुख को जान-बूझकर आग लगा दी है तो औरों से क्या कहें ? मुख से कहें ?

कैकेयी : (उदास स्वर में) नहीं बेटे ! ऐसा न कह। मैंने जो कुछ भी किया केवल तेरे लिए किया। मैंने अपने सुहाग की भी चिन्ता न करके अपनी कोख का सुख चाहा था।

भरत : कोख का सुख चाहा था ? वज्रपात कर देना नहीं चाहा था ? सुहाग की कीमत पर अपने बेटे के लिए सुख खरीदने वाली माँ, तू धन्य है ! तूने समझा कि तेरे ऐसा करने से पृथ्वी पर तेरे बेटे भरत को यश मिलेगा ? तूने समझा कि साधु सरीखे राम को वन में भटकते देखकर लोग तेरे भरत को साधुवाद देंगे ? भरत को तूने इतना नीच और पापी समझ लिया कि बड़े भाई के अधिकार को छीनकर उन्हें देश निकाला देकर वह एकछत्र राज भोगेगा ?

कैकेयी : भरत ! ऐसा न कह बेटे ! अपनी समझ से तो मैंने अच्छा ही किया था। मैं नहीं समझती थी कि मैं अनर्थ करने जा रही हूँ। अपने बेटे का हित कौन माँ नहीं चाहती भला ? मैंने तो ऐसा करने में तेरा हित ही माना था। वरना राम से मुझे क्या कष्ट था ? अब मुझ पर इतना क्रोध न कर बेटे !

भरत : क्रोध ? मुझे क्रोध करने का क्या अधिकार है ? किस पर क्रोध करूँ मैं ? अपने पिताजी की हत्या करने वाली माँ पर ? उस माँ पर जो अपने बेटे को थोड़ा-सा भौतिक सुख देने के लिए अपना सिन्दूर मिटा सकती है ? ऐसी निष्ठुर जड़ माँ पर मैं क्या क्रोध करूँ ? मैं गर्व क्यों न करूँ उस पिता पर जो अपने धर्म, प्रतिज्ञा और सहिष्णुता के नाते मर तो आसानी से सकते हैं पर झूठ नहीं बोल सकते। कही गयी बात को प्राणों की कीमत पर भी टाल नहीं सकते ?

शत्रुघ्न : भइया ! अब जो होना था हो गया ? चलिए, बड़ी माँ को

सान्त्वना दें चलकर। उनके दुःख को कम करें हम।

भरत : लेकिन किस मुँह से सौमित्र ? मेरी इस दुष्ट कृतघ्न माँ ने क्या मुझे इस लायक रखा है कि मैं बड़ी माँ के पाँव पड़कर क्षमा माँग सकूँ ? मेरे बारे में कितना घृणा होगी उनके मन में ? क्या सोच रही होंगी वह मेरे बारे में ?

कैकेयी : मेरी सारी मूर्खता तेरे शब्दों ने उजागर कर दी है बेटे ! मुझे क्षमा कर दे। वास्तव में मैंने कितना हेय और नीच काम कर डाला ? मैं स्वयं पश्चाताप करूँगी। मैं अभी जाकर दीदी के पाँव पकड़कर अपने कुकर्मों के लिए क्षमा माँगूँगी।

भरत : क्षमा माँगोगी ? क्या होगा उस क्षमा माँगने से ? हमारे पिताजी के प्राण हमें लौटा दोगी ? बड़ी माँ को उनका सुहाग भी वापस कर दोगी ! राम, सीता और लक्ष्मण को भी उनके सामने खड़ा कर दोगी ?

कैकेयी : (रोते हुए) क्या तुम भी मुझे क्षमा नहीं करोगे बेटे ! मैं तेरे पाँव पकड़कर क्षमा माँगती हूँ, बेटे !

[भरत-शत्रुघ्न जाते हैं।]

[दृश्य-परिवर्तन]

दृश्य पाँच

[राजकक्ष। वशिष्ठ, वामदेव, सुमंत्र, कौशल्या, सुमित्रा, भरत, शत्रुघ्न सहित प्रमुख सलाहकार और राज्याधिकारी बैठे हैं।]

वशिष्ठ : बेटे भरत ! महाराज की अंत्येष्टि के बाद हमें अब प्रजाजनों, राजकाज, नगर-व्यवस्था आदि को भुलाए नहीं रखना है। शोक का, परिताप का, निष्क्रिय रहने का कोई अन्त नहीं है राजकुमार ! जो जन्मता है वह समाप्त भी होता है। किन्तु कर्म का एक नियति-चक्र है, जो चलता रहता है, उसे चलता रहना चाहिए। प्रकृति कभी किसी के रोके, किसी के दुःख से रुकती नहीं है। उसे चलना है। निरन्तर चलते ही रहना है। हम, तुम, वे, ये सब उसे चलाने के माध्यम हो सकते हैं किन्तु नियन्ता प्रकृति स्वयं है।

भरत : गुरुदेव ! दुःख, संताप, पश्चाताप ये सब तो जीवन-भर हमारे साथ रहेंगे। प्रजा का काम भी चलेगा। राजकाज भी चलेगा।

नियति भी चलती रहेगी। आपके यह विचार श्रेष्ठ हैं कि किसी के रहने से ही कोई काम होगा यह धारणा गलत है और किसी के न रहने से कोई काम रुक जायेगा यह धारणा भी गलत है। हाँ, काम तो करने ही होंगे, गुरुदेव !

सुमंत्र : राजकुमार ! आप सही कहते हैं। गुरुदेव की वाणी भी सत्य है। काम चलते रहते हैं, केवल माध्यन बदलते रहते हैं। इसलिए अब हम लोगों को राज्य-व्यवस्था के बारे में···

भरत : गुरुदेव ! महामंत्री सुमंत्र ठीक कह रहे हैं। किन्तु मेरे मन में जो बात गड़ गई वह तो निकल ही नहीं रही है।

वशिष्ठ : भरत ! तुम्हारे मन में ऐसी क्या बात गड़ गई है। यद्यपि तुम्हारे मानसिक क्लेश को सब समझ रहे हैं।

भरत : गुरुदेव ! अपने माथे पर लगे इस कलंक के टीके को मैं कैसे मिटा दूँ ? मुझे आप ही कोई उपाय बताएँ ?

वशिष्ठ : यह तुम्हारा भ्रम है भरत। सभी जानते हैं कि इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। अब तुम्हें यह सब कुछ भूलकर तुरन्त राज-काज सँभालना है। क्योंकि जनता के प्रति अब तुम्हीं उत्तरदायी हो। क्यों महामंत्री सुमंत्र ?

सुमंत्र : महाराज की आज्ञा तो यही है। महाराज के बाद अब राजकुमार भरत को ही अवध के राजा का पद ग्रहण करना है। वैसे भी अब यह उत्तरदायित्व आप पर ही आ पड़ा है।

भरत : गुरुदेव ! मेरे बड़े भाई राम के होते हुए अवध का राजा मैं कैसे हो सकता हूँ ? यह तो मर्यादा के भी विरुद्ध है।

कौशल्या : भरत बेटे ! मेरे राम को तुम्हें राज सौंपने में कोई दुःख नहीं था। वह तो चाहता था कि अवध के राजा भरत हों, उसे तो राज्याधिकार वैसे भी भार सदृश लगता था।

भरत : (क्रोध से) अवध के राजा भरत हों। भरत अवध के राजा हों। भरत राजा हों। भरत ही राजा हों। शब्दों के यह सुलगते हुए से अंगारे मुझ पर क्यों डाले जा रहे हैं ? बड़ी माँ ! तुम भी, गुरुदेव भी, सुमंत्र भी क्या इस बेचारे भरत को क्षमा नहीं करोगे ? मेरी माँ ने जो गलती कर दी है उस गलती का कितना बड़ा दण्ड देंगे आप सब मुझे ? इस जघन्य अपराध का कोई प्रायश्चित नहीं है क्या ?

कौशल्या : भरत बेटे ! कैकेयी तो चुप है। वह पति के उठ जाने का पश्चाताप भी कर रही है। किन्तु राम दण्डकारण्य गया है तो तुम

अवध की जनता को अनाथ छोड़ दोगे क्या ? असहाय कर दोगे अवध को ?

भरत : सुन रहे हो सौमित्र ? बोलते क्यों नहीं तुम ? गुरुदेव ! अवध की प्रजा पर मैं राज करूँ और मेरे बड़े भाई वनवासी बनकर वन-वन भटकें ! (भरे गले से) इतना बड़ा दण्ड मुझे न दें गुरुदेव !

वशिष्ठ : भरत ! समय भावना में बहते रहने से पूरा नहीं होगा। राजा ने राज्य तुम्हें देने की आज्ञा देकर अपने प्राण त्यागे हैं। उनकी आज्ञा का तिरस्कार करोगे क्या ?

भरत : गुरुदेव ! ऐसा न कहिए। मेरे सिर पर इतना पाप न बाँधिए। मेरे पिता मुझसे छीन लिए गए। (रोता है) पिता का सिर से साया गया, (सिसक कर) बड़े भाई को, जो मेरे सिर का साया बनता, उसे वन भेज दिया गया। मुझे अनाथ बना दिया गया है ! (सिसक कर) मेरा एक साहसी छोटा भाई था लक्ष्मण, जो ऐसे दुःखमय समय में मेरा सहारा बनता, वह भी वन को गया। इन क्रूर क्षणों में जिनका स्नेह मुझे आच्छादित करता वह भाभी भी वन को गईं। अब आप कहते हैं कि भरत उन सब को वन में डालकर राजसुख भोगे ? उनके असीम कष्टों की कीमत पर यह राजसुख भोगूँ मैं ? मैं यहाँ का राजा बनकर सारी कुल-परम्परा, राज-मर्यादा को तिलांजलि देकर, अवध नरेश बनकर वह मुकुट सिर पर बाँध लूँ जो मेरे कुल की उच्च मर्यादाओं से प्रभामण्डित है।

कौशल्या : बेटे भरत ! इसमें राजकुल की मर्यादा के घटने का प्रश्न ही नहीं है। मेरा राम अपनी इच्छा से वन गया है। लक्ष्मण उसे छोड़ नहीं पाता था, इसलिए वह भी उसके साथ चला गया। और बहू सीता ने साथ जाना अपना धर्म समझा। इसलिए इस समय तुम्हारा यही धर्म है कि तुम अवध का राज्य-शासन सम्हालो।

वशिष्ठ : भरत ! तुम्हें राजतिलक किया जाना है। राजा का वचन था यह। तुम्हें वह वचन भी मानना होगा और महारानी ठीक कहती हैं कि इस समय तुम्हारा धर्म भी है यह।

भरत : राजा का वचन था नहीं, राजा का वचन बनाया गया था। अपनी इच्छा से राजा का वचन होता तो वह अपने प्राण क्यों दे देते ? रही बात धर्म की; मेरा धर्म क्या है यह आप भी जानते हैं और मैं भी।

वशिष्ठ : तुम कहना क्या चाहते हो ?

भरत : हम अपने बड़े भइया को लौटाने जावेंगे। उन्हें लौटा कर उन्हें अवध का राज सौंपेंगे। चाहे उनकी जगह वन मुझे स्वयं जाना पड़े। अगर पिता का वचन रखने के लिए पुत्र का वन जाना आवश्यक है तो वन मैं जाऊँगा।

कौशल्या : भरत बेटे ! तुम राम को लौटाने जाओगे ? तुम्हें विश्वास है कि राम लौट आवेगा ? बेटे, राम लौटने वाला होता तो बन जाता ही क्यों ? उसे किस-किसने क्या-क्या नहीं समझाया ?

भरत : माँ ! आप माँ हैं। आप बड़े भइया राम को जितना जानती हैं उतना मैं कैसे जान सकता हूँ। किन्तु उनका छोटा भाई होने के नाते कोई भरोसा लेकर ही उनके पास जाऊँगा। मेरा विश्वास है कि मेरे बड़े भाई मेरी बात अवश्य रखेंगे।

वशिष्ठ : रखेंगे। बेटे भरत ! तुम्हारा विश्वास मैं भी नहीं तोड़ना चाहता। तुम्हें राजसत्ता सम्हालनी थी। तुम उसके लिए मना करते हो। बहुत दिनों तक सिंहासन खाली नहीं रह सकता रानी कौशल्ये ! तुम्हें लगता है कि राम वापस आ जाएगा।

कौशल्या : राम वापस आ जाएगा ? गुरुदेव ! भरत जैसा कोई भाई जादू करके राम को लौटा लाये तो अच्छा ही है। मैं कैसे कह दूँ कि राम वापस आ जायेगा या इन्कार भी कैसे कर दूँ कि नहीं आवेगा ?

भरत : किसी को कहने की आवश्यकता नहीं है बड़ी माँ। मैं उन्हें लौटा लाऊँगा। राज्य का अधिकार उनका है। मुझे राजा बनाकर अनर्थ न होने दीजिए। मुझे दोहरे पाप में न डालिये।

वशिष्ठ : तो ठीक है। तुम्हें विश्वास है भरत, तो तुम्हारे साथ हम भी राम के पास तक चले चलेंगे। शीघ्रता की जाए।

कौशल्या : तब तो गुरुदेव, हम तीनों बहनों और लक्ष्मण-पत्नी को भी आज्ञा दीजिये। हम भी चलेंगी।

वशिष्ठ : चल सकते हैं। शीघ्र तैयारी करें और चल दें। राजसिंहासन लम्बे समय तक खाली नहीं रखा जा सकता।

[दृश्य बदलता है।]

[नगर के बाहर रथ खड़े हैं। राजपुरुषों और जनता की भीड़]

भरत : शत्रुघ्न ! ये क्या कर रहे हो ? चलो। रथ पर बैठो, देर हो रही है न ?

शत्रुघ्न : भइया ! देखते नहीं सारा अवध। अवध की सारी जनता साथ चलना चाहती है। मैं इन्हें रोक रहा हूँ। किन्तु कोई नहीं मानता।

सुमंत्र : राजकुमार ! ये प्रजा है राम की। राम के बिना रोते-तड़पते दिन काट रहे हैं। चाहते हैं, ये भी चल कर राम के दर्शन करें। उनसे लौट आने की प्रार्थना करेंगे ये सब।

भरत : ये लोग चलना चाहें तो चल सकते हैं। किन्तु अब देर न करो, शीघ्रता करो।

सुमंत्र : जो आज्ञा राजकुमार ! माताओं को बिठाकर आप भी रथ पर बैठें राजकुमार !

[दृश्य-परिवर्तन]

दृश्य छः

[चित्रकूट पर्वत पर राम की कुटी]

लक्ष्मण : भइया ! उधर देखिए, नीचे घाटी की ओर उड़ते धूल के बादल।

सीता : लक्ष्मण ! वन में आकर तुम्हें धूल के बादलों से भी डर लगने लगा है ?

[हँसने लगती है।]

राम : नहीं सीते ! लक्ष्मण ठीक कह रहा है। ऐसा धूल का बवण्डर तभी आकाश में उड़ता है जब कोई बड़ी सेना किसी तरफ बढ़ रही होती है।

लक्ष्मण : सेना ? हाँ, भइया, सेना तो है ही। लगता है मेरे भइया भरत को हमें वन में भेज कर संतोष नहीं हुआ है !

राम : नहीं लक्ष्मण, भरत पर ऐसी शंका क्यों करते हो ?

लक्ष्मण : भइया ! क्षमा करें। यह अवश्य भरत भइया ही हो सकते हैं जो सेना लेकर हमें समाप्त करने आ रहे हैं। रात में मुझे ऐसा ही सपना भी आया था।

सीता : नाथ ! धूलि का यह भीषण बादल हमारी कुटी की ओर ही बढ़ रहा है। कहीं लक्ष्मण की बात सच तो नहीं है ?

लक्ष्मण : मेरी बात तो झूठी है। शत-प्रतिशत सही होने पर भी भइया तो मेरी बात को झूठ ही समझेंगे। भाभी ! यह भरत और शत्रुघ्न ही हो सकते हैं जो अवध की शक्तिशाली सेना को लाकर हमें निरुपाय और निःसहाय तथा निहत्था समझकर मरवा डालना चाहते हैं। और किसी को हमसे क्या बैर ?

राम : ऐसा क्यों सोचते हो लक्ष्मण ! भरत मेरे लिए ऐसा ही है जैसे तुम

हो। तुम क्या राम को असहाय पाकर मरवाने आ सकते हो ?

लक्ष्मण : भइया ! इतने सरल न बनिये। इतने साधु आप न होते तो क्या आप अपनी पत्नी सहित अवध के सिंहासन पर न होकर इस बीहड़ वन में होते ? अब भी इस नटवर भरत भइया पर आप इतना असीम विश्वास बनाये हुए हैं। यदि भइया भरत ने ऐसी कोई दुष्टता की तो उसे मैं आज समस्त सेना सहित यमलोक भेज कर रहूँगा। उसे राज पा लेने पर, धोखे से अवध की सत्ता पा लेने पर इतना बड़ा अभिमान हो गया है कि वह राम और लक्ष्मण को समाप्त करने का इरादा लेकर अवध की सूरमा सेना सहित चित्र-कूट पर चढ़ आया है ! मैं उसे भी और उसके लाड़ले शत्रुघ्न को भी धूल चटा दूँगा। भरत ही अगर सारा रघुवंश हो गये हैं तो आज भइया, मैं इस धनुष की सौगन्ध लेकर कहता हूँ कि पृथ्वी को तवे पर पड़ी रोटी की तरह पलट दूँगा। भाभी ! मैं आज इस पृथ्वी को आग लगा दूँगा। मैं··· मैं ···!

राम : रुको लक्ष्मण ! इतने क्रोध में आने से अपनी ही शक्ति का नाश होता है। सीते ! लक्ष्मण से कहो न, बिना बात जाने इतना क्रोध करने की क्या आवश्यकता है ?

सीता : देवर ! हो सकता है वह भरत न हों ? कोई और हो ? प्रकृति भी तो धूल के ऐसे बादल उड़ा सकती है ? कोई सेना भटक कर भी तो इधर आ सकती है।

लक्ष्मण : भाभी ! आप भी कहती हैं भइया की तरह कि यह भरत की सेना नहीं है। और हमारा दुश्मन ही कौन है ? यह निश्चय ही भरत है। इस भरत को मैं आज बता दूँगा कि राम की ओर बुरी निगाह उठाना भी कितना दुरूह कर्म है। और मेरा भाई शत्रुघ्न अवश्य भरत के साथ सेनापति बना ऐंठ कर आ रहा होगा। धरती माँ की सौगन्ध ! मेरी माँ सुमित्रा की कोख की सौगन्ध भाभी ! सबसे पहले मैं शत्रुघ्न के टुकड़े-टुकड़े कर धरती में मिलाकर भइया राम की जय बोलूँगा।

राम : लक्ष्मण ! इतने अशांत क्यों होते हो ? धीरज से काम लो।

लक्ष्मण : वो देखिए, अवध का राज-परचम लहरा रहा है। वे समीप आ चुके हैं। अब तो आपको संदेह नहीं रह गया है न ? ठीक है, उन्हें आ जाने दीजिए। आप निश्चित कुटी के अन्दर बैठिए। आप सब कुछ मुझ पर छोड़ दीजिए। मुझे आशीर्वाद दें भइया।

राम : इस तरह शंकालु और अधीर क्यों होते हो ! आओ सीते, आगे

बढ़कर उस सामने वाले टीले से देखें तो।

सीता : जी हाँ, वहाँ से नीचे तक का पथ बहुत साफ दिखता है, चलिये तो।

[राम-लक्ष्मण और सीता टीले हर खड़े हैं।]

राम : सीते ! लक्ष्मण ठीक कहता था। वो देखो, नीचे चढ़ाई पर जो भीड़ के आगे-आगे नंगे पाँवों पैदल आ रहा है वह शायद हमारा भरत है।

सीता : वो-वो, हाँ-हाँ, आर्य। वह सचमुच भरत हैं। उनके पीछे सौमित्र हैं शायद। (प्रसन्न होती हैं।)

राम : लक्ष्मण ! तुमने ठीक ही सोचा था, हमारा भरत ही आ रहा है यह, आसमान पर धूल उड़ाता हुआ। किन्तु वह सेना के साथ नहीं शायद अवध के लोगों के साथ आ रहा है। आक्रमणकारी रथों, पालकियों के साथ पैदल चलकर, बिना रणभेरियों की गर्जना के नहीं आया करते।

सीता : किंतु नाथ ! उन पालकियों पर कौन हो सकता है ?

राम : शायद माताएँ भी आ रही हैं। शायद गुरुदेव भी आ रहे हैं। देखा, कितनी बड़ी भीड़ आ रही है। लेकिन यहाँ किसलिए आ रहे होंगे यह सब ?

लक्ष्मण : शायद अवध के राजा भरत वनवासी राम से कोई और बाकी रह गया हिसाब माँगने आ रहे हैं, भइया ! वरना राजा हमारे पास क्यों आयेंगे ?

राम : नहीं लक्ष्मण, मैं भरत को जानता हूँ। तुम व्यर्थ भरत के बारे में जब से अवध से आये हो ऐसा ही सोच रहे हो। तुम्हारा यह सोचना गलत है लक्ष्मण। भरत का मन जल से भी अधिक निर्मल और हिम से भी अधिक स्निग्ध है।

लक्ष्मण : भइया ! हाथ कंगन को आरसी क्या ? अभी आप मुझे आगे नहीं बढ़ने दे रहे हैं कि मैं भरत को रोकूँ। किन्तु आने दीजियेगा, देख लीजियेगा कि आप सही हैं कि मैं सही हूँ।

राम : सीते ! लक्ष्मण कभी अपनी हार नहीं मानता। यह इसकी आदत है। चलो हम ही हार मान लेते हैं। प्रिये ! अगर गुरुदेव आ रहे हैं, माताएँ आ रही हैं तो तुम्हें उनके चरण धोने को कुटी में पहले ही जाकर जल की व्यवस्था करनी है। हाँ, सभी अवध के मेरे मित्र-जनों के लिए कन्दमूल-फल और जल की पूरी व्यवस्था रहनी चाहिये।

सीता : इस काम में मैं अपने लक्ष्मण की मदद लूंगी। कन्दमूल-फलों की व्यवस्था वह करेंगे।

लक्ष्मण : भाभी ! पहले आ तो जाने दीजिये। उनकी नियत तो पता चल जाये। कन्दमूल-फलों के अधिकारी हैं वे लोग कि लक्ष्मण के तीरों के ?

सीता : वह तो देवर, सेना के न होने, पुरवासियों और सासुओं के साथ होने से ही स्पष्ट है।

राम : (**जोर से हँसकर**) सुन रहे हो लक्ष्मण ! सीता समझती है जैसे तुम अबोध हो। तुम अब भी समझे नहीं हो। जानकर भी कि तुम अब सारी बातें हास्य के लिए कह रहे हो--तुम्हें गम्भीर होने तक का नाटक करके चिढ़ा रही है।

लक्ष्मण : देखो भाभी ! भइया मुझे आपसे चिढ़ाना चाहते हैं। आप गागरों में जल भरिये, मैं उनके यहाँ आने से पहले कन्दमूल-फलों की व्यवस्था करता हूँ।

[भरत, मुनि वशिष्ठ, महारानियाँ, अवध जन चित्रकूट में राम की कुटिया के पास पहुँचते हैं। भरत पहुँचते ही राम के चरणों पर गिर कर—]

भरत : भइया, भइया ! (**रोते हुए**) मेरे प्राणों से भी प्रिय भइया ! मुझे क्षमा कर दो। मैं सारे पाप का, सारे अपराध का, सारे अन्याय का दोषी हूँ भइया ! मुझे क्षमा योग्य न समझते हुए भी क्षमा कर दीजिए। (**रो-रोकर**) मैं जानता हूँ कि आपको इतने कष्ट देने का अपराधी मैं ही हूँ। तब भी भइया, क्षमा बड़न को करना चाहिये··· (**रोता है।**)

राम : नहीं भरत, नहीं। तुम मेरे लिए प्राणों से भी प्रिय हो। मैं अपनी इच्छा से वन चला आया था। मेरा बचपन से ही वन में मन रम गया था। अपनी इच्छा से मैंने अवध का भार तुम पर डाल दिया था। उठो, ऐसा पागलपन नहीं करते। गुरुदेव और माताएँ मेरा साष्टांग प्रणाम लें। मेरे साथ सीता और लक्ष्मण का प्रणाम लें। (**प्रणाम करते हैं।**)

वशिष्ठ : चिरंजीवी रहो !

कौशल्या : हम तीनों बहनों का आशीर्वाद लो बेटे। राम, इधर आ बेटे। मेरे कलेजे से लग जा लक्ष्मण। सीता, आओ। हम तीनों के गले लगो। तुम्हें छोड़कर हम कितने दुःखी हैं। लक्ष्मण ! इस साहसी सुमित्रा के बरसते मन को सम्हाल बेटे ! साहसी माँ के साहसी बेटे ! इसने

अपनी आँखों के आँसू अन्दर ही अन्दर सुखाकर मेरे आँसू बराबर पोंछे हैं। राम बेटे ! यह बेचारी इन दिनों बराबर पश्चाताप की आग में बुरी तरह झुलस रही है। इसे तुम्हारे आदर और ममता के शब्द ही शीतल कर सकेंगे।

राम : शत्रुघ्न ! इधर आ। अरे, तेरी आँखों में ये आँसू कैसे हैं रे। पागल कहीं का, बच्चों की तरह सिसक रहा है ! (**घूमकर**) अवध के सभी पुरजन मेरा प्रणाम लें। यहाँ तक आने का किस कारण कष्ट उठाया ? भरत ! सब लोग यहाँ क्यों आये हैं ? पिताजी का क्या हाल है ?

[सभी रोते हैं। रोने के स्वर]

लक्ष्मण : भइया ! भाभी जी ! क्या अब पिताजी··· (**आश्चर्य से सभी को देखने लगते हैं।**)

वशिष्ठ : लक्ष्मण, बेटे ! ठीक ही समझे तुम। राम, बेटे ! दशरथ अब नहीं रहे। देख नहीं रहे हो, रानियों के माथे पर सिंदूर नहीं है।

राम : हाय पिताजी (**रोते हुए**) पिताजी नहीं रहे। क्या हुआ गुरुदेव उन्हें।

वशिष्ठ : राम ! लक्ष्मण ! सीता, बेटी ! दशरथ चले गये। हम सबने सह लिया, तुम भी सह लो। जो आना है जाने के लिए ही आता है। अब दु:ख न करो।

राम : मैं अभागा बेटा। पिताजी के अन्तिम समय उनके सामने भी न रहा।

वशिष्ठ : राम ! कौशल्या और सुमित्रा के सिवाय दशरथ के सामने और कोई नहीं था। जो राजा जीवन-भर पुत्रों की प्राप्ति के लिए तरसता रहा वही राजा मरते समय चार सुयोग्य पुत्रों में से मरते समय एक को भी समीप नहीं रख सका। चलो छोड़ो भी, वे राजा दशरथ के अपने कर्म थे। वह उसके पूर्व जन्म के फल थे जो अब काम आये। यदि इस जन्म में राजा दशरथ ने अच्छे कर्म किये हैं तो इस सबका फल वह अगले जन्म में पायेगा।

राम : गुरुदेव ! मैं तो पितृविहीन हो गया न ? मैं तो कहीं का नहीं रहा न ?

कौशल्या : हम सब स्वयं और यह अवधवासी सभी विलाप कर-करके इतने दिनों से बुरी तरह टूटकर आज तुम्हारे समीप आये हैं। तुम सबको धीरज दो, शान्त करो। अब गुरुदेव को, अवध जनों को कहीं छाया में बिठाओ बेटे। और लक्ष्मण, हिम्मत से काम लो। सीते,

इधर आ बेटे।

[सबको ढाढ़स देती है।]

राम : आइये गुरुदेव ! आप सब लोग भी इधर छाँह में आ जाइये। जल पीजिये। बैठिये।

कौशल्या : देख लक्ष्मण, इधर आ, अपनी माँ से तो मिल और उर्मिला आयी है, उससे भी मिल बेटे।

लक्ष्मण : आप भाभी, गुरुदेव और माताओं का ध्यान रखें। कुटी में स्थान बना दिया है। भरत भइया भी वहीं रहेंगे। शेष जन इन वृक्षों की छाया में रहेंगे। भोजन की व्यवस्था मैं कर रहा हूँ भाभी। सबको ठहरने की अच्छी सुविधा मिल जाय कुछ ऐसा उपाय करता हूँ।

सीता : आर्य ! कुटी छोटी तो अवश्य है, किन्तु तीनों माताएँ और भरत-शत्रुघ्न वहाँ रह सकते हैं। गुरुदेव के लिए सामने लक्ष्मण की कुटी में व्यवस्था कर दी है। बाकी लोग हम सबके साथ पेड़ों की छाँह में विश्राम करें।

लक्ष्मण : भइया ! है तो यह वन ही। फिर भी जैसा भी बन पड़ा सबकी व्यवस्था कर दी है। कन्दमूल भी पर्याप्त हैं।

राम : तो ठीक है। सबका उचित ध्यान रखो लक्ष्मण। मैं गुरुदेव के पास बैठता हूँ। वहीं भरत भी है।

दृश्य सात

[भीड़ से हटकर लक्ष्मण उर्मिला के पास जाते हैं।]

लक्ष्मण : मेरी उर्मिले !

उर्मिला : नाथ !

लक्ष्मण : मेरी उर्मिला आयी है। देखकर मैं कितना प्रसन्न हुआ हूँ !

उर्मिला : हाँ, नाथ ! मैं समझ सकती हूँ। न भी आती, केवल आपसे मिलने आयी हूँ नाथ ! अपने से बड़ों के साथ आने में संकोच हो रहा था पर मन माना नहीं। प्राण तो आपके पास रहते ही थे, सोचा यह हाड़-मांस भी ले चलूँ।

लक्ष्मण : उर्मिले ! तुम्हारा त्याग कभी युग याद करेगा प्रिये !

उर्मिला : नाथ ! इसे मेरा त्याग कहते हैं आप ?

लक्ष्मण : नहीं उर्मिले, ऐसी बात नहीं है। चौदह वर्ष के लिए पति से विलग रहने की तुम्हारी अटल संकल्प भावना किस बड़े त्याग से

कम है ?

उर्मिला : कैसी बात करते हैं आर्य ! मेरा धर्म बनता था यह।

लक्ष्मण : उर्मिले ! मेरी उर्मिले ! तुम मेरी हो। ऐसी बातें केवल तुम्हीं सोच सकती हो। लोग हमारे प्रेम के बारे में सोचेंगे···

उर्मिला : देखिए नाथ, इस तरह अपने और मेरे पवित्र प्रेम को गर्वीला न होने दीजिए। 'मेरा और आपका यह अकिंचन एकात्म प्रेम अपने बीच की बात ही बना रहे। यह क्यों कहते हैं आप कि लोग उसके बारे में सोचेंगे ।

लक्ष्मण : उर्मिले ! एकात्म तो होगा हमारा प्रेम, पर अकिंचन न कहना इसे। बहुत बड़ा और पवित्र कहना होगा इसे।

उर्मिला : मन मार कर भी यदि आपको संकल्प मैं पूरा होने दे सकी तो यह मेरे अकिंचन प्रेम की महान उपलब्धि होगी आर्य !

लक्ष्मण : उर्मिला ! सचमुच मैं सेवा का संकल्प लेकर तुम्हें अकेली छोड़कर आया हूँ। चाहता तो तुम्हें भी साथ ला सकता था किन्तु फिर प्रेम की वह···

उर्मिला : नाथ···बस करिए ! निभा लूँगी मैं अपने को, अपने मन में क्यों इतना भार लिए हुए हैं। पति से दूर रहकर भी यह उर्मिला आपकी ही है—आपकी ही रहेगी। आग में तपे कंचन की तरह विरह मुझे उज्ज्वल रख सकेगा।

लक्ष्मण : सचमुच, तुम कितनी महान हो उर्मि ! यों तुम साथ रहना चाहो तो रह सकती हो। भइया और भाभी मना नहीं करेंगे।

उर्मिला : साथ तो आप मुझे घर से चलते समय भी ले सकते थे। लेना चाहिये भी था। पत्नी का और जीवन भी क्या हो सकता है पति से अलग ! दीदी ने पत्नी के जीवन की इस सार्थकता को समझा है, इसीलिए साथ आयी हैं। किन्तु मेरे साथ एक 'किन्तु' जुड़ा है न !

लक्ष्मण : किन्तु तुम्हारा पति स्वयं अपने जीवन की सार्थकता की तलाश में भइया-भाभी की सेवा करने आ रहा था तो उसकी पत्नी के जीवन की वह कैसी सार्थकता होती जो सेवक की सेवा में बाधा न सही व्यवधान तो बन ही सकती थी। यहीं 'किन्तु' तुम्हारे साथ जुड़ गया था न ? घर से चलते समय भी मैंने तुम्हें यही समझाया था उर्मि !

उर्मिला : हाँ प्राण ! यही समझाया था। उसे समझकर ही मैंने अपने जीवन की सार्थकता का एक और रास्ता चुन लिया था—पति के अतिशय

और असह्य वियोग में तिल-तिल कर गलते रहकर उनके व्रत की सफलता की कामना के लिए अपने अस्तित्व का आत्मसात ! कह नहीं सकती सफल हो सकूँगी कि नहीं, किन्तु नाथ ! आपके लौटने की प्रतक्षा में जीवित अवश्य रहूँगी—इस निष्ठा के साथ कि मेरा चिर सौभाग्य, मेरा सिंदूर आपको सदा मंगलमय रखेगा।

लक्ष्मण : उर्मिले !

उर्मिला : हाँ, नाथ ! आपके कष्ट मेरे पुण्य बनें और मेरे कष्ट आपका सम्बल बनें।

लक्ष्मण : केवल तुम्हीं बोलोगी उर्मी !

उर्मिला : फिर तो आपके लौट आने तक चुप ही रहना है। बोलने के यह क्षण पूर्व संचित फल के रूप में मिले हैं, आर्य ! चाहती हूँ इस समय भी चुप ही रहूँ पर रह नहीं पा रही हूँ।

लक्ष्मण : लेकिन मेरे मन की बात नहीं सुनोगी ?

उर्मिला : जब अकेली रहूँगी तो आँखें बन्द करके चौदह साल तक केवल आपके मन की बातें ही सुनूँगी। वही बातें तो मेरा सहारा रहेंगी। आपको छोड़ सकती हूँ तो क्या आपके मन को भी आपके पास ही छोड़ दूँगी। उस पर तो मेरा अधिकार होगा। देंगे न इतना अधिकार ?

लक्ष्मण : तुमने मुझे भइया की सेवा का अधिकार देकर मुझसे सब कुछ ले लिया है प्राणेश्वरी ! अब मेरे पास क्या बचा है कि तुम्हें मुझसे माँगना पड़े ? जब लौटूँ तो तुम मुझे सकुशल ऐसी ही मिलोगी जैसी आज हो, इतना तुमसे और माँग लेता हूँ उर्मि !

उर्मिला : **(मुस्कराकर)** हूँ ! ऐसी ही जैसी आज हूँ ! पतिव्रता रहने पर भी समय की गति रोक सकने, प्रकृति का नियम बदल सकने की अद्‌भुत क्षमता मुझमें अपने आप तो न आ सकेगी ! आप व्रतधारी ब्रह्मचारी रहेंगे, हो सकता है अपने में आप ऐसी क्षमता अर्जित कर सकें कि जब आप लौटें तो मुझे ऐसे ही मिलें जैसे आज, इस समय है। यति मेरे ! मैं उसी क्षण की प्रतीक्षा में अपने को भी आप जैसा ही रखने का भरसक प्रयत्न अवश्य करूँगी।

लक्ष्मण : तुम किंचित मुस्करायी तो मेरी आँखों में अवध के वे क्षण लौट आये जो कभी नितान्त हमारे अपने हो गए थे।

उर्मिला : कामना करती हूँ कि कभी फिर होंगे।

लक्ष्मण : उर्मिले!

उर्मिला : नाथ !

दृश्य आठ

[चित्रकूट का राम का आश्रम। वशिष्ठ, सुमंत्र, राम, भरत, कैकेयी, कौशल्या आदि सभी बैठे हैं।]

वशिष्ठ : राम, बेटे! तीसरा दिन है आज हमें चित्रकूट में। मैं तो ठहरा साधु, मुझे क्या जल्दी है? किन्तु महामंत्री सुमंत्र की चिन्ता भी ठीक है। वह कहता है कि राम और भरत दोनों के राज से बाहर रहने से जनता परेशान होगी। राज-काज के कामों में भी राजा के न रहने से दिक्कतें आ रही होंगी। बड़े निर्णय अधिकारी नहीं ले पा रहे होंगे? ऐसे में शत्रु भी अवसर की तलाश में रहते ही हैं।

राम : हमारी पर्णकुटी में, इन पेड़ों की छाया में आप सब लोग पड़े हुए हैं। हमें भी यहाँ यह सब अच्छा लग रहा है। किन्तु आप सबको असुविधा हो रही होगी। शिष्टाचार के नाते, हम किसी को जाने को भी तो नहीं कह सकते और वह सुख भी नहीं जुटा सकते जो आप लोगों को मिलने चाहिए।

सुमंत्र : राजकुमार! गुरुदेव ठीक कह रहे हैं। हमें अवध की प्रजा का भी ध्यान करना है। राजा दशरथ तो गए। अब आप लोग निश्चय करें कि अवध के सम्राट का सिंहासन किसे ग्रहण करना है?

राम : महामंत्री सुमंत्र! अवध सम्राट के राजसिंहासन का अधिकारी कौन हो, यह प्रश्न चित्रकूट में मेरी पर्णकुटी में क्यों उठा रहे हैं आप? यह प्रश्न तो पिताजी ने अपने जीवन रहते तय कर दिया था।

भरत : भइया! पिताजी ने तो आपको राजतिलक कराने का अनुमोदन राजसभा से ले लिया था।

राम : नहीं भरत, पिताजी ने वह निर्णय बाद में बदल दिया था।

भरत : (**ऊँचे स्वर में**) पिताजी ने वह निर्णय बदला नहीं था भइया। पिताजी से वह निर्णय बदलवा दिया गया था। पिताजी ने कब चाहा था कि आप वनवासी हों, वन में रहें?

राम : भरत! शान्त रहो। अवध के सिंहासन पर बैठने का मेरा तो कभी भी कोई विचार नहीं रहा। मुझे जनसेवा प्यारी थी, वह मैं करता रहा। फिर पिताजी का वचन निभाने मैं वन में आ गया। पहले भी मैं वन में रहा ही हूँ। वन तो मेरे जीवन का अंग हो गये हैं। मुझे यहाँ अच्छा भी लगता है। अब अवध सिंहासन तो भरत तुम्हें ही लेना है। राज-काज का भार तुम्हें ही सँभालना होगा।

भरत : ऐसा अन्याय न करो भइया !

राम : अन्याय ! इसमें अन्याय की क्या बात है ?

भरत : यह किस नीति, किस नियम में है भइया कि बड़ा भाई वन में साधु, तपस्वी बना रहे और छोटा भाई सारी सुख-सुविधाओं के साथ राज करें। लोग ऐसे छोटे भाई को क्या कहेंगे ? आज की बात जाने भी दें तो इतिहास जो कलंक मेरे माथे पर लगायेगा, आने वाली सन्तानें जिस कुपित भाव से मेरे राज-काज का पाठ पढ़ेंगी, क्या यह चिरकाल तक चलने वाला दण्ड आप मुझे देना चाहते हैं भइया ? आप चाहते हैं कि आने वाले युगों में लोग आपके छोटे भाई भरत को कृतघ्न कहें ? आप चाहते हैं कि···

राम : (**भरत को रोक कर**) भरत ! तुम यदि अवध के सिंहासन को सँभालोगे तो क्या लोग तुम्हें मुझसे अलग समझेंगे ? लोग तो यही समझेंगे कि मेरा ही छोटा भाई मेरे ही प्रतिनिधि के रूप में सत्ता सँभाल रहा है ?

भरत : मुझे आपका प्रतिनिधि होना स्वीकार है भइया ! मैं आपका प्रतिनिधि बनकर बड़े सुख से चौदह वर्ष का वनवास काटूँगा। आप राज सँभालें, मैं आपके चरण छूकर प्रार्थना करता हूँ।

राम : (**हँसते हुए**) गुरुदेव ! मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि मेरा भरत जैसा भाई है। आप भरत को समझाइये कि मैं वन में नहीं रहूँगा तो कोई अन्तर तो नहीं पड़ेगा किन्तु इतिहास में यह बात अवश्य दोहराई जायेगी कि एक वचन के धनी सम्राट के बेटे ने सम्राट की मृत्यु के बाद पिता का वचन नहीं निभाया।

भरत : गुरुदेव ! अवध से आये हुए लोगो, माताओ ! आप सब भइया को लौटने को क्यों नहीं कहते ? नहीं कहते तो लीजिए मैं कुश के आसन पर बैठकर यहीं धरना देता हूँ। यहीं पड़ा रहूँगा बिना खाये-पिये, तब तक जब तक भइया मेरी बात मान नहीं लेंगे।

कैकेयी : राम, बेटे ! दीदी के चरणों की सौगन्ध लेकर कहती हूँ कि मेरी बुद्धि मारी गई थी। मुझे क्षमा कर सको तो मुझ पर उपकार होगा। यदि समझते हो बेटा, कि मैं क्षमा कर दिये जाने के योग्य हूँ तो क्षमा कर दो। मैं लाख-लाख बार हाथ जोड़ती हूँ, पाँव पड़ती हूँ कि मैंने जो कुछ राजा से माँगा था गलत माँगा था। मेरी विनती मान लो राम ! चलो वापस चलो और जो कुछ शान्ति रघुकुल में बच सकती है उसे अब तो बचा लो। देश-निकाला देना चाहो तो मुझे दो बेटे। मेरी भूल के लिए भरत को गलत न समझना राम !

राम : इतनी कातर क्यों होती हो तुम ? माँ ! भरत जन-कल्याण का दायित्व सँभाले या राम—इसमें क्या अन्तर है ? भरत को भी जन-जन की आकांक्षाएँ पूरी करने का ही तो दायित्व सँभालना है। राजसिंहासन को पाने का अर्थ सुखों को पाना, वैभव को पाना नहीं है। वह तो वन्य जीवन से भी अधिक संकटपूर्ण जीवन का वरण करना है माँ !

भरत : वह मैं जानता हूँ भइया।

राम : जब जानते हो तो कहते क्यों नहीं कि भइया जन-कल्याण का जन-जन को सुखी कर सकने का दायित्व मुझे दे दो। वह काम मैं करूँगा। राजसिंहासन को तुम लोग सुख और वैभव का अर्थ क्यों देते हो ? क्यों नहीं समझते कि वह काँटों का मुकुट धारण करना है। वह कष्ट और त्याग की परीक्षा का आसन है।

भरत : आपकी भावना सही है भइया !

राम : तो भरत, तुम क्यों नहीं कहते हो कि काँटों का मुकुट आप न धारण करें, मैं करूँगा। तुम क्यों नहीं कहते हो कि कष्ट और त्याग का आसन आप नहीं मैं ग्रहण करूँगा।

भरत : भइया ! मैं तो कहूँगा कि वन का जीवन जीना बहुत सुखदायी है, वनवासी होना परम सुखी हो जाना है, तो यह सुख मैं भोगूँगा भइया। आप अवध वापस जाकर कष्ट और त्याग का आसन लें। यह सुख का जीवन मुझे दे दें।

कैकेयी : दीदी तो चुप है। ठीक है, वह चुप ही रहेंगी। गुरुदेव से कुछ कह सकने के योग्य मैं हूँ नहीं, फिर भी राम, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तुम सब लोग अयोध्या जाओ। अपने किये के पश्चाताप के रूप में मैं वनवासी होकर रहूँगी।

वशिष्ठ : मँझली रानी ! जो प्रतिष्ठा रघुकुल की बच गई है उसे भी समाप्त कर देने की अच्छी युक्ति बता रही हो तुम। चक्रवर्ती सम्राट दशरथ की पत्नी अकेले राक्षसों के बीच वन-वन घूमे इससे अच्छी बात क्या हो सकती है ?

भरत : भइया ! आप किसी तरह भी नहीं मानेंगे ? क्या आप चाहेंगे कि हम सब भी अवध न लौटें ?

राम : भरत ! हठ का भी आधार होना चाहिए। ऐसी हठ तो न करो कि राम का अपना उद्देश्य भी नष्ट हो जाय।

भरत : वनवासी बने रहकर आपका कौन-सा उद्देश्य पूरा हो सकता है ?

राम : भरत ! वन में रहकर मैं वनवासी ऋषियों, मुनियों, आदिवासियों

की दुर्जनों और राक्षसों से रक्षा करना चाहता हूँ। वन-जीवन में राक्षसों का जो आतंक छाया रहता है उस आतंक को मैं समाप्त कर देना चाहता हूँ। समझा करो भरत। इसीलिए मैं इन बीहड़ वनों में रहना चाहता हूँ।

भरत : भइया, अब आपने तर्क ही ऐसा दे डाला है कि इस महान कार्य को सम्पन्न करने में मैं असमर्थ हो सकता हूँ। किन्तु चौदह साल का समय बीतने पर तो अवध लौटेंगे न आप ?

राम : अवश्य। अवश्य लौटूँगा भरत ! और कहाँ जाऊँगा।

भरत : तब तो अवध का राजसिंहासन आपका होगा न ? तब तो स्वीकार करेंगे ?

वशिष्ठ : राम, बेटे ! हाँ कहो। तब तुम्हें नीति और नियम के अनुसार भरत के चाहने पर अवध का राजसिंहासन ग्रहण करना होगा।

राम : भरत ! ठीक है। चौदह साल बाद जब लौटूँगा तो अवध का राजसिंहासन मैं सँभालूँगा।

भरत : ठीक है भइया ! जब आप चौदह साल बाद लौटकर अवध का राज जीवन-पर्यन्त सँभालेंगे तो अवध के राजा होना आपने स्वीकार कर लिया। आप अपनी ये पादुकाएँ मुझे दें। इन्हें मैं राजसिंहासन पर रखकर, आपको राजा मानकर राज का सारा काम, स्वयं भी वनवासी-सा, नगर से दूर रह कर करता रहूँगा।

राम : **(हँसते हुए)** भरत ! ये अच्छी युक्ति निकाली तुमने अपनी बात स्वीकार कराने की !

वशिष्ठ : ठीक है, सिंहासन पर तुम्हारी पादुकाएँ रहेंगी राम, काम भरत करते रहेंगे। भरत ने ठीक युक्ति सोची है।

भरत : भइया ! पादुकाएँ दीजिए। अब हम शीघ्र लौट जाना चाहेंगे। आज्ञा दीजिए।

राम : पादुकाएँ तो ले लो भरत, किन्तु तुम-सा भाई पाना कितने सौभाग्य की बात है। गुरुदेव, माताएँ, गुरुजन हमारा प्रणाम लें।

सीता : लक्ष्मण ! सब लोग जा रहे हैं, मैं गुरुदेव को, माताओं को प्रणाम कर भरत-शत्रुघ्न को विदा कर दूँ। ये रही उर्मिला। चाहो तो इसे रोक लो। यह साथ रहे।

लक्ष्मण : भाभी ! आप जावें। सबको विदा करें। **(सीता जाती है)** उर्मिले ! तुम चाहो तो मेरे साथ रहो।

उर्मिला : नाथ ! साथ रहती तो सेवा करती। साथ रहने का मन भी है। किन्तु···

लक्ष्मण : 'किन्तु' कहकर चुप क्यों हो गई हो ?

उर्मिला : चुप इसलिए हो गई नाथ, कि एक तो आपको आपकी हठ पर कृपा कर बड़े आर्य साथ लाये हैं, बहन सीता को भी लाये हैं, मैं भी आ जाऊँ तो लोग कहेंगे कि राम सीता को वन में ले गये थे तो उनकी सेवा के लिए जाने वाला भाई लक्ष्मण भी अपनी पत्नी को अपने सुख के लिए साथ ले गया। ऐसा कहकर आपकी सेवा-भावना का लोग तिरस्कार करेंगे, स्वामी !

लक्ष्मण : तो क्या हुआ ? लोग कहें। मैं तो उनकी सेवा करूँगा ही। तुम्हारे रहने से और भी अधिक सेवा कर सकूँगा। भाभी जी को और भी सुख मिलेगा।

उर्मिला : नहीं, लोग कहेंगे—सीता साथ गई तो उर्मिला भी साथ हो गयी।

लक्ष्मण : तो क्या हुआ ?

उर्मिला : नहीं। वहाँ भी बड़ी सास के पास जेठ-जेठानी के और आपके आ जाने के बाद कौन है जिसे वह अपना समझें। आपको वह अपने बेटे का ही अंश मानती हैं और मुझको वह अपनी ही बहू मानते हैं। उनके लिए भी मुझे वहाँ रहना चाहिए। अपनी बात मैं पहले आपको बता चुकी हूँ।

लक्ष्मण : हाँ, ये तो तुम ठीक कहती हो उर्मिले !

उर्मिला : आपकी माँ भी आपको वन में छोड़कर मुझे देखकर थोड़ा साहस बटोरती हैं। मैं भी आपके साथ रहूँगी तो मेरी सास भी बड़ी सास की तरह टूटकर रह जावेंगी। इसलिए मुझे तो नाथ, लौट जाने दीजिए। आपकी प्रतीक्षा में समय बिताती रहूँगी। आपके मंगल के लिए सुबह, दोपहर, शाम प्रार्थना करती रहूँगी।

लक्ष्मण : उर्मिले ! तुम कितनी महान हो।

अंक छः

दृश्य एक

[राम सीता के पास मंदाकिनी के तट पर बैठे हैं।]

राम : सीते ! मंदाकिनी नदी के जल को इस तरह देर से घूरकर क्या देख रही हो ?

सीता : ऐसे ही देख रही थी नाथ ! अच्छा लग रहा है न ? कितना वेग है इसमें ? कितना निर्मल, स्वच्छ है ये जल ? लेकिन इतनी अधीरता क्यों है इसमें कि क्षण-भर को भी ठहरता ही नहीं ? लपक-लपक कर उछल-उछल कर आगे बढ़ता ही चला जाता है। लगता है यह जल डर रहा है कि कहीं पिछड़ न जाय ? कहीं पीछे न रह जाय ? जैसे किसी से मिलने को आतुर है। तुरन्त उससे मिल जाना चाहता है।

राम : (**हँस कर**) बस-बस-बस । तुम तो जल को क्या देख रही हो कि कविता करने लगी हो । तुम तो ऐसे बताने लगी जैसे यह मंदाकिनी का जल नहीं किसी राम की सीता है । हर क्षण अपने प्रिय के साथ रहकर भी हर क्षण अपने प्रिय से मिलने को आतुर-सी, उतावली-सी। (**दोनों हँसते हैं।**)

सीता : रहने दीजिये। हर क्षण आपके पास रहकर भी हर क्षण आपसे मिलने को उतावली रहती हूँ, ठीक है। अब आपसे दूर-दूर ही रहूँगी। (**मुँह बनाकर**) इतनी हल्की ही तो हुई न मैं ? मैं बावली समर्पित रहती हूँ तो आप मुझे उतावली समझते हैं ।

राम : (**हँसकर**) बस मेरी इतनी-सी बात का बुरा मान गयी, मानिनी !

पाँव जल से हटाओ तो मैं कहूँ।

सीता : क्यों, पाँव जल से क्यों निकाल लूँ ?

राम : देखती नहीं हो कितने बुलबुल मोती बनकर तुम्हारे पाँव से चिपक गये हैं। **(हंसते हैं।)**

सीता : रहने भी दीजिये। कंचन-से पाँव हैं। धूल भी लग जाय उन पर तो मोती जैसी ही लगेगी।

राम : पाँव कंचन-से हैं कि हमारी निगाहें तुम्हें कामिनी बना देती हैं। **(हँसते हुए)** वे तो हम हैं सीते ! कि कहने को पारस के पत्थर हैं किन्तु इस पत्थर से लोहा भी छू जाता है तो सोना कहलाता है। लेकिन लोहा है कि पारस को छू जाने पर पारस पत्थर के गुण नहीं गाता। गुण गाता है तो अपने सोना होने का ही गाता है।

सीता : वाह ! मेरे पारस पत्थर ! वाह री मैं, आपकी जंग लगी लोहा। मैं लोहा न होती, पत्थर ही होती या मिट्टी ही होती तो आपका पारस का पत्थर भी क्या कर लेता ? पारस के पत्थर को तो अपना भाग्य धन्य मानना चाहिए कि वह छुआ भी तो लोहे से, जो सोना बन गया वरना कहीं मामूली पत्थर या मिट्टी से छू जाता तो लोग यह भी न समझ पाते कि यह पत्थर भी पारस है।

राम : **(हँसकर)** मान गया सीते, मान गया। हम हारे तुम जीती। किन्तु इस तरह मंदाकिनी के जल को ही देखते रहने के लिए तो मैं तुम्हें चुपचाप यहाँ लाया नहीं था। एकांत है, कुटी में लक्ष्मण का संकोच करती रहती हो, यहाँ तो खुलकर प्रेम की बातें करो। आओ, इधर मेरे पास आओ। मेरे समीप आओ न।

सीता : नाथ ! बस करिये न। बस !

राम : क्या बस। जंगल है, नदी है, नदी का सुनसान तट है, शिलाएँ हैं, मैं हूँ, तुम हो। देखो, अपना सिर मेरे वक्ष पर पड़ा रहने दो न। कुछ बात करो सीते ! वैसी ही बातें जैसे अयोध्या में विवाह के बाद तुम करती थी।

सीता : आर्य ! ये कैसा स्वर है ?

राम : कौन-सा स्वर ?

सीता : लक्ष्मण का स्वर है। भइया-भइया का स्वर। लगता है इधर ही आ रहे हैं वह।

राम : हाँ, आ तो रहा है। देखूँ तो। **(आगे बढ़ते हैं।)**

लक्ष्मण : भइया ! भइया ! मेरे भइया !

राम : इधर आओ लक्ष्मण, इधर आओ !

लक्ष्मण : (हाँफते हुए) भइया ! भइया !

राम : क्या बात है ? क्यों दौड़ते हुए आ रहे हो लक्ष्मण !

लक्ष्मण : भइया ! हमारे आश्रम के समीप जितने भी ऋषि-मुनि थे उनमें से अधिकांश अपना सामान बाँध कर अपने-अपने आश्रम छोड़कर जा रहे हैं।

राम : आश्रम छोड़कर जा रहे हैं। (सोचकर) क्यों जा रहे हैं ?

लक्ष्मण : पता नहीं क्यों जा रहे हैं। हमारे आश्रम की ओर देख-देख कर आँखों से इशारा कर रहे थे। मुँह बना रहे थे। आप चलकर उन्हें रोकिये भइया ! वरना सारा चित्रकूट सुनसान हो जावेगा।

राम : सब जा रहे हैं ! आखिर बात क्या है ?

सीता : चलें नाथ ! चलकर कारण तो जानें।

राम : ठीक है। चलो सीते ! लक्ष्मण, चलो। हम लोग अपने आश्रम चलें।

दृश्य दो

[चित्रकूट के ऋषि, मुनि, तपसी अपना-अपना सामान लेकर जा रहे हैं।]

राम : कहाँ जा रहे हैं आप लोग ? सब तपस्वी, ऋषि, मुनि, कहाँ जा रहे हैं ? क्यों जा रहे हैं आप लोग ?

[सब चुप रहते हैं।]

राम : लक्ष्मण ! ये सब चुप क्यों हैं ? हम आये थे तो सबने हमारे यहाँ आश्रम बनाने का स्वागत किया था। अब ये लोग चित्रकूट से जा क्यों रहे हैं ? सीते ! तुमसे कोई अपराध हो गया है क्या ? लक्ष्मण ! तुम हमेशा आपे से बाहर रहते हो, कहीं तुमने तो कुछ नहीं कह डाला ?

सीता : आर्य ! मैं नहीं जानती, मुझसे क्या अपराध हुआ है।

लक्ष्मण : भइया ! उग्र तो मैं हूँ किन्तु यहाँ इन लोगों से तो ऐसी कोई बात भी नहीं हुई।

राम : तो हम को यहाँ छोड़कर, हमारी कुटी की ओर आँख का इशारा करके ये सब क्यों चले जा रहे हैं। जा रहे हैं तो हमारा अपराध भी बताते जावें न ! हमें ही यहाँ छोड़कर क्यों जा रहे हैं ! कुल-

पति ऋषि ! आप सबसे बड़े हैं, आप ही बता दें न !

कुलपति : राघव ! अब हम यहाँ सुख से नहीं रह सकेंगे ।

राम : क्यों ऋषि, ऐसी क्या बात है ?

कुलपति : कहा न राम ! हम यहाँ अपने को सुरक्षित नहीं रख सकेंगे। हमारी तपस्या में, हमारे मनन-चिन्तन में, राक्षस बराबर बाधा डाल रहे हैं। रावण का भाई खर बहुत कुपित है।

राम : राक्षस रावण का भाई खर ! क्या राक्षसों के डर से आप चित्र-कूट छोड़ कर जा रहे हैं ?

कुलपति : हाँ राम, हम शान्तिप्रिय हैं। उपासना और तपस्या, चिन्तन और मनन, हमारा यही धर्म है। राक्षस आकर हमारी उपासना और तपस्या को अपवित्र किए दे रहे हैं। वे हमें शान्तिपूर्वक मनन-चिन्तन भी नहीं करने दे रहे।

लक्ष्मण : भइया ! आश्चर्य है। राक्षस अच्छे काम में बाधा डाल दें तो उसका यह तो हल नहीं है कि अच्छा काम कर रहे लोग अपनी लटी-पटी लेकर भाग जायें।

कुलपति : लक्ष्मण ! पहले ऐसा नहीं था, जब से तुम लोग आये हो तभी से ये राक्षस भयानक होकर चित्रकूट में मँडराते रहते हैं। खर तुम लोगों के यहाँ आ जाने से बहुत कुपित है।

लक्ष्मण : (**हँसकर**) सुन रहे हैं भइया ! हम लोगों के आ जाने से, (**फिर हँसता है**) हमारे आ जाने से तो दुष्टों की रूह काँपनी चाहिए थी। उलटा वे कुपित हो रहे हैं। भयंकर हो रहे हैं। पूजापाठ में बाधा डाल रहे हैं। भूल गये कि ताड़का, सुबाहु का हमने अंत कर दिया था।

कुलपति : लक्ष्मण ! इसीलिए तो कुपित हुए हैं। वे नहीं चाहते कि राक्षसों के महान वीर ताड़का, मारीच, सुबाहु को धूल में मिला देने वाले फिर राक्षसों के वन प्रदेश में आकर अपना सिर ऊँचा किये रहें।

लक्ष्मण : सुन रहे हैं भइया ! हम राक्षसों को भी मारें और ये तपस्वी हम लोगों पर भरोसा भी न करें।

राम : लक्ष्मण ! शान्त रहो। हम राक्षसों के विरोधी हैं। मेरे जीवन का लक्ष्य है कि अच्छे काम करने वालों का, देवत्व की संस्कृति और परम्परा का जो भी विरोध करेगा वह राक्षस है और ऐसे हर राक्षस को मुझे समाप्त करना है। अगर ये मुनि, ये ऋषि समझते हैं कि हमारे कारण ही राक्षस इस क्षेत्र में सक्रिय हो गये हैं और ये सब इस डर से भाग रहे हैं तो भागने इन्हें दो।

लक्ष्मण : कुलपति ! आप लोग जहाँ भी जाओगे, जंगल में ही जाओगे। राक्षस वहाँ भी आ सकते हैं। बुरे दिन, बुरे क्षण वहाँ भी आ सकते हैं।

सीता : लक्ष्मण ! ऋषि-मुनि हैं, ऐसा न कहिए। सबकी अपनी समझ होती है।

कुलपति : हम सब इससे भी घनघोर जंगल दण्डकारण्य में जा रहे हैं। चलो भाई, सब लोग चलो। राम ! वहाँ पर अश्वमुनि का आश्रम है। वहाँ पर फल-फूल भी अधिक हैं। खर बहुत दुष्ट राक्षस है। यद्यपि आप वीर पुरुष हैं फिर भी आपके साथ सीता जी हैं, इस-लिए परेशानी हो सकती है। आप चाहें तो हमारे साथ उस वन में चलें। वहाँ मुनियों, तपस्वियों की संख्या अधिक है, डर नहीं रहेगा।

राम : ठीक है। आप सब पूज्य हैं। आप जावें, हम बाद में देखेंगे। आप सब हम तीनों का प्रणाम लें।

[चित्रकूट में राम की पर्णकुटी। प्रातःकाल का समय]

राम : लक्ष्मण ! मैं इसलिए चित्रकूट में कुछ दिन बसा था कि मुनि भरद्वाज ने उसे उत्तम स्थान माना था। मुझे तो दण्डकारण्य में ही जाना है सो आज मैं भी दण्डकारण्य के लिए चल देना चाह रहा हूँ। चलो सीते ! यहाँ से चलने की तैयारी करो। जब यहाँ ऋषि-मुनि ही नहीं रहे तो हमें रक्षा किसकी करनी है।

सीता : ऐसा क्यों कहते हैं नाथ। कितना मनोरम स्थान है यह ? और फिर जो ऋषि-मुनि यहाँ से नहीं जा रहे हैं, जो मुनि मंदाकिनी के तट पर तपस्या कर रहे हैं उनका साथ तो हम दे सकते हैं।

लक्ष्मण : हाँ भइया ! हम यहाँ कुछ दिन और रहें। मंदाकिनी का तट तो सरयू से भी सुन्दर लगता है। फिर यह सुन्दर पर्वत, ये अवध के लोगों की तरह स्नेह करने वाले पशु-पक्षी, ये सेवकों की तरह प्यार में झुक-झुक जाने वाले मनोहर वृक्ष ! हम कुछ दिन यहाँ और रहें भइया।

राम : जो ऋषि-मुनि, परिवार की तरह, पड़ोसी होकर भी यहाँ से चले गये हैं उनकी याद यहाँ रहकर बार-बार आती है। और फिर लक्ष्मण ! यहाँ भरत-शत्रुघ्न से, माताओं, गुरुदेव और नगर-वासियों से मिल चुका हूँ। अक्सर लगता है वे सब अभी यहीं पर्ण-कुटी में या इन वृक्षों के नीचे बैठे हमसे बातें कर रहे हैं। बार-बार इस स्थान पर उनकी याद आती है। उनकी याद आती है तो

पिताजी के इस संसार में न रहने का विचार मन को रुला देता है।

सीता : आर्य ! इसीलिए तो यह स्थान अवध से दूर वन में भी हमें अपनी अयोध्या सा ही लगने लगा है। इस जगह को छोड़ने का मन नहीं होता है अब।

राम : प्रिये ! इसीलिए हमें ऐसी जगह को छोड़ देना चाहिए जो हमें अपने अयोध्या होने का आभास कराये। हम वनवासी हैं। चित्र-कूट अब हमारे लिए वन नहीं रह गया है। यहाँ बार-बार लगता है कि हम वन में नहीं अयोध्या में हैं।

लक्ष्मण : भइया ! आप जैसी आज्ञा दें।

राम : कहीं और चलेंगे लक्ष्मण ! कहीं और बसेंगे। इससे भी घने जंगल में, इससे भी सुन्दर स्थान मिलेंगे हमें। इस धरती को जितना अधिक हम देख सकें, उतना ही मन को सुख मिलेगा।

सीता : दोपहर होने को है, क्यों न हम कल प्रातःकाल यहाँ से चलें ?

राम : जब मोह तोड़ना ही है तो उसके लिए समय क्यों निर्धारित करें। यहाँ से कुछ दूर अत्रि ऋषि का आश्रम है। आज रात हम उनके आश्रम में, उनसे प्रसाद ग्रहण करेंगे। चलो अब देर न करें। लक्ष्मण, मेरा धनुष और तूणीर मुझे दे दो।

दृश्य तीन

[महर्षि अत्रि का आश्रम। राम, लक्ष्मण, सीता का आगमन]

राम : विश्व में अपनी तपस्या और कर्मशीलता के लिए प्रसिद्ध महर्षि अत्रि के चरणों में अयोध्या के राजा दशरथ के वनवासी पुत्र राम, लक्ष्मण और बहू सीता का प्रणाम।

अत्रि : ओह ! अवध के चक्रवर्ती सम्राट दशरथ के पुत्र और बहू ! मैंने चित्रकूट में रह रहे राजकुमार राम के बारे में बहुत कुछ सुना है। आप तीनों प्राणी मेरे आश्रम में सत्कार स्वीकार करें। आप इधर आवें। मेरे आसन के समीप बैठें।

राम : ठीक है, भगवन, ठीक है। आओ लक्ष्मण, इधर आकर बैठो।

अत्रि : हाँ, इधर आकर बैठो। तुम दोनों मेरे लिए मेरे पुत्रों की तरह हो। अनसूया ! अनसूया ! देखो विदेहराज की पुत्री सीता बेटी हमारे

आश्रम में आयी है। इसको अपने पास बुलाकर इसका सत्कार करो, अनसूया !

सीता : ठीक है पिताजी, मैं ही उनके पास चली जाती हूँ। कहाँ हैं वह ?

अत्रि : बहुत बूढ़ी हो गयी है न। अन्दर चारपायी पर पड़ी होगी। राम ! एक बार दस वर्ष तक पानी नहीं बरसा। सारा संसार पानी के बिना त्रस्त हो गया। तब जिन्होंने कठिन तपस्या करके नियमों का पालन करके फल-फूल उत्पन्न किये, मंदाकिनी जैसी पवित्र नदी की शीतल धारा बहायी तथा अपने व्रत और तपस्या से ऋषियों के समस्त विघ्नों को दूर किया वे ही यह मेरी पत्नी अनसूया देवी हैं। देवताओं में भी परमपूज्य अनसूया तुम लोगों के लिए माँ के समान हैं। ये सभी प्राणियों के लिए वन्दनीय रही हैं।

राम : हाँ, मुनिदेव ! इनके बारे में मैंने सुना है। मुनि विश्वामित्र कहते थे कि क्रोध तो इन्हें कभी छू भी नहीं सकता।

अत्रि : वृद्धा है न। बाहर आने में उसे कष्ट होगा। सीता, बेटे ! अन्दर जाकर अनसूया से मिलो, बातें करो।

राम : सीते ! जाओ, अन्दर चली जाओ। तपस्विनी माँ अनसूया देवी के पास जाकर तुम्हें बहुत अच्छा लगेगा। जाओ।

सीता : माँ !

अनसूया : (**चारपायी से उठती हुई**) कौन ? कौन है यहाँ ? तुम···?

सीता : मेरा प्रणाम लें माँ। मैं हूँ सीता। राजा जनक की बेटी। अयोध्या नरेश की बहू। वनवासी राजकुमार श्रीराम की पत्नी।

अनसूया : सीता ! तेरे ही स्वयंवर में मुनि विश्वामित्र गये थे न ? तुम्हारे मायके के राजपुरोहित गौतम ऋषि के बेटे शतानन्द हैं न ? तुम्हारे ससुराल के राजगुरु मुनि वशिष्ठ हैं न ?

सीता : हाँ, माँ ! आप ठीक कहती हैं।

अनसूया : बड़ी भाग्यवान हो तुम। राम ने बेचारी अहल्या को सामाजिक सत्कार और स्वीकार देकर अच्छा काम किया था। राम ने अपने को राक्षसद्रोही घोषित कर राक्षसों से पीड़ित मुनि-समाज को ढाढ़स भी बँधाया है। तुम्हारे पति राम से मैं बहुत खुश हूँ बेटे, सीता !

सीता : मेरे पति तो साधारण पुरुष हैं माँ। आप ऐसे तपस्वी और तपस्विनी उन्हें अपना आशीर्वाद देने लगेंगे तो माँ, मेरे पति भी पराक्रमी पुरुष हो जावेंगे।

अनसूया : सीता, बेटे ! तुम उनकी पत्नी हो पर तुम उन्हें नहीं समझती । गाँव का जोगी जोगड़ा आन गाँव का सिद्ध । जो राम से दूर हैं वे जानते हैं कि राम क्या हैं । सीते ! तुम हमेशा ही पति की सेवा करना । पति के पाँवों में ही अपना जीवन देखना बेटे ।

सीता : मैं तो पति को परमेश्वर मानती हूँ माँ !

अनसूया : पति पत्नी के सामने हमेशा बेचारा होता है । जितना पत्नी चाहती है उतना पति कभी भी नहीं कर पाता । बेटी ! अपना स्वामी नगर में रहे या वन में, वह भला हो या बुरा, उसका स्वभाव चाहे जितना बुरा हो, वह चाहे जितना भी गरीब हो, अपने पति को देवता ही मानना बेटे ! वह बुरा हो तो उसे सुधारना चाहिए ।

सीता : मेरा भी यही विचार है माँ । मैं अपने पति को ईश्वर मानती हूँ । वह धनवान हैं तो मैं भी धनवान हूँ । वह गरीब हैं तो मैं भी गरीब हूँ । उनका सुख मेरा सुख है, उनका दुःख मेरा दुःख है माँ !

अनसूया : ऐसा ही मानना बेटे ! इतनी उम्र बीत गयी है मेरी । मैंने देखा है कि पत्नी के लिए पति से बड़ा हितैषी कोई नहीं होता । न बाप, न माँ, न भाई, न बहन । पति अपना है तो संसार अपना है । सारे सुख पत्नी को अपने पति से ही मिल सकते हैं । पति के रहते सारे सुख, सारा संसार अपना है । जो अपने पति पर शासन करती हैं वे काम के अधीन चित्तवाली कुल्टा स्त्रियाँ होती हैं । तुम अपने पति राम को हमेशा सुखी रखना बेटे ! सती धर्म का पालन करना तुम सीते ! जितना भी हो सके तुम पति के काम में साथ देना । वह जो भी करना चाहे उसमें तुम साथ अवश्य देना । तुम्हारा साथ पाकर वह बड़े-बड़े काम सहज ही कर लेगा ।

सीता : माँ ! मेरे पति मेरे आराध्य हैं । मेरे देवता हैं । जैसा भी वह करना चाहें वैसा ही मैं भी करती हूँ । मैं हर काम में उनका साथ देती हूँ । मेरा अपना और कुछ नहीं है, मेरा सब कुछ वही हैं ।

अनसूया : ये ले बेटी । (**अपने वस्त्र और आभूषण देती हैं**) ये मेरे कुछ वस्त्र हैं, कुछ आभूषण हैं, इन्हें पहन ले । तू राजरानी है । इन्हें पहनकर तेरा सतीत्व अमर रहेगा । ये तेरी रक्षा करेंगे बेटी । तू मेरे आश्रम में आयी है, मैं तेरा और क्या सत्कार करूँ ?

सीता : माँ ! आपकी आज्ञा है तो मैं पहन लेती हूँ । इससे बड़ा और मेरा क्या सत्कार होगा ।

राम : (**बाहर से आवाज देते हैं**) सीते ! माँ से आज्ञा लो । बाहर आओ, हम लोग भोजन करें ।

सीता : वह बुला रहे हैं माँ। आशीर्वाद दें माँ आप हमें।

अनसूया : मेरा शत-शत आशीर्वाद तेरे साथ है बेटी। जितनी देर तुम मुझ बूढ़ी साधिका के समीप रही हो, वे सारे क्षण मुझे अपनी ही सगी बेटी के साथ बिताये मधुर क्षणों की तरह लगे। तुम कहती हो तुम्हें आगे जाना है। मैं उठकर कुटी से बाहर आकर तुम्हें विदा दे सकने में असमर्थ हूँ। जाओ, मेरा मन, मेरी आत्मा सदा-सदा तेरा शुभ चाहेगी।

अत्रि : राम, बेटे! सीता बेटी भी आ गयी। मैं तो चाहता था कि तुम लोग मेरे आश्रम में रह जाओ। हम बूढ़ों का भी मन लगा रहेगा किन्तु तुम हठ करते हो। आगे घोर दण्डकारण्य वन है राम। सावधान रहना। बड़े विकट राक्षसों का संसार भी है उधर और ऋषि-मुनियों के आश्रम भी हैं।

राम : ऋषि! हमें आशीर्वाद दें कि हम अच्छा काम कर रहे मुनियों को आततायियों से सुरक्षित रखने में कुछ काम आ सकें।

अत्रि : आशीर्वाद तो सदा तुम्हारे साथ है बेटे! जाओ, तुम्हारा उद्देश्य पूरा हो!

दृश्य चार

लक्ष्मण : भइया! हम जब से मुनि अत्रि के आश्रम से चले हैं, इन दस-बारह दिनों में हमें कई तो ऋषि-मुनियों के आश्रम और ऋषिकुल मिले हैं। सबने हमें कितना प्रेम और अपनत्व दिया है!

राम : इसलिए भी कि हम राजकुमार हैं और हमारे साथ सीता हैं। भयंकर वन में हम अकेलापन न अनुभव करें। इसलिए भी कि हमारे महान गुरु महर्षि विश्वामित्र के तप में, राक्षसों को मार कर हमने जो भी कुछ भला किया उसका प्रत्येक ऋषिकुल व आश्रम में प्रचार हुआ है। प्रचार दिखता नहीं है लक्ष्मण किन्तु उसकी शक्ति कर्म और कौशल से अधिक होती है।

सीता : आर्य ठीक कह रहे हैं। आपके उस समय के शौर्य के प्रचार का ही यह फल है कि आपके प्रति सभी मुनियों, ऋषियों के मन विनत हैं। सद्कार्य और उसके प्रचार की ही यह शक्ति है कि वह मन और भावना को बदल सकती है।

[एक भीषण स्वर। भीषण गर्जना।]

राक्षस : ओ-हो-हो ! हा-हा-हा ! ए-हे-हे। ओ-ओ-हो। ये सुकुमार और यह सुकुमारी ?

सीता : (**डर कर कांपते स्वर में**) नाथ ! नाथ ! आर्य। देखिये, बचाइये नाथ !

राक्षस : (**हँसता हुआ दहाड़कर सीता को उठाकर दूर खींच लेता है**) नाथ ! हा-हा-हा ! लो, इधर आओ तुम। लो, यहाँ रहो। इन कुमारों से एक ही झटके में कितनी दूर उठा लाया हूँ मैं तुम्हें। ये नारी ! ये सुकुमारी ! कौन हो तुम ? (**फिर हँसता है।**)

राम : देखना, उसे छूना नहीं। दुष्ट राक्षस ! उसकी तरफ मत बढ़ना। वह मेरी पत्नी है।

[दूर से सीता के 'आर्य, नाथ, रक्षा, करो···के हल्के स्वर]

राक्षस : हा-हा-हो-हो। कौन हो रे तुम तपसी युवक ? तुम जटा और वीरवेश धारण करके भी, वल्कल पहनकर भी किसी स्त्री के साथ रहते हो और धनुष-बाण-तलवार लिये इस दण्डकारण्य में घूमते हो ! मुनियों का वेश और हाथों में अस्त्र ! साथ में स्त्री ! अरे पापियो, अधर्मियो, क्या तुम्हारी मौत आ गयी है ? शीघ्र बता दो कि तुम कौन हो ? इस वन में जहाँ मैं निश्चिन्त विचरता हूँ आज तुम्हें पहली बार देखा है। मुनि समुदाय के कलंक, तुम कौन हो ?

राम : सीते ! डरना नहीं। लक्ष्मण ! यह क्या हो गया। हमारे पलक झपकने से भी पहले मेरे पीछे और तुम्हारे आगे चल रही सीता को यह दुष्ट उठाकर इतनी दूर अपने पास कैसे ले गया ?

[सूखते गले से, होंठों पर जीभ फिराते हुए]

लक्ष्मण : भइया ! आज हम कहीं के नहीं रहे। अब मैं समझा कि माँ कैकेयी केवल भरत को राज्य देकर ही संतुष्ट क्यों न हुई ? उसने आपको वनवास क्यों देना चाहा था ? लगता है उसकी इच्छा पूरी हो जायेगी।

[राक्षस की चीख]

राम : राक्षस चीखकर हमारी ओर बढ़ रहा है लक्ष्मण ! धनुष सँभालो।

राक्षस : (**ठठा कर**) कितनी सुन्दर नारी मिल गयी मुझे ? इस वन में नारियाँ हैं ही कहाँ। मेरा नाम सुना है ? छली, तपसी, युवको ! मैं विराध हूँ। महान विराध राक्षस। प्रतिदिन ऋषियों के कोमल गर्म मांस का भक्षण करता हूँ। ये सुन्दर स्त्री अब मेरी होगी और तुम दोनों का मैं छककर भोजन करूँगा। हा-हा-हा ! हो-हो-हो !

[पार्श्व से सीता के रोने, डरने के स्वर]

राम : तुम ठीक कहते हो लक्ष्मण ! दण्डकारण्य वन में राम चौदह साल रहें, इस बात का माँ कैकेयी ने बहुत सोचकर ही वर माँगा था ! आज तो लग रहा है कि इससे तो अच्छा था कि वह मेरे लिए सीधा मृत्युदण्ड न भी माँगती तो कह देती कि जंगली जानवरों से नुचवाकर राम को प्राणदण्ड दिया जाय। बेचारी सीता की यह दशा तो न होती ?

लक्ष्मण : (**गरजकर**) भइया ! राक्षस विराध से आर्या अभी अलग खड़ी हैं। विराध हमें मार देना चाह रहा है। वह हमें मारे तभी न जनकदुलारी जनकनन्दिनी को ले सकेगा। भइया ! मेरे रहते आप इतनी चिन्ता क्यों करते हैं। तन में प्राण रहते तो मैं आपको कष्ट होने नहीं दूँगा। (**गरज कर**) रे विराध ! चित्रकूट पर मेरा भाई भरत हमारे विरोध में आ रहा है यह जानकर अपने तूणीर से एक तीर मैंने छाँटा था जिसे धनुष पर चढ़ा नहीं सका। सुन रे राक्षस विराध ! बलवान है तू, तो मेरे सामने आ। मैं वही तीर तुझ पर फेंक कर इस पृथ्वी से क्षमा माँगता हूँ कि तेरा गंदा शरीर क्षण-भर में इस पृथ्वी पर डाल दूँगा।

विराध : ठीक है, मुझसे लड़ लो। लेकिन बता तो दो कि तुम इतने पराक्रमी हो कौन ?

राम : विराध ! मैं राम हूँ। अवध के राजा दशरथ का बड़ा पुत्र। ये लक्ष्मण है। मेरा छोटा भाई और वह मेरी पत्नी है सीता। हम एक वरदान के कारण इस समय वनवासी हैं।

विराध : तो रघुवंशी राम, मैं भी 'जब' नामक राक्षस का पुत्र हूँ। मेरी माता का नाम 'शतह्रदा' है। मैं स्वयं में बड़ा यशस्वी राक्षस हूँ। मैंने ब्रह्मा को पूज कर यह वरदान लिया है कि किसी भी शस्त्र से, अस्त्र से, जल से, अग्नि से मेरा वध न हो, मैं संसार में अभेद्य और अच्छेद्य रहूँ। कोई भी मेरे शरीर को छिन्न-भिन्न न कर सके। अब बताओ कि तुम रघुवंशी होकर भी मुझे मार सकोगे ?

राम : ये देख, मेरे भयंकर तीर देख। तुझे मैं धराशायी कर दूँगा। (**एक-एक कर सात बाण मारते हैं।**)

लक्ष्मण : भइया ! वह राक्षस लहूलुहान होकर गिर पड़ा है।

राम : लेकिन लक्ष्मण, वह फिर उठ खड़ा हुआ है ! मुझे सीता को तो बचाना है ही।

राक्षस : मैं मर नहीं सकता। रे राम ! तू मुझे मार नहीं सकता। मुझे तो

कोई भी नहीं मार सकता। हा-हा-हा ! हो-हो-हो ! हे-हे-हे···

राम : लक्ष्मण ! यह अस्त्र से तो मरेगा नहीं। तुम शीघ्र एक बड़ा-सा गड्ढा खोदो। जाओ, मैं इससे भिड़ता हूँ। (**भिड़कर राक्षस विरोध को जमीन पर गिरा लेते हैं।**) ले, ले विराध ले, मैं तेरे गले पर पाँव रखकर तेरी साँस रोक देता हूँ। लक्ष्मण ! जो काम तुम्हें बताया है उसे शीघ्र पूरा करो।

विराध : (**तड़प कर**) मुझे उस गड्ढे में न डालो राम। ठीक है, (**हँसकर**) शायद तुम वही राम हो, जिनके हाथों मरने के बाद मैं फिर यक्ष बन जाऊँगा। लो मुझे गड्ढे में डालकर मार लो।

लक्ष्मण : भइया ! यह राक्षस मरने में हँस क्यों रहा है ?

राक्षस : लक्ष्मण ! मैं स्वयं ही बताता हूँ। मैं तम्बरु नामक गन्धर्व हूँ और रम्भा अप्सरा पर आसक्त रहने के कारण मुझे कुबेर ने शाप दे दिया था राक्षस घर में पैदा होने का। मैंने कुबेर की बहुत प्रार्थना की तो उन्होंने कहा था कि यदि युद्ध में अवध के राजा दशरथ के पुत्र राम तुम्हें मार सके तो तुम फिर यक्ष बन सकोगे। तब से बहुत बड़ा बली राक्षस बना मैं दण्डकारण्य में आपकी प्रतीक्षा कर रहा था। शायद तुम मुझे मार सको।

राम : तो लक्ष्मण, यह शुभ काम भी कर दिया जाए। गड्ढा तैयार है न ?

लक्ष्मण : हाँ भइया, तैयार है।

राम : तो ये लो, इस राक्षस को गड्ढे में डालकर मैं इसके गले को अपने पाँव से दाब रहा हूँ कि इसकी साँस ही टूट जाय।

राक्षस : (**साँस टूटने का स्वर निकालता है।**) ओं···ओं···ओं···ओं···

राम : गया लक्ष्मण, यह तो गया। मिट्टी डालो। सीते, आओ, इधर मेरे पास आ जाओ।

सीता : नाथ ! मैं बच गयी। (**प्रसन्नतापूर्वक राम के पास आ जाती है।**)

दृश्य पाँच

[राम, लक्ष्मण, सीता वन में चल रहे हैं।]

लक्ष्मण : भइया ! देखिए मार्ग में कितने आश्रम मिल रहे हैं ? जिस आश्रम पर भी हम जा रहे हैं हमारा बड़ा सत्कार कर रहे हैं वे लोग।

राम : हाँ, लक्ष्मण ! सत्कार तो हो रहा है किन्तु राक्षस विराध ने तो

हमें कहीं का नहीं रखा था। हमारी प्रतिष्ठा को चबा ही गया था वह ।

सीता : विराध के आक्रमण के बाद मुझे तो लगा कि हम लोगों का नया जन्म हुआ है। मुझे अपने बच सकने की तो जरा-भी आशा नहीं रही थी ?

राम : लक्ष्मण को धन्यवाद दो सीते !

सीता : लक्ष्मण तो, लगता है, मुझे विराध से बचाने के लिए ही हमारे साथ आये थे। वरना पहले मैं ही अकेले अयोध्या से आपके साथ आ रही थी।

लक्ष्मण : मैं भइया के बिना क्या हूँ आर्या ! वो देखो भइया फिर, कोई आश्रम आ रहा है शायद !

राम : मुनि अत्रि ने जैसा बताया उसके अनुसार तो यह मुनि शरभंग का आश्रम होना चाहिए। चलो हम इस आश्रम से चलेंगे। मुनि शरभंग का आशीर्वाद लेंगे। मुनि अत्रि ने कहा था कि हमें अगस्त्य ऋषि से अवश्य मिलना चाहिए। वे बड़े सिद्ध ऋषि हैं। मुनि शरभंग से पूछ कर ही हम ऋषि अगस्त्य तक पहुँचेंगे लक्ष्मण !

लक्ष्मण : ठीक है भइया ! हम मुनि शरभंग के आश्रम में चलते हैं। उन्हीं से ऋषि अगस्त्य का आश्रम भी पूछ लेंगे। चलिए।

[मंच पर अँधेरा होता है। वन फिर में मार्ग का ही दृश्य। प्रकाश उभरता है।]

राम : लक्ष्मण, मुनि शरभंग ने बताया था कि दक्षिण में जाकर हमें मुनि सुतीक्ष्ण का आश्रम मिलेगा। मार्ग के बीच और तमाम मुनियों के आश्रम तो मिले थे किन्तु वह आगे जो आश्रम दीख रहा है, शायद वही मुनि सुतीक्ष्ण का आश्रम है। हम वहाँ चलकर रात्रि-विश्राम करेंगे और वहीं से ऋषि अगस्त्य के आश्रम का पता भी लगेगा। हम सही स्थान की ओर बढ़ रहे हैं।

[मंच पर प्रकाश मध्यम पड़ते-पड़ते अँधेरा हो जाता है फिर जब प्रकाश उभरता है तो वन-मार्ग में राम, लक्ष्मण, सीता, सुतीक्ष्ण मुनि के साथ दिखते हैं।]

राम : सुतीक्ष्ण मुनि ! आप हमें आशीर्वाद दें। अब हम चले जावेंगे। आगे जाना क्या कष्टप्रद है ?

सुतीक्ष्ण : न-न, राम ! तुम्हारे साथ मैं भी चलूँगा। एक तो मैं तुम्हें सही पथ दिखा सकूँगा। दूसरे, इस बहाने अपने गुरु अगस्त्य से मिल सकूँगा। पिछले बीस वर्ष से मैं अपने गुरु अगस्त्य से नहीं मिल सका हूँ।

उनसे मिलने का सुख भी मिलेगा मुझे राम !

सीता : यदि मुनि सुतीक्ष्ण साथ चलना चाहें तो हमें आपत्ति नहीं होनी चाहिए आर्य ! उनका मार्ग देखा-सुना है और ऋषि का आश्रम भी ।

राम : हाँ, सीता भी ठीक कहती है । मुनि ! आपको कोई और काम हो तो आप हमें केवल मार्ग बता दें । अन्यथा आपके साथ चलने में तो हमें सुख ही मिलेगा ।

सुतीक्ष्ण : ऐसी क्या बात है । मैं आपके साथ चलता हूँ । आपने मेरा आश्रम पवित्र किया है। चलिए श्रीराम ! मेरे गुरु अगस्त्य वास्तव में महान हैं । पहले वह गंगा-तट पर काशी में रहते थे । फिर कुछ समय तक मगध में रहे। राक्षसी ताड़का और उनके पुत्रों के उत्पात के कारण उन्हें मगध छोड़ना पड़ा था । उन भयानक राक्षसों का वध तो राम, बाद में विश्वामित्र मुनि के कहने पर आपने ही किया था ।

राम : मुनि ! वे बड़े दुष्ट राक्षस थे । मेरे गुरुदेव विश्वामित्र की शिक्षा और आशीर्वाद ही था कि हम उन्हें नष्ट कर सके थे ।

सुतीक्ष्ण : हाँ, राम ! उन्हीं राक्षसों की विध्वंस-लीलाओं के कारण अगस्त्य मुनि तब विन्ध्य पर्वत की ओर आ गये थे । विन्ध्य तब हिमालय और सुमेरु पर्वत से अपने को ऊँचा मनवाना चाह रहा था । अगस्त्य मुनि ने ही उसका दर्प भंग किया था । तब से मुनि दक्षिण प्रदेश में ही रह रहे हैं । अब राक्षस भी इन सिद्ध पुरुष से तो डरते हैं लेकिन और मुनियों को कष्ट देते हैं ।

लक्ष्मण : भइया ! देखिए, वह कितना लंबा-चौड़ा तालाब है । यहाँ से वहाँ तक किनारा ही नहीं दिखता ।

सीता : लक्ष्मण ! यहाँ संगीत और साजबाज की धुनें भी सुनायी पड़ रही हैं । लगता है इन साजबाज के साथ, इन सुमधुर गीतों के साथ घुँघरू बाँध कर कोई या कई-एक नृत्यांगनाएँ नृत्य भी कर रही हैं ।

सुतीक्ष्ण : देवि ! सही कह रही हैं । यहाँ प्रतिक्षण संगीत और नूपुरों की ध्वनि आती रहती है । वास्तव में यह जो विशाल सरोवर है एक, समय इसमें बैठकर मुनि माण्डकर्णि तपस्या कर रहे थे । उनकी तपस्या इतनी कष्टपूर्ण हो चली थी कि देवताओं को लगने लगा कि वह देवस्थान ले लेंगे । इन्द्र ने पाँच अप्सराएँ उनका तप भंग करने यहाँ भेज दी थीं ।

लक्ष्मण : देवाधिराज इन्द्र का तो ऐसा कार्य जैसे उनके नाम का पर्याय है। हमारे गुरुदेव विश्वामित्र की तपस्या भंग करने के लिए उन्होंने अपनी अप्सरा मेनका को भेज दिया था।

सुतीक्ष्ण : लक्ष्मण ठीक कहते हैं। इन्द्र अक्सर ऐसा कार्य किया करते हैं।

राम : लक्ष्मण तो ठीक कहते ही हैं। किन्तु मुनि आप आगे की कथा बता रहे थे न ? उन अप्सराओं के आ जाने से क्या प्रभाव पड़ा मुनि माण्डकर्णि पर ?

सुतीक्ष्ण : यही तो कह रहा था राम, कि देवताओं के परामर्श से देवराज इन्द्र ने मुनि माण्डकर्णि का अखंड तप भंग करने के लिए पाँच बहुत ही सुन्दर अप्सराएँ भेज दीं। वे अप्सराएँ सरोवर में नित्य अर्द्धनग्न होकर स्नान करने लगीं। माण्डकर्णि का तप उन्होंने डिगा दिया। आखिर वह भी तो मनुष्य थे। मानवीय कमजोरियाँ न हों तो मनुष्य देवता न हो जाए। वह मुनि भी अप्सराओं के तेवरों और रूपसुधा में लिप्त हो गये।

सीता : इतने कमजोर होते हैं क्या इतने बड़े मुनि भी ?

सुतीक्ष्ण : मन सौन्दर्य को कहाँ जीत पाता है बेटी ! मुनि का भी तो मन ही होता है, फिर सौन्दर्य किसी शुष्क मन के पास फूट पड़े तो उस सौन्दर्य का कहना ही क्या है ?

लक्ष्मण : लेकिन मुनियों को मुनि की तरह, तपस्वियों को तपस्वियों की तरह आचरण करना चाहिये। भइया ! मैं गलत कह रहा हूँ क्या ?

सुतीक्ष्ण : (हँसकर) हाँ, कह तो सही रहे हैं लक्ष्मण। किन्तु यह भी तो सत्य है लक्ष्मण कि तब से मुनि भी इस सरोवर के जल के अन्दर हैं और पाँचों अप्सराएँ भी अपने भवन बनाकर इसी सरोवर के अन्दर हैं। लोग कहते हैं, मुनि तपस्या से विरत होकर इन्हीं अप्सराओं से हर समय जलक्रीड़ा करते रहते हैं और अप्सराएँ संगीत की तान छेड़कर गाती-नाचती रहती हैं। वही स्वर बेटी सीता ने सुने हैं शायद। ये वही स्वर हैं जो इस मुनि माण्डकर्णि को स्वर्ग का देवता या राजा नहीं होने दे रही हैं।

राम : निश्चय ही सीता ने वही स्वर सुने थे। अब हम लोग काफी आगे आ चुके हैं। लेकिन मुनि अगस्त्य का आश्रम और कितनी दूर है ?

सुतीक्ष्ण : अवध-कुमार ! देखिये, वो देखिये। सामने ऋषिकुल-सा कुछ दिख रहा है न ? बस वही मेरे गुरुदेव का आश्रम है। लीजिये

थोड़ी ही दूर रह गया है अब। हम लोग लगभग आश्रम में आ गये हैं। तप : साधना का परम आदरणीय ऋषिकुल है यह।

राम : मुनि! मेरे विचार से आप पहले जाकर ऋषि को बता दें कि हम उनके दर्शन करने आये हैं। उनकी आज्ञा माँगते हैं। क्योंकि बिना पूर्व अनुमति पाये इतने महान ऋषि के पास नितान्त अजनबी की तरह नहीं पहुँच जाना चाहिये। पता नहीं वह अपने किस कार्य में, किस विचार में, मनन में व्यस्त हों।

सुतीक्ष्ण : ठीक है, आप तीनों प्राणी ठहरें। मैं जाकर गुरुदेव को बता दूँ कि आप आये हैं। आश्रम में आने की अनुमति चाहते हैं।

[थोड़ी देर बाद आश्रम से बाहर आकर]

आप लोग आवें। मेरे गुरुदेव आपके आने से बड़े प्रसन्न हुए हैं। **(आश्रम में उन्हें साथ ले जाकर)** गुरुदेव! यही हैं राम। अयोध्या नरेश के बड़े पुत्र।

अगस्त्य : राम! तुम आ गये। मुझे तो आश्चर्य हो रहा है कि तुम मेरे आश्रम में आये हो। मुझे तुम्हारी प्रतीक्षा थी राम।

राम : गुरुदेव! आप मेरे छोटे भाई और मेरी पत्नी का प्रणाम लें।

[तीनों प्रणाम करते हैं।]

अगस्त्य : प्रणाम करते हैं आप? आप अपने को शायद न जानते हों किन्तु मैं आपको जानता हूँ। विश्वामित्र मेरे मित्र हैं। उनका यज्ञ आप न होते तो शायद पूरा न हो पाता। ताड़का का बध कर सकना हँसी-खेल नहीं था राम। मैं ऐसे वीर और प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति के लिए स्वयं नतमस्तक हूँ।

राम : मुनिश्रेष्ठ! इस तरह मुझे लज्जित न करिए। आपकी महिमा मैं जानता हूँ। विंध्याचल जैसे बड़े पर्वत को आपने नीचा दिखा दिया था।

अगस्त्य : **(हँसकर)** यह अच्छा प्रसंग उठाया तुमने राम। अपने को औरों से ऊँचा समझने वाले को नीचा देखना ही पड़ता है।

राम : हम आपसे कुछ सीखने आये हैं और यह भी जानने आये हैं कि इधर इस दण्डकारण्य में हम कहाँ किस जगह रहें? हमें वन में अभी बहुत दिन रहना है।

अगस्त्य : मैं गंगातट पर काशी में बहुत समय तक रहा। फिर मैं मगध में भी रहा। ताड़का और उसके पुत्रों से दुःखी होकर ही मुझे उत्तराखण्ड छोड़ना पड़ा था राम! मैंने सोचा है कि तुम पंचवटी में रहो और राक्षसों से ऋषियों-मुनियों की रक्षा करो। राक्षसों का

आतंक ताड़का के वध के बाद बहुत बढ़ गया है। लंकापति रावण बड़ा कुपित है। इधर मैंने सुना है कि उसके भाई खर और दूषण तो यह जानकर कि राम-लक्ष्मण इन वनों में आ गये हैं तुम्हारे प्राणों के प्यासे हो गये हैं। वास्तव में ताड़का के रूप में राक्षसों ने एक बहुत बड़ी शक्ति खो दी है। इसलिए तुम पर राक्षसों का कुपित होना स्वाभाविक है। अतः जहाँ भी तुम रहो, तुम्हें स्वयं को इनसे सुरक्षित भी रखना होगा।

लक्ष्मण : हमारे प्राणों के प्यासे हो गये हैं राक्षस! वे हमारे सामने क्यों नहीं आते? हम वनों में ही रह रहे हैं। वनों में ही चलते हैं। वे हमारे सामने आकर वीरता दिखाते क्यों नहीं! विराध नाम का राक्षस रास्ते में मिला तो था। उसे सद्गति दे तो दी।

अगस्त्य : लक्ष्मण! तुम्हारी इस ओजपूर्ण वाणी से लगा कि तुम वीर हो। वीरता को मैं हमेशा प्रणाम करता हूँ। लक्ष्मण! तुम्हारी वीरता के लिए मैं तुम्हें प्रणाम कराता हूँ। क्यों सीता बेटी! हम मुनि लोग यदि राक्षसों के नाश का उपाय सोचते हैं तो क्या गलत है?

सीता : नहीं ऋषिवर, आप तो जगत के कल्याण के लिए ही जप-तप करते हैं। उसमें जो भी विघ्न पैदा करे उस विघ्नकारी को दण्ड दिया ही जाना चाहिये।

अगस्त्य : यही काम तो मैं राम को सौंपना चाहता हूँ बेटी!

राम : मुनि, आप तो महर्षि हैं। दिव्य द्रष्टा है। आपमें कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों का समन्वय है।

अगस्त्य : राम! मैं दक्षिण में आकर बस तो गया हूँ। राक्षस मेरे आश्रम पर आक्रमण करने में डरते तो हैं किन्तु राक्षसों ने जो आतंक फैला रखा है इस दण्डकारण्य में, उससे मैं अत्यन्त दुःखी भी हूँ। दण्ड-कारण्य क्षेत्र को राक्षसों से मुक्त रखने की देवताओं की भी आकांक्षा रही है ताकि देव संस्कृति के पक्षधर ऋषि सुख से रह सकें और उनका जीवन आतंक-मुक्त हो सके।

सीता : गुरुदेव क्षमा करें। ये राक्षस क्या अजनबी हैं? भिन्न प्रकृति है क्या उनकी?

अगस्त्य : किस तरह के अजनबी? हमारी तरह ही है वे लोग भी, किन्तु बलशाली हैं। वे भी दो हाथ दो पाँव वाले ही हैं किन्तु इनको अद्-भुत शक्ति मिली हुई है। वास्तव में बेटी राक्षस वही है जो अच्छे काम का विरोध करता है। ये राक्षस मुनियों को तप, साधना,

कर्मकाण्ड नहीं करने देते। इस धार्मिक काम से इन्हें जैसे चिढ़ है। यद्यपि ऐसा नहीं है कि वे धार्मिक नहीं हैं किन्तु विचार-भिन्नता है। शक्ति के प्रदर्शन में बड़े सिद्धहस्त हैं ये।

राम : मैं तो समझता हूँ कि राक्षस कोई जाति नहीं एक प्रवृत्ति है। हर अच्छे काम का विरोध करने वाला हर व्यक्ति राक्षस है।

अगस्त्य : राम ने ठीक समझा है। इन विरोधी कार्य करने वालों का सर्वे-सर्वा है, लंका का राजा रावण। वह स्वयं तो बड़ा धार्मिक है, बड़ा ज्ञानी है, बड़ा विद्वान है किन्तु राक्षसों का महानतम स्वामी है वह। वह किसी को भी सद्कर्म करते नहीं देख सकता। वह हर मुनि का, हर ऋषि का, हर तपस्वी का विरोधी है। क्योंकि वह राजसुख भोगते हुए भी किसी को अपने से बड़ा ऋषि, ज्ञानी नहीं होने देना चाहता। वह सब पर अपनी शक्ति की श्रेष्ठता लादना चाहता है।

राम : मेरे गुरु विश्वामित्र भी बार-बार रावण का जिक्र करते थे। चित्र-कूट में भी हमें रावण के भाई खर का डर दिलाया गया। यहाँ भी आप हमें रावण का डर दिला रहे हैं।

लक्ष्मण : भइया ! मैं तो शीघ्र से शीघ्र उस रावण को देखना चाहता हूँ। वह कौन है जो इन, इतने बड़े ऋषियों के लिए डर का कारण बना हुआ है। मैं देखूँ तो वह कौन है ? कैसा है ? उसमें कितना बल है ? मैं उस रावण को देख तो लूँ ! शायद ताड़का की तरह हम उस पर भी विजय पा सकें।

अगस्त्य : लक्ष्मण ! तुम सब कुछ कर सकते हो। मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। राम और तुम राक्षसों को नष्ट करोगे वह भी मैं जानता हूँ।

राम : मुनिश्रेष्ठ ! आपने कहा न, राक्षस तो कोई जाति नही है। एक विचार है, एक इच्छा है। रावण इनका सिरमौर है। लंका में उसकी राजधानी है। मैं हर बुरे कर्म को, अच्छे काम में लगे लोगों की दिक्कत को दूर करना अपना कर्म और धर्म समझता हूँ। रावण को मैं दर्पहीन करूँगा प्रभु ! आपका आशीर्वाद चाहिए।

अगस्त्य : राम ! रावण बहुत बलशाली है। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ। तुम सफल हो जाओगे। यही मेरी कामना है। रावण बहुत छली भी है। बलशाली तो है ही। उसे तुम्हें जीतना है। सावधान रहकर ही जीत सकोगे। वरना उसे जीतना असम्भव है राम !

राम : ऋषि ! आपके आशीर्वाद से, आपके तप के भरोसे यह राम इस

वन-जीवन मे भी इस धनुष और इस प्रत्यंचा की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करता है कि मैं मुनियों, ऋषियों के सद्‌कर्मो के लिए दुष्ट-वृत्ति लोगों का बध करके सम्पूर्ण भारत को यह विश्वास दिलाऊँगा कि उसका हर नागरिक दुष्ट प्रवृत्ति के लोगों के हर दुष्ट कर्म से मुक्त रहेगा। अब आपका दिखाया हुआ मार्ग ही मेरा अनवरत लक्ष्य रहेगा।

अगस्त्य : तुम्हारी सफलता की कामना करता हूँ। जाओ, तुम लोग जाकर गोदावरी के तट पर पंचवटी में बसो। वहीं अपना आश्रम बनाओ। बड़ा शुभ और सुरम्य स्थान है वह !

अंक-सात

दृश्य एक

[राम, लक्ष्मण, सीता पंचवटी में अपनी पर्णकुटी के बाहर बरगद की छाँह में बैठे हैं]

राम : सीते ! कितना अच्छा लगता है इस पंचवटी पहाड़ पर ? कितना मनोरम लगता है चारों ओर का दृश्य। ये हरा-भरा घना वन ! यह सुन्दर पहाड़ी ! नीचे कलकल निनाद कर बहती हुई परम पवित्र गोदावरी। लगता है स्वर्ग यहीं है। ऋषि अगस्त्य ने हमारे रहने के लिए कितनी सुन्दर जगह बतायी हमें।

सीता : और फिर हमारे लक्ष्मण ने कितनी सुन्दर और सुविधाजनक कुटी बनाई हमारे लिए। बड़ी सुख की नींद आती है इस कुटी में। इतना सुख तो राजमहलों में भी नहीं मिलता था। हम तो सो जाते हैं किन्तु लक्ष्मण धनुष-बाण लिये कुटी के बाहर इसी बरगद के नीचे बैठे रात-भर पहरा देते रहते हैं।

लक्ष्मण : यह तो मेरा धर्म है आर्यश्री ! भइया और आप सुखी और सुरक्षित रहें, इसीलिए तो मैं साथ आया हूँ।

राम : (हंसकर) सीते ! कठिन सेवा-साधना और अगाध भ्रातृप्रेम का अगर कोई एक नाम हो सकता है तो वह लक्ष्मण ही हो सकता है।

लक्ष्मण : मैं उधर जाकर तब तक कन्दमूल और फल एकत्र कर लूँ भइया ! आप पंचवटी की इस रम्य पहाड़ी पर बह रही शीतल हवा का आनन्द लें।

[लक्ष्मण उठकर सामने की पहाड़ी पर चले जाते हैं। एक सुन्दर युवती का राम के समीप आना। गौर से राम और सीता को देखना।]

शूर्पणखा : अरे, इस घने वन में इतना सुन्दर पुरुष? मेरी आँखें तो धोखा नहीं खा सकतीं। क्या आपसे पूछ सकती हूँ कि आप कौन हैं?

राम : देवि! मैं अवध के राजा दशरथ का पुत्र राम हूँ। इन दिनों वन-वासी हूँ। यह मेरी पत्नी सीता है।

शूर्पणखा : पत्नी? छिः! कितनी विरूप है यह। आप इतने सुन्दर और पत्नी इतनी विरूपा! सचमुच विधाता ने आपके साथ अन्याय किया है। **(हँसती है)**

सीता : यह कौन आ गई? नाथ, यह कौन है? कहाँ से टपक पड़ी है यह।

शूर्पणखा : **(हँसकर)** मैं हूँ संसार-सुन्दरी शूर्पणखा। लंका के महाबली रावण की बहन। इस दण्डकारण्य वन का अधिपति राक्षस खर भी मेरा ही भाई है। मैं ऐसी शक्ति रखती हूँ कि कहीं भी कभी भी जा सकती हूँ और कोई भी कैसा भी रूप रख सकती हूँ। बल में भी मैं कम नहीं हूँ। कद-काठी तो तुम देख ही रही हो!

राम : सीते! यह महान रावण की महान बहिन हैं। **(हँसते हैं)**

शूर्पणखा : आप सही कहते हैं। वास्तव में विधाता ने आपके साथ जो अन्याय किया है उसे मैं न्याय में बदल देना चाहती हूँ। मुझे आप पर दया आ रही है अवध-कुमार!

राम : **(हँसकर)** सीता चाहे तो तुम्हारा न्याय सुन ले। सीता तो मुझ पर दया करती नहीं, तुम दया करना चाहो तो पूछ लो सीता से? **(व्यंग्य के लहजे में मुस्कराते हैं।)**

सीता : नाथ! इस दुष्टा को यहाँ से भगाइये। बड़ी न्याय और दया वाली बन कर आयी है।

शूर्पणखा : मैं भी आपको नाथ ही कहना चाहती हूँ। मैं आपसे नाथ कहूँ तो आपको लगेगा कि हाँ आप किसी के सचमुच नाथ हैं। मैं आपको सारे सुख दूँगी। यह पर्णकुटी छोड़कर मैं आपको सोने के महलों में ले चलूँगी। दास और दासियाँ आपके चरण पखारते रहेंगे। मैं स्वर्ग के सारे सुख आपको दूँगी। आप मुझे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लें।

सीता : यह आवश्यकता से अधिक आगे बढ़ रही है आर्य! मैं इसका गला

दबा दूँगी। अगर अब यह फिर आगे बोली तो मैं इसके प्राण ले लूँगी।

राम : तुम रावण की बहन हो। बड़ी सुन्दरी हो तुम। मेरे साथ विवाह करोगी तो यह सौत मिलेगी तुम्हें। तुम सौत के साथ तो रहोगी नहीं !

शूर्पणखा : मेरा नाम शूर्पणखा है। मुझमें अपार बल है। मैं इस सौत को चुटकी से मसलकर नीचे गोदावरी में डाल दूँगी।

राम : ऐसा करने से तो अच्छा होगा कि सामने पहाड़ी पर जो युवक दिख रहा है न, वह मेरा छोटा भाई है, वह यहाँ अकेला भी है, तुम उससे जाकर विनय करो।

शूर्पणखा : अच्छा वो जो दिख रहा है, वह तुम्हारा भाई है, तो निश्चय ही वह भी सुन्दर होगा। ठीक है, मैं उसी से कहती हूँ। मेरा रूप देख कर वह मेरी बात अवश्य मान लेगा। **(खिलखिलाती हुई जाती है।)**

दृश्य दो

[शूर्पणखा का जोर-जोर से रोते हुए खर के पास जाना। खर का महल।]

खर : बहिन ! तेरी यह दशा किसने कर दी ! किस मूर्ख ने तेरे नाक-कान काटकर अपनी मृत्यु को निमंत्रण दे दिया है। तुझे इस तरह रक्त से नहाती हुई क्या मैं सचमुच देख रहा हूँ।

शूर्पणखा : **(रोते-चीखते हुए)** भइया ! इधर पंचवटी पर दो युवक एक युवती सहित रह रहे हैं। वे अपने को अवध के राजा दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण बताते हैं। उनमें जो छोटा भाई है उसका नाम लक्ष्मण है, उसी ने मेरे नाक-कान काट डाले भइया ! अब मैं क्या करूँ ? **(रोती है।)**

खर : **(क्रोध में)** राम और लक्ष्मण ? ···अच्छा, अच्छा ! वो जो भी हैं, तेरी यह हालत करके उन्होंने अपनी मौत बुला ली है। शायद वह नहीं जानते कि तू खर जैसे खूँखार बलशाली की बहिन है। तुझ पर हाथ उठाकर उन्होंने सीधे ही मेरी प्रतिष्ठा पर हाथ डाल दिया है। उनके वे हाथ तोड़ दिये जावेंगे।

शूर्पणखा : **(बिलख कर)** वो बड़े बलशाली हैं। देखने में तो बड़े सरल और

कोमल हैं। किन्तु वास्तव में हैं बहुत कठोर और दुष्ट।

खर : क्या मुझसे भी अधिक कठोर और बलशाली हैं वे। मैं जानता हूँ दशरथ के उन छोकरों को। विश्वामित्र की आड़ में ताड़का और उसके बेटों को मार लिया तो बड़े बलशाली बने घूम रहे हैं। इतने ही अच्छे होते तो घर से बाप ने उन्हें यों न निकाल दिया होता! आज वन-वन की खाक न छानते।

शूर्पणखा : मैं यह सब कुछ नहीं जानती। मैं चाहती हूँ कि तुम उन तीनों की बोटी-बोटी काट लो और मुझे उनके रक्त से स्नान करा दो। उनके साथ जो चुड़ैल है उसी के कारण मेरी ये गत हुई है। मैं उसका रक्त पी जाना चाहती हूँ।

खर : ऐसा ही होगा बहिन, ऐसा ही होगा। आज तक, तुम जानती हो कि काल भी मुझे हरा नहीं सका है। इन्द्र स्वयं सारे देवताओं सहित आ जाये तो मैं उनको भी धूल चटा दूँ। सारे दण्डकारण्य में मेरा एकछत्र साम्राज्य रहा है। सारे ऋषि, सारे मुनि मुझे साक्षात मृत्यु समझते हैं। मैं प्रलय हूँ। मैं महाकाल हूँ।

शूर्पणखा : तो शीघ्रता करो न। भइया! मेरा रोम-रोम अपमान से जल रहा है।

खर : (घंटे पर आघात करके) कोई है? सेनापति दूषण कहाँ है। सेनापति दूषण को बुलाया जाये।

दूषण : सेनापति उपस्थित है, सम्राट!

खर : दूषण! तुम्हारे पास जितने भयंकर, बलशाली, प्रलय मचा देने वाले राक्षस हों, उन्हें तुरन्त आक्रमण के लिए आज्ञा दो। हमारा रथ भी युद्ध-सामग्री के साथ तैयार किया जाये। हम पंचवटी पर आक्रमण करेंगे।

दूषण : जो आज्ञा। अभी तुरन्त सारी तैयारी होती है।

[सेना सहित खर का पंचवटी की ओर जाना। भारी शोर-शराबा। रण के बाजों के स्वर]

दृश्य तीन

[पंचवटी में राम, लक्ष्मण, सीता]

राम : लक्ष्मण! धूल के ये घने बादल जो पंचवटी की ओर बढ़ रहे हैं, ये युद्ध के बाजों के भीषण स्वर, लगता है उस राक्षसी शूर्पणखा का

भाई खर अपनी सेना लेकर आ रहा है।

लक्ष्मण : सेना लेकर! (हँसता है) दो प्राणियों से लड़ने सेना लेकर आ रहा है! साथ में नकटी बहन को भी ला रहा होगा?

राम : वह बहुत भयानक राक्षस है। हमें उसे साधारण नहीं मानना चाहिए। मैं जानता हूँ, तुम उसे स्वयं युद्ध में मारना चाहोगे किंतु यह काम मैं स्वयं करूँगा। हमारे साथ सीता है। हमें सावधानी से काम लेना है। तुम सीता को लेकर ऊपर पहाड़ी पर वृक्षों की ओट में बनी उस गुफा में चले जाओ। सीता की रक्षा का भार तुम पर है। राक्षसों से युद्ध मैं स्वयं करूँगा।

लक्ष्मण : लेकिन भइया···

राम : लक्ष्मण, देखो, यह तर्क करने का समय नहीं है। यह मेरी आज्ञा है, तुम शीघ्रता करो।

सीता : नाथ! आपको अकेले छोड़कर हम···

राम : सीते! मैंने कहा न, समय बिल्कुल नहीं है। वे कितने निकट आ गये हैं। जाओ, तुम लक्ष्मण के साथ उस गुफा में जाओ। उन्हें मैं अकेले देख लूँगा। तुम्हारे साथ रहने से बाधा पड़ सकती है। शीघ्रता करो सीते!

खर : (ललकार कर) दूषण! यही है वह जिसने खर की प्रभुता को ललकारा है। बाकी दो लगता है भाग गये। उन्हें बाद में देखेंगे। जाओ, इसे बाँध कर लाओ।

राम : राक्षसराज! मेरे आश्रम में आये हैं आप, मेरा प्रणाम लें। आतिथ्य स्वीकार करें। हम वनबासी अवश्य हैं किन्तु मर्यादा और संस्कृति नहीं भूले हैं। हम अपने मेहमान को सम्मान देते हैं।

खर : डर गये? लगे गिड़गिड़ाने! तब नहीं सोचा था जब शूर्पणखा की नाक पर हाथ डाला था। उसे अबला और अनाथ समझ लिया था क्या? हा-हा-हा! हो-हो-हो! देखा किस तरह सहमा-सा खड़ा है? अबला पर हाथ उठाते लज्जा नहीं आयी थी राम?

राम : लज्जा अबला पर हाथ उठाने में आती है। किसी दुष्ट मदान्ध नारी की राक्षसता पर प्रहार करना तो आर्यत्व का अभिमान है, राक्षसराज!

खर : उसे तुमने दुष्ट कहा?

राम : यह शब्द उसकी निर्लज्जता और राक्षसपने के लिए बहुत छोटा है खर। उसने लक्ष्मण के और मेरे विनय को भी नहीं समझा और परिहास को भी नहीं। उल्टा वह मेरी पत्नी के प्राण लेने के लिए

झपट पड़ी थी। उसके बड़े अपराध के लिए लक्ष्मण ने छोटा-सा दण्ड उसे दे दिया था। नाक को हथेली से छुपाकर वह सारा जीवन आराम से बिता सकती है। तुम्हारी बहिन का वन-वन घूमना भी ठीक नहीं था। अब कम से कम घर के अन्दर तो रहेगी। **(हँसते हैं।)**

खर : दूषण ! देखते क्या हो ? टूट पड़ो इस पर। गिरा दो इसे भूमि पर। इसे मारकर इसके भाई और इसकी पत्नी को ढूँढ़कर मेरे सामने लाओ। खर को ललकार इसने अपनी मौत को ललकारा है दूषण।

[घमासान युद्ध। चीत्कारें। आवाजें। कराहें।]

राम : लो सारी सेना सहित तुम्हारे सेनापति दूषण यमराज को प्यारे हो गये हैं। खर ! अपना रथ आगे बढ़ा लो। रुको, आगे कैसे बढ़ेगा। लाशों के इस अम्बार में तेरा रथ आगे क्या बढ़ेगा ? ले मेरा यह तीर सँभाल। **(तीर की आवाज)**

खर : तेरा तीर तो राम, ये रहा जमीन पर, टुकड़े-टुकड़े होकर। वीर है तो मेरा यह तीर झेलकर देख। **(धनुष टूटने का स्वर)**

खर : **(जोर से हँसकर)** हा-हा-हा ! देखा राम ! तेरा पराक्रमी धनुष टुकड़े-टुकड़े हो गया है। तेरा शरीर तो मेरे सेनापति और सैनिकों ने पहले ही बुरी तरह घायल कर रखा है। फिर भी मेरी इतनी बड़ी सेना से तू अकेले लड़ा है, मैं खुश हूँ तेरी वीरता पर।

राम : बस, बस ! आगे बोलने की आवश्यकता नहीं। ले यह धनुष देख ! मुनि अगस्त्य के इस धनुष पर तीर चढ़ा कर मैं तुझे चुनौती देता हूँ कि मेरे इस तीर को काट कर दिखा।

खर : **(हँसकर)** इतने शक्तिशाली तीर से केवल मेरा रथ और धनुष तोड़ सके तुम ! मैं इस गदा से तुम्हें चूर-चूर कर दूँगा।

राम : आगे दौड़ने की कोशिश मत कर राक्षस। ले यहीं रह। **(तीर की आवाज)**

खर : ओह ! हाय, मैं मर गया। अरे मेरा तो कलेजा ही फटा जा रहा है।

राम : खर ! दुष्टता और राक्षसी के एक अध्याय को मैं आज समाप्त करता हूँ। दण्डकारण्य में तूने अनगिनत अपराध किये हैं। उन ऋषि-मुनियों की आत्माएँ आज मुझे आशीर्वाद दे रही होंगी जिन्हें मारकर तूने सद्कर्म करने को सताया था। तू इस पृथ्वी पर बहुत

बड़ा कलंक था खर ! आज मैं इस दुर्गम वन में तपस्या, पूजा, साधनाकर रहे ऋषियों-मुनियों को तेरी क्रूरता से, तेरे आतंक से मुक्त करता हूँ ।

खर : राम, मैं नहीं जानता था कि तुम इतने बड़े वीर हो । मैंने आज तक अपने से अधिक बलशाली किसी को नहीं समझा था । केवल अपने भाई रावण को मैं अपने से बड़ा समझता था । मेरा अभिमान, मेरा बड़प्पन आज मेरे साथ जा रहा है । ओह ! ओह ! अब प्राण निकलते क्यों नहीं ? बड़ा कष्ट हो रहा है ।

राम : पापी प्राण इतनी आसानी से साथ नही छोड़ते राक्षसराज ! लो मैं तुम पर दया करता हूँ । यह तीर तुम्हारे अटके प्राणों को समाप्त कर देगा । दण्डकारण्य से तुम्हें तुम्हारी सेना सहित समाप्त कर मैंने गुरु-दक्षिणा का एक अंश अदा कर दिया आज ।

खर : ओह ! ओह ! ओह !

राम : लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! लक्ष्मण चले आओ । यहाँ अब सब कुछ शान्त है लक्ष्मण !

दृश्य चार

[लंका में रावण का महल । रावण महल के बाहरी कक्ष में ध्यान-मग्न बैठा है । द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल : लंकापति की जय हो । प्रभु का यश पृथ्वी पर बढ़ता रहे ।

रावण : क्या है द्वारपाल ! किसलिए चले आये ? मैंने कहा था मैं इस समय किसी से नहीं मिलूँगा । फिर क्यों चले आये तुम यहाँ ?

द्वारपाल : सम्राट ! आपके जनस्थान से राक्षसप्रवर अकम्पन बड़े घबड़ाये हुए से आये हैं । वह अभी इसी समय आपसे मिलने के लिए कह रहे हैं । मैंने रोका था । वह कहते हैं अभी इस समय आपसे वह न मिल सके तो आप बहुत रुष्ट होंगे बाद में ।

रावण : अकम्पन आया है ? खर का साथी अकम्पन ? आने दे उसे ।

द्वारपाल : जैसी आज्ञा राजन् !

[अकम्पन का आना । झुक कर प्रणाम करना]

अकम्पन : सेवक का प्रणाम स्वीकार करें राजन् ।

रावण : क्यों अकम्पन, इस तरह इतनी शीघ्रता में दण्डकारण्य से आकर मुझसे मिलने का क्या कारण है ?

अकम्पन : बुरा समाचार है नाथ! आपके जनस्थान में जो राक्षस रहते थे उनमें से अधिकतर दण्डकारण्य के अधिपति खर और उनके सेनापति दूषण सहित मार दिये गये हैं।

रावण : क्या कहा, मार दिये गये हैं? अकम्पन! तुम यह कैसा समाचार लाये हो?

अकम्पन : हाँ, महाराज! न चाहकर भी मुझे यह बुरा समाचार लाना पड़ा क्योंकि मैं भी किसी तरह जान बचाकर आप तक पहुँच सका हूँ। जनस्थान के राक्षसों पर ऐसा प्रलय आज तक नहीं ढहा था।

रावण : लेकिन खर तो महावीर और पराक्रमी था अकम्पन!

अकम्पन: हाँ महाराज! खर की वीरता के कारण ही तो आपने पूरा जनस्थान उसको सौंप रखा था। खर का पराक्रम भी तो राजन्, आपकी ही प्रभुता का सहायक था। अनर्थ हो गया कि खर भी धराशायी हो गये और दूषण भी समाप्त हो गया।

रावण : **(क्रोध से लाल होकर)** कौन है वह जो अपनी मौत को यों ललकार रहा है? कौन दुःसाहसी है वह जिसने मेरे जनस्थान को उजाड़ दिया है? अकम्पन यह अपराध करके तो विष्णु, यम, कुबेर और इन्द्र भी चैन से नहीं रह सकेंगे। मैं काल का भी काल हूँ। मैं आग को भी भस्म कर सकता हूँ। मैं मौत को भी मौत की नींद सुला सकता हूँ। वह दुष्ट क्या यह नहीं जानता था कि यदि मुझे क्रोध आ जाय तो मैं अपने वेग के आगे वायु की गति को भी रोक देता हूँ। मैं अपने तेज से अग्नि और सूर्य को भी जला कर भस्म कर सकता हूँ।

अकम्पन : राजन्! मुझे क्षमा करें। आपके क्रोध से मेरे प्राण सूख रहे हैं। मुझे अभयदान दें राजन्! जिससे मैं आगे बता सकूँ कि वह कौन है।

रावण : वह जो भी है, उसने दण्डकारण्य में युद्ध करके, खर को उसकी सेना सहित नष्ट करके लंकापति रावण को सीधी चुनौती दी है। उसने मेरे साम्राज्य में आकर मेरी प्रभुता को ठोकर मारी है। उसने खर को नहीं मारा है बल्कि रावण की प्रतिष्ठा पर हथौड़ा मार दिया है। वह प्रलय भी है साक्षात, तो भी उसे दण्डकारण्य में घुसने से पहले, खर को छेड़ने से पहले रावण का भय होना चाहिए था। देवताओं से, किन्नरों से अजेय रावण की प्रतिष्ठा पर हमला करने वाला वह समस्त देवताओं को साथ लेकर आया हुआ देवराज इन्द्र तो नहीं था जिसे मैंने बार-बार परास्त किया है?

अकम्पन : नहीं। न समस्त देवता थे, न देवराज इन्द्र थे। वह तो एक अकेला युवक था राजन् !

रावण : अकेला युवक ? (हँसकर) एक अकेला युवक था ? और वह खर और दूषण सहित सहस्रों बलशाली उग्र राक्षसों और राक्षस सेना को धराशायी कर गया, (हँसता है) ऐसा नहीं हो सकता अकम्पन ! तुम्हें भ्रम हुआ है।

अकम्पन : वास्तव में वह अद्भुत है राजेश ! वह पंचवटी में रहता है। सुना है उसके साथ उसका छोटा भाई लक्ष्मण और युवा पत्नी सीता भी है। वह अवध के राजा दशरथ का ज्येष्ठ पुत्र राम है। उसके शरीर में हजारों हाथियों का बल है। उसके पास अद्भुत तीर हैं। वह जैसे अजेय है। अपराजेय है।

रावण : मैं समझ गया अकम्पन ! मैं समझ गया। यह छोकरा विश्वामित्र का चेला है। विश्वामित्र बड़ा सद्ज्ञानी बनता है। मुझे अज्ञानी समझता है। उसी ने बाण-विद्या सिखाकर पूर्वांचल में बढ़ती मेरी प्रतिष्ठा को, इनसे ताड़का आदि का वध कराकर रोका था। उसी विश्वामित्र ने, मेरे द्वारा सताये गये अगस्त्य जैसे ऋषियों की रक्षा के लिए इस छोकरे को दण्डकारण्य में भेजा होगा। उसके साथ कितनी सेना है ? कितने अस्त्र हैं ?

अकम्पन : वह सेना रहित है। सुना है उसके पिता ने उसको देश से निकाल कर वन में भेज दिया है। लेकिन मैंने उसकी शक्ति को तौला है राजेश्वर ! उसे हराना इतना आसान नहीं है। यह आप इसी से जान सकते हैं कि दण्डक वन क्षेत्र में राजा खर के बल से कौन बड़ा था। राजा खर के सेनापति और उनकी सेना कितनी बड़ी, बलशाली और अविजेय थी। किन्तु उसे परास्त करने का उपाय मुझे सूझा है लंकेश ! आप कहें तो मैं बताऊँ ?

रावण : अवश्य बताओ, अन्य तमाम बातों के साथ हम तुम्हारे द्वारा बताये गये उपाय पर भी विचार करेंगे।

अकम्पन : श्रीमान् ! शूर्पणखा उनके पास प्रणय-निवेदन लेकर गई थी। जिसे उन्होंने ठुकरा दिया था और उसके साथ शठ व्यवहार किया था। यही तो खर सहित दण्डकारण्य के राक्षसों के नष्ट होने का कारण बना। राम की पत्नी सीता संसार की परम सुन्दरी है। वह इस समय यौवन के मध्य में है। सुना है उसके अंग-अंग कीर्तिमान हैं। वह आभूषणों से सुसज्जित होती है तो ऐसा लगता है संसार की सभी स्त्रियों में सीता चमकते-दमकते रत्न की तरह है। देव-

कन्या, गन्धर्वकन्या, अप्सरा अथवा नागकन्या कोई भी तो रूप में उसकी समानता नहीं कर सकती। उस रूपगर्विता सीता को वह राम प्राण से भी अधिक प्यार करते हैं। आप किसी भी उपाय से राम को धोखे में डाल कर उसकी पत्नी का किसी तरह अपहरण कर लें। फिर सीता से बिछुड़कर राम सिर पटक-पटक कर प्राण दे देंगे। वह बिना सीता के जीवित रह ही नहीं सकेंगे या बिना युद्ध के आपके आगे समर्पण करेंगे।

रावण : तुमने युक्ति तो अच्छी बतायी। केवल सीता को हर लेने की बात है तो मैं उसके हरण की युक्ति निकाल लूँगा अकम्पन! इस युक्ति से हो सकता है कि मुझे राम से युद्ध भी नहीं करना पड़ेगा। या तो राम गिड़गिड़ाकर सीता को ले जाने मेरे पास आयेगा या सीता के वियोग में स्वयं प्राण दे देगा। किन्तु यह काम बहुत आसानी से नहीं होगा। इसके लिए कोई ऐसी योजना बनानी पड़ेगी जो सफल हो जाये। सीता राम से दूर ही कहाँ होती होगी? राम के अतिरिक्त लक्ष्मण भी तो है। दोनों का सीता से दूर होना असम्भव है और जब तक ये दोनों उससे दूर न हों उसको हर लाना, उसका अपहरण करना असम्भव है। तुम जाओ अकम्पन! मैं कोई युक्ति सोचूँगा।

अकम्पन : जैसी आज्ञा। मैं जा रहा हूँ। मेरी जब आवश्यकता पड़े मुझे बुला लीजियेगा।

दृश्य पाँच

[रावण का प्रमोद कक्ष। नृत्य चल रहा है। सुरापान हो रहा है।]

रावण : मंत्री! नर्तकी से कहो कि वह भी सुरा पीकर नृत्य करे। उसके नृत्य में लोच नहीं आ रही है।

मंत्री : (**पिये हुए स्वर में**) लंकेश! नर्तकी ने भी सुरा पी है। उसके पद मद में ही तो लड़खड़ा रहे हैं, राजन्!

[शूर्पणखा का क्रोध में भरे हुए प्रवेश]

शूर्पणखा : भइया! इतने प्रसन्न हो रहे हो तुम कि इस तरह नाच में डूबे हुए हो। (**सिसक कर**) (**नृत्य रुक जाता है**) नर्तकी! नृत्य रोक क्यों दिया। नाचो, नाचती रहो ताकि लंकाधिपति और सब कुछ भूल

जाय। तुम्हारे नृत्य में, सुरा के इन प्यालों में डूबे रहकर बाकी सब कुछ भूले ही रहें। उन्हें यह भी याद न रहे कि उनके जनस्थान के सभी राक्षस मार डाले गये हैं। उन्हें यह भी पता न चले कि उनके राज्य की सीमाओं की रक्षा करने वाले खर और दूषण महावीर मार डाले गये हैं। आज तुम इतना नाचो नर्तकी कि लंकेश को यह भी न दिखाई दे कि उनके सामने उनकी बहन नाक कटाये खड़ी है। (**जोर-जोर से रोने लगती है।**)

रावण : तुम सब लोग जाओ। नृत्य बन्द किया जाये।

[सब चले जाते हैं। शूर्पणखा रावण के सामने खड़ी रहती है।]

अरे कोई है ? (**ताली पीटता है।**)

[दासी सुरा-पात्र लिये आती है।]

मेरे पात्र में सुरा और दी जाये।

[पात्र में सुरा डालने का स्वर]

शूर्पणखा : भइया ! कहना नहीं चाहिये था, किन्तु तुम्हारी यह महफिल देखकर कहना पड़ रहा है कि तुम स्वेच्छाचारी और निरंकुश होकर विषय-भोगों के कारण मतवाले हो गये हो। तुम्हें पता होना चाहिये था कि तुम्हारे लिए घोर भय उत्पन्न हो गया है। किन्तु मैं देख रहा हूँ कि तुम कुछ भी नहीं जानते। जो राजा भोगों में लिप्त रहकर स्वेच्छाचारी हो जाता है वह प्रजा के लिए मरघट की आग के समान हो जाता है। जो राजा ठीक समय पर अपने काम नहीं करता, वह नष्ट हो जाता है।

रावण : जानता हूँ, मैं सब कुछ जानता हूँ शूर्पणे ! तुम इस समय क्रोध में हो इसीलिए...

शूर्पणखा : मैं क्रोध में हूँ अवश्य किन्तु इतना तो बिना क्रोध किये भी बता सकती हूँ कि जो राजा गुप्तचर नहीं रख सकता मंत्रियों के माया-जाल में ही फँसा रहता है, प्रजा को जिसके दर्शन सुलभ नहीं होते, वह राजा बहुत दिनों तक टिक नहीं सकता। तुम विरोध तो करोगे देवताओं का, गन्धर्वों का, ऋषियों-मुनियों का लेकिन राज्य में कोई गुप्तचर नहीं रखोगे—तब कैसे राजा बने रह सकोगे ? राजा के पास गुप्तचर, कोष और नीति अवश्य होनी चाहिए, जिसकी देख-रेख वह स्वयं कर सके। तुम्हारा जनस्थान उजाड़ हो गया है। खर-दूषण जैसे विरागी मारे गये हैं और तुम नृत्य में लिप्त हो। भइया ! इस सबका पता तुम्हें होना चाहिये था न।

एक अकेले राम ने दण्डकारण्य से राक्षसों को समाप्त कर ऋषियों-मुनियों को मुक्त कर दिया। उन्हें विघ्न-बाधाओं से, राक्षसों के डर से दूर कर दिया। यह क्या तुम्हें राम की चुनौती नहीं है?

रावण : राम कौन है? कितना बलशाली है वह? वह दण्डकारण्य में किसलिए आया है? ऐसे कौन से अस्त्र उसके पास थे जिनके बल पर उसने इतने राक्षसों सहित खर-दूषण और त्रिसरा को भी मार डाला? सुना है उसने तेरे नाक-कान भी काटे हैं शूर्पणखे?

शूर्पणखा : हाँ, भइया! मेरी यह हालत उसी के इशारे पर उसके छोटे भाई ने की है। वह अयोध्या के राजा दशरथ का पुत्र है। वह वल्कल और मृग-चर्म धारण किये हुए है। धनुष-तूणीर लिए रहता है। मैं खर के साथ युद्ध में थी। उस महाजेता के तीर चलते मैं नहीं देख पाती थी किन्तु उसके तीरों से समूह के समूह राक्षसों को मरते अवश्य देखती थी। पराक्रमी राम ने केवल तीन घड़ी में अकेले और बिना रथ के यह सारा कौशल कर दिखाया था। स्त्री-वध न करने के विचार से सारी सेना को मार देने के बाद उसने केवल मुझे छोड़ दिया था।

रावण : अच्छा, मैं देखूँगा उसे। बहिन, तू शान्त रह।

शूर्पणखा : उसके साथ वैसा ही बलशाली और युद्ध-निपुण उसका छोटा भाई लक्ष्मण भी है। वे दोनों जितने सुन्दर और सुकुमार हैं उतने ही प्रलयकारी भी हैं।

रावण : मुझे पता है। राम की पत्नी भी उसके साथ है न!

शूर्पणखा : वह सदा राम के साथ रहने वाली संसार की सबसे सुन्दर स्त्री है। दण्डकारण्य में वह देवी-सी लगती है। काश, वह तुम्हारी पत्नी होती! काश, उतनी रूपवती और सुन्दर शरीर वाली पत्नी के पति तुम होते! मैं जानती हूँ तुम बहुत पराक्रमी हो। उस वनवासी राम को परास्त करके उसे मारकर तुम उसकी सुन्दर पत्नी को अपनी पत्नी बना सकते हो भइया! ऐसी परम सुन्दरी स्त्री बड़े भाग्य से मिलती है। तुम राम को मारकर उसे अपनी पत्नी बना सकते हो। मैंने तो कभी ऐसी सर्वांग सुन्दर स्त्री देखीभी न थी।

रावण : बहिन! तुम चिन्ता मत करो। मैं राम की पत्नी का अपहरण करूँगा। ताकि राम आकर गिड़गिड़ाए और तुमसे क्षमा माँग अन्यथा पत्नी के वियोग में प्राण दे दे। तुम महल में जाओ, मैं देखता हूँ राम का राक्षसद्रोह। रावण की प्रतिष्ठा पर अंगुली

उठाने का मजा मैं उसे चखा दूँगा।

[शूर्पणखा चली जाती है। दृश्य बदलता है। मंच पर अँधेरा छा जाता है।]

दृश्य छः

[रावण मारीच के घर पहुँचता है। रावण को देखकर मारीच आश्चर्यचकित होकर]

मारीच : लंकाधिपति रावण! आप यहाँ? मेरे पास? कहिये सब कुशल तो है न।

रावण : मारीच! तुम मेरे मित्र हो। संकट के समय सच्चे मित्र ही काम आते हैं। मैं तुम्हारी सहायता लेने आया हूँ।

मारीच : सहायता? मेरी सहायता?

रावण : हाँ। अयोध्या के राजा दशरथ के लड़के राम ने दण्डकारण्य में खर और दूषण जैसे महान् पराक्रमी राक्षसों को उनकी सेना सहित मार डाला है। उसके छोटे भाई लक्ष्मण ने मेरी बहन शूर्पणखा की नाक काट कर उसे विरूप कर दिया है। मैं उससे बदला लेना चाहता हूँ। क्योंकि यह सब करके उसने मेरी प्रभुता को ललकारा है।

मारीच : दशरथ-पुत्र राम? आप शायद राम को जानते नहीं लंकेश!

रावण : राम में इतना महत्त्वपूर्ण भी क्या है कि लंकेश उसे जाने। वह अधर्मी है, मंदबुद्धि है, पितृद्रोही है। इसीलिए बाप ने उसे घर से निकाल कर वन में भेज दिया है।

मारीच : नहीं राक्षसराज! ऐसा नहीं है। वह धर्मात्मा, विनयशील, तीक्ष्ण बुद्धि और अद्भुत शक्तिशाली है। पिता ने उसे निकाला नहीं बल्कि सौतेली माँ के कुचक्र के कारण पिता के वचन की सत्यता बनाये रखने के लिए राम ने स्वयं वन आना स्वीकार किया था।

रावण : तुम्हारे कह देने से वह धर्मात्मा हो जायेगा। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि वह राक्षसों का दुश्मन है, बस! मैं उसकी पत्नी का अपहरण करना चाहता हूँ। उसकी पत्नी सीता अत्यधिक सुन्दरी है, मैं उसे उससे छीन लाना चाहता हूँ। ताकि राम सिर पटक-पटक कर प्राण दे दे। यदि वह सीता को वापस लेने के लिए अस्त्र उठाना चाहेगा तो मैं उसे ही समाप्त कर दूँगा।

मारीच : यह कुमति आपको किसने दी है राजन् ? निश्चय ही ऐसी अकल देने वाला कोई आपका घोर शत्रु है। राम की शक्ति को आप नहीं जानते। मैं ऋषियों को, मुनियों को सताता, नष्ट कर देता था। मैं अपने को बहुत बड़ा बलशाली समझता था। एक बार विश्वामित्र मुनि के आश्रम पर इसी राम ने मुझे ऐसा भयानक तीर मारा था कि मैं सौ योजन दूर समुद्र में जा गिरा था। समुद्र में न गिरता तो शायद उस तीर से भस्म ही हो जाता। वर्षों घायल अवस्था में घूमता रहा हूँ। उस राम को आप साधारण न समझिये। तब तो वह सुकुमार था। अस्त्र-विद्या भी अधिक नहीं जानता था। अब तो वह यदि आप उसे छेड़ेंगे तो समूची लंका को ही ध्वस्त कर देगा। एक भी राक्षस फिर बच नहीं सकेगा। दण्डकारण्य, दक्षिणाचल क्षेत्र ही नहीं संपूर्ण लंका भी राक्षसों से शून्य हो जायेगी।

रावण : (**क्रोध में**) मैं राम की प्रशंसा सुनने तुम्हारे पास नहीं आया हूँ। तुम तो अतिथि-सत्कार के नियम भी नहीं जानते। तुम्हारे घर आया हूँ तो मुझे ही अपना भाषण पिलाने लगे हो। राम ने घायल क्या कर दिया कि चूहे की तरह बिलबिला रहे हो। मैं तुझे राम से युद्ध करने को तो नहीं कह रहा !

मारीच : सत्य बड़ा कड़वा होता है दशानन ! लेकिन सच बोलने का साहस सबमें नहीं होता। राम को कुपित कर आप बच नहीं सकेंगे। सपरिवार नष्ट हो जायेंगे। इसलिए आपका मित्र होने के नाते विनय कर रहा हूँ कि सीता के अपहरण की बात छोड़िये। अपनी रानियों के साथ राजसुख भोगिये।

रावण : (**बिफर कर**) मारीच ! अबकी तूने मुख खोला तो मैं तुझे जान से मार डालूँगा। मैं जो आज्ञा देता हूँ वही कर। नहीं किया तो मार डालूँगा। जा, तू सोने के सुन्दर रंग का मृग बन जा, जिस पर चाँदी के रंग की बिन्दियाँ पड़ी हों। माया-मृग बनकर सीता के आस-पास विचर ताकि वह ऐसा अनोखा मृग देखकर राम से उसे पकड़ने का आग्रह करें। तू दूर तक भागते जाना, जब राम तेरे पास पहुँचे तो राम के स्वर में जोर से कहना—'हा सीता !' हा लक्ष्मण !' और फिर भाग जाना। राम को संकट में समझकर लक्ष्मण भी राम को बचाने वहाँ जायेगा। मैं अकेली सीता को हर लाऊँगा। समझे ?

मारीच : हाँ, समझ गया। जाता हूँ तो राम मेरे प्राण ले लेंगे, नही जाता हूँ

तो तू मेरे प्राण ले लेगा। मैं समझ गया, राम के हाथों ही मरना अच्छा होगा। तेरे हाथों मरूँगा तो आत्महत्या करने जैसा होगा और लोग कहेंगे, मायावी मारीच निरा डरपोक था इसलिए मारा गया। लंकेश! मैं जा रहा हूँ।

दृश्य सात

[मंच पर अँधेरा होता है। प्रकाश उभरते ही पंचवटी का दृश्य। पंचवटी के पास रावण का विमान से मारीच सहित उतरना]

रावण : लो मित्र मारीच! विमान से बाहर उतरो। हम पंचवटी आ गए हैं। इधर देखो वह रम्य झोंपड़ी है न पहाड़ी पर, वहाँ बरगद-पीपल के वृक्षों की छाया है और केले के तमाम वृक्ष खड़े हैं। यही राम का आश्रम होगा।

मारीच : हाँ-हाँ, तुम छुप जाओ रावण। रथ को दूर भेज दो। लगता है यही राम का आश्रम है। लो मैं सुन्दर मृग बनकर उनकी कुटी की ओर जाता हूँ। तुम जाओ, कहीं छुप कर देखते रहो और मैं राम को दूर तक भगा ले जाने का प्रयत्न करता हूँ। लो मैं सुन्दर स्वर्ण-मृग बन गया। मेरी यह रूप ठीक है न!

रावण : बहुत सुन्दर! अब तो तुझ मृग पर कोई भी आकर्षित हो सकता है। जाओ सीता के सामने पड़ो। वहीं आस-पास खेलो। जाओ, शीघ्र जाओ।

मारीच : प्राण तो जायेंगे ही। राम मुझे छोड़ेंगे नहीं। अच्छा रावण, मैं चला।

दृश्य आठ

[पंचवटी में राम की पर्णकुटी। राम-लक्ष्मण बरगद की छाँव में बैठे धनुष-बाण ठीक कर रहे हैं। सीता फूल तोड़कर टोकरी में डाल रही है।]

राम : सीते! कितने फूल तोड़ोगी। (**हँसते हुए**) अरे, पाँच फूल शिवजी पर चढ़ाने हैं और पाँच माँ शक्ति पर। दस-पाँच फूलों की मालाएँ

अपनी वेणी पर बाँधने को बनानी हैं तुम्हें। इतने सारे सुन्दर सुकोमल फूल क्यों तोड़े डाल रही हो ?

सीता : नाथ ! अयोध्या में यही बात एक बार आपने कनक भवन के उद्यान में भी फूल तोड़ते समय कही थी। कितना सुन्दर उद्यान था मेरा वह। गुलाब, बेला, चमेली, गुलदाउदी···

राम : और वह तुम्हारा तुलसी-स्थान (**हँसते हैं।**)

सीता : आर्य ! अपनी अयोध्या की बड़ी याद आती है। मेरा कनक भवन मँझली माँ ने मुझे मुँह दिखाई में दिया था। हर दरवाजा, हर खिड़की सोने-चाँदी के थे और नक्काशी में हीरों और दूसरे रत्नों को जड़ा गया था। उसी को हमने अपना महल बनाया था न नाथ कितना अच्छा लगता था उस कनक भवन में रहना ! अब तो बन्द पड़ा होगा ! मकड़ी के जाले लगे होंगे हर कमरे में। धूल ही धूल भर गई होगी इतने सालों में।

राम : लक्ष्मण ! मैंने बहुत कोशिश की कि जब तक वनवासी हूँ अयोध्या को भूला रहूँ किन्तु कभी-कभी समूची अयोध्या आँखों के सामने आ खड़ी होती है। सीता ने आज फिर अयोध्या की याद दिला दी है। हमारे राजसभा भवन के ठीक सामने मेरा कनक भवन था। कितनी सुन्दर है हमारी अयोध्या नगरी ! हमारी जन्मभूमि थी वह। हम चाहे कहीं भी रहें उसकी मिट्टी की गंध से दूर नहीं हो सकते।

लक्ष्मण : भइया ! अब हमें अयोध्या लौटने में दिन ही कितने बाकी रह गये हैं। लम्बा समय तो काट ही चुके, अब तो साल-सवा साल ही बाकी रह गया है।

[स्वर्ण-मृग का सीता के सामने आकर रुकना]

सीता : अरे, देखिये। इधर देखिये आर्य ! लक्ष्मण ! (**हँसकर**) देखो तो यह मृग-छौना ! देखा, कितना सुन्दर है। सोने के रंग की खाल और उस पर चाँदी के सुन्दर बूटे। आर्य ! ऐसा मृग तो कभी देखा ही नहीं।

राम : लक्ष्मण ! देखो है तो बहुत सुन्दर।

सीता : नाथ ! इसे लीजिये, मैं इसे पालूँगी। इसे मैं अपने साथ अयोध्या ले जाऊँगी। इसे देखकर सब कितना अचरज करेंगे। इसे मैं कनक भवन में सुन्दर उद्यान में अपने झूले के पास रखूँगी। यह कितना सुन्दर है, आर्य ! इसे आप पकड़ लीजिए।

राम : देखो, देखो, वह तो चौकड़ी भरकर भाग लिया सीते ! वह शायद

तुम्हारी नीयत समझ गया है। (हँसते हैं।)

सीता : मुझे यह मृग अवश्य पाना है। आप उसे जीवित न पकड़ सकें तो मार कर ले आइये। उसकी खाल पर आप और मैं बैठा करेंगे। कितनी सुन्दर खाल है इसकी।

राम : ठीक है, मैं कोशिश तो करूँगा कि उसको जीवित ही पकड़ लाऊँ किन्तु यदि वह पकड़ में न आया तो मारकर ले आऊँगा।

लक्ष्मण : नहीं भइया, नहीं। आप उसे पकड़ने नहीं जायेंगे।

राम : क्यों ? तुम ऐसा क्यों कह रहे हो लक्ष्मण ?

लक्ष्मण : भइया ! वर्षों से हम लोग वनों में रह रहे हैं। किन्तु ऐसा मृग तो कभी देखा नहीं। रोज ही तो मृगों के झुण्ड के झुण्ड हमारी कुटी पर आते हैं। उनमें कभी ऐसा मृग तो देखा नहीं। फिर आज यह स्वर्ण के रंग का चाँदी के से बेल-बूटों वाला मृग कहाँ से आ गया !

सीता : (समीप आकर) बातें कर-करके देर न कीजिये नाथ ! वह देखिये, कुछ ही दूरी पर वह वहाँ खड़ा है।

लक्ष्मण : भइया ! ऐसा अद्‌भुत मृग देखकर मुझे तो डर लग रहा है कि कहीं यह मायावी राक्षस मारीच न हो। वह गुरुदेव विश्वामित्र के आश्रम में भी ऐसी माया दिखा चुका है।

राम : हाँ, मेरे तीर से घायल तो हो गया था, मरा नहीं था।

लक्ष्मण : फिर दण्डकारण्य में भी वह मेमने का रूप रखकर तीन राक्षसों के साथ मुनि शरभंग के आश्रम में आया था। आपने तीर मारा तो वे दोनों राक्षस तो मर गये किन्तु यह बच निकला था। मुझे लगता है वही फिर आया है।

राम : यदि वह मारीच ही है तो मुझे उसका बध अवश्य करना होगा। बार-बार वह मुझसे बच जाता है। ऋषियों-मुनियों को उसने बड़े कष्ट दिये हैं। उसे मुझे समाप्त करना ही है—उस राक्षस की तरह।

लक्ष्मण : किस राक्षस की तरह भइया ?

राम : वह वातापि नाम का एक भयंकर राक्षस था जो रूप बदलने में माहिर था। वह किसी तरह भोजन में बैठकर सूक्ष्म रूप में ऋषियों-मुनियों के पेट में घुस जाता था। फिर उनके पेट में विकृत रूप धारण कर उन्हें मार डालता था।

लक्ष्मण : तब कैसे मरा भइया वह ?

राम : एक बार वह दुष्ट राक्षस ऋषि अगस्त्य के पेट में जा घुसा। जब

उसने अपना शरीर बढ़ाकर ऋषि का पेट फाड़ना चाहा तो अगस्त्य ऋषि हँसकर बोले, 'अरे वातापि ! तूने बड़े पाप किये हैं । अत: तू नरक का कीड़ा बनेगा । ले मुझे तुझ पर दया आती है, मैं तुझे पचा लेता हूँ ।'

लक्ष्मण : भइया ! मुनि ने ठीक सबक दिया।

राम : यही सबक मैं इस मारीच को देना चाहता हूँ यदि यह वही है। तुम सीता की रक्षा करना । इसे छोड़ना नहीं । मैं इस मृग को पकड़ने जा रहा हूँ । सीते ! तुम भी सावधान रहना ।

[राम मृग की ओर भागकर धनुष-बाण लिये जाते हैं । दूर जाकर मृग तेज भागता है । दोनों आँखों से ओझल हो जाते हैं । थोड़ी ही देर में आवाज आती है—]

लक्ष्मण ! हा लक्ष्मण ! सीते ! हा सीते !

सीता : तुमने यह स्वर सुना लक्ष्मण ! यह आवाज तुम्हारे भइया की है । उन्होंने तुम्हें और मुझे पुकारा है । शायद वह किसी संकट में पड़ गये हैं ।

लक्ष्मण : भइया किसी कष्ट में नहीं पड़ सकते। फिर एक मृग को मारना है उन्हें । वह राक्षस मारीच भी है तो भी भइया के लिए वह कोई बड़ा शत्रु नहीं है । आप धीरज रखिये । भइया जब तक लौट नहीं आयेंगे मैं यहाँ से तिल-भर भी हटूँगा नहीं।

सीता : वह घबड़ाया-सा, थका-सा स्वर था लक्ष्मण ! उन्हीं का स्वर था वह ।

लक्ष्मण : हाँ, मैंने सुना था ।

सीता : सुनकर भी तुम भाई के आने की प्रतीक्षा करोगे !

लक्ष्मण : मैं भइया की शक्ति को जानता हूँ । यदि वह राक्षस भी होगा तो भइया को परास्त नहीं कर सकेगा । आप इतनी चिन्तित क्यों हो रही हैं ।

सीता : चिन्तित क्यों न होऊँ मैं ! तुम्हारे भइया का आर्त स्वर था वह । शायद वह किसी मुसीबत में पड़ गये हैं । लक्ष्मण ! तुम तुरन्त जाओ । देखो तुम्हारे भइया कुशल हैं कि नहीं ।

लक्ष्मण : भाभी ! मैं नहीं जाऊँगा। भइया आपकी रक्षा का भार मुझ पर छोड़ गये हैं । मैं आपको छोड़कर नहीं जा सकता ।

सीता : (**क्रोध में**) लक्ष्मण ! तुम्हारे भइया मेरी सुरक्षा का भार तो तुमको सौंप गये थे किन्तु मैं कह रही हूँ कि तुम्हारे भइया किसी संकट में हैं, तुम शीघ्र जाकर उनकी सहायता करो।

लक्ष्मण : आप तो कह रही हैं। किन्तु भइया ने भी तो मुझे आपकी रक्षा का भार सौंपा है। इस जंगल में मैं किसके सहारे छोड़ जाऊँ। आप मुझे विवश न करें।

सीता : (**बिगड़ कर**) विवश न करूँ? आज तो मुझे लग रहा है कि तुम किसी और मोह में हो।

लक्ष्मण : लक्ष्मण को और मोह क्या हो सकता है भाभी? भइया और आपके। चरणों में अनुराग के अलावा मेरी और इच्छा भी क्या है?

सीता : मुझे तो लगता है, तुम चाहते हो राम न लौटें। मैं राम के बिना रहूँ और माफ कहूँ तो लक्ष्मण, तुम चाहते हो कि राम न लौटें और मैं···मैं···तुम्हारे··· !

लक्ष्मण : (**गुस्से में**) भाभी! यह आपने क्या कह दिया। वह कह दिया जो लक्ष्मण कभी सोच भी नहीं सकता था। मैंने तो भाभी, आपको माँ की तरह माना है हमेशा। माँ से भी अधिक आदर दिया है, सम्मान दिया है। कोई माँ अपने बेटे से ऐसी बात कह सकती है क्या! यह आपने कह क्या दिया? आपने मुझे किस लांछन के नर्क में ढकेल दिया माँ? मेरा सब कुछ तो आपके और भइया के चरणों में है फिर आपने···

सीता : लक्ष्मण! मैं आर्य की चिन्ता के कारण आपे में नहीं हूँ। मेरे नाथ विपदा में फँसे हैं। शीघ्र जाकर उन्हें मेरे पास लौटा लाओ। मैं नहीं चाहती कि भाई की बात का बहाना बनाकर तुम मेरे पास बने रहो। मुझे अपने प्राणों की चिन्ता नहीं है, मेरे नाथ सुरक्षित रहें।

लक्ष्मण : भाभी! इतनी बड़ी बात कह दी आपने। तो लीजिये भइया की बात टालकर मैं आपका आदेश मानता हूँ। मैं जा रहा हूँ। लेकिन अपने तीर से यह रेखा कुटी के चारों ओर खींचे जा रहा हूँ। यह रेखा ही आप की रक्षा करेगी। इस रेखा से बाहर न आना। इस रेखा के अन्दर कोई आपका कुछ नहीं कर सकेगा। मैं जा रहा हूँ—उसी ओर जहाँ से वह स्वर आया था। (**चले जाते हैं।**)

दृश्य नौ

[पंचवटी के समीप वन में। राम पंचवटी की ओर लौट

रहे हैं। लक्ष्मण घबड़ाये हुए से आते हैं]

राम : लक्ष्मण ! तुम यहाँ ? सीता के पास कौन है ?

लक्ष्मण : आपने आर्त स्वर में मुझे पुकारा था भइया। आपने भाभी को भी पुकारा था।

राम : मैंने किसी को नहीं पुकारा था लक्ष्मण ! वह तो उसी मायावी राक्षस मारीच ने मेरा-सा स्वर बनाकर पुकारा था। वह देखो मेरे तीर लगते ही मारीच अपने असली रूप में आ गया। वह देखो मरा पड़ा है।

लक्ष्मण : मैंने कहा था न भइया, कि यह मृग मायावी मारीच ही हो सकता है।

राम : लेकिन लक्ष्मण ! तुम्हें सीता को छोड़कर नहीं आना चाहिए था। जंगल में अकेली होगी। राक्षस किस बुरी तरह हमारे पीछे पड़े हैं तुम देख ही रहे हो।

लक्ष्मण : मैं जानता था भइया कि आपका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। किन्तु मैं क्या करता ? भाभी ने वह स्वर सुनते ही मुझे विवश कर दिया कि मैं आपके पास पहुँचूँ। क्या करता उन्होंने बात ही ऐसी कह दी कि···

राम : ओह, लक्ष्मण, तुम तो समझदार थे। सीता की बातों में नहीं आना चाहिए था तुम्हें। सीता तो वैसा स्वर सुनकर घबड़ा उठी होगी इसलिए मेरी सहायता के लिए तुम्हें विवश किया होगा। तुम्हें नहीं आना चाहिये था। तुम जानते हो, सीता मुझे कितना चाहती है। वह बेचारी एक क्षण को भी मेरे बिना नहीं जी सकती। क्या तुम नहीं जानते लक्ष्मण कि वह पहला प्राणी थी जो चौदह वर्ष के लिए सारे राजसुख छोड़कर मेरे पीछे आ गयी थी।

लक्ष्मण : मैं विवश हो गया था भइया। यह जानते हुए भी कि आप पर कोई संकट नहीं आ सकता, मुझे आना पड़ा।

राम : मारीच मुझे पंचवटी से बहुत दूर दौड़ा लाया। फिर भी तुम्हें मेरा आदेश मानना चाहिये था। अब चलो, हम शीघ्र पंचवटी में पहुँचें, पता नहीं सीता कुटी में भी होगी या नहीं। कहीं जंगली जानवर, राक्षस उसे खा न गये हों। मेरा मन डर रहा है। तुम्हें उसे अकेली छोड़कर नहीं आना चाहिये था लक्ष्मण ! मैंने तुम्हारे विश्वास पर उसे छोड़ा था।

दृश्य दस

[फिर पंचवटी में राम की पर्णकुटी ! सीता कुटी के अन्दर घबड़ाई-सी बैठी है। एक साधु का दूर से कुटी की ओर आना।

रावण : (**साधु वेश में**) वन में विचरता साधु हूँ। कुटियों से भिक्षा पा लेता हूँ। कुटी में कोई हो तो साधु को भिक्षा दे दे।]

[सीता कुटी से बाहर देखकर]

सीता : साधु, आप ! अयोध्या में तो भिक्षा माँगने वाले साधु मिल जाते थे। यहाँ तो ऐसे साधु कभी-कभी ही मिलते हैं। मैं अभी भिक्षा लेकर आती हूँ। आप ठहरियेगा।

[अन्दर चली जाती है। एक पात्र में भिक्षा लेकर बाहर आती है।]

सीता : साधु, लीजिये, यह भिक्षा ले लीजिये।

रावण : भिक्षा ? देवि ! कुटी के बाहर यह कैसी रेखा है ?

सीता : मेरे देवर ने खींच दी थी, मेरी रक्षा के लिए।

रावण : तो मैं रेखा के अन्दर आकर यह भिक्षा नहीं लूँगा।

सीता : क्यों, ऐसी क्या बात है !

रावण : पता नहीं इस रेखा के अन्दर किसी और के होने पर क्या हो जाये। मैं जल भी सकता हूँ इस रेखा के अन्दर आकर। भिक्षा देने हो तो बाहर आकर दो। ओम ! शिव भोले शंकर ! भिक्षा देनी वाली का भला कर। तू है अजर। तू है अमर। मेरे भोले बाबा शिव-शंकर !

सीता : तो साधु, लो मैं ही रेखा के बाहर आ रही हूँ। लो अब तो भिक्षा ले सकते हो न। यह आर्य अवधकुमार का आश्रम है। यहाँ से साधु निराश नहीं लौट सकते।

रावण : (**सीता को पकड़कर**) हा-हा-हा ! हा-हा-हा ! (**साधु-वेश त्याग कर**) मुझे भिक्षा नहीं तू स्वयं चाहिए थी। आ जा, मेरे अंक में आ जा !

सीता : (**घबड़ाकर**) छोड़ दो मुझे। तुम कौन हो ? यह क्या करते हो ? (**अपने को छुड़ाती है।**)

रावण : अब तुम मेरी हो सीते ! आ जा, मेरी बाँहों में आ जा। मैं तुम्हें लंका ले चलूँगा। वह देखो। मेरा स्वर्ण-रथ तैयार है। चलो हम तुम्हें अपनी पटरानी बनाने लंका ले चलते हैं। तू वहाँ सुख

भोगेगी। राज भोगेगी।

सीता : दुष्ट, छोड़ दे मुझे, छोड़ दे। मैं आर्य राम की पत्नी हूँ। मुझे छोड़ दे राक्षस। छोड़ दे।

रावण : हा हा हा ! राम की पत्नी ! उस छोकरे की जिसे पिता ने घर से निकाल कर वनवास दे दिया ? भूल जा उसे। मेरा लंका में स्वर्ग से भी बढ़कर कौनसा सुख है जो तुम्हें नहीं मिलेगा ? पर्णकुटी छुड़ाकर मैं तुम्हें स्वर्णमहल में रखूँगा। हा हा हा ! हा हा हा ! **(खींचकर ले जाता है।)**

सीता : छोड़ दे दुष्ट ! मुझे छोड़ दे···मुझे छोड़ दे···मुझे छोड़ दे। मैं श्रेष्ठ आर्य राम की पत्नी हूँ। दुष्ट, मुझे छोड़ दे।

रावण : हा हा हा ! राम की पत्नी ! अब तू रावण की पत्नी है। हा हा हा ! हा हा हा !

[दोनों हाथों से खींचते हुए ले जाता है। पास ही रथ खड़ा है। रथ में बिठाकर आकाश में उड़ जाता है। नभ में उड़ते हुए रावण को, रोती-चिल्लाती सीता को देख कर जटायु रथ की ओर बढ़ता है।]

जटायु : रावण ! रुक जा। रोक ले अपना रथ। ऐसी दुष्टता न कर। श्री राम को तू जानता नहीं शायद। तू जगत-जननी सीता को भी जानता नहीं है।

रावण : रे जटायु ! मेरे रास्ते में न आ। हट जा, तू मुझे तो ठीक से जानता ही है। तू तो यह भी जानता है कि रावण का रास्ता रोकने वाले को रावण जीवित नहीं छोड़ता। हट जा, मेरे रास्ते से हट जा।

जटायु : राम मेरे आराध्य हैं रावण ! उनकी पत्नी को लेकर मैं तुझे जीवन रहने जाने नहीं दूँगा। सीता जी को छोड़ दो। छोड़ दे उन्हें।

रावण : नहीं छोड़ता। तुझे जो करना है कर ले।

जटायु : तो ले, ये ले, मैं तेरे विमान को आगे जाने नहीं दूँगा। **(विमान पर लगातार आक्रमण करता है।)**

रावण : ये मेरा खड्ग देख। भाग जा। मैं जीवित रहने के लिए अवसर देता हूँ तुझे। भाग जा।

जटायु : मैं मानूँगा नहीं। सीता माता को छोड़ दे। वरना मैं तेरा विमान ध्वस्त कर दूँगा। इसी आकाश में तेरे विमान की धज्जियाँ उड़ा दूँगा। तेरे हाथों पर मैं चोंच मारता हूँ। तेरे शरीर पर चोंच

मारता हूँ। रोक मुझे देखता हूँ कैसे रोकता है?

रावण : आह! आह! अरे जटायु! ले ये ले मेरे खड्ग का प्रहार सह। और लड़। (आगे बढ़ता है) अब उड़ा मेरे विमान की धज्जियाँ। हा हा हा! पंख कटा न। ले और उड़ रथ के साथ-साथ! हा हा हा, दूसरा पंख भी कटा न। अब लड़ आकाश में। बस गिर गया न धरती पर। आकाश में उड़कर मेरा मुकाबला करना चाहता था। हा हा! गिर पड़ा है धरती पर अब। हा हा हा! हा हा हा! ले देख, तेरी चोंच से मेरे जो हाथ कटे थे वे सब फिर जुड़ गये हैं। हा हा हा!

सीता : दुष्ट, मुझे छोड़ दे। छोड़ दे मुझे। मुझे छोड़ दे। मैं राम की पत्नी हूँ। मुझे छोड़ दे।

रावण : इन दुर्गम पहाड़ों पर अपने ये सोने के आभूषण क्यों फेंक रही हो। ये फूल-मालाएँ क्यों फेंक रही हो।

सीता : इनसे मेरे आर्य को पता लगेगा कि मैं किधर गयी हूँ। वे मेरा हर आभूषण पहचानते हैं। वे मुझे ढूँढ़ने अवश्य आयेंगे। वे मेरी फेंकी फूल-मालाएँ पहचान लेंगे मैं उनके लिए मार्ग की पहचान के रूप में इन निर्जन वनों में, पहाड़ों पर अपने जेवर, फूल-मालाएँ डालती जा रही हूँ। ताकि इसी रास्ते वह मेरी खोज कर सकें। दुष्ट, तेरा अन्त आ गया है। यदि अपना भला चाहता है तो मुझे छोड़ दे।

रावण : (हँसकर) हा हा हा! हा हा हा! सीता रानी! ये देख मेरी लंका आ गयी। यह देख मेरी राजधानी आ गयी। ये देख मेरा स्वर्ण-महल आ गया।

सीता : मुझे तुम अपने महल में ले जाओगे? कृपा कर इतनी निर्लज्जता न कर। मैं पतिव्रता स्त्री हूँ।

रावण : मैं भी लंकापति रावण हूँ। चोरी से किसी स्त्री को लाकर अंक-शायी नहीं बनाऊँगा। मारीच को मारने से उसे पता लग गया होगा कि तुम्हें लंकापति ले गया है। रावण का इतना चरित्र तो तेरा राम भी जान लेगा कि मैं इस तरह चोरी से लाकर तुम्हें अपनी रानी तो बना नहीं लूँगा। उसे तुम्हें ढूँढ़ते हुए यहाँ तक आना चाहिए। वह पराक्रमी है तो लंका तक अवश्य पहुँचेगा।

सीता : यही तो मैं भी विनती कर रही हूँ कि मेरे आर्य को मुझे छुड़ाने का अवसर दे दो। वह अवश्य आकर मुझे ले जावेंगे। मुझे अपने पतिधर्म पर रहने दो रावण!

रावण : तुम्हें अपनी रानी बना लेने से पहले मैं तुझे और तेरे राम को एक

बार ऐसा अवसर देना चाहूँगा। मैं निपट गँवार और जंगली जानवर नहीं हूँ। मैं भी शिवभक्त हूँ और अपनी विचारशीलता से ही विद्वान माना जाता हूँ। पशु नहीं हूँ मैं। मैं यह भी जानता हूँ कि तेरे राम ने चौदह साल तक वन में रहने का ही संकल्प भी किया है।

सीता : और उनकी अर्द्धांगिनी होने के कारण मैं भी उनके इस संकल्प की सहभागी हूँ। यह व्रत उनके साथ मुझे भी निभाना है।

रावण : हाँ, मैं जानता हूँ कि तेरा राम वनवासी है तुम उस वनवासी के साथ आयी हो। मैं तुम्हें नगर में नहीं, महल में नहीं, नगर के बाहर अशोक वाटिका में रखूँगा ताकि नगर से बाहर रहने का राम का संकल्प बना रहे। राम को मैं अपने से युद्ध का मौका दूँगा। राम या तो आ कर तुम्हें जीतकर मुझसे ले जावे या मेरे सामने गिड़गिड़ाकर तुम्हारी भीख माँगे। वह मारा गया तो मैं तुम्हें वरण कर लूँगा। अपनी जीती हुई वस्तु को मैं नहीं छोड़ता।

सीता : रावण ! दुष्टता करके भी तू बड़ी कृपा कर रहा है। अगर मैं नगर में राजभवन में रहूँगी तो मेरे पति का वन में रहने का व्रत टूट जाएगा।

रावण : मैं अपनी ओर से तेरे पति का वह व्रत नहीं तोड़ूँगा। तू लंका में भी नगर में नहीं वन में ही रहेगी। किन्तु केवल साल भर तक। साल भर तक तेरा पति राम मेरे पास आवेगा तो मैं फिर अधिक प्रतीक्षा न करके तुम्हें अपनी पटरानी बना लूँगा। तुम खुश रहोगी सीता। हा हा हा ! मेरी पटरानी बन कर तुम कितना खुश होगी। हा हा हा !

सीता : तो एक काम और करो राक्षसराज ! यहाँ मेरे पहरे में, परिचर्या में कोई पुरुष न रहे। केवल स्त्रियों को ही रखना।

रावण : ठीक है, तुम्हारे पास मैं अपनी रानी मन्दोदरी की मुख्य सहायिका त्रिजटा को नियुक्त कर देता हूँ। बाकी सहायिकाएँ त्रिजटा स्वयं चुन लेगी।

[अशोक वाटिका में रथ उतरता है।]

सीता : ठीक है, मैं इसी अशोक वाटिका में त्रिजटा के साथ रहूँगी।

दृश्य ग्यारह

[राम-लक्ष्मण का पंचवटी पर आना। राम कुटी देखते हैं।]

राम : सीते ! सीते ! सीते, तुम कहाँ हो ! कहाँ हो सीते। (**इधर-उधर ढूँढ़कर**) लक्ष्मण ! सीता तो यहाँ नहीं है। सीता कहाँ है? (**चिल्लाते हैं। गला भर आता है।**)

लक्ष्मण : मैं तो भइया, कुटी के चारों ओर अग्निरेखा खींच गया था। इस रेखा के अन्दर आकर तो भाभी को कोई ले नहीं जा सकता था। लगता है, भाभी स्वयं रेखा के बाहर आ गयी थीं।

राम : मेरी सीता कहाँ गयी होगी ? वह स्वयं क्यों जाती ? लगता है, लक्ष्मण, उसे कोई उठा ले गया है।

लक्ष्मण : इतने अधीर न होओ भइया। मुझे भाभी ने विवश न किया होता तो मैं उन्हें छोड़कर न जाता। फिर भी धीरज से काम लीजिये। शायद इधर-उधर ही कहीं गयी हों।

राम : चलो, उधर चलें। सीता वहाँ फल तोड़ने जाती थी। (**वाटिका में जाकर**) यहाँ भी नहीं है।

लक्ष्मण : ठहरिये, मैं उधर जलधारा की तरफ देखकर आता हूँ। (**जाकर लौट आते हैं।**)

राम : यहाँ सीता कहीं भी नहीं है, लक्ष्मण ! तब सीता गयी कहाँ ?

लक्ष्मण : मैं क्षमा माँगता हूँ भइया ! मेरा ही अपराध है यह।

राम : सीता कहीं नहीं है। क्या करूँ मैं अब ? लखन भइया ! ये तो हमारी मँझली माँ की इच्छा पूरी हो गयी लगती है। अब हम कहीं के नहीं रहे। (**फफक पड़ते हैं।**)

लक्ष्मण : भइया ! आकाश, समुद्र, पृथ्वी जहाँ भी वह होंगी हम उन्हें ढूँढ़ निकालेंगे। उन्हें किसी जंगली जानवर या राक्षस ने मारा तो नहीं है। वरना उनका शरीर यहीं इधर ही कहीं होता। उनके मरने का कोई तो चिह्न इधर होता। रक्त होता। छीना-झपटी के निशान होते।

राम : ईश्वर करें तुम्हारी बात सच निकले। मेरी सीता जीवित हो। वह हमें मिल जाय। चलो और कहीं ढूँढ़ें। इधर आगे पेड़ों के उस घने झुरमुट में देखें। गोदावरी के तट पर तो नहीं गयी होगी ! चलो चल कर वहाँ भी देख लें। और जा कहाँ सकती है सीता। (**पुकारते हैं—सीते ! सीते !**)

दृश्य बारह

[दण्डकारण्य के गहन वन में राम-लक्ष्मण का दुखी होकर सीता को ढूँढ़ना ।]

राम : **(आवाज देते हैं)** सीते ! सीते ! लक्ष्मण ! मेरी सीता अब कहीं नहीं है । कुटी देख ली, नदी के घाट देख लिये, वन के वे सभी पेड़ देख लिये जहाँ-जहाँ उसके मिलने की आशा थी । कहीं भी तो सीता के मिलने के लक्षण नहीं दिख रहे हैं।

लक्ष्मण : लगता है भाग्य ही फिर गया है । फिर भी भइया, हमें आशा नहीं छोड़नी है ।

राम : लक्ष्मण ! जो राक्षसों से भरे हुए इस दण्डकारण्य के उद्धार के लिए मेरे आने पर अयोध्या के सारे राजमुखों को छोड़कर तुरन्त मेरे पीछे चल दी । जिसने अपने माता-पिता को भी समाचार दिये बिना केवल मुझे अपना आराध्य मानकर वन की इस कठिन जिन्दगी को चुन लिया । मेरे भीषण दुःख में जो मेरी सहायिका बनी, जो मेरे बिना एक क्षण को भी जीवित नहीं रह सकती, वह विदेहराज की कन्या अब कहाँ होगी ? मैं क्या करूँ ? **(सिसकते हैं)** मैं कितना असहाय हो गया हूँ लक्ष्मण आज ? **(फफकते हैं ।)**

लक्ष्मण : भइया ! आप इस तरह धीरज खो देंगे तो···

राम : धीरज ? सीता शायद जीवित नहीं रही है लक्ष्मण । वह जीवित नहीं है तो मैं भी जीवित कैसे रहूँगा ? हम दोनों के बिना जब तुम अवध पहुँचोगे तो शायद मँझली माँ के होंठों पर मुस्कान होगी । और जिसका मैं अकेला पुत्र हूँ वह मेरी माँ **(रोते हुए-से)** कैकेयी माँ के चरणों में कितनी विनीत होकर सेवा करने को अपना माथा पटक रही होगी ।

लक्ष्मण : ऐसा कदापि नहीं होगा भइया । हम उन्हें खोज निकालेंगे ।

राम : लक्ष्मण ! सीता ने यह क्या किया ? सीता के वियोग में वनवास की अवधि पूरी करने से पहले ही जब परलोक में पूज्य पिताजी मुझे देखेंगे तो धिक्कार-धिक्कार कर कहेंगे, 'राम ! चौदह साल भी वन में तुम नहीं रह सके ! तुमने तो मेरे सामने प्रतिज्ञा की थी ! फिर बीच में ही वनवास क्यों छोड़ आये ? मैं अवध में नहीं था तो तुम मेरे पास यहाँ चले आये हो ! तुम जैसे स्वेच्छाचारी, मिथ्यावादी को धिक्कार है राम । जा उधर जा, मुझे अपना मुँह न दिखा ।' तब मैं पिताजी से क्या कहूँगा ? प्रिये ! मेरी सीते !

कहाँ हो तुम ? मुझे उत्तर दो न। (**जोर से चिल्लाकर**) सीते ! उत्तर दो मुझे सीते ?

[दोनों भाई वन में बहुत आगे बढ़ गये हैं।]

राम : सीते ! तुम आखिर कहाँ छुपी हो ? उधर उन अशोक की शाखाओं के पीछे छुपी हो ? तुम प्रिये, मुझे ठग रही हो न। ये तुम्हारे मृगछौने देखो मुझे पहचान कर तुम्हारी तरफ ही दौड़-दौड़ जाते हैं न। ऐसा परिहास न करो सीते ! इधर निकल आओ। नहीं, नहीं, देखो न सीते ! मृग-समूह आँखों में आँसू भर कर मेरी तरफ लौट आये हैं। सीता ! इन्होंने तुम्हें शायद वहाँ नहीं पाया। ओह ! इसकी आँखें बता रही हैं कि सीता को राक्षस खा गये हैं शायद।

लक्ष्मण : आप संयत रहिये भइया ! चलिये, आगे चलते हैं।

राम : मैं सोच रहा हूँ लक्ष्मण, कि सीता के साथ अयोध्या से निकला था। अब सीता के बिना अयोध्या लौटूँगा तो अपने कनक भवन में मुझे अकेले कैसा लगेगा ? वह सूनापन जहाँ मेरे साथ सीता नहीं होगी मैं सह लूँगा क्या ? नहीं लक्ष्मण, नहीं। अगर स्वर्ग में भी मुझे सीता के बिना जाना पड़ेगा तो मैं उस स्वर्ग को भी ठोकर मार दूँगा। मुझे इसी वन में सीता के बिना तड़पते छोड़कर तुम अयोध्या चले जाओ लक्ष्मण।

लक्ष्मण : आपको तो भइया, मुझसे भी अधिक धीरजवान होना चाहिए। इतने हताश क्यों होते हैं आप ?

राम : लक्ष्मण ! मान लो मैं अयोध्या बिना सीता के लौट गया तो लोग मुझे कितना पराक्रमहीन समझेंगे ? कायर नहीं कहेंगे लोग मुझे ? ताने नहीं मारेंगे कि मैं अपनी पत्नी की रक्षा भी नहीं कर सका ! और फिर राजा जनक अपनी पुत्री को नहीं पायेंगे तो क्या पागल नहीं हो जावेंगे वह ? जब वह मुझसे पूछेंगे, 'मेरी पुत्री जो मैंने दासियों, ऋषियों, ब्राह्मणों के सामने समारोह के साथ, जीवन-भर साथ निभाने के लिए तुम्हें सौंपी थी, वह कहाँ है ? तो मैं उन्हें उत्तर दूँगा ? (**क्रोध से**) क्या कहूँगा लक्ष्मण उनसे मैं ? बताओ न ! मेरे पास कोई उत्तर होगा उस समय ?

लक्ष्मण : कहा न भइया, वह सुरक्षित होंगी। हम उन्हें पा ही लेंगे।

राम : (**क्रोध से**) पा लेंगे ? कहाँ पा लेंगे ? उसे ले जाकर राक्षसों ने बुरी तरह मार डाला होगा लक्ष्मण ! उसके सुन्दर चन्दन से शरीर को कितना तो विकृत किया होगा उन दुष्टों ने ? (**क्रोध**

से) लक्ष्मण ! सीता कहाँ है ? सीते ! तुम मुझे छोड़कर चली गयी ! न (जोर से) मैं तुम्हें धिक्कारता हूँ सीते ! मुझे यों छोड़कर तुम चली गयी ? तुम आश्रम में ही प्राण नहीं दे सकती थी कितने-कितने कष्टों में तुमने मेरा साथ दिया। लेकिन जब मैं आश्रम में नहीं था तो दो-चार क्षण मेरे लिए तुम रुक नहीं सकती थी ? (धरती पर गिर पड़ते हैं। बिलखने लगते हैं।)

लक्ष्मण : भइया ! भइया ! भइया ! !अपने को सम्हालिये भइया ! (राम की बाँह पकड़ कर उठाते हैं।)

राम : हाँ (अचेतन में) हाँ। हूँ। हूँ।

लक्ष्मण : होश में आइये भइया। भइया ! आप इस तरह अचेत हो जायेंगे तो इस वन में मेरा कौन है ? भइया ! भइया ! !

राम : हाँ-हाँ···अरे लक्ष्मण ! हाँ, सीता कहाँ गयी होगी ? कहाँ ढूँढ़ें उसे हम ? क्या करें अब हम ?

लक्ष्मण : पृथ्वी, आकाश, पाताल में जहाँ भी भाभी होंगी मैं उन्हें अवश्य ढूँढ़ निकालूँगा भइया।

राम : (चिल्लाकर) यह सूर्य क्यों नहीं बताते, (क्रोध में) इन्हें क्या पता नहीं रहता कि इनके प्रकाश में सीता को कौन उठा ले गया ? ये वायु क्यों चुप है ? क्या पृथ्वी के एक-एक कण की खबर इनका नहीं रहती ? ये हमारे आश्रम के पास बहने वाली गोदावरी नदी क्यों नहीं बताती ? यह सोयी हुई थी क्या ? ये आकाश क्या कर रहा था उस समय ? यह क्यों नहीं बताता ? यह धरती क्या जीवनशून्य थी उस समय ? कोई भी क्यों नहीं बताता कि सीता कहाँ है ? (चिल्लाकर) अरे ! कोई तो बताओ कि मेरी सीता है कहाँ ? इतना तो बता दो कि वह जिन्दा भी है कि मर गयी ? जिन्दा हो तभी न तुम उसे ढूँढ़ोगे ?

लक्ष्मण : भइया, वे सब चुप हैं। लेकिन भइया, आप इतने क्रोधित तो कभी नहीं होते थे ?

राम : हाँ-हाँ, मैं क्रोधी हो गया हूँ। मैं क्रोधी भी न होऊँ ? मेरा संसार उजड़ गया मैं तब भी क्रोध न करूँ ? मैं निरा पत्थर हूँ क्या लक्ष्मण ?

लक्ष्मण : भइया ! मेरी आत्मा कहती है कि भाभी जिन्दा हैं, वह निश्चय ही जिन्दा हैं। और मैं उन्हें ढूँढ़ लूँगा।

राम : लक्ष्मण ! तुम्हारा वचन सच हो !

[‘राम···राम···’ की हलकी गुहार सी-आती है]

देखो सामने वहाँ की पहाड़ी पर देखो। कोई जैसे छटपटा रहा है। वहाँ कुछ है। चलो, चलो लक्ष्मण, हम वहाँ चलें। वह सीता तो नहीं है जो मेरे लिए छटपटा रही हो। तुमने सुना जसे कोई मेरा नाम पुकार रहा था। मगर सीता होती तो मुझे आर्य कहकर पुकारती ! यह कौन हो सकता है ?

लक्ष्मण : हाँ भइया ? पेड़ों के पास कोई छाया-सी दिख तो रही है। देखो शायद वही हों।

[राम-लक्ष्मण पहाड़ी के समीप आते हैं।]

जटायु : **(पहाड़ी पर पड़े हुए)** हाय राम ! राम ! कहाँ हो राम ! मेरे राम ! राम ! **(राम-लक्ष्मण को अपने पास आते देखकर काँपते-से स्वर में)** मुझे आपकी ही प्रतीक्षा थी राम। मेरे राम ! आइये, इधर आइये राम।

लक्ष्मण : भइया ! यह तो एक बड़ा सा पक्षी लहू-लुहान पड़ा है इस पहाड़ी पर। बार-बार आपका ही नाम लेता है।

राम : देखूँ। कौन है ? क्यों लहू-लुहान है ? मेरा नाम कैसे जानता है ?

[राम-लक्ष्मण देखते हैं—पंख-कटा जटायु भूमि पर पड़ा है।]

जटायु : राम ! मैं चित्रकूट से दण्डकारण्य की ओर आते समय आपसे मिला था। तब आप अपने लिए आश्रम के लिए स्थान ढूँढ़ रहे थे।

राम : हाँ, याद है। दण्डकारण्य में आप मिले थे। किन्तु आज आप इस अवस्था में क्यों हैं ? पंख कैसे कटे पड़े हैं यहाँ ?

जटायु : राम ! जब रावण मेरे सामने आपकी ब्याहता सीता को ले जाने लगा तो मैंने उसका भरसक विरोध किया। मैं रावण से बहुत लड़ा। लड़ मरने से जो मेरी गति हुई वह आप देख रहे हैं।

राम : क्या कहा। मेरी सीता रावण को ले गया ?

लक्ष्मण : भइया ! यह कैसे हो सकता है ?

जटायु : आह! आह ! **(पीड़ा का स्वर)** रावण ही ले गया है लक्ष्मण। सीता जी को वह अपने रथ पर ले जा रहा था। वह बिलख रही थी। मैंने उसे आकाश में रोका था। ओह ! आह ! वह दुष्ट सीताजी को छोड़ने को तैयार नहीं हुआ···ओह···और खड्ग से मेरे पंखों को काट गया। ओह ! ···बड़ा कायर···आह ! आप सीताजी को छुड़ा लें। वह बहुत दुखी थीं। आपके लिए बहुत रो रही थीं। आह···आह···!

राम : जटायु; आप मेरा प्रणाम लें। आपकी कृपा और महानता के लिए मैं नतमस्तक हूँ। आपने निःस्वार्थ भाव से मेरी मदद की। मैं रावण को इस दुष्कर्म के लिए क्षमा नहीं करूँगा। मैं उससे युद्ध करूँगा जटायु।

जटायु : वह बहुत बलशाली है। उसके पराक्रम को मैं···आह···ओह··· जानता हूँ। आप उससे अकेले नहीं लड़ना। किसी की सहायता लेना। सीता जी को छुड़ा लेना राम। जितनी···शीघ्र···हो सके···

लक्ष्मण : लक्ष्मण ! जटायु ऋषि समान हैं। देखो इनके घावों पर कोई औषधि···

जटायु : नहीं औषधि अब क्या होगी ? प्राण आपके ही लिए रुके थे। लंका जाकर आप···आह। राम ! आह ! राम! आह-ह ! **(निष्प्राण हो जाता है।)**

[जटायु का अन्तिम संस्कार कर राम-लक्ष्मण का जन-स्थान की ओर घोर वन में आगे बढ़ना।]

राम : लक्ष्मण ! भला कर सको तो करो लेकिन भला न कर सको तो बुरा कदापि न करो। अब देखो ! जटायु हमारे क्या होते थे ? लेकिन उन्होंने हमारे लिए अपने प्राण दे दिये।

लक्ष्मण : भइया ! उस महान आत्मा को नमन करता हूँ। आपकी बात मेरा जीवन-दर्शन बने। लंका का रास्ता हमें पता नहीं है। पता नहीं हम किधर जा रहे हैं। अरे ये क्या है ? भाभी की पायजेब ? भइया वो, देखिये यह फूलों का गजरा देखिये ? जनकनन्दिनी का ही तो है न ?

राम : हाँ, लगता है सीता इधर से ही ले जायी गयी है। वह शायद हमारे लिए अपने ये चिह्न छोड़ गयी है।

लक्ष्मण : भइया ! वो देखिये, सामने कोई भयानक राक्षस है शायद। साव-धान हो जाइये। पर्वत की तरह कितना विकराल है यह !

राक्षस : ह ह ह ह ह ! ह ह ह !

राम : अरे, इसका तो केवल धड़ ही धड़ दिखता है। इसका सिर तो दिख ही नहीं रहा है। कितना विशाल है यह ? रास्ता रोके खड़ा है।

राक्षस : ह ह ह ! हा हा हा ! हा हा हा !

लक्ष्मण : भइया ! देखिये तो, धड़ पर ही उसका ललाट और एक आग बरसाती-सी आँख दिख रही है। इन मनहूस का हँसना तो

देखिये जरा।

राम : यह बहुत भयंकर है, लक्ष्मण ! सावधान हो जाओ । हम यों भी मुसीबत के मारे हैं। सीता छीन ली गयी, बुरी तरह राक्षस हमारे पीछे पड़े हैं । पता नहीं क्या होने वाला है । सम्हल कर मेरे पास खड़े हो जाओ।

राक्षस : ह ह ह ! हा हा हा ! हा हा हा ! हा हा हा !

लक्ष्मण : देखिये भइया ! ये देखिये, इसने कितने लम्बे हाथ फैला दिये हैं।

राम : हाँ, हाँ, ये हमारी तरफ आ रहे हैं। लक्ष्मण, पीछे भागो।

राक्षस : हा हा हा ! हा हा हा ! भागोगे ! लो मैंने तुम दोनों को पकड़ लिया। मेरे हाथ बड़े लम्बे हैं। जहाँ तक तुम भागते वहाँ तक अपने हाथ मैं बढ़ा देता।

लक्ष्मण : कौन हो राक्षस तुम ? देखो हमें छोड़ दो। हम वनवासी हैं । ये मेरे बड़े भइया हैं। हम बड़े दुखी हैं। तुम्हारा हम कुछ नहीं बिगाड़ेंगे। हमें छोड़ दो।

राक्षस : हा हा हा ! मैं कबन्ध हूँ। प्रलयकारी राक्षस कबन्ध। भूखा पड़ा था। तुम दोनों मेरा भोजन बन कर आ गये। शेर, भालू, मुनि, मनुष्य यही जब-तब आ जाते हैं और बस मैं भोजन कर लेता हूँ। कितना स्वादिष्ट भोजन मिला है मुझे आज। हा हा हा !

लक्ष्मण : हमारा समय ही खराब चल रहा है। हमारे कंधों पर धनुष है, पीठ पर तूणीर हैं, हाथों में खड्ग है। तब भी इस राक्षस की बाँहों ने हमें बाँध-सा लिया है।

कबन्ध : तुम लोग क्या गुपचुप बातें कर रहे हो ? मेरा भोजन बन कर आये हो तब भी सीधे मेरे मुँह में क्यों नहीं आ जाते। मैं अपनी जीभी और दाढ़ बढ़ाऊँ क्या ?

लक्ष्मण : भइया ! आप किसी तरह निकल भागिये। जगत-जननी सीताजी आपकी प्रतीक्षा कर रही होंगी। आप जाइये । मैं इसका पंजा खोलता हूँ। मुझे इससे लड़ने के लिए छोड़ दीजिये। जल्दी कीजिये भइया ! आप जाइये न ?

राम : तुमको छोड़कर मैं चला जाऊँगा ? यह तुम सोच कैसे रहे हो ? तुमको छोड़ कर सीता को पा जाना तो मेरा उद्देश्य नहीं है। सीता से भी अधिक तुम मुझे प्यारे हो लक्ष्मण। मैं सीता के बिना जी सकनेकी कल्पना तो कर भी सकता हूँ मगर तुम्हारे बिना जीने की तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।

कबन्ध : बातें ही करते रहोगे या मेरे मुँह की ओर भी बढ़ोगे तुम लोग ?

राम : (खड्ग से वार करते हुए) ले, ले, आ रहा हूँ तेरे मुँह की ओर। लो लक्ष्मण! इसकी यह भुजा मैंने काट डाली है, अपने खड्ग से दूसरी भुजा तुम भी काट डालो। जल्दी करो लक्ष्मण।

कबन्ध : ओह! आह! आह! यह क्या हो गया? ये क्या हो रहा है? मेरी बाँह काट दी तूने छोकरे?

लक्ष्मण : ले कबन्ध! मेरा भी प्रणाम ले। और ले, मेरे खड्ग ने तेरी यह दूसरी भुजा भी काट फेंकी है।

कबन्ध : आह! आह! आह! ये क्या हो गया? मेरे दोनों हाथ काट डाले तुमने? तुम कौन हो रे? कौन हो तुम?

लक्ष्मण : ये हैं मेरे बड़े भाई राम। मैं हूँ लक्ष्मण। हम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र हैं। इन दिनों वनवासी हैं हम। शायद तुम्हारी मृत्यु हमारे हाथ होनी है।

कबन्ध : मैं कबन्ध हूँ लक्ष्मण। तुम दोनों भाइयों ने मेरे इतने दीर्घ हाथ काट डाले! मैं देवराज इन्द्र से लड़ चुका हूँ। उन्होंने ही मेरा मुख मेरे उदर में घुसा दिया था। मैं अब तक अविजेय हूँ। तुमने मेरे हाथ काट डाले! और अब है क्या? (**चीखता है**) तुम अवश्य ही महाबली हो राजकुमारो! मुझे इन्द्र के सिवा कोई नहीं जीत सकता? तुम इन्द्र के रूप तो नहीं हो? (**चीत्कार करता है।**)

लक्ष्मण : हम तुम्हें अपना परिचय दे चुके। तुम्हारे पाँव नहीं हैं, सिर भी धड़ में घुसा पड़ा है। किन्तु तुम दानव हो, शायद बता सको कि···

राम : लक्ष्मण! रक्त से सने इस राक्षस के और समीप चलकर पूछें इससे।

कबन्ध : क्या पूछना है पूछो न?

राम : मेरी पत्नी सीता को रावण नाम का राक्षस ले गया है। शायद तुम उसे जानते होगे? हमें बताओ, हम उसके पास तक कैसे जावें? मेरी पत्नी सकुशल तो है न?

कबन्ध : राम! मैं इस समय विवेकहीन हूँ। मैं दीनू का पुत्र कबन्ध हूँ। बड़ा सुन्दर और बलशाली था मैं कभी। ऋषियों-मुनियों को धोखा दिया करता था। एक बार अपने पराक्रम के अभिमान में मैंने स्थूलशिरा नाम के महर्षि को कुपित कर दिया। उन्होंने मुझे शाप दिया कि मैं बदशक्ल हो जाऊँ। तब मैंने ब्रह्मा जी का तप किया। उन्होंने मुझे दीर्घजीवी होने का वरदान दे दिया। इन्द्र ने कहा था, दो धनुर्धारी राजकुमार आकर तुम्हारी भुजाएँ काटकर

तुम्हारा अग्निदाह करेंगे तो तुम अपना असली स्वरूप पा जाओगे। जब आप मेरा दाह-संस्कार करेंगे तब मैं शायद आपको आपकी पत्नी के बारे में बता सकूँगा।

राम : लक्ष्मण ! इसकी इच्छा पूरी करो।

लक्ष्मण : भइया ! अभी करता हूँ। (**दाह-संस्कार करते हैं।**)

कबन्ध : राम-लक्ष्मण ! मैं अपने असली रूप में आ गया। रावण बड़ा बलशाली राक्षस है। उससे तुम्हें लड़ना होगा। उससे लड़ने के लिए तुम्हें मित्र चाहिए। वह मित्र तुम्हें वानर सुग्रीव मिलेगा। वह भी तुम्हारी तरह इस समय दुर्भाग्य का शिकार है। दुर्भाग्य वाला ही दुर्भाग्य वाले की मदद करता है।

लक्ष्मण : सुना भइया ? वानर हमारी मदद करेगा ?

कबन्ध : लक्ष्मण ! बन्दर वह जीव है जो स्वर्ग के मंदराचल से पाताल तक कहीं भी बेरोक-टोक आ-जा सकता है। सुग्रीव राक्षसों के सारे ठिकाने जानता है। वह अपने भाई बाली से पीड़ित है। उसे बाली ने अपने राज्य किष्किन्धा से निकाल बाहर किया है। सुग्रीव इस समय चार-पाँच बली वानरों के साथ ऋष्यमूक पर्वत पर पम्पा सरोवर की ओर गया है। वह आपकी सहायता कर सकता है। उसे आप सहायता दे सकते हैं। आप उसकी सहायता करें न करें, आपका मित्र बन कर वह आपकी सहायता कर सकता है।

राम : लक्ष्मण ! कबन्ध ने जो मार्ग बताया है उसी ओर चलें।

दृश्य तेरह

[वन में मुनि आश्रम]

लक्ष्मण : भइया ! वह देखिये, मुनि-आश्रम, कबन्ध ने बताया था न, कि पश्चिम की ओर हम चलें तो मुनि मतंग का आश्रम मिलेगा, जहाँ तपस्विनी शबरी आश्रमवासिनी बनी हैं इसके आगे ही पम्पा सरोवर और ऋष्यमूक पर्वत पड़ेगा।

शबरी : आइये राम ! आइये लक्ष्मण ! मैं आपकी ही प्रतीक्षा में थी। आप दशरथकुमार हैं न ? अवध से आये हैं न ? आप राम और लक्ष्मण हैं न ?

राम : हाँ माँ ! मैं राम हूँ। और यह लक्ष्मण हैं, मेरे छोटे भाई। आप किस तरह हमारी प्रतीक्षा में हैं माँ ? आपको कैसे पता था कि हम

आने वाले हैं ?

शबरी : मुनि मतंग मुझे अपने आश्रम में निरीह छोड़ गये थे—यह कह कर कि कभी अयोध्या के राम और लक्ष्मण यहाँ आयेंगे । तुम उनकी प्रतीक्षा करना । उन का सत्कार करना । वे आवेंगे तभी तुम स्वर्ग जा सकोगी । वो बड़े ज्ञानी और अन्तरयामी थे राम । मेरी दृष्टि कमजोर हो गयी है । राम और लक्ष्मण ! सुनो । मेरे पास आओ रे ! लो मैंने अपने राम और लक्ष्मण के लिए बीन-बीन कर, चख-चख कर ये बेर टोकरी में रखे हैं । लो राम ! लो लक्ष्मण ! ये बेर खाओ न ? कितने मीठे हैं ये । कितने तो भूखे होगे तुम । खाओ न ?

राम : (**बेर खाते हुए**) लक्ष्मण ! ये बेर तो बड़े मीठे हैं । खाओ न लक्ष्मण !

लक्ष्मण : भइया ! आपको तो सभी बेर मीठे लग रहे हैं । सभी जूठे बेर भी खाये ले रहे हैं आप ?

शबरी : जूठे नहीं हैं बेटे लक्ष्मण ! मैंने मीठे-मीठे बेर ही छाँटने के लिए उन्हें चखा है । अब चलो यह सारा मतंग वन आप दोनों को दिखा दूँ । ये मेरे मुनि मतंग का निवास-स्थान है जहाँ वे गायत्री के मंत्रों का जाप करके स्वर्ग सिधारे थे । वह उनकी पूजा-वेदी है जिसे मैं अपने हाथों से लीपती थी । उपवास करते-करते जब मुनि मतंग चलने-फिरने योग्य भी नहीं रहे थे तो सातों समुद्रों ने उनके स्नान के लिए अपना जल यहीं इसी सप्तसागर तीर्थ में भेज दिया था । वे महान थे । उनके आदेश से ही अब तक मैं आपकी प्रतीक्षा करती रही हूँ । अब मैं भी उन्हीं के लोक में जाना चाहती हूँ ।

राम : अवश्य । तुम अवश्य स्वर्ग जाओ शबरी । भद्रे ! भीलनी ! तुमने मेरा बड़ा सत्कार किया । अब तुम अपनी इच्छा से आनन्दपूर्वक मेरी याचना, मेरा सत्कर्म भी साथ लेकर स्वर्गलोक को जाओ । तुम्हारे कर्म स्वर्गलोक जाने योग्य हैं ।

शबरी : मेरा प्रणाम लें प्रभु ! मैं अब इस अग्नि में अपने को समर्पित करती हूँ ।

लक्ष्मण : भइया ! देखिये, देखिये, यह वृद्ध भीलनी अग्नि में प्रवेश करते ही रूपमती युवा हो गयी है । यह यह तमाम अनमोल आभूषणों से सजी है । इस रूपमते को देखिये तो !

राम : लक्ष्मण ! वह स्वर्ग जा रही है अपने सही रूप को लेकर । यह रूप

उसके अच्छे कर्मों के बदले में ही उसे मिला है। उसने स्वयं को भूलकर दूसरों की आजीवन सेवा की है। उस अमित सेवा का फल लेकर वह जा रही है।

[मतंग वन में चलते हुए राम और लक्ष्मण]

राम : लक्ष्मण ! शबरी भीलनी होकर भी अपने कर्मों के कारण स्वर्ग गई। पुण्यात्मा महर्षियों का आश्रम भी, उनका पूजा-स्थान भी हमने देखा। सप्तसागर में स्नान करके हमने अपने पूर्वजों का तर्पण भी कर लिया है। सौमित्र ! इससे हमारे बुरे ग्रह शांत हो गए हैं। अब ऋष्यमूक पर्वत पर चलें जहाँ सूर्य-पुत्र सुग्रीव अपने साथियों के साथ बाली से भयभीत खड़े हैं। हम उन्हें ही सीता को ढूँढ़ने का भार सौंप दें।

लक्ष्मण : अवश्य भइया ! सुग्रीव को मिलने के लिए ही कबन्ध ने हमसे कहा है। हम उन्हीं की सहायता लें। जनकनन्दिनी को वह अवश्य ढूँढ़ देंगे।

राम इस पम्पा सरोवर में कितने सुन्दर कमल खिले हैं। लगता है सीता, मेरी सीता इन सुन्दर फूलों में मुखरित हुई जा रही है। अपनी सीते के बिना मुझे यह संसार कितना रीता-रीता सा लग रहा है। दिन उगकर काँटों की तरह चुभता रहता है और हर शाम सीता के बिना मुझे ऐसी लगती है जैसे अँधेरा मेरा गला पकड़े हुए है और मेरा दम घुटा जा रहा है। मैं क्या करूँ लक्ष्मण ! सीता के बिना तो लगता है जैसे मैं पागल हो जाऊँगा।

लक्ष्मण : भइया ! इतने उद्विग्न क्यों होते हैं आप। रावण जनकनन्दिनी को पाताल भी ले गया होगा तो मैं उन्हें उस दुष्ट से छीन लाऊँगा। पहले हम पता तो कर लें कि वह उन्हें ले कहाँ गया है। वह देखिये भइया, ऋष्यमूक पर्वत सामने है।

सुग्रीव : हनुमान, नल, नील, जामवन्त ! वो देखो। उधर देखो। पम्पा सरोवर की ओर से ये दो धनुर्धारी युवक कौन इधर आ रहे हैं। मैं तो समझता हूँ कि निश्चय ही इन दोनों को इस वन में हमें सताने के लिए मेरे बड़े भाई बाली ने भेजा है। इन्होंने छल करके वनवासी वस्त्र पहने हैं, ताकि हम उन्हें पहचान न सकें। आप सब सावधान हो जावें। ये दोनों वीर बाली के भेजे हुए हैं।

हनुमान : वानरराज सुग्रीव क्षमा करें तो हनुमान कुछ कहे।

सुग्रीव : अवश्य कहो हनुमान !

हनुमान : ये जो पम्पा सरोवर की ओर से इस पहाड़ी की तरफ दो युवक बढ़

रहे हैं न। मैं वेश बदल कर इनसे मिल लेता हूँ। अगर ये बाली के भेजे हुए होंगे तो इन्हें मैं वहीं पर समाप्त कर दूँगा। क्यों नल ?

नल : हनुमान ठीक कहते हैं, राजन् ! हमें हनुमान पर विश्वास है। इन्हें उनके पास जाने दीजिए।

सुग्रीव : तो हनुमान, तुम शीघ्र जाओ। अगर बाली के भेजे हुए हैं तो उन्हें वहीं समाप्त कर दो और यदि तुम न कर सको तो हमें संकेत कर देना। और बाली के भेजे नहीं हैं तो उन्हें हमारे पास ले आना। हम उनका कोई उपयोग करेंगे।

हनुमान : तो मैं अभी गया। **(जाते हैं।)**

(बदले हुए भेष में) इस भयंकर बन में दो धनुर्धारी आप कौन हैं ? कहाँ से आ रहे हैं ? कहाँ जा रहे हैं ?

राम : हम वनवासी हैं। चित्रकूट से चले थे, यहाँ तक आ गए हैं। आगे ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव वानर-श्रेष्ठ से मिलना चाहते हैं।

हनुमान : सुग्रीव वानर-श्रेष्ठ से ! उनसे किसलिए मिलना चाहते हैं ?

राम : हाँ, बन्धु ! उन्हे हम मित्र बनाना चाहते हैं।

हनुमान : किन्तु उन्हें आप कैसे जानते हैं ? आपको कैसे पता कि वह ऋष्य-मूक पर्वत पर मिलेंगे !

लक्ष्मण : हमने कबन्ध नामक राक्षस को मारा था। उसने हमें बताया था कि सुग्रीव को हम मित्र बनावें। वह हमें ऋष्यमूक पर्वत पर मिलेंगे। हम उन्हीं को खोज रहे हैं।

हनुमान : हाँ, कबन्ध राक्षस था तो, किन्तु मनुष्यों से क्रोध करता था वह। उसने आपको खतरे में डालने के लिए गलत बात तो नहीं बताई।

राम : नहीं साधु ! कबन्ध ने हमें गलत बात नहीं कही। वह राक्षस जीवन से परेशान था। हमने उसे मारा तो वह अपने नारकीय जीवन से मुक्त हुआ है।

हनुमान : राक्षस की बात का क्या भरोसा। कहीं उसने आपका अहित चाहने के विचार से वानरराज सुग्रीव के पास जाने की राय दी हो तो ?

लक्ष्मण : इसमें हमारा क्या अहित हो सकता है। जब राक्षस हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते तो वानर हमारा क्या बिगाड़ेंगे। हम चाहेंगे कि वे हमारे मित्र बनें। सुग्रीव तो वानरराज हैं। उनसे हमें क्या खतरा हो सकता है।

हनुमान : आप सही कहते हैं। किन्तु वीरवर! आप अपना परिचय तो दीजिये। आप लोग कौन हैं। क्यों वनबासी हुए। यदि अपना परिचय पहले देने में हिचकते हों तो मैं पहले अपना परिचय दे देता हूँ।

लक्ष्मण : नहीं, हमें क्या हिचक। पर आप अपना परिचय दे ही रहे हैं तो कहिये आप कौन हैं?

हनुमान : (**असली रूप में आकर**) यह लीजिये मेरा असली रूप, मैं पवन-पुत्र हनुमान हूँ। वानरराज बाली ने अपने छोटे भाई सुग्रीव को गलत तरीके से अपने राज्य से निष्कासित कर जो अन्याय किया है, उसी से दुखी होकर हमने प्रण किया है कि हम बालीराज का विरोध कर उनके अन्याय के विरुद्ध लड़ेंगे। इस समय हम लोग अकेले, दुर्बल-से पड़ गये हैं। हमें भी साथियों की, सहारे की आवश्यकता है। वानरराज सुग्रीव को इस समय ऐसे मित्रों की आवश्यकता है जो आपत्ति के इस समय में उनका साथ दे सकें।

राम : लक्ष्मण! हनुमान वायुपुत्र हैं। वायुपुत्र हैं तो हमारे मित्र ही हैं। हनुमान! मैं अयोध्या के स्वर्गवासी चक्रवर्ती सम्राट दशरथ का पुत्र राम और यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है।

लक्ष्मण : विमाता की इच्छा से वनवासी हुए हैं। ताड़का, मारीच, विराध, खर और दूषण जैसे सहस्रों राक्षसों को मार चुके हैं हम, पर भाग्य ने हमारे साथ धोखा किया है।

राम : पंचवटी के हमारे आश्रम से धोखे से लंका का राजा रावण मेरी पत्नी सीता का हरण कर ले गया है। वह उन्हें लंका ले गया है या और कहीं यही हमें पता लगाना है।

हनुमान : यदि आप वानरराज सुग्रीव से मित्रता कर लेंगे तो इसका पता करने में हम आपकी सहायता अवश्य करेंगे।

राम : तो अन्याय के विरुद्ध लड़ाई में हम भी आपका अवश्य साथ देंगे। हम वानरराज सुग्रीव से मित्रता चाहते हैं।

हनुमान : अवधकुमार! ऋष्यमूक पर्वत पर आप राजा सुग्रीव और हमारे मेहमान हैं। सुग्रीव पम्पा सरोवर के तट पर आपको अकेले घूमते देखकर संशय में थे। आप मेरे साथ उनके पास चलिये और बाली से लड़ने में हमारी मदद कीजिये। हम आपके अधीन रहेंगे।

राम : हनुमान ठीक कहते हैं लक्ष्मण! चलो, पहले हम सुग्रीव से मिलें।

[हनुमान के साथ जाते हैं।]

हनुमान : वानरराज सुग्रीव की जय हो। ये लीजिये वे दोनों धनुर्धारी वीर जो तापस वेश में पम्पा सरोवर के तट से इस पर्वत की ओर आ रहे थे, वे अवध के चक्रवर्ती सम्राट दशरथ के पुत्र हैं—राम और लक्ष्मण। इन्होंने ही खर और दूषण को समस्त सेना सहित समाप्त किया था। इन्होंने ही विराध, कबन्ध और मारीच जैसे भयंकर राक्षसों को मारा है। ये सचमुच अद्वितीय और अनुपम बलशाली हैं। ये दोनों भाई आपसे मित्रता करना चाहते हैं। आप इनका सत्कार करें। ये दोनों ही वीर हम लोगों के लिए परम पूज्य हैं। इनकी पत्नी सीता को इनकी अनुपस्थिति में राक्षस रावण हर ले गया है। इसी से दुखी होकर यह वन-वन उन्हें ढूंढ़ रहे हैं।

सुग्रीव : मैं पहले ही जान रहा था हनुमान! मैं जान रहा था कि ये शायद किसी तरह हमारे सहायक ही होंगे। मैं अवध के दोनों, राजकुमारों का आदर सहित अभिनन्दन करता हूँ और मित्रता का हाथ आगे बढ़ाता हूँ। आप मनुष्य हैं, मैं वानर हूँ। किन्तु सामने जल रही इस अग्नि को साक्षी बनाकर शपथ लेता हूँ कि यदि आप मेरी मित्रता स्वीकार करें तो सुख-दुःख में इतना साथ दूँगा कि मेरे प्राण, मेरा सर्वस्व भी समाप्त होता हो तो होने दूँगा। मुझ पर सदैव आपका अधिकार होगा।

राम : हाथ ही क्यों सुग्रीव, आओ हृदय से हृदय मिला कर गले मिलें। मैं भी इस अग्नि को साक्षी बनाकर मित्रता के लिए बढ़ा हुआ तुम्हारा यह हाथ अपने हाथों में लेता हूँ।

सुग्रीव : हनुमान, नल, नील और जामवंत! आज का दिन कितना शुभ है! जिन दशरथ-नन्दन की वीरता की कथा हमें हनुमान बता रहे हैं वे आज हमारे सामने हैं, हमारे साथ हैं और अब हमारे मित्र हैं। अब मैं दुष्ट बाली को बता दूँगा कि छोटे भाई की पत्नी को छीनने और छोटे भाई को राज्य से निष्कासित कर देने का दण्ड कितना बड़ा होता है। उसे मृत्युदण्ड देकर ही उसके अप-राधों को क्षमा किया जा सकता है।

राम : लक्ष्मण! हमारे लिए भी आज का दिन बहुत शुभ है। वानर-राज! जब एक दुखी व्यक्ति से दूसरा दुखी व्यक्ति मिलता है तो दोनों का दुःख कितना बँट जाता है। मेरी मित्रता पर विश्वास करो सुग्रीव! तुम्हारे भाई बाली ने तुम्हारे साथ अन्याय किया है तो उसे दण्ड अवश्य दिया जाएगा। मेरा जन्म ही अन्याय और

शोषण के विरुद्ध निरन्तर लड़ते रहने के लिए हुआ है शायद। मेरी सीता को रावण अकारण ही हर ले गया है। हम वनवासी भाइयों के साथ यह कितना बड़ा अन्याय किया गया है कि···

सुग्रीव : दशरथ-नन्दन ! कुछ दिन पहले आकाश-मार्ग से एक राक्षस स्वर्ण-रथ पर रोती-बिलखती किसी नारी को पकड़कर ले जा रहा था। निश्चय ही वह आपकी पत्नी रही होंगी। वह 'आर्य राम' ! आर्य राम ! हे लक्ष्मण ! हे लक्ष्मण !' का आर्तनाद करते हुए अपने आभूषण और पुष्प-मालाएँ फेंकती जा रही थीं। हनुमान गुफा में जाकर वे आभूषण उठा लाओ तो, जो उस दिन हमने एकत्र किये थे।

हनुमान : अभी लाता हूँ कपिराज !

राम : लक्ष्मण ! निश्चय ही वे आभूषण सीता के होंगे। निश्चय ही वह रुदन करती परवश नारी और कोई नहीं मेरी सीता ही होगी। आह ! कितना कष्ट सह रही होगी वह उस समय !

हनुमान : प्रभु ! ये लीजिये। इस वस्त्र पर बँधे ये आभूषण उसी रथ से गिरे थे। इन्हें पहचानिए।

राम : देखें, देखें, लक्ष्मण ! देखो तो। अरे, यह तो मेरी सीता का बाजूबंद है। ये···ये तो जनकनन्दिनी सीता की कंठमाल है। ये तो वही फूलों का गजरा है लक्ष्मण, जो सीता ने उस दिन सुबह अपने जूड़े पर बाँधा था जिस दिन वह दुष्ट मायावी राक्षस मारीच हमारी कुटी पर आया था।

लक्ष्मण : हाँ भइया ! ये देखिये, ये पाँवों के बिछुवे भी उन्हीं के हैं। मैंने इन्हें पहचान लिया। नित्य ही उनके चरण छूते समय इन पर मेरी निगाह पड़ा करती थी।

राम : वह अब कहाँ होगी। उस दुष्ट ने उसे जीवित छोड़ा होगा कि नहीं। वह उसे कहाँ ले गया होगा। यह उसने मुझे मेरे किस अपराध का दण्ड दिया वानरराज ! मेरी पत्नी नितान्त भोली थी, गऊ के समान। उसने कभी किसी का कोई बुरा नहीं किया था फिर उसे किस अपराध का दण्ड मिला होगा यह। जाने उसे कितना सताया जा रहा होगा।

सुग्रीव : क्षमा करें अवधकुमार ! वीर पुरुष इस तरह दुखी नहीं हुआ करते। अब हम एक हैं। जनकसुता को, वह जहाँ भी होंगी हम ढूँढ़ निकालेंगे। हम ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि वह उन्हें सकुशल और सुखी रखे।

राम : वानरराज ! हमें लंका की ओर जाकर देखना होगा कि रावण उन्हें लंका ले गया है या और कहीं ।

सुग्रीव : अब यह काम आप हम पर छोड़ दीजिये। वह उन्हें जहाँ भी ले गया होगा हम वहीं उन्हें ढूँढ़ लेंगे, चाहे पृथ्वी की मिट्टी का एक-एक कण, समुद्र-जल की एक-एक बूँद, और आकाश में वायु का एक-एक बुलबुला भी हमें छानना पड़े ।

अंक आठ

दृश्य एक

[ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव, राम और लक्ष्मण, हनुमान, नल और नील तथा अन्य वानर]

सुग्रीव : श्री राम ! आपने मेरे दुःख को अपना दुःख समझा। आपने यह भी तय किया कि अब हम सभी जनकनन्दिनी को ढूँढ़ने निकलेंगे। ईश्वर की मुझ पर कृपा है कि आपने मुझे मित्र माना है। मित्र धनी हो या दरिद्र, सुखी हो या दुखी, निर्दोष हो सदोष—वह मित्र के लिए तो सहायक ही होता है। आप जैसे वीर पुरुष को, जिसने इतने महाबली राक्षसों को समाप्त कर दिया, मित्र रूप में पाकर मैं बहुत कृतकृत्य हो गया हूँ।

राम : वानरराज सुग्रीव ! राम जो कहता है। वही करता भी है। कथनी और करनी में भेद नहीं होता राम की। लेकिन आप कहते हैं कि बाली आपके बड़े भाई हैं फिर आप दोनों के बीच मनमुटाव का कारण क्या है। बाली ने आपको राज्य से निष्कासित क्यों कर दिया ?

सुग्रीव : आर्य शिरोमणि ! मैं निर्दोष हूँ। मेरे बड़े भाई बाली ने मुझे जो वस्त्र अभी पहने हूँ इन्हीं वस्त्रों में घर से निकाल दिया। मुझे युवराज तक नहीं रहने दिया गया। मेरी पत्नी रुक्मी को भी मेरे बड़े भाई ने ले लिया। मेरी पत्नी छटपटाकर, सिर पटक-पटक कर रह गयी किन्तु दुष्ट बाली ने उसे भी मुझसे छीन कर अपने पास रोक लिया।

राम : तब तो निश्चय ही वाली अधम है, सुग्रीव ! जो छोटे भाई की भी भार्या को रख ले वह निश्चय ही अधम है। वानरराज ! मैं ऐसे दुष्ट को दण्ड अवश्य दूँगा। लगता है मेरी तरह ही आप भी पत्नी के हरण से दुखी हैं।

सुग्रीव वीरवर राम ! पत्नी-हरण से, घर से निकाले जाने से, समाज से दूर कर दिये जाने से मैं बहुत दुखी हूँ। मेरा दुःख आप शायद समझ सकते हैं।

राम लेकिन वानरराज ! दो भाइयों के बीच इस झगड़े का कारण क्या था ?

सुग्रीव वीरवर राम ! मैं अपने भाई का उसी तरह आदर करता था जिस तरह लक्ष्मण आपका आदर करते हैं। इतना ही प्रेम भी था हम दोनों भाइयों में। हमारे पिता ऋक्षराज महान प्रतापी थे। उन्हें देवाधिदेव इन्द्र से वाली और सूर्य से मैं पुत्र रूप में प्राप्त हुए थे। वाली को इन्द्र ने अजेय होने के लिए एक स्वर्णमाला भी दी थी जिसे पहन कर उन्हें कोई भी दुश्मन जीत नहीं सकता था। वे बल और युद्ध में अद्वितीय हैं। जब हमारे पिता ऋक्षराज मरे तो मेरे बड़े भाई वाली को राज्याभिषेक हुआ। मुझे युवराज-पद दिया गया।

राम : यह तो ठीक ही हुआ, वानरराज !

सुग्रीव : अवधेश ! वे राजा थे, मैं युवराज था। शासन ठीक चल रहा था। उन्हीं दिनों मेरे बड़े भाई के बल और युद्धशक्ति को चुनौती देता हुआ दुन्दुभि राक्षस किष्किन्धा आ पहुँचा।

राम : कौन था वह दुन्दुभि राक्षस ?

सुग्रीव : अवधकुमार ! दुन्दुभि किष्किन्धा में स्त्रियों का व्यापार करने वाले मायावी नाम के राक्षस का भाई था। यह दोनों किष्किन्धा नाम के राक्षस के बेटे थे। मायावी राक्षस लंका और दक्षिणायन से किष्किन्धा में व्यापार करने आया करता था। बहुत बड़ा व्यापारी था। वह जाति और कर्म से राक्षस था।

राम : ये तो महज व्यापार के लिए आते होंगे न ?

सुग्रीव : मायावी नाम का राक्षस तो महज व्यापार करता था लेकिन उसका भाई दुन्दुभि महाविकराल राक्षस था जो भैंसे के रूप में दक्षिण के समुद्र-तट पर रहा करता था। वह महान बलशाली और खूँखार था। हमारे राज्य का अपार धन वह लंका ले जाता था, इसलिए हमारी उससे दुश्मनी भी थी।

राम : लेकिन कपिराज ! आपके और बाली के झगड़े से इसका क्या सम्बन्ध ?

सुग्रीव : आपने पूछा था न कि बाली मुझसे क्यों नाराज हुए। तो मैं उनके नाराज होने की शुरू से कथा सुनाता हूँ।

राम : हाँ, अवश्य सुनाओ। कारण तो समझूँ।

सुग्रीव : मेरे बड़े भाई बाली पिता की मृत्यु के बाद राजा थे। मैं युवराज था। एक दिन यह राक्षस दुन्दुभि किष्किन्धा में आया और गरजा···

दृश्य दो

[किष्किन्धा में बाली का भवन। बाली सोया हुआ है। रात का समय]

दुन्दुभि : वानरराज बाली ! मैं अपनी बराबरी के किसी बलशाली से लड़ना चाहता हूँ। मैं बहुत जगह हो आया हूँ किन्तु कोई मुझसे लड़ने का साहस नहीं करता। मैं सुमेरु पर्वत से लड़ने गया था, उसने स्वयं हार मानकर मुझे उत्तर दिशा में हिमालय के पास भेजा। हिमालय ने कहा कि वह तो ऋषियों, साधुओं को आश्रय देता है उसमें मुझसे लड़ने की शक्ति कहाँ ? उसी ने कहा कि मैं जाकर किष्किन्धा के राजा बाली से लड़ूँ। सुना तुम बड़े बलवान हो। बहुत वीर बताया है हिमालय ने तुम्हें।

बाली : कौन चिल्ला रहा है यह ? मेरे महल के समीप तक कैसे आ गया यह ? द्वारपाल तुमने इसे पैरों से चाँप नहीं दिया क्या ?

दुन्दुभि : बालीराज ! पर कोठे से रानियों-दासियों को अगल-बगल खड़ी करके तो तुम बातें कर रहे हो ? तुम्हारे द्वार-रक्षकों में दम है कि मुझे रोक लें।

बाली : भैंसे, मुझे पता नहीं तुम कौन हो ? लगता है कोई अभिमानी राक्षस हो। वहीं रहो। मैं अपने रनिवास से बोल रहा हूँ ? युद्ध करना हो तो सुबह आ जाना, अब रात्रि का समय है।

दुन्दुभि : सुना है, बड़े बलवान हो तुम। मुझे समुद्र ने, हिमालय ने यह कह कर भेजा है कि तुम मुझसे लड़ सकते हो। वीर हो तो डरते क्यों हो, मेरा नाम दुन्दुभि है। मैं मय राक्षस का पुत्र हूँ।

बाली : तुम जो भी रण-सूरमा हो, सुबह आना। क्या जरूरी है कि मैं

तुमसे इसी समय लड़ूँ।

दुन्दुभि : समझ रहा हूँ कि तुम पत्नियों से घिरे हो। तुम अपनी रानियों का रात-भर मनोरंजन करो। ठीक है, मैं तुम्हें सुबह तक का समय देता हूँ। सुबह तो मैं तुम्हें समाप्त ही कर दूँगा न। तुम अपनी सारी इच्छाएँ सुबह तक पूरी कर लो। तेरी रानियाँ फिर कल से तुझे कहाँ पावेंगी? वानरराज! तुम इस समय नशे में भी हो। सुबह तक का मैं तुम्हें समय देता हूँ।

बाली : दुन्दुभि! बेचारे। मैं नशे में हूँ अवश्य, मैं अपनी पत्नियों के साथ हूँ अवश्य, लेकिन तेरी ये बातें सुनकर मैं रात-भर तुझ को मार देने का इन्तजार अब नहीं कर सकता। तुम जैसे दुष्ट, अहंकारी को तो मैं अभी मारता हूँ। खड़े रहो, मैं आ रहा हूँ।

[दोनों में मलयुद्ध होता है।]

बाली : **(क्रोध से लड़ते हुए)** राक्षस, तुझे मैं छोड़ूँगा नहीं। ले, ले, और ये ले। ले तुझे मार डालता हूँ। आज तक मलयुद्ध में कोई नहीं जीता मुझसे। हा हा हा! हा हा हा!

[दुन्दुभि जोर से चिंघाड़ता है।]

बाली : मार डाला दुष्ट भैंसे को। यह राक्षस जाने अपने को कितना पराक्रमी समझकर आया था। अब गया परलोक। हा हा हा! सुग्रीव, देखा इसकी लाश को। बेटे अंगद, तुम भी देखो। लो मैं इसे ठोकर मारता हूँ, यह भैंसा बनकर मुझसे लड़ने आया था। लो मैं इसे ठोकर मारता हूँ ले···गया ठोकर से उड़कर आकाश में। जाने कितने योजन दूर जाकर गिरेगा।

दृश्य तीन

[इस दृश्य को छायाचित्र में भी दिखा सकते हैं।]

[मतंग ऋषि का आश्रम। वह संध्या कर रहे हैं। उनके आश्रम पर रक्त के छीटे पड़ते हैं। और आश्रम से थोड़ी दूरी पर दुन्दुभि राक्षस का शव गिरता है। शव गिरता है तो आश्रम के कई वृक्ष धराशायी हो जाते हैं। मतंग ऋषि का ध्यान भंग होता है। वह रक्त के छींटे देखते हैं।]

मतंग ऋषि : शबरी! शबरी! यह देखा तुमने, मेरे आश्रम में लहू के छींटे।

आकाश से ये रक्त की बूंदें कैसे मेरे आश्रम को भ्रष्ट कर गयीं।

शबरी : मुनिश्रेष्ठ ! ऐसा ही कुछ होगा। रहने भी दीजिये। कुछ होगा। क्या करियेगा।

मतंग : शबरी ! यह रक्त के छींटे हैं। अरे ये क्या ? मेरे आश्रम से थोड़ी दूरी पर एक भैंसा मृत पड़ा है।

शबरी : मुनि ! जिसने फेंका है उसे क्षमा कर दे। अज्ञान में ही किसी से यह अपराध हो गया लगता है। वह फेंकने वाला शायद न जानता होगा कि यहाँ आपका आश्रम है।

मतंग : **(क्रोध से)** क्षमा कर दूं ? मेरी कुटी पर रक्त के छींटे ? मेरी कुटी के पास भैंसे का शव ? किसी ने मतग के आश्रम को गन्दा किया है। इस भैंसे को फेंककर मेरे मतंग वन के तमाम वृक्षों, लताओं को तोड़ा गया है। कौन है वह दुष्ट जिसने एक राक्षस के लिए मेरे इतने सुन्दर वृक्षों को तोड़ा है ! **(क्रोध)** वन सुनें, दिशायें सुनें, पर्वत सुनें, वन में रहने वाले प्राणी, पशु-पक्षी सुनें जिसने भी मेरे मतंग वन के पेड़ों को उजाड़ा है, मेरे मतंग वन में यह शव फेंका है, मेरा इस तरह अनादर किया है वह मतंग वन के चारों ओर दो योजन तक के क्षेत्र में जब कभी भी आयेगा, मर जायेगा। मैं यह जल हाथ में लेकर अपनी तपस्या के बल पर यह शाप देता हूँ।

शबरी : ऋषि ! आपने बहुत बड़ा शाप दे दिया।

मतंग : नहीं शबरी ! मैंने अपने तप-बल से देख लिया है कि किष्किन्धा के राजा बाली ने यह कृत्य किया है। मैं मतंग वन में रह रहे सभी वानरों से भी कह रहा हूँ कि उनके राजा ने मतंग वन को अशुद्ध कर दिया है। ये वानर सपरिवार मतंग वन छोड़कर तुरन्त चले जावें। वरना ये सब वानर परिवार भी नष्ट हो जायेंगे। जो भी वानर बाली का पक्षधर होगा, इस मतंग वन में कल सूर्योदय के बाद रहेगा वह नष्ट हो जायेगा।

शबरी : आपकी वाणी सुनकर वानर भाग रहे हैं ! गुरुदेव ! वे सपरिवार भाग रहे हैं।

मतंग : मैं चाहता हूँ कि वे भागें जिनके दुष्ट राजा ने यह भी नहीं सोचा कि इधर ऋषि मतंग रहते हैं उसकी प्रजा को भागने दो। उसे अपने बल का अभिमान हो गया है।

दृश्य चार

[ऋष्यमूक पर्वत]

राम : सुग्रीव ! बाली ने मुनि से क्षमा नहीं माँगी।

सुग्रीव : बाली ने बहुत क्षमा माँगी किन्तु मुनि नहीं माने। इस ऋष्यमूक पर्वत पर मतंग ने वन में इसीलिए वह नहीं जा सकता। इसीलिए मैं अपने मित्रों के साथ यहाँ रहकर जीवित हूँ अन्यथा बाली मुझे जीवित भी नहीं छोड़ता। मुनि मतंग का शाप मेरे लिए वरदान बना हुआ है।

राम : लेकिन सुग्रीव ! राक्षस दुन्दुभि को मार देने और बाली को ऋषि मतंग द्वारा शाप दे दिये जाने से आपकी और बाली की दुश्मनी का कोई कारण मेरी समझ में नहीं आया।

सुग्रीव : वही तो बताने जा रहा हूँ, राजकुमार ! कथा शुरू से बता देने से स्थिति अधिक स्पष्ट हो सकेगी। दुन्दुभि राक्षस की मृत्यु के कुछ दिन बाद, एक दिन शाम के समय स्त्रियों का व्यापार किष्किन्धा में करने वाला मायावी नाम का राक्षस जो नित नयी युवतियाँ बाली को देने के कारण बाली का बड़ा अन्तरंग मित्र था, दुन्दुभि के बदले की भावना से क्रुद्ध होकर राजमहल के मुख्य द्वार पर आकर चिल्लाने लगा।

दृश्य पाँच

[फिर किष्किन्धा में बाली के महल का दृश्य। महल के बाहर खड़ा मायावी]

मायावी : अरे ओ वानरों के राजा बाली ! बड़ा वीर समझता है क्या तू अपने को ? दम-खम हो तो आ, बाहर निकलकर आ। मुझसे निपट ले।

बाली : प्रतिहारी ! फिर कौन दुष्ट आकर द्वार पर चिल्लाने लगा है ?

प्रतिहारी : महाराज, यह राक्षस मायावी है, आपका मित्र।

बाली : **(चिल्लाकर)** मेरा पालतू कुत्ता ही मुझ पर भौंक रहा है ? **(हँसकर)** यह राक्षस मुझे चुनौती देता है युद्ध की ? सुग्रीव, सेवक से कहो मेरी गदा उठा दे। मैं आज, इसी समय इसे सबक सिखा दूँ। इसको किष्किन्धा के राजा को पुकारने की तमीज भी

नहीं रही अब ? हमारे ही टुकड़ों पर पलता है, इस राज्य के व्यापार से जीवत रहता है और ऊपर से इतराता है ?

मायावी : बाली ! डरपोक कहीं के ? आज मैं तेरे लिए लंका या दक्षिणा-पथ से कोई युवती नहीं लाया हूँ बल्कि तेरा बध करने आया हूँ ।

बाली : बौखला रहे हो ? कुछ होश में आकर बातें कर ।

मायावी : मैं अब तेरा मित्र नहीं । तूने मेरे भाई दुन्दुभि का वध कर डाला । बेचारा किष्किन्धा में आकर मुझसे मिल भी नहीं सका था । आ जा, मैदान में क्यों नहीं आता । मैं आज तेरे हाथ-पाँव तोड़ डालूँगा । बड़ा वीर बना घूमता है तू । आ अपना बल दिखाना है तो महल के कोठे से नीचे उतर कर आता क्यों नहीं ?

प्रतिहारी : महाराज, आपकी गदा ।

बाली : लाओ मुझे दो । देख रहा हूँ कि मेरी बिल्ली मुझसे म्याऊँ । मैं देखता हूँ इसे अभी !

सुग्रीव : रहने दें भइया ! आपके गदा पकड़ते ही वह मायावी मुख्य द्वार से बाहर की तरफ भाग गया है । जाने दीजिये उसे अब ।

बाली : मैं उसके पीछे दौड़ूँगा । दौड़ने में संसार में कौन मेरा मुकाबला कर सकता है ! मैं अभी पकड़ कर मारता हूँ उसे ! मेरे घर पर आकर मेरा अपमान करता है ? इसकी इतनी हिम्मत !

सुग्रीव : वह छली, कपटी है भइया ! आप अकेले न जाइये । मैं भी साथ आ रहा हूँ ।

[दोनों भाई भागते हैं । जंगल, पेड़ । भागते जाने का प्रभाव]

बाली : देखा सुग्रीव ! यह दुष्ट मायावी इस सँकरी गुफा में घुस गया है । शायद इस गुफा में और भी राक्षस होंगे ।

सुग्रीव : अब इसे छोड़िये । मैं इस विशाल पत्थर को इस गुफा के द्वार पर डाल देता हूँ । मायावी स्वयं भी बन्द रहकर मरेगा और दूसरे राक्षस यहाँ होंगे तो वे भी मरेंगे ।

बाली : सुग्रीव मैं स्वयं इस गुफा में घुसकर मायावी के और उसके साथी राक्षसों के भी प्राण लेकर ही लौटूँगा । मैं इसे जीवित नहीं छोड़ूँगा । तुम गुफा के द्वार पर मेरी प्रतीक्षा करना । मैं जा रहा हूँ । जय शिव शंकर !

दृश्य छः

[दृश्य बदलता है। किष्किन्धा के महलों का दृश्य]

द्वारपाल : किष्किन्धा के राजेश सुनें। उधर नगर के मुख्य द्वार की ओर से क्रोधयुक्त कपिराज बाली कंधे पर गदा रखे पधार रहे हैं।

सुग्रीव : (**हर्ष से**) मेरे भइया! वे आ रहे हैं? इसके माने वे अभी जीवित हैं। मंत्रीगण, दरबारीगण, चलिये हम चलकर उनकी अगवानी करें।

[समवेत स्वर—चलिये, चलिये। बड़े हर्ष की बात है।]

बाली : (**क्रोध से**) सुग्रीव! तुम मुझे राक्षसों की माँद में डालकर गुफा-द्वार पर शिला रखकर निश्चिन्त राज भोगने चले आये थे। मैं तुम्हें जान से मार डालूंगा।

सुग्रीव : भइया! ऐसा नहीं है। आप जिस गुफा के द्वार पर मुझे छोड़कर गये थे वहाँ मैं आपकी प्रतीक्षा में बहुत समय तक भूखा-प्यासा खड़ा रहा।

बाली : और वहाँ खड़े-खड़े ही तुम्हारा दम घुट गया! तब तुम्हें याद आया कि गुफा के द्वार पर भीमकाय पत्थर रख दो तो बाली बाहर आ ही नहीं सकेगा और फिर किष्किन्धा के राज्य पर तुम्हारा एकछत्र राज होगा। यही न?

सुग्रीव : आप बिल्कुल गलत सोच रहे हैं भइया! मैं दिनों, महीनों भूखा-प्यासा गुफा के द्वार पर खड़ा-खड़ा आपकी प्रतीक्षा करता रहा। जब एक दिन मैंने देखा कि उबलते हुए दूध की तरह गुफा के द्वार पर खून बहता जा रहा है तो डर गया कि कहीं राक्षसों ने आपको मार डाला हो, इसीलिए राक्षस मेरे पीछे किष्किन्धा न आवें, मैं गुफा के द्वार पर भारी शिला डाल आया था।

बाली : और आकर तुमने झटपट किष्किन्धा का राजसिंहासन ले लिया?

सुग्रीव : नहीं भइया! जब मैं किष्किन्धा आपके बिना लौटा तो मंत्रियों, सभासदों ने मेरे मना करने पर भी मुझे राजसिंहासन दे दिया। यह अब भी आपका है। आप उस पर सदा विराजें। इस पर मेरा नहीं आपका अधिकार है।

बाली : अब मुझे बहकाओ नहीं। मैं तेरी नियम समझ गया हूँ सुग्रीव! इधर मैं बहुत समय तक गुफा में मायावी को ढूंढ़ता-ढूंढ़ता थक गया। बहुत समय बाद मुझे वह अपने बंधु-बांधवों सहित मिला।

मैंने उन सबको उनकी छातियाँ उधेड़-उधेड़कर मार डाला। उन्हीं सबका रक्त बहता हुआ गुफा के द्वार तक आया होगा। फिर मैं जब गुफा के द्वार पर लौटा तो देखा गुफा बंद थी। मेरी साँस घुटने लगी। लात मारकर किसी तरह उस शिला को हटाकर मैं आज किष्किन्धा आ सका हूँ। तुम मेरी प्रतीक्षा नहीं कर सकते थे! इतना पुरुषत्वहीन समझा था तूने मुझे कि राक्षस मुझे मार डालते!

सुग्रीव : भइया! आप आ गये हैं। लीजिये राज्य आपका, राजसिंहासन आपका। मैं आपके चरणों का सेवक-भर हूँ।

बाली : सेवक! (**क्रोध की हँसी हँसकर**) मेरे चरणों का सेवक? मेरे जीवित रहते मेरा राजसिंहासन और ले भी कौन सकता है? सुग्रीव, तूने मुझे धोखा दिया। मैं तुझे आज जान से मार डालूँगा। (**बढ़कर लात मारता है।**)

सुग्रीव : भइया! लात न मारिये। मुझे इस तरह लात न मारिये।

बाली : तूने मेरे साथ विश्वासघात किया। सुग्रीव! तू बच नहीं पावेगा। (**सुग्रीव भागता है**) भाग गया तू। देखो यह अधम भाग रहा है। कायर जान बचाकर भाग गया।

[मंच पर अँधेरा होता है। फिर धीरे-धीरे प्रकाश। बाली अपने कक्ष में सुरा पीता हुआ।]

बाली : कहाँ है सुग्रीव की पत्नी? द्वारपाल, मैंने कहा था उसे तुरन्त मेरे पास लाया जाय। अभी तक क्यों नहीं लाया गया उसे?

द्वारपाल : सेवक गये थे महाराज! युवरानी हाथ जोड़कर क्षमा माँगती हैं। वह युवराज के राज्य से निष्कासित कर दिये जाने से बहुत ही दुखी हैं। यह निवेदन कर रही हैं कि आप मेरे आदरणीय हैं। परिवार की मर्यादा का ध्यान रखकर अपना आदेश···

बाली : परिवार की मर्यादा? आदरणीय? सुग्रीव से अब मेरा क्या रिश्ता रह गया है? वह मेरा दुश्मन है और उसकी पत्नी से वही व्यवहार किया जावेगा जो दुश्मन की पत्नी के साथ करना चाहिए। अब वह युवरानी नहीं मेरी सम्पत्ति है। मैं जैसा चाहूँगा उससे व्यवहार करूँगा। जाओ उससे कहो कि किष्किन्धा का राजा बाली उसे तुरन्त अपनी बाँहों में लेना चाहता है। वह न स्वीकार करे तो उसे मृत्युदण्ड दे दिया जाये।

दृश्य सात

[दृश्य बदलता है। ऋष्यमूक पर्वत पर राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, जामवन्त आदि]

सुग्रीव : आर्य राम ! अब आप ही बताइये कि मेरा क्या दोष था ?

राम : सुग्रीव ! आपका कोई दोष नहीं है। बाली ने राजा होकर भी विवेकहीन कार्य किया। तुम्हारी पत्नी का उसने अपमान ही नहीं किया उसके सतीत्व को भी नष्ट करने का अपराध किया है। मैं उसे मृत्युदण्ड दूँगा।

लक्ष्मण : भइया ! ऐसे निरकुश अपराधी के लिए मृत्युदण्ड ही वास्तविक दण्ड है।

सुग्रीव : लेकिन आर्य ! उसके बल की कोई सीमा नहीं है। दुन्दुभि और मायावी जैसे विशाल बलशाली राक्षसों को मारने की बात मैंने आपको बतायी। मैं तो कल्पना भी नहीं कर सकता कि कोई उसे मार सकता है।

लक्ष्मण : सुग्रीव ! भइया क्या कर दें कि तुम्हें विश्वास हो जाये कि वह बाली को मार सकते हैं ?

सुग्रीव : मैं कोई परीक्षा लेने की बात नहीं कहता। अब एक छोटा-सा उदाहरण देता हूँ। ये जो ताड़ के सात विशालकाय वृक्ष हैं, इन्हें बाली मुट्ठी में बाँधकर मरोड़ने की मुद्रा में कर लेता था।

राम : (**हँसकर**) तो मैं एक तीर से इन सातों वृक्षों को धराशायी कर देता हूँ। (**तीर चलाकर सातों वृक्षों को धराशायी कर देते हैं।**)

सुग्रीव : आश्चर्य है यह देखकर ! यों आप पर अविश्वास करने का मेरा आशय नहीं है। पर बाली के बल के बारे में बता देना भी आवश्यक है। रावण के बल और घमंड की बात तो आप भी जानते होंगे। वह एक बार तमाम देवताओं, राजाओं, ऋषियों से युद्ध करता, अपने बल को श्रेष्ठ सिद्ध करता हुआ किष्किन्धा आ पहुँचा और बाली को ललकारने लगा।

लक्ष्मण : अच्छा, रावण ने भी बाली को ललकारा था।

सुग्रीव : जी हाँ। बाली सूर्योदय के पूर्व तीनों समुद्रों के तट पर जाकर पूजा कर लेता था। मैंने रावण से कहा कि वह पूजा-ध्यान के लिए गये हैं। किन्तु रावण तो घमण्ड में भरा था। वह पश्चिमी समुद्र-तट पर जाकर ही बाली पर झपट पड़ा।

लक्ष्मण : तब क्या हुआ सुग्रीवराज ?

सुग्रीव : लक्ष्मण ! बाली ने बड़े धैर्य से रावण को बगल में दाब लिया और उसे बगल में दाबे-दाबे पूरब व दक्षिण के समुद्र-तट पर पूजा कर जब किष्किन्धा लौट रहा था तो रावण ने चिचिया-चिचिया कर बाली से क्षमा माँगी और उस से मित्रता कर ली। तब से दोनों में प्रगाढ़ मैत्री है और दोनों ने हर सुख-दुःख में साथ रहने, मित्रता निभाने की प्रतिज्ञा कर रखी है।

लक्ष्मण : इतना बलशाली है वह, भइया ! यह रावण का मित्र है तो इसे यों भी रास्ते से हटा देना पड़ेगा।

राम : सुग्रीव ! तुम किष्किन्धा चलो। बाली को ललकारकर उससे युद्ध करो। मैं उसी समय तीर मारकर उसे समाप्त कर दूँगा।

[ऋष्यमूक पर्वत पर हनुमान, राम, लक्ष्मण आते हैं। सुग्रीव वानरों सहित बैठे हैं।]

राम : सुग्रीव ! तुम फिर ऋष्यमूक पर्वत पर आ गये। हम पीछे-पीछे किष्किन्धा में ढूँढ़ते हुए यहाँ पहुँचे हैं।

सुग्रीव : (क्रुद्ध होकर) बड़ा उपकार है आपका। हाँ, मैं तो पहले ही कह रहा था कि बाली को मार सकना कोई बच्चों का खेल नहीं है। उसने मेरी हड्डी-पसली तोड़कर रख दीं। दर्द से सारा बदन दुख रहा है।

राम : सुग्रीव ! तुमने मुझे वास्तव में गलत समझा है। जब तुम और बाली लड़ रहे थे तो शक्ल से, कद से, चाल-ढाल से, कान्ति से, दृष्टि से, पराक्रम से, बिल्कुल एक-से लगते थे। इसलिए वानर-श्रेष्ठ ! इसमें मेरी तनिक भी गलती नहीं थी। मेरे तरकश का हर एक बाण प्राणलेवा होता था। यदि कोई तीर धोखे में कहीं बाली की जगह आपके प्राण ले लेता तो ?

सुग्रीव : सीधे-सीधे क्यों नहीं कहते कि बाली को मार सकना आपके वश की बात नहीं है।

राम : लक्ष्मण ! वो देखो, वहाँ गजचम्पा की फूलती बेल फैली थी। उसे उखाड़कर उसकी माला बनाकर सुग्रीव के गले में डाल दो ताकि जब सुग्रीव बाली से लड़ें तो मैं इन्हें पहचान सकूँ।

लक्ष्मण : ठीक है भइया। (**जाकर बेल उखाड़कर माला बनाकर सुग्रीव के पास आकर**) लीजिए, गजचम्पा की बेल मैं जयमाला की तरह सुग्रीव को पहना देता हूँ।

राम : सुग्रीव ! एक बार फिर मुझ पर विश्वास करो और अब उसी जगह जाकर बाली को ललकारो, उससे फिर लड़ो।

सुग्रीव : इस बार तो राम ! मैं किसी तरह प्राण बचाकर भाग आया था। अबकी बार फिर जाऊँ तो कहीं ये बचे हुए प्राण बाली ले ही न ले। अब वह पहले से भी अधिक क्रुद्ध होगा।

राम : एक मित्र को दूसरे मित्र का विश्वास तो करना ही चाहिये, वानरराज !

सुग्रीव : लेकिन राम ! मित्र का विश्वास करके ही तो मैं गया था।

राम : भूल तो हर मनुष्य से होती है मित्र। मनुष्य भूल न करे तो वह भगवन ही कहलाने लगे ? (मुस्कराते हैं।)

सुग्रीव : ठीक है, फिर जाता हूँ। बाकी आप जानें।

दृश्य आठ

[दृश्य बदलता है। किष्किन्धा में नगर के बाहर सुग्रीव वानरों के साथ पहुँचते हैं।]

[सुग्रीव का किष्किन्धा में पूर्व स्थान पर जाना। वहीं वृक्षों की ओट में राम-लक्ष्मण खड़े हो जाते हैं। सुग्रीव महल की तरफ मुँह करके ललकारता है।]

सुग्रीव : अरे बाली ! तू क्या समझा था कि मैं भाग गया हूँ। मदान्ध ! तू फिर रंगमहल में छुप गया !

बाली : (रंगमहल से नीचे झाँककर) कायर ! तू फिर आ गया ? आज तू मेरे हाथ से नहीं बचेगा। रोज-रोज का झगड़ा आज ही खत्म कर दूँगा मैं।

सुग्रीव : आ नीचे आकर बात कर। देखता हूँ कितना बल है तुझमें ?

बाली : बकवास बन्द कर सुग्रीव !

सुग्रीव : तुझसे डरता नहीं हूँ। बड़ा बलवान बना फिरता है। दुन्दुभि को मार दिया, मायावी को मार दिया, रावण को काँख में दाब लिया तो समझता है तुझसे बड़ा कोई बलवान ही नहीं है ? आ इधर, मेरी मार झेल। टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा बाली मैं तुझे। तूने मुझे भगाया था अपने राज्य से ? तूने मेरी पत्नी का सतीत्व समाप्त कर डाला ! मैं बदला लूँगा। मैं बदला लूँगा।

बाली : बढ़-बढ़ कर बोलता है अधम तू। (दोनों लड़ने लगते हैं मल्लयुद्ध)

[पेड़ों के पीछे से बाली को तीर लगता है। वह धराशायी हो जाता है। तीर लगने की ध्वनि]

बाली : अरे मार डाला। ओह, ओह ये तीर किसने मारा ? मेरे कलेजे में यह तीर किसने मार दिया ? ये मेरा कौन दुश्मन है जिसने यह तीर मारा है, वह मेरे सामने क्यों नहीं आता ? मैंने उसका क्या बिगाड़ा था कि छुपकर तीर मार दिया ? वह मेरे सामने आकर क्यों नहीं लड़ा ?

सुग्रीव : (**हँसकर, ठठाकर**)हा हा हा ! ओ हा हा हा, हा हा हा ! बाली अपनी करनी का फल मिल गया न तुझे ! हा हा !

बाली : (**क्रोध में चीखकर**) सुग्रीव। धरती पर गिर अवश्य पड़ा हूँ किन्तु तुम जैसे झींगुर के प्राण अब भी ले सकता हूँ। तू अपने को बड़ा जयी मत समझ।(**गरजकर**) वह कौन है ? जिसने धोखे से बाली को तीर मारा है ? छुपकर तीर मारने वाला सामने क्यों नहीं आता ? मैं उसे धिक्कारता हूँ कि उसने सामने लड़ाई न करके चोरी से तीर क्यों मारा ?

राम : (**बाली के सामने आकर**) वीरवर बाली ! अयोध्या के राजकुमार राम का प्रणाम लें।

बाली : अयोध्या के राजकुमार राम ? (**आहत स्वर में**) राम ! राक्षसों को पराजित करने वाले राम ! मैंने तुम्हारे बारे में सुना था। पहले अपना यह विष बुझा बाण बाहर निकालो। बड़ा कष्ट दे रहा है। ओह, ओह ! मैं तुमसे मृत्यु से पहले कुछ बातें करना चाहता हूँ।

राम : लक्ष्मण ! सुनो। तीर बहुत भयंकर है। उसे वाली के शरीर से बाहर खींच लो।

लक्ष्मण : अच्छा भइया ! (**तीर खींचकर धरती पर फेंक देते हैं।**)

बाली : (**तीर निकालने में पीड़ा से छटपटाता है**) राम ! मैंने तो सुना था तुम बड़े शालीन और गम्भीर हो। (**दर्द से कराहते हुए**) आह, ओह, आह ! मैंने तो सुना था राम ! तुम नीति श्री भी हो। फिर मुझसे तुम्हारी क्या दुश्मनी थी ? मुझे क्यों मारा ?

राम : तुमने निर्दोष सुग्रीव की बात सुने बिना उसके प्राण ले लेने चाहे। उसे राज्य से भगा दिया था। यही नहीं, उससे भी बढ़कर तुमने छोटे भाई की पत्नी का सतीत्व नष्ट कर जघन्य अपराध किया था। ऐसे मदान्ध को जो दण्ड मिलना चाहिये था, वही दण्ड मैंने दिया।

बाली : चोरी से, धोखे से तीर मार दिया तो राम, तुम अपने को बाली को दण्ड देने वाला समझने लगे हो ! महाराजा दशरथ तो बड़े

कुलीन, धर्मज्ञ और नीतिज्ञ राजा थे। उनमें संयम था, दया थी, क्षमाशक्ति थी, धैर्य था, सत्यता थी और पराक्रम था। लेकिन तुममें उनका पुत्र होने पर भी इनमें से एक भी गुण नहीं है। मैं अपने दुश्मन से भिड़ा हुआ हूँ और तुम मुझसे कोई दुश्मनी न होते हुए भी छुपकर तीर मार रहे हो, यही धर्म है? मैंने क्या बिगाड़ा था तुम्हारा? मुझसे क्या दुश्मनी थी तुम्हारी?

राम : मैं देवताओं, ऋषियों और धर्म का ही काम कर रहा हूँ। धर्म की ध्वजा को सुरक्षित रखने के लिए ही मैं साधु बना वन-वन घूम रहा हूँ।

बाली : आप धर्मध्वजी हैं? (**हँसते हुए**) लोगों को छलने के लिए आपने धर्म की आड़ लेकर साधु वेश बना लिया है। लेकिन धर्मध्वजी! मैंने तो आपके नगर में घुसकर कोई अपराध नहीं किया था! मैंने तो आप पर कोई अत्याचार नहीं किया था! फिर आपको मुझे मारने का क्या अधिकार था? किस धर्म के नाते यह अधिकार मिला आपको?

राम : वानर बाली! धर्म के स्वरूप को समझे बिना तुम वानरोचित चपलतावश मुझे उपदेश देने और मुझ पर आक्षेप करने की कोशिश कर रहे हो। वानर बाली! यह सारी पृथ्वी इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की है। अतः वही इस पृथ्वी के पशुओं, पक्षियों पर दया करने या उन्हें दण्ड देने के अधिकारी हैं।

बाली : आप मनुष्य हैं, मैं वानर हूँ। आप सभ्य और सुसंस्कृत हैं, मैं वनवासी, आदिवासी। आपसे मेरा झगड़ा भी क्या हो सकता था? पृथ्वी, सोना और स्त्री—ये तीन ही परस्पर झगड़े के कारण हो सकते हैं। आपके और मेरे बीच इनमें से भी कोई कारण नहीं था। फिर मुझे आपने क्यों मारा? आप शठ हैं। अपवादी हैं। क्षुद्र हैं और झूठमूठ शान्तचित्त बनने का ढोंग करते हैं। मुझे खेद है कि आप सामने आकर मुझसे नहीं लड़े। लड़े होते तो मैं आपकी शक्ति देखता!

लक्ष्मण : अगर भइया सामने आकर लड़े होते तो क्या वानर तुम समझते हो कि तुम बच जाते? बड़ा वीर समझते हो अपने आपको! राम को भी हरा देते क्या तुम?

बाली : बड़ा बोल नहीं बोलता लक्ष्मण! किन्तु राम मुझसे सामने आकर लड़ते तो इस समय निश्चय ही सूर्यपुत्र यमदेवता का दर्शन कर रहे होते।

लक्ष्मण : इतनी बड़ी बात कहकर मरते समय अपने अहंकार को उजागर मत करो बाली !

राम : और फिर बाली, सुग्रीव मेरा मित्र है, उसने मेरी पत्नी सीता को ढूंढ़ लाने का वचन दिया है ।

बाली : (**हँसता है, हँसता ही रहता है**) हा हा हा ! हा हा हा हा हा हा !

राम : (**आश्चर्य भाव से**) वानरराज ! इस तरह हँसते क्यों हो ?

बाली : जिस उद्देश्य के लिए आपने सुग्रीव को मित्र बनाया है और मेरा बध किया है, उस उद्देश्य को पूरा करना क्या सुग्रीव के वश का है ? नहीं है। इस काम के लिए तो मुझे मित्र बनाना अधिक लाभकारी होता राम। मैं मिथिलेश कुमारी को ढूँढ़कर एक ही दिन में आपके पास ले आता। आपकी पत्नी का अपहरण करने वाले राक्षसराज रावण को मैं युद्ध किये बिना गले में रस्सी बाँध कर आपके पैरों पर पटक देता। कौन नहीं जानता कि उस रावण को मैंने छः माह तक अपनी काँख में दाबे रखा था। मुझे अपने मरने का दुःख नहीं है। मुझे सुग्रीव के फिर से किष्किन्धा का राजा हो जाने का भी दुःख नहीं है। दुःख केवल इस बात का है कि दशरथ के पुत्र ने मुझसे अपने हित में मित्रता करने के बजाय मुझे धोखे से मारने की कोशिश की है। मुझे आपकी समझ पर हँसी आ रही है राम !

राम : मैंने कहा न, पृथ्वी का राज्य इक्ष्वाकु वंश के राजा के हाथ में है। महाराज भरत इस समय समस्त पृथ्वी के राजा हैं। वे धर्म की रक्षा के लिए ही संकल्पबद्ध हैं। और धर्म के प्रतिकूल काम करने वाले को हम महाराजा भरत की ओर से दण्डित करने के लिए अधिकृत हैं। आपने धर्म के विरुद्ध आचरण किया तो मैंने दण्ड दिया। दण्ड देने के लिए मेरा आपसे युद्ध करना क्या आवश्यक था ? सुग्रीव को मैंने मित्र मान लिया है। मैंने तमाम वानरों के सामने उन्हें उनकी स्त्री और राज्य वापस दिलाने का वचन दिया है। अब तुम तो क्या रावण स्वयं भी कहे कि मैं तुम्हारा मित्र हूँ, तुम सुग्रीव की मित्रता छोड़ दो, तो भी नहीं छोड़ पाऊँगा। वचन की मर्यादा के लिए ही मेरे पिता स्वर्गवासी हुए हैं। वह परम्परा मैं भी निभाऊँगा। वचन की मर्यादा निजी स्वार्थ से बहुत ऊपर होती है बाली !

[मंच पर प्रकाश मध्यम होकर फिर तेज होता है।]

[बाली अचेत होकर निश्चेष्ट हो जाता है। बाली के सहयोगी बन्दर राजमहल की ओर भागते हैं। बाली को फिर होश आता है।]

बाली : श्री राम ! आपने मुझे मार डाला। मेरे पिता इन्द्र द्वारा दी गई यह विजयमाला जब तक मेरे गले में रहती है मेरा प्राण कोई ले नहीं सकता। इसके अतिरिक्त भी यह विजयमाला जब मेरे गले में रहेगी तो अपने दुश्मन की आधी शक्ति मैं बिना लड़े ही क्षीण कर सकता हूँ। आपकी शक्ति क्षीण नहीं कर सका किन्तु माला के गले में रहते मेरे प्राण शेष हैं।

राम : वानर शिरोमणि ! मैं जानता हूँ कि आप वानरों के शिरोमणि अपनी शक्ति के कारण हैं। किन्तु आपसे मिलने के पहले मैं सुग्रीव को मित्र मान चुका हूँ। अब अन्तिम इच्छा के रूप में आप जो कहें मैं कर सकूँगा।

बाली : सुग्रीव आपके मित्र हैं, राम ! ठीक है। आप चाहेंगे कि सुग्रीव अब मेरे बाद किष्किन्धा के राजा हों। ऐसा वचन आपने उन्हें दिया भी है। लेकिन राम ! **(आँसू बहाते हुए)** सुग्रीव राजनीति में मेरे पुत्र अंगद को अपना द्रोही मानकर कहीं मार न डाले। उसकी रक्षा का उत्तरदायित्व मैं आप पर छोड़ता हूँ।

राम : नहीं बाली, तुम निश्चिन्त रहो। सुग्रीव को राज्य पर प्रतिष्ठित करने की प्रतिज्ञा मैंने की, लेकिन तुम्हें मैं वचन देता हूँ कि अंगद को मैं किष्किन्धा का युवराज पद दिलाऊँगा।

बाली : **(थके स्वर में)** बस ! चैन से सो जाने का मन हो रहा है अब। मेरा तो बस अब इतना कहना है कि मेरा अंगद इकलौता है। मेरा अपना सारा प्यार, सारा ममत्व मैंने उसे दिया है। अब मैं उसे आपको सौंप रहा हूँ। उसे कोई नुकसान न हो। उसे आप अपना ही पुत्र मानें।

राम : यह भी कोई कहने की बात है बाली ! वह देखो उधर, शायद तुम्हारी पत्नी और पुत्र इस ओर आ रहे हैं।

बाली : उन्हें आने दीजिये। मेरी तारा ने मना किया था कि आज मैं युद्ध न करूँ। उसे सन्देह था कि सुग्रीव बार-बार जो मुझे ललकार रहा है। उसके पीछे गुप्तचरों की सूचना के अनुसार अवध का कोई वह कुमार है जिसने तमाम बली राक्षसों को उनकी सेना सहित अकेले संहारा है। किन्तु तारा की बात टालकर मैंने क्रोध में सुग्रीव से युद्ध करने की ठान ली थी। तारा आकर मुझे

धिक्कारेगी। मैं सुनूँगा। मैं तारा का आलिंगन करके ही यह माला गले से उतारूँगा। जीवन जाने से पहले मैं उस बेचारी के मस्तक पर अपने स्नेह का हाथ फेरूँगा और अपने बेटे अंगद को अपनी छाती से लगाकर किसी भी भयंकर युद्ध में अविजित रहने का आशीर्वाद दूँगा।

राम : बाली ! वानरों के राजा होकर भी तुम ऋषि की तरह हो। मायावी राक्षस ने दक्षिणापथ से औरतें लाकर जो व्यापार तुम्हारे आश्रय में यहाँ चलाया था उसके लिए तुम दोषी ठहरते नहीं। राजा की तरह तुमने सुख भोगा। ठीक किया। कुछ राजाओं ने ऐसे गुण भी पाल लिए थे, इसलिए तुमने भी ऐसा किया तो क्षमा के पात्र हो। अच्छा हो कि तारा के तुम्हारे पास आने से पहले ही तुम इन्द्र द्वारा दी गई यह माला उतार फेंको, क्योंकि तारा के मोह जगाने पर फिर तुम जीना चाहोगे। नियत समय से अधिक जीना वीरों के लिए शोभनीय नहीं है।

बाली : दशरथ कुमार ! आह ! आह ! ये···ये···ये···लो (**माला उतारकर फेंक देता है**) आह···आह···।

[दृश्य वही—पर मंच पर प्रकाश का मद्धम होना और फिर उभरना।]

[तारा का अंगद के साथ अन्य स्त्रियों, वानरों के साथ रोते हुए आना]

तारा : (**रोते हुए निर्जीव बाली को देखकर**) हाय रे, ईश्वर ! ये क्या हो गया ? ईश्वर ने यह कैसा अन्याय किया है ? (**रोती है**) मेरे पति जैसे वीर और पराक्रमी योद्धा को एक तपसी ने छुपकर तीर से बींध डाला। (**रोकर**) हे विधाता ! यह तेरा क्या खेल है ? (**बाली के शरीर के समीप आकर**) बेटे अंगद ! इनका सिर मेरी गोद में रक्खो। ये देखो, इनकी आँखें कितनी शान्त हैं ! इनका चेहरा कितना निर्विकार हो गया है ! अंगद, ये बोलते क्यों नहीं ! इनसे कहो मैं आ गई ! तारा के बिना एक क्षण को भी जिन्दा न रह सकने वाले वानरराज आज इतने शान्त क्यों हैं ? (**रोती है।**)

अंगद : रो नहीं माँ ! आँसू पोंछ लो। पिताजी को देख रही हो। ये कितने शान्त हैं। इनके चेहरे को देखो माँ ! चिर निद्रा में हैं। जिन्दगी में हर क्षण जुझारू रहने वाले बाली का चेहरा क्या कभी इतना शान्त देखा था तुमने ? माँ ! पिताजी को हम श्रद्धा से प्रणाम करें। इनके अनगिनत उपकारों के लिए हम किष्किन्धा

की प्रजा की ओर से विनत होकर प्रणाम कर।

तारा : (**रोते हुए**) मैं रंगमहल से देख रही थी कि वानर झुण्ड के झुण्ड भाग रहे हैं। यूथपति भी भाग रहे हैं। अंगद, बेटे! दूसरी बार जब सुग्रीव ने तेरे पिता को ललकारा तो मैं समझ गई थी कि कोई जबरदस्त आड़ लेकर सुग्रीव आये हैं। मैंने अपने स्वामी के पाँव पकड़कर युद्ध करने से रोका था। तुम जानते हो, अपनी हठ के आगे वह किसी के सामने झुकते ही नहीं थे।

अंगद : उन्होंने ठीक ही किया था। पिताजी कभी किसी से हारे नहीं थे। आज भी वह हारे नहीं हैं। मारे गये हैं। उन्हें एक तपस्वी ने पेड़ों के पीछे छिपकर धोखे से मारा है।

तारा : (**काँपते स्वर में**) हाँ, उन्हें धोखे से मारा गया बेटे।

अंगद : ये हनुमान सामने बैठे तो हैं। क्यों, धोखे से पिताजी को मरवाकर कौन-सी वीरता दिखाई आप लोगों ने!

हनुमान : महारानी को प्रणाम! मैं सारे काण्ड के समय साथ था। अवधकुमार राम ने सुग्रीव को मित्र बनाकर बाली से लड़ने भेजा था। राजा बाली और सुग्रीव लड़े थे। अवधकुमार ने तीर मारकर वानरराज बाली को घायल कर दिया था। यह अवधकुमार राम की प्रतिज्ञा थी।

तारा : (**चिल्लाकर**) यह अवधकुमार कौन है। दो भाइयों के झगड़े में इनको बीच में आने की आवश्यकता क्या थी?

हनुमान : महारानी! अवधकुमार सामने हैं। वह आपको शान्त कराना चाहते हैं।

तारा : मुझे विधवा बनाकर, मेरे बच्चे को अनाथ बनाकर वह मुझे शान्त कराना चाहते हैं? मेरी माँग में आग लगाकर वह मुझे चुप कराना चाहते हैं? हमने अवध के राजा का क्या बिगाड़ा था? हमने उनका क्या अपराध किया था? उन्होंने हमारा संसार ही उजाड़ दिया! उन्होंने मुझे किष्किन्धा की महारानी से दासी बना दिया! मेरे बच्चे को सुग्रीव और हनुमान का दास बना दिया! मैं चुप रहूँ? चुप तो हूँ ही, और मैं कर भी क्या सकती हूँ?

राम : महारानी! बाली महान योद्धा थे। मैं उनका सम्मान करता हूँ। किन्तु अनीति कोई भी करे उसे दण्ड मिलना ही चाहिए। मुझे आप क्षमा करें। आपके दुःख में मैं भी दुखी हूँ।

तारा : तुम भी दुखी हो (**रोते हुए चिल्लाकर**) मुझे भी क्यों नहीं मार देते तुम? मेरी भी हत्या करके मेरा दुःख समाप्त क्यों नहीं कर

देते ? मेरे पति अनीति कर रहे थे, नीति का काम, धर्म का काम तो तुमने किया है धोखे से मेरे पति को मार कर। (**रोती है, सिसकती है**) हाय ! विधाता के घर भी तो न्याय नहीं है। (**सिर बाली के वक्ष पर रख कर रोते-बिलखते हुए**) मैं आज कहीं की नहीं रही। मेरा सब कुछ उजड़ गया आज। हाय मैं ! अब क्या करूँ ? अब मैं कैसे जी सकूँगी ? हे नाथ ! मैं अब क्या करूँ ?

राम : हनुमान ! महारानी को धीरज बँधाओ। जो होना था वह हो चुका।

हनुमान : आप अब धीरज से काम लें, महारानी ! आपका विलाप अब वानरराज को वापस तो ला नहीं सकता। आपको धीरज से काम लेना चाहिए।

तारा : (**रोते हुए**) मेरे नाथ ! मैं भी साथ आऊँगी। आप मुझे छोड़कर नहीं जा सकते। आपकी चिता में ही मैं भी अपना जीवन समाप्त कर दूँगी। नाथ ! हाय नाथ ! आँखें खोलिये तो वानरेश, देखिये तो ?

राम : महारानी ! आप इस तरह अधीर होंगी तो और लोग क्या करेंगे ? आप अपने को सम्हालें और मुझे क्षमा करें।

अंगद : माँ ! अब आगे की बातें सोचो। जो होना था वो हो गया।

तारा : (**फूट-फूट कर रोते हुए**) क्या सोचूँ बेटे ! मैं अब जीवित नहीं रहूँगी। मैं तुम्हारे पिता के साथ ही ···

राम : सुग्रीव ! तारा को समझाओ। काल की गति कोई रोक नहीं सकता। अब तुम वानरराज की अन्त्येष्टि की व्यवस्था कराओ।

सुग्रीव : हनुमन्त ! आर्य राम ठीक कहते हैं। अब अधिक विलम्ब न करो। आवश्यक व्यवस्था तुरन्त कराओ। बेटे, अंगद ! तुम्हारा चाचा हूँ मैं। बड़े भइया के बाद अब तुम मेरे लिए भी पुत्र की तरह हो। तुम्हारी माँ से मैं बार-बार क्षमा माँगता हूँ। जो अपराध मुझसे हो गया है वह हो गया है। मैं भी अपने भाई को खोकर दुखी हूँ। मुझे क्षमा करो बेटे। मेरा दुःख भी कम नहीं है।

राम : हनुमान ! तारा का पति गया है, अंगद का पिता गया है, सुग्रीव का भाई गया है। इन्हें तुम सम्हालो। तारा बेहोश हुई जा रही हैं। उन्हें सचेत करो।

हनुमान : महारानी ! होश में आइये। आप विदुषी हैं, ज्ञानी हैं—आप ही इस तरह अधीर हो जायेंगी तो आपके बेटे अंगद का क्या हाल होगा ? आपको उन्हें सम्हालना है।

तारा : (**बहुत धीमे स्वर में**) मुझे किसी को नहीं सम्हालना है। मैंने तो निश्चय कर लिया है, मुझे अपने पति के साथ जाना है। सब सुखी रहें।

अंगद : ऐसा न कहो माँ ! पिताजी के चले जाने के बाद मेरा इस संसार में है कौन ? आप ही मुझे सहारा दे सकती हैं।

तारा : बेटे, तराजू में एक पलड़े पर मेरा शेष रह गया लम्बा जीवन, राजसुख और तुम्हें रख दिया जाय तथा दूसरे पलड़े पर मेरे मृत पति को, तो मैं मृत पति से आलिंगन कर उनके साथ विलीन हो जाना ही श्रेयस्कर समझूँगी। मेरे निश्चय को निश्चय बना रहने दो बेटे ! जो चुनना था मैंने चुन लिया है।

राम : महारानी ! मुझे क्षमा करें। हर एक प्राणी का जीवन-काल निश्चित है। वानरराज बाली को समय से पूर्व कोई शक्ति नहीं मार सकती थी। मेरा बाण तो बहाना-भर है लेकिन जिसका समय नहीं पूरा हुआ, वह जबरन भावना में बह कर अपने अमूल्य जीवन को समाप्त करता है, तो वह आत्महत्या करने का अपराध करता है। क्या यह उचित है कि किष्किन्धा की महारानी होकर आप स्वयं ही कानून और राज-नियम तोड़ें ? आप शायद जानतीं नहीं, अभी आपके जीवन की किष्किन्धा के नागरिकों को आवश्यकता है।

तारा : (**बुझे-बुझे स्वर में**) ऐसा हास्य इस समय न करो अवध-कुमार ! तुम मेरा दुःख समझ सकते हो। तुम एक यौवना नारी के विधवा हो जाने का असह्य दुःख अनुभव कर सकते हो। (**सिसक कर**) मेरे पति के रहते इस राज्य में मेरी जो प्रतिष्ठा थी, मेरा जो सुख और संतोष था, मेरा जो मान और सम्मान था वह तुम राज-नियम मानते रहने पर भी क्या मुझे लौटा सकते हो ? तुम क्या जानो कि नारी के लिए सुहाग क्या होता है ? अब मेरा सुहाग-सुख तुम मुझे लौटा सकते हो क्या ?

राम : लेकिन महारानी ! आपका जीवन चींटी के जीवन की तरह मसल कर क्षण-भर में समाप्त कर देने योग्य तो नहीं है ? एक लम्बा जीवन आपको अभी जीना है। उसमें बेटे को, राज्य के लोगों को सुख और सहारे के साये की आशा है। उस आशा को तोड़ देने का अधिकार आप अपनी निजी भावना को क्यों सौंपे दे रही हैं। आप यह क्यों सोचती हैं कि आप केवल एक पत्नी थीं। एक पत्नी होने के अतिरिक्त आपका ऐसा अस्तित्व भी तो है जो अब आपसे

अधिक दूसरों के जीवन के लिए आवश्यक है।

तारा : आर्य राम ! (**धीमे स्वर में**) तीर से मेरे सर्वस्व मेरे पति को परास्त कर दिया तुमने, लेकिन अब तर्क से मुझे परास्त न करो। मैं अपने पति के साथ सती होऊँगी। जन्म-जन्मान्तर तक उनके साथ रहूँगी। मेरा अस्तित्व दूसरों के लिए आवश्यक है भी, तो मैं उससे भी अधिक अपने अस्तित्व को अपने आराध्य पति के लिए समर्पित कर देना बेहतर समझूँगी।

राम : महारानी ! मैं आपकी भावना का आदर करता हूँ। लेकिन यह जो आप इस जीवन को समाप्त करने पर तुली हैं, इसका अधिकार आपको नहीं है। यह जीवन जिस विधाता ने दिया है वही ले भी सकता है। फिर भी आप इसे समाप्त कर देना उचित समझती हैं क्या ?

तारा : बिलकुल समझती हूँ। जो विधाता मुझे जीवन देकर जीवन-भर सुहागिन नहीं देख सकता उसके चाहने-न चाहने की परवाह मैं नहीं करूँगी। मैं अपने पति के साथ अपने जीवन को भी चिर-निद्रा में सुला दूँगी। (**सिसक कर**) मुझे तो अपने पर दुःख हो रहा है कि यह सब देखकर भी मैं अभी तक जीवित क्यों हूँ ?

सुग्रीव : अवध-कुमार, राम ! आपकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। लेकिन मैं सोच रहा हूँ, इस कर्म से मेरा जीवन निन्दनीय हो गया है। महारानी तारा का यह विलाप, यह क्रोध, बेटे अंगद की पितृहीन हो जाने की यह कातर मुद्रा देखकर मैं मन ही मन बेचैन हूँ। मैं कितना बड़ा अपराधी हो गया हूँ। आखिर भाई भाई ही होता है। मुझे किष्किन्धा का राज्य भी मिल जायेगा। लेकिन अब मैं सोच रहा हूँ कि अपने ही भाई का वध कराकर यदि मुझे सम्पूर्ण स्वर्ग का राज्य भी मिल जाय तो भी मेरे लिए वह किस काम का है ?

लक्ष्मण : भाई, सुग्रीव ! आपकी तो अब वाणी भी बदल गयी है और मन भी बदल गया। आपने ही तो भइया से प्रतिज्ञा करायी थी कि वह वानरराज बाली को मार कर किष्किन्धा का राज्य आपको दिलावें। अब आप स्वयं ही ऐसा कह रहे हैं ? बात समझ में आयी नहीं।

राम : लक्ष्मण ! क्रोध भावुकता का ही दूसरा नाम है। मैं इसे समझ रहा हूँ। वानरराज बाली ने भी केवल भावुकतावश वह सब किया था और उसका बदला सुग्रीव भी भावुकतावश ही लेना चाहते थे। हम तो उसे वास्तविकता समझे थे। खैर, ऐसा होता ही है।

हर आदमी अपनी भावुकता को असलियत ही समझता है ।

सुग्रीव : श्री राम ! बड़न को बड़ाई छोटे को उत्पात । बुद्धिमान महात्मा बाली ने युद्ध के समय मुझसे कहा था, तुम चले जाओ । मेरे भाई हो इसलिए मैं तुम्हारे प्राण नहीं ले लेना चाहता । यह बात उनके योग्य थी लेकिन जो बात मैंने आपसे कही वह मेरे छोटेपन के योग्य थी । बालीराज मुझे मारना नहीं चाहते थे, लेकिन अपनी छोटी बुद्धि के कारण मैंने उन्हें मरवा दिया । राम ! वृत्रासुर का बध करने वाले इन्द्र की तरह मैं भी अपने भाई के बध का अपराधी हूँ ।

तारा : (**सिसक कर**) सुन रहे हो बेटे, अंगद ! अब तेरे चाचा को बड़ा पश्चाताप हो रहा है । हमारे संसार को आग लगाकर अब वह पानी-भरी अंजुली डाल रहे हैं ।

सुग्रीव : ऐसा न कहो, भाभी ! ऐसा न कहो । मैं अपना मन खोल कर दिखा नहीं सकता कि मैं कितना दुःखी हूँ । मैं जो भी कह रहा हूँ, अपने मन की बात कह रहा हूँ । अन्तर इतना है कि आप रो सकती हैं तो सब देख रहे हैं, लेकिन मैं रो रहा हूँ तो केवल अपने ही अन्दर, कहीं बाहर नहीं । आपको विधवा मैंने बना दिया है । आपके बेटे, अपने भतीजे अंगद को आज निरीह मैंने बना दिया है । भाभी ! मेरे भाई की चिता में तुम नहीं बैठोगी, मैं स्वयं बैठूँगा । ताकि मैं अपने अपराध का प्रायश्चित कर सकूँ । श्री राम ! मुझे अपने भाई के साथ समाप्त हो जाने दीजिये । आपका जो काम मुझे करना है उसे मेरे वानर, यूथपति, हनुमान, नल, नील पूरा करेंगे ।

राम : क्या कह रहे हो सुग्रीव तुम ? तुम बाली के साथ समर्पित होओगे ?

तारा : अवध-कुमार ! सुग्रीव जो कह रहे हैं उसे पूरा न होने दीजिए । अन्यथा आपका वचन पूरा नहीं होगा । लेकिन मुझे विश्वास है राम, कि मेरे बिना वानरराज बाली कहीं भी सुखी नहीं रहेंगे । मैं उन्हें जानती हूँ राम ! स्वर्ग की ललनाएँ, देवलोक की अप्सराएँ भी चोटी पर फूल चाहें टाँक लें किन्तु मेरे पति उन्हें पसंद करेंगे ही नहीं । उन्हें तो वहाँ भी तारा की तलाश रहेगी । इसलिए मैं उनके साथ अवश्य जाऊँगी ।

राम : महारानी तारा ! बाली ने मुझे धर्मज्ञ कहा है । इसी नाते कह रहा हूँ, पति के साथ सती होना भी वैसा ही अपराध है जैसे

आत्महत्या करना। बाली वानरराज जैसे भी थे, जो कुछ भी थे पर मेरे लिए तो वह पूज्य थे, किन्तु अब वह इस संसार में नहीं रहे। अब उनका अन्तिम संस्कार कीजिये। सुग्रीव को राजपद देकर और अंगद को युवराज बनाकर आप किष्किन्धा को अपनी बुद्धि और सेवा से सँवारिये। समय नष्ट न होने दीजिये।

दृश्य नौ

[राम और लक्ष्मण प्रवर्षण पर्वत पर अपनी कुटिया में बैठे हैं।]

राम : लक्ष्मण! इस प्रवर्षण पर्वत पर हमने सारा वर्षाकाल समाप्त कर दिया है। वर्षाकाल बीत जाने की मैं बड़े धीरज से प्रतीक्षा करता रहा। हरिशयनी एकादशी से पहले ही हनुमान के बताये इस प्रवर्षण पर्वत के वर्षा से सुरक्षित स्थान में हमने अपनी कुटी बना ली थी। तब से मैं निरन्तर प्रकृति का उदात्त खेल देखता आ रहा हूँ जो हर क्षण मेरे मन को कचोटता रहा है। सीता की याद में प्रकृति के बदलते रंग मुझे हर समय सालते रहे।

लक्ष्मण : भइया! चतुर्मास के ये दिन आर्य के बिना कितने सूने और दुःख-भरे बीते हैं कि मैं भी हर क्षण, हर दिन अपने को संताप से आहत महसूस करता रहा हूँ।

राम : गगन में मेघ गरजते थे, जिन्हें देख कर मोर नाचते थे। मेढ़क टर्राने लगते, झिलमिट झनकारने लगते और पपीहा पी-हू पी-हू करता था। पृथ्वी सोंधी उसाँस लेती थी। बादल बरसते तो नदियों में मटमैला जल बहने लगता था। वृक्ष धुल जाते थे। सोते फूट पड़ते थे। झरने झरते थे। पत्तियाँ हरी हो उठी थीं। लताएँ लहलहाने और कलियाँ मुस्काने लगी थीं। जीवन चारों ओर उमंग से भर उठा था। किसान हल-बैल लेकर खेतों पर आ जाते। प्रकृति वधू की तरह हरा पहरन पहन कर जैसे प्रियतम की प्रतीक्षा करने लगी थी। उषा नित अनुरागमयी और संध्या लाजवती लगने लगी थी। ऐसे में अपनी सीता को याद कर मन काँपने लगता था। वह बेचारी क्या कर रही होगी—यही सोचते दिन काटता था मैं लक्ष्मण।

लक्ष्मण : मैं आपके मन की दशा को समझता था भइया। किन्तु चुप रहता

था, कर भी क्या सकता था।

राम : मन की यह दशा हो गयी थी सौमित्र! कि जब बादल गरजते और बिजली चमकती तो लगता, रावण सीता को धमका रहा है। मेरा मन डरता, सीता का एक-एक पल बेचैनी से कट रहा होगा। किसी तरह पूरा चतुर्मास काट डाला हम लोगों ने। अब शरद् ऋतु आ गयी है। मेरी सीता का जाने क्या हाल होगा? जाने कहाँ होगी? सुग्रीव ने कहा था कि वह वर्षा बीतते ही जनक-नन्दिनी की खोज शुरू कर देगा, किन्तु वह राजसुख में इतना लिप्त हो गया है कि अग्नि को साक्षी रखकर की गयी प्रतिज्ञा भी भूल गया है।

लक्ष्मण : भइया! सुग्रीव वानर है। वह मानवता के मूल्य और वचन की मर्यादा क्या जाने? उसका अपना मतलब तो पूरा हो गया न!

राम : सौमित्र! तुम किष्किन्धा जाकर उसे मेरा संदेश दो कि वानरराज बाली को जिस रास्ते से मैंने यमपुर भेजा है, वह रास्ता अभी बन्द नहीं हुआ है। उसे यह भी बता दो कि बाली को तो मैंने अकेले मारा था किन्तु सुग्रीव यदि शीघ्र सीता की खोज शुरू नहीं करता है तो उसे मैं बन्धु-बान्धवों सहित मार डालूँगा।

लक्ष्मण : नहीं भइया! संदेश क्या देना, मैं अभी जाकर उसे मार डालता हूँ। आर्य राम को गलत वचन देने वाले को मैं एक क्षण भी जीवित नहीं देख सकता।

राम : ऐसा क्रोध उचित नहीं है, लक्ष्मण! अपनी बुद्धि से क्रोध पर नियंत्रण रखने वाला व्यक्ति ही श्रेष्ठ होता है। उसे केवल चेतावनी देकर पहले अपनी भूल को सुधारने का अवसर दो। भइया! मुझे विश्वास है, तुम वहाँ जाकर मेरी बात का ध्यान रखोगे।

लक्ष्मण : ठीक है भइया, मैं जा रहा हूँ।

दृश्य दस

[दृश्य बदलता है। किष्किन्धा नगर]

[लक्ष्मण का किष्किन्धा पुरी में प्रवेश। मुख्य द्वार के समीप अंगद से भेंट]

अंगद : आर्यवीर लक्ष्मण! हमारे महल में? वीरवर! अंगद का प्रणाम

स्वीकार करें।

लक्ष्मण : अंगद ! तुम्हारा वह पाखंडी चाचा सुग्रीव कहाँ है ? मुझे तुरन्त उससे मिलवाओ। जाकर उससे कहो कि अयोध्या का कुमार लक्ष्मण शीघ्र उनसे मिलने के लिए उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। राजमद में डूबे हुए सुग्रीव से पूछो कि क्या आर्य श्री राम के दुःख को भूलकर वह आमोद-प्रमोद में इतना लिप्त हो गया है कि मित्रता को भी भूल गया ?

अंगद : वीरवर ! आप यहाँ खड़े क्यों रहेंगे ? कृपा कर आसन ग्रहण कीजिये, पधारिये, हमारे महल को पवित्र कीजिये।

लक्ष्मण : ठीक है बेटे, अंगद ! मैं उनकी प्रतीक्षा करता हूँ। वह वानरराज हैं। यदि समय दे सकें मिलने का तो बड़ी कृपा होगी।

अंगद : नहीं, ऐसी बात नहीं है, अवध-कुमार ! मैं उन्हें सूचित कराता हूँ। देखिये, माँ इधर आ रही हैं।

[तारा का आगमन]

अंगद : माँ ! अवध-कुमार लक्ष्मण पधारे हैं। यह बहुत क्रुद्ध हैं।

तारा : मेरा प्रणाम है अवध-कुमार लक्ष्मण को। इस समय अचानक बिना किसी सूचना के पधारने का क्या कारण हो सकता है ?

लक्ष्मण : महारानी, तारा ! हम कौन राजा-महाराजा हैं कि दूत भेजकर अपने पधारने की खबर देते। चार महीने बीत गये लेकिन वानर नरेश सुग्रीव ने हमारी सुध तक नहीं ली। वह जानते हैं कि हम कितने दुखी हैं। एक-एक क्षण हम एक-एक साल की तरह बिता रहे हैं। सुग्रीव ने वचन दिया था कि वर्षाकाल समाप्त होते ही वह अपने साथी वीरों, यूथपतियों और मंत्रियों, योद्धा-सेना सहित जनकनन्दिनी को खोजने का काम करेंगे।

तारा वीरवर ! कौन आपकी आज्ञा के अधीन नहीं है। आपके आदेश को कौन भूल सकता है।

लक्ष्मण : (**क्रोध से**) कौन भूल सकता है—यह आप कह रही हैं ? भूल गया है कहिये। सुग्रीव को क्या समय बीतने का पता नहीं है ? लेकिन वह तो मदिरा में, विषय-भोगों में, सुन्दरियों में डूबा हुआ है। उसे समय का अहसास रह भी कैसे सकता है। वानरराज को कौन समझाये कि मित्र के उपकार का यदि अवसर आने पर भी बदला नहीं चुकाया गया तो धर्म की हानि तो होती ही है—आर्य राम जैसे मित्र से नाता टूट जाने के कारण अर्थ और जीवन की भी हानि हो सकती है।

तारा : राजकुमार ! यह क्रोध करने का समय नहीं है। आत्मीय लोगों पर क्रोध करना भी नहीं चाहिए। सुग्रीव के मन में आपके कार्य की चिन्ता सदैव बनी रहती है। उनसे कोई भूल भी हो जाय तो भी आपको उन्हें क्षमा करना चाहिए। आप श्रेष्ठ गुणों वाले हैं। छोटों से भूल हो जाया करती है। आप लोगों के दुःख को मैं समझती हूँ। सुग्रीव पर आपका जो उपकार है उसे भी मैं समझती हूँ। राजपद पाकर जिस तरह विषय-भोग में सुग्रीव लिप्त है वह भी मैं जानती हूँ।

लक्ष्मण : लेकिन उसकी भी कोई सीमा होती है। कोई अवधि होती है महारानी !

तारा : काम के अधीन हो गये पुरुष की दशा आप जानते होंगे। जो निरन्तर धर्म और तपस्या में लिप्त रहते हैं, मोह और अर्थ को जो भूल जाते हैं, ऐसे महर्षि भी काम की शक्ति से परास्त हो जाते हैं। फिर स्वभाव से चंचल वानरों के सखा सुग्रीव सुख-भोग पर क्यों न आसक्त हों ? लेकिन आप विश्वास करें, सखा सुग्रीव ने आपके हित-साधन के लिए मंत्रियों को पहले ही आदेश दे दिया है कि दूत भेजकर सभी वानरों, लंगूरों, रीछों को बुला लिया जाय। दूत विन्ध्य, मलय, मंदराचल, उदयाचल हिमाचल, अस्ता-चल, कैलास, सुमेरु, अंबुद, नीलगिरि आदि पर्वतों पर गये हैं और लाखों की संख्या में वानर, रीछ, लंगूर किष्किन्धा पहुँच भी रहे हैं।

[सुग्रीव का आगमन]

सुग्रीव : ओह ! सौमित्र मेरे घर पधारे हैं। मैं कितना भाग्यशाली हूँ। अयोध्या के राजकुमार ! सुग्रीव का चरणस्पर्श स्वीकार करें।

लक्ष्मण : (**क्रोध के स्वर में**) वानरराज ! आपने अपने को इस योग्य रखा है कि आपका आदर किया जा सके धैर्यवान, कुलीन, दयालु, जितेन्द्रिय और सत्यवादी राजा का ही संसार में सम्मान होना है। श्री राम से कहे गये वचनों को भी जो भूल सकता है उससे बड़ा पापी और अपराधी कौन हो सकता है ? मित्र के संकट में अपना बराबर का मित्र काम न आने वाला हो तो कृतघ्न है और वध के योग्य है। ब्रह्मा जी ने स्वयं कहा है कि हत्यारे, शराबी, चोर और व्रत तोड़ने वालों के लिए प्रायश्चित का विधान है किन्तु कृतघ्न के लिए उद्धार का कोई उपाय नहीं है।

सुग्रीव : वीरवर, मुझे क्षमा करें। आप तो आते ही क्रोध करने लगे। आपको क्रोध शोभा नहीं देता।

लक्ष्मण : हाँ, शोभा नहीं देता। तुमने अपना काम निकल जाने के बाद श्री राम के असीम दुःख को महसूस करने की भी कोशिश नहीं की। आर्य राम का तुम्हारे लिए संदेश है कि बाली जिस रास्ते से यम-लोक गया है वह आज भी बन्द नहीं है। राम के धनु से छूटा हुआ एक ही बाण तुम्हें सम्पूर्ण कुल और बन्धु-बान्धवों सहित बाली के पास पहुँचा देगा।

तारा : कुमार, लक्ष्मण ! सुग्रीव से ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। आखिर ये वानरों के राजा हैं। आप ज्ञानी हैं। इतना अवश्य जानते होंगे कि राजा की कोई प्रतिष्ठा भी होती है। उस प्रतिष्ठा को पाने के अधिकारी वह हैं। मेरे विचार से ऐसा सार्वभौम राज-नियमों में भी आता है। रही बात कृतघ्न होने की। मैं दृढ़ता के साथ कह सकती हूँ कि वानरराज किसी तरह भी कृतघ्न नहीं हैं। मैंने आपको बताया था कि राम ने जो उपकार इन पर किया था उसे यह भूले नहीं हैं। जिनके प्रताप से इन्होंने इस विशाल राज्य को अपनी पत्नी सहित पाया है उन्हें यह भुला नहीं सकते। चूक केवल इतनी हो गयी कि इस बीच यह न आप लोगों से मिले और न कोई समाचार ही भेज सके।

लक्ष्मण : चार महीने बीत गए और वानरराज को समय का भी भान नहीं रहा। अब मंत्री-दूत भेज रहे हैं ! अब वानरों को निमंत्रण भेजा जा रहा है ? जबकि हमें सारी तैयारी करके, आर्य का पता लगाकर रावण से युद्ध करने चल देना चाहिये था !

तारा : बहुत समय तक यह भी कष्टपूर्ण जीवन बिताते रहे हैं, इसीलिए जब श्रीराम ने इन्हें सुख पाने का अवसर दिया तो सुखभोग में अवश्य इन्हें समय का उचित भान नहीं रहा। लेकिन यह तो वानर हैं, महर्षि विश्वामित्र ने तो मेनका में आसक्त होकर दस वर्ष के समय को भी एक दिन के बराबर समझा था।

लक्ष्मण : (व्यंग्य से) तो आप चाहती हैं कि इन्हें विषय-भोगों में डूबे रहने के लिए और समय दिया जाए ?

तारा : मैं चाहती हूँ कि सुग्रीव श्री राम को उनकी सीता से शीघ्र ऐसे ही मिला दें जैसे चाँद का रोहिणी से संयोग हुआ था। आपको पता होगा कि लंका में रावण के पास करोड़ों मायावी और वीर राक्षस हैं। उनका बध कर रावण को मारने के लिए उनसे भी अधिक वीरों की आवश्यकता पड़ेगी। आपकी सहायता के लिए सुग्रीव ने बहुतेरे वीर और पराक्रमी वानरों को बुलाया है जो असंख्या वानरों की

सेना लेकर आएँगे। सुग्रीव उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सुग्रीव : महावीर लक्ष्मण ! आर्य श्री राम के उपकार का बदला अंशभाग में भी कौन चुका सकता है ! महात्मा श्री राम को कौन सहायता दे सकता है ? वह अपने तेज से स्वयं ही रावण को मारकर सीता जी को प्राप्त करेंगे। मैं तो वीरवर ! उनका एक तुच्छ सहायक मात्र रहूँगा। मैं तो अपनी असंख्य सेना के साथ उनके चरणों का अनुसरण करूँगा। मेरी अज्ञानता से जो अपराध हो गया है उसे सेवक की भूल मानकर क्षमा कर देना चाहिये। सेवकों से भूल हो ही जाया करती है। कभी विश्वास और प्रेम के कारण भी ऐसी भूलें हो जाती हैं। सुखभोगों में मैं लिप्त अवश्य हो गया था, उसे मेरी कमजोरी और अज्ञानता मानकर क्षमा कर दीजिये।

लक्ष्मण : (**प्रसन्न भाव से**) वानरराज ! ऐसे विनयशील सहायक को पाकर मेरे भाई राम सदैव सनाथ हैं। देवताओं ने ही शायद हमें आप जैसा मित्र दिया है। श्री राम और आपके अलावा यह विनय और किसमें हो सकती है ? महारानी तारा ने ठीक कहा था, मैंने राज-सम्मान दिए बिना, आपसे कटु शब्द कह दिए थे। मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए था। श्रीराम के दुःख को न पाने के कारण ही मैं बहुत क्रुद्ध हो गया था। वानरपति मुझे क्षमा करें।

सुग्रीव : आप हमारा सत्कार स्वीकार करें, वीरवर ! मैं हनुमान और दूसरे मंत्रियों को फिर आदेश देता हूँ कि फिर से दूत भेजकर तुरन्त पराक्रमी वानरों को सेनाओं सहित किष्किन्धा लाया जाए। उनके साथ मैं बहुत शीघ्र अवधकुमार राम की सेवा में उपस्थित हूँगा। आप कृपा कर हमारा आतिथ्य स्वीकार करें। लौटने पर श्री राम को हमारा नतमस्तक प्रणाम कहें।

दृश्य ग्यारह

[प्रवर्षण गिरि पर राम और लक्ष्मण सुग्रीव के बन्दरों सहित पहुँचने की प्रतीक्षा में हैं। एकाएक आसमान में धूल के बादल दृष्टिगत होते हैं और बन्दरों, रीछों के भयंकर स्वर सुनाई पड़ते हैं।]

राम : सौमित्र ! आकाश पर धूल के इन घने बादलों को बढ़ते हुए देख

रहे हो ?

लक्ष्मण : हाँ, देख रहा हूँ भइया !

राम : ये भयंकर गर्जना के स्वर भी सुन रहे हो न ?

लक्ष्मण : हाँ, ये गर्वीले, आकाश की छाती को चीरते हुए विजयोन्माद के स्वर भी सुन रहा हूँ। क्या वह किसी दुश्मन की सेना के हमारी ओर आने का संकेत है ?

राम : नहीं, यह हमारे दुश्मन के नहीं, हमारे मित्र के हमारी ओर अपनी सेना सहित आने का संकेत हो सकता है। शायद सुग्रीव आ रहे हैं। तुम्हारी हठीली फटकार का देखो कितना शीघ्र असर हुआ है।

लक्ष्मण : भइया ! सुग्रीव तो बड़े ही विनयशील और योद्धा हैं किन्तु महारानी तारा बड़ी विदुषी, तर्कशास्त्री और व्यवहार-कुशल महिला हैं। मुझे तो अंगद भी कोई कम बलशाली नहीं लगा। अंगद की मुद्रा बता रही थी कि वह क्या है ?

राम : देखो, वे लोग समीप ही आ रहे हैं शायद। फिर भी अगर वे सुग्रीव और उनके सेनानी हुए तो भी हमें सावधान रहना चाहिए। तूणीर, बाण, धनुष सम्हाल लो सौमित्र !

लक्ष्मण : सम्हाल लिए भइया !

दृश्य बारह

[सुग्रीव का असंख्य वानरों, लंगूरों, रीछों की सेना के साथ आना।]

सुग्रीव : आर्य, राम ! मुझ अकिंचन राजा सुग्रीव का अपने शुभ चरणों में दण्डवत प्रणाम लें। वीरवर लक्ष्मण को भी मेरा सादर प्रणाम है।

राम : वानर-नरेश ! राम और लक्ष्मण का सत्कार स्वीकार करें। चार महीने तक हमारी सुधि न लेकर भी, लक्ष्मण के किष्किन्धा, पम्पापुर पहुँचने के बाद आपको अपने मित्र की याद आ गयी, यह हमारा सौभाग्य है !

सुग्रीव : श्री राम ! मैंने कुमार लक्ष्मण के चरणों पर सिर रखकर अपनी भूल की क्षमा माँगी थी। मैंने उनसे यह भी निवेदन किया था कि महाबली राम भी क्षमा कर दें। मैं जानता हूँ, आप क्षमाशील हैं

किन्तु मुझे अपने भाग्य पर आश्चर्य है कि राम जैसे क्षमाशील व्यक्ति अब भी मुझ जैसे तुच्छ की भूल को भुला नहीं सके हैं।

राम : (हँसकर) सुन रहे हो लखन ! सुग्रीव की इस वाक्पटुता के आगे किसी भी भयंकर क्रोधी का क्रोध पिघले बिना कैसे रह सकता है ? लौटकर लक्ष्मण ने जब बताया कि राजा सुग्रीव बहुत ही विनयशील हैं तो मुझे विश्वास तो हुआ था किन्तु आश्चर्य नहीं हुआ था। लेकिन राजा सुग्रीव ! अब जो आपकी बात सुनी तो विश्वास तो पक्का हुआ ही साथ ही आश्चर्य भी हुआ।

सुग्रीव : मेरी विनयशीलता मन की सच्ची भावना है, राम ! मुझे थोड़ा विलम्ब अवश्य हुआ। आपके दुःख को भी मैं समझता था। किंतु मेरा समुदाय सारे भारत-भर में पर्वत-पर्वत फैला था। तमाम वीर पराक्रमी अन्य पर्वतों पर थे। उन्हें एकत्र करने में समय लग गया। अब मैं अपनी असंख्य सेना के साथ आपके चरणों में

राम : अपने प्रमुख वीरों का हमसे परिचय भी कराओ राजन् ! और इन्हें यह भी बता दो कि युद्ध के लिए भी तैयार रहने की आवश्यकता क्यों आ पड़ी ! हम आपकी सारी सेना का स्वागत और सम्मान करते हैं वानरराज !

सुग्रीव : मेरे मित्र राम को लंका के राजा रावण ने जो चुनौती दी है और हमारा उसकी सेनाओं और उससे युद्ध क्यों अनिवार्य हो गया है—यह सारी बात मेरी सेना को मालूम है राम। अन्याय और अत्याचार का बदला लेने की इन सबने शपथ ली है। दुश्मन कमजोर नहीं है यह बात मेरे दिमाग में है। लंका का पथ ढूँढ़ कर वहाँ तक हमें पहुँचना है। उधर हम कभी गए नहीं। इसीलिए पथ ढूँढ़ कर, सीता जी की खोज करते हुए कि वह कहीं लंका से पहले ही पथ में न हों, या कहीं किसी गुप्त स्थान पर न हों, यह सब पता लगाते हुए मेरे दूत, मेरे कार्यकुशल सैनिक आगे बढ़ेंगे। आर्य ! आप और हम भी उसी ओर बढ़ चलेंगे।

राम : सुग्रीवराज ! आपके प्रमुख यूथपतियों, विद्वानों, रणजेताओं से हमारा परिचय तो हो जाय।

सुग्रीव : अवश्य राम ! परिचय तो आगे भी होता रहेगा किन्तु कुछ प्रमुख लोगों का परिचय करा देना उचित भी है। ये जो प्रथम पंक्ति में विराजमान हैं,सबसे दाहिने पहले तो हमारे पितृतुल्य, तारा के पिता सुषेण हैं। इन्होंने मुझमें और अपने सगे जामाता बाली में कभी

कोई भेद नहीं रखा। इनकी बुद्धिमत्ता की झलक आप और लक्ष्मण इनकी बेटी तारा में देख चुके हैं। जो समय की गति को भी मुट्ठी में बाँधकर अपनी बुद्धि से तर्क को बाँध सकती है। दूसरे, मेरे श्वसुर रुक्मा के पिता आदरणीय रूमण हैं। तीसरे, लंगूरों के राजा महापराक्रमी गवाक्ष हैं। यह पलक झपकते ही मैदानों, सभी सैंकड़ों पहाड़ों, पठारों को लाँघ सकते हैं। इन्होंने भारत देश के पहाड़, पठार, मैदान छाने हुए हैं। चौथे, अश्विनीकुमारों के पुत्र द्विद और मयंद हैं। दोनों भाई एक रंग-रूप, बल-विक्रम वाले और शल्य-चिकित्सा में अति निपुण हैं। इनकी युद्ध में हमें हमेशा आवश्यकता रहेगी। पाँचवें, अग्नि के पुत्र नल और नील को तो आप जानते ही हैं। ये तो मानवों के भी मित्र हैं और दानवों के भी। वास्तुकला में तो इनका अभी तक कोई मुकाबला है ही नहीं।

लक्ष्मण : लगता है, किष्किन्धा नगरी भी इनके ही मार्गदर्शन में बसायी गयी थी भइया! मैंने देखा है वह अद्भुत सुन्दर नगरी है।

सुग्रीव : लक्ष्मण सही कहते हैं। उस नगर के वास्तुकार यही नल-नील थे। ये दोनों अपनी कला में अद्भुत हैं।

राम : और वानरराज! ये जो बैठे हैं जामवन्त—इन्हें मैं जानता हूँ। ऋष्यमूक पर्वत पर भी मिले थे। ये तो ब्रह्मा के मानस पुत्र ऋक्ष-राज हैं। वामन अवतार के समय केवल दो घड़ी में इन्होंने पृथ्वी की सात प्रदक्षिणाएँ कर डाली थीं। यह वयोवृद्ध से अधिक ज्ञानवृद्ध हैं। संकट के समय हम इनसे ही सलाह लेंगे।

सुग्रीव : श्रीराम! इनके साथ इनके साथी गवय और दरीमुख वीर हैं। मेरे अन्य नायक जो दूसरी-तीसरी पंक्ति में हैं वे हैं—गंधमादन, इन्द्रजानु, शतदल, शरमुलन, सुमुख और दुर्मुख, शरभ, त्रिह्म, धूम्र कुमुद आदि-आदि। हम आपसे इन सबकी प्रशंसा अभी क्या करें ये अपना परिचय स्वयं युद्धभूमि में देंगे।

राम : राजा सुग्रीव और वानरराज की सेना के समस्त वीरो! मतंग वन से ऋष्यमूक पर्वत की ओर जाते समय जब हमें वीर हनुमान छद्मवेश में मिले थे तब हम आपके राजा सुग्रीव को भी नहीं जानते थे। फिर हमने सुग्रीव को अग्नि के सामने मित्र मान लिया। मेरा विश्वास है कि हमारी यह मित्रता इतिहास प्रसिद्ध भी हो सकेगी। मैं कितना दुखी हूँ, आप जानते हैं। मेरी पत्नी का हरण करके लंका के राजा रावण ने मुझे युद्ध करने के लिए विवश कर

दिया है। मेरी कामना है कि युद्ध में भी, और मेरी पत्नी को ढूँढ़ने में भी वानरराज सुग्रीव मेरी सहायता करें। आप सब इन दोनों कठिन कामों में इनके साथ, इनके आदेश से, इनके प्रेम के कारण मुझे भी अपना समझ कर मेरी सहायता करें।

समवेत स्वर : वानरराज सुग्रीव की जय ! अवध-नरेश श्री राम की जय ! सुग्रीव जयी हों, श्री राम जयी हों !

सुग्रीव : **(भीड़ की ओर हाथ उठाकर)** सुनिये, सुनिये ! श्री जामबन्तत कुछ कहने को खड़े हुए हैं, उनकी बात सुनिये।

जामवन्त : वानरराज की प्रजा की ओर से, इस सारी सेना की ओर से अवध-कुमार श्री राम ! हम आपसे यह निवेदन कर देना परम आवश्यक समझते हैं कि अब हम सब आपके अधीन हैं। हम महारानी सीता को ढूँढ़ ही नहीं निकालेंगे, रावण से युद्ध ही नहीं करेंगे बल्कि आपकी सुरक्षा भी अपने जीवन से महत्त्वपूर्ण मानेंगे। हमारा जीवन रहे या न रहे किन्तु आपका सम्मान, आपकी आन हर हालत में रहेगी। हम भी कम वीर नहीं हैं। रावण के समस्त राक्षस वीरों को हम युद्धभूमि में देखेंगे।

राम : जामवन्त ! आप सबकी भावनाओं का मैं आदर करता हूँ। आप सबका बल मिलकर ही तो मुझे बलवान बनायेगा। आप सबका भरोसा ही तो मुझे आगे बढ़ने का सम्बल देगा। किन्तु मेरी सीता को रावण कहाँ ले गया है ? हमें पहले यह पता लगाना है। आवश्यक नहीं है कि वह उसे लंका ही ले गया हो और यह भी सम्भव है कि वह उसे लंका ही ले गया हो। अगर उससे युद्ध करने से पहले हम जनकदुलारी को हस्तगत कर लें तो हमारी रणनीति दूसरी हो सकेगी। युद्ध तो रावण से अनिवार्य है क्योंकि राक्षसी वृत्ति से मुझे घृणा है और उसे मुझे समाप्त करना है। वानरराज, आप बतावें आपकी क्या राय है।

सुग्रीव : श्री राम ! मेरी भी यही राय है। पहले हम अपने सुधी वीरों को भेजकर जनकनन्दिनी का पता लगावें कि वह हैं कहाँ ? उसके बाद ही हम अपनी रणनीति तय करेंगे।

राम : वानरराज ! आपका विचार ठीक है।

सुग्रीव : तो मैं दल बनाकर खोज के लिए भजता हूँ।

दृश्य तेरह

[सेना से घिरे राम, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि बैठे हैं।]

सुग्रीव : श्री राम ! हमारा पहला काम तो यह है कि हम सीता जी को खोज निकालें कि वह हैं कहाँ ? लंका में हैं या लंका जाने वाले रास्ते में ही कहीं रावण ने उन्हें रख छोड़ा है।

राम : वानरराज सुग्रीव ! आप ठीक कहते हैं। सीता का सही पता लगा लेने के बाद ही आगे की रणनीति तय करना उचित होगा।

सुग्रीव : मैंने जामवन्त के नेतृत्व में अंगद, हनुमान सहित कई श्रेष्ठ, पराक्रमी और खोज कार्य में कुशल वानरों को निर्देश दे दिया है। जामवन्त वृद्ध अवश्य हैं किन्तु उनके पास अपार अनुभव है। अंगद युवा है, उसमें युवकोचित उत्साह है। और ये हैं मेरे मंत्री हनुमान। इनसे आप भली भाँति परिचित हैं ही। वायु के अवतार केसरी के पुत्र हैं यह।

राम : ओह ! तो इन्हें वायुपुत्र ही कहिए।

सुग्रीव : जी हाँ। यह अपने पिता के समान वेगवान हैं, यह आकाश में उड़ भी सकते हैं, पानी में तैर भी सकते हैं और पाताल तक पहुँच भी सकते हैं। केवल बलवान-वेगवान ही नहीं, बुद्धिमान भी हैं। देश, काल और पात्र का विचार करके ही यह काम शुरू करते हैं। धुन के ऐसे पक्के हैं कि काम हाथ में लेकर पूरा करके ही छोड़ते हैं।

हनुमान : वानरराज ! मेरी इतनी प्रशंसा न करिये कि आर्य राम को वह हास्यास्पद लगे।

राम : नहीं, हनुमान ! ऐसा न कहो। तुम तो मेरे सुग्रीव से भी पहले के परिचित हो। तुम्हीं तो सुग्रीव को और हमें मिलाने वाले सेतु हो। आदमी की परख तो पहली ही मुलाकात में हो जाती है। जब से तुम मिले हो निरन्तर मेरे अपने होते जा रहे हो। तुमने मेरा दिल जीत लिया है और जितने भी वीर सीते की खोज में जा रहे हैं उन सबमें तुम पर मेरा भरोसा अधिक है, क्योंकि तुम मेरे इन सबसे पुराने मित्र हो। सुग्रीव से भी पुराने।

हनुमान : (हँसकर) आप शर्मिन्दा क्यों करते हैं आर्य ! यह तो आपकी कृपा है।

राम : हनुमन्त ! यह मेरी अँगूठी ले लो। (अंगूठी उतार देते हैं) इसे सीता पहचानती भी है। और इसके माणिक पर मेरा नाम भी

खुदा है।

हनुमान : आशीर्वाद दीजिए आर्य कि मैं यह अँगूठी माँ जनकनन्दिनी के हाथ में दे सकूँ।

राम : (**प्रसन्न भाव से**) दे सकोगे। मेरा आशीर्वाद भी है और अनन्त शुभ कामना भी। (**जामवन्त की तरफ घूमकर**) और जामवन्त इस वृद्धावस्था में भी मेरे कारण आपको कष्ट उठाना पड़ेगा।

जामवन्त : नहीं, नहीं, अवध-कुमार! यह तो इस चौथेपन में राजा सुग्रीव ने मुझे जसा सौभाग्य प्रदान किया है कि मैं किसी परोपकारी के काम आ रहा हूँ। अगर आ सका, सफलता हमें मिल सकी तो मुझे परम संतोष ही मिलेगा।

राम : जामवन्त! यह सोचना निश्चय ही आपकी महानता है। आप ऋषितुल्य हैं, मैं आपकी इस भावना का हृदय से आदर करता हूँ। (**अंगद की तरफ मुड़कर**) और बेटे अंगद! मैं तुम्हारे पिता को मारने का दोषी हूँ। अपने पिता के हत्यारे को तुमने क्षमा ही नहीं कर दिया बल्कि उसके लिए तुम स्वयं उपकार करने आगे आ गए हो। यह मेरे लिए सुखद है।

अंगद : अवधकुमार! ऐसा क्यों कहते हैं आप? मैं तो अपना कर्त्तव्य पूरा कर रहा हूँ।

दृश्य चौदह

[वन-पथ में सीताजी को ढूँढ़ते हुए।]

जामवन्त : हनुमान! दक्षिण की ओर ही बढ़ो। अनदेखा इलाका है, सब साथ-साथ रहो। जहाँ भी शक हो जाये वहाँ के घर, मन्दिर, गुफा, वन, नदी तट, सब छान डालो।

हनुमान : दादा, जामवन्त! आप ठीक कहते हैं। शक होने पर हमें रोक कौन सकता है? हम कहाँ नहीं घूम सकते! क्यों अंगद?

अंगद : हाँ, चाचा! आप ठीक कह रहे हैं किन्तु,... । अब तो भूख और प्यास से हालत खराब हो गयी है।

हनुमान : भूख से ज्यादा प्यास सता रही है।

जामवन्त : भूख-प्यास तो तुम्हें ही नहीं मुझे भी है हनुमान! चलो आगे कहीं न कहीं पानी मिलेगा ही, फल-वल मिलेंगे ही। केवल जंगल और बिना फल के पेड़ ही पेड़ तो नहीं होंगे सभी जगह।

अगद : चाचा ! वह देखिये, उस पहाड़ पर शायद कोई कंदरा है। वहाँ कंदरा के पास क्रौंच, बक, सारस आदि मँडरा रहे हैं। ये जलपक्षी हैं। वहाँ कोई जलाशय अवश्य होगा।

जामवन्त : तो ठीक है, वहीं चलो। पानी तो मिलेगा। चलो उधर ही चलो। (सब जाते हैं।)

अंगद : चाचा ! यहाँ पहाड़ के अन्दर को एक गुफानुमा मार्ग तो है पर पानी कहीं नहीं दिखता।

जामवन्त : मेरी समझ में तो अंगद, यह कंदरा का रास्ता किसी जलधारा के कारण ही बना है। यहाँ चूने वाली शिलाएँ हैं। अन्दर पानी अवश्य होगा। हम सब एक-दूसरे के हाथ पकड़कर इस गुफा के अन्दर चलें। वहाँ पानी अवश्य होगा।

हनुमान : दादा, जामवन्त !

जामवन्त : हाँ, हनुमान !

हनुमान : दादा, जामवन्त ! जिस टेढ़े-मेढ़े रास्ते से हम अन्दर आये वह कितना कठिन रास्ता था ?

जामवन्त : वह देखो, सामने पानी का छलछलाता तालाब है।

हनुमान : दादा, जामवन्त ! तालाब के पास कितना सुन्दर उपवन है। उपवन में वृक्षों पर फल भी लदे हुए हैं।

जामवन्त : शायद यहाँ कोई रहता है। उससे पूछकर ही हम फल खाकर पानी पियें।

हनुमान : वह देखिये, जामवन्त दादा ! उपवन के पास एक भव्य भवन है। उसके बाहर कोई श्वेत वस्त्रधारी महिला बैठी तो है।

जामवन्त : तो हम उनके पास चलें, पहले उनसे सरोवर का जल पीने, उपवन के फल खाने की आज्ञा ले लें।

दृश्य पन्द्रह

[उपवन का एक भव्य भवन]

जामवन्त : इस गुफा के उपवन में बैठी, सरस्वती जी की तरह सफेद वस्त्रों में, आप कौन हैं देवि ?

देवी : मैं कौन हूँ ? मेरे उपवन, मेरे घर में आकर मुझसे यह कैसा प्रश्न पूछा जा रहा है ? क्या आप लोग यहाँ तक बिना मुझे जाने ही आ पहुँचे ? आश्चर्य है !

जामवन्त : जल की तलाश में एक टेढ़ी-मेढ़ी कंदरा से होते हुए हम यहाँ तक आ पहुँचे। हमें कृपा कर अपना परिचय दीजिये और यदि आज्ञा हो तो हम लोग अपनी भूख-प्यास शान्त करने के लिए कुछ फल खाकर आपके सरोवर से जल पी लें।

देवी : अवश्य ! मैं अपना परिचय फिर दूंगी, पहले आप जलपान कर लें।

अंगद : यह ठीक रहेगा। देवि की आज्ञा मिल गयी तो पहले हम क्षुधा शान्त करें।

जामवन्त : देवि ! आपकी बड़ी कृपा हुई, हमने भरपेट फल-जल प्राप्त कर लिए हैं। अब हमें अपना परिचय दें।

देवी : मेरा नाम स्वयंप्रभा है। इन्द्र की अप्सरा हेमा की मैं सहेली थी।

हनुमान : इन्द्र की अप्सरा ?

देवी : हाँ ! इन्द्र की उस अप्सरा को मय नाम का राक्षस देवलोक से ले आया था और इस सुरक्षित कन्दरा में अपनी माया से उसने यह सुन्दर सा अपना घर बनाया था। इस कन्दरा में आ सकना और यहाँ से निकल सकना बहुत कठिन है। यहाँ आमोद-प्रमोद के सभी साधन थे। इस उपवन में और जलाशय में वह विहार और जल-क्रीड़ा करते थे। यहाँ हेमा का संगीत गूँजता रहता था सहेली होने के नाते मैं भी उसके साथ आ गयी थी।

हनुमान : देवि ! हमारे राजा बाली ने मय राक्षस के बेटे दुन्दुभि और मायावी को मारा था।

देवी : हाँ, अप्सरा हेमा ने मय के संसर्ग से एक अत्यन्त सुन्दरी, गुणवती और विदुषी पुत्री को जन्म दिया था जिसका नाम मन्दोदरी था। उससे लंका के राजा रावण ने विवाह कर लिया। देवराज इन्द्र ने कुपित होकर मय को अपने वज्र से मार डाला था। फिर हेमा की भी मृत्यु हो गयी। तब से मैं यहीं रह रही हूँ। इन्द्र ने मुझे यहीं पड़े रहने का शाप दिया था।

जामवन्त : हनुमान ! हमें अब चलना भी चाहिए। हमें जाने अभी कहाँ जाना होगा।

देवी : तुम लोग अकेले नहीं जा सकोगे। इन्द्र ने मुझसे कहा था जिस दिन बहुत सारे बन्दर तेरे पास गुफा में आयेंगे उसी दिन तू इन्द्र-लोक लौट सकेगी। अच्छा है, आज तुम लोग आ गये। अब मुझे भी जाना है। किधर जाना है तुम लोगों को, क्योंकि कन्दरा से बाहर निकलना बड़ा कठिन है। जिधर से तुम लोग आये हो, वह

रास्ता तुम्हें अब ढूँढ कर भी नहीं मिल पायेगा।

जामवन्त : हमें समुद्र-तट की ओर जाना है देवी !

देवी : तो आइये मेरे साथ, इस गुफा से बाहर निकल चलिये। आप सब लोग अपनी आँखें बन्द कर एक-दूसरे का हाथ पकड़ लें। आइये, आप अपना हाथ मुझे थमा दें। मैं ही आपको बाहर ले जा सकूँगी। मैं आपको समुद्र-तट पर पहुँचा दूँगी।

अंक नौ

दृश्य एक

[समुद्र-तट का मनोरम दृश्य। दूर-दूर तक विशाल जलराशि दृष्टिगत हो रही है।]

हनुमान : आह, इतना विशाल समुद्र ! दायें, बायें, सामने जहाँ भी नजर आती है, समुद्र ही समुद्र। जल ही जल। दादा जामवन्त ! कितना शान्त है यहाँ सब कुछ ! कितना मनोरम है यहाँ का दृश्य !

जामवन्त : हनुमान ! यह कुमारी अन्तरीप कहलाता है। कन्याकुमारी पार्वती जी ने यहीं, सामने समुद्र के बीच में जो बड़ी सी शिला दिख रही है उस पर बैठकर शिवजी को पति रूप में पाने के लिए कठिन तपस्या की थी। चलो तट के किनारे-किनारे हम लोग निकल चलें और सीता जी को ढूँढ़ने का काम करें।

हनुमान : ठीक है दादा ! चलें सब उधर दक्षिण की ओर बढ़ चलें।

अंगद : (**थके-हारे स्वर में चलते-चलते ही**) चाचा हनुमान ! अब आगे जाना व्यर्थ है। वानरराज सुग्रीव ने हमें एक महीने का समय जनकदुलारी को ढूँढ़ने के लिए दिया था। एक महीना बीत चुका है। सीता जी का कोई पता नहीं लगा। बिना सीता जी का पता लगाये हम लौटेंगे तो वह हमें जिन्दा नहीं छोड़ेंगे।

हनुमान : नहीं युवराज, ऐसी क्या बात है ? अभी हम प्रयत्न करेंगे। सीता जी का पता लगेगा।

अंगद : कब तक पता करेंगे ? हमारे पास छः महीने-सालभर का समय तो पता करने के लिए नहीं है ? हमारी इस असफलता पर मेरा

बध तो निश्चित है। क्रूरपति मेरे चाचा सुग्रीव को तो बहाना चाहिए मुझे मारने का। मैं अब लौटकर भी नहीं जाऊँगा। उस अहंकारी राजा के हाथ मरने से तो देवी स्वयंप्रभा की गुफा में सुरक्षित पड़े रहना अच्छा है। वहाँ वापस चला जाऊँगा।

हनुमान : आप नहीं जानते युवराज कि वानर शिरोमणि सुग्रीव आपको कितना चाहते हैं। उनका कोई पुत्र भी तो नहीं है जिसके कारण वह आपका शुभ न चाहें।

अंगद : वह तो मुझे युवराज भी न बनाते यदि आर्य राघवेन्द्र ने आज्ञा न दी होती। भला वह राजा बाली के पुत्र को युवराज पद क्यों देते?

हनुमान : महाराज बाली से उनका बैर अवश्य था अंगद! किन्तु धर्मशील राजा सुग्रीव आपको···

अंगद : (क्रोध से) उन्हें धर्मशील कहते हो? अपने बड़े भाई को दुश्मनों की गुफा में अकेले लड़ते छोड़कर, गुफा का द्वार शिला से बन्द कर, उन्होंने धर्म का ही तो काम किया था? धोखे से अपने भाई को मरवा कर उन्होंने धर्म का ही तो काम किया था? जिस मित्र ने उनके कहने से बाली को मार कर उन्हें राजा बनाया उन्हें भी महीनों तक सहायता करने की बात भूल कर उन्होंने धर्म का ही तो काम किया? स्वयं राजधानी में सुख भोगने के लिए रह कर मुझे युवराज होने पर भी इस अंधकारपूर्ण रास्ते में भेजकर उन्होंने धर्म का ही तो काम किया? वीरवर लक्ष्मण का भय न होता तो उस कामांध राजा ने इतना भी न किया होता। जो अपना उपकार करने वाले से प्यार नहीं कर सकता वह अपने दुश्मन के पुत्र से क्या प्यार करेगा?

जामवन्त : अंगद! ऐसा हठ न करो। हनुमान ठीक कहते हैं। सुग्रीव तुम्हारा बुरा नहीं चाहेंगे। और फिर श्री राम ने तुम्हें भरोसे और प्यार से भेजा है। हमें अभी प्रयत्न करना चाहिए। हम धैर्य और साहस क्यों छोड़ें? आप किष्किन्धा के युवराज हैं, चलिये हमारे साथ आगे चलकर हमारा नेतृत्व करिये। आपको राजा सुग्रीव ने हमारा नेतृत्व करने भेजा है। हिम्मत न हारिये। आपकी हिम्मत से ही तो हम सबकी हिम्मत है। हम सीता जी को अवश्य ढूंढ निकालेंगे।

दृश्य दो

[अंगद के पीछे-पीछे जामवन्त, हनुमान आदि वानर समुद्र के किनारे चलकर एक पर्वत के नीचे सुस्ताने के लिए बैठ जाते हैं।]

जामवन्त : अंगद ! कहीं भी तो जनकनन्दिनी के कोई चिह्न नहीं मिलते। हम सभी वानर क्या असफल होकर ही लौटेंगे।

[पर्वत पर पड़ा हुआ विशाल गिद्ध सम्पाति सुनता है।]

सम्पाति : पर्वत की तलहटी पर कौन बन्दर आकर जमा हो गये हैं। ईश्वर भी अच्छे कर्मों का फल घर बैठे भेज देता है। जरूर ये बन्दर मेरे किसी अच्छे कर्म के कारण ही मेरे भोजन के लिए ईश्वर ने भेज दिये हैं। मैं कब से भूखा था। अब एक-एक को आराम से खाऊँगा।

अंगद : यह कौन महात्मा बोल रहे हैं, चाचा हनुमान ! राम का काम करने आये हम वानरों को यह खा जाना चाहते हैं।

हनुमान : लगता है, कोई गिद्ध है।

अंगद : गिद्ध ? एक गिद्धराज जटायु भी थे जिन्होंने श्रीराम के काम के लिए अपने प्राण भी दे दिये थे। और एक यह भी हैं जो राम का काम करने जा रहे बन्दरों को खा जाना चाहते हैं।

सम्पाति : तुम कौन हो भई ? वर्षों बाद ये जटायु का नाम किसने लिया ? क्या तुम जनस्थान में विचरने वाले गिद्ध जटायु को जानते हो ?

अंगद : हम किष्किन्धा से आये बन्दर हैं जो अवध के राजकुमार राम की पत्नी सीता की खोज में इधर भटक रहे हैं। सीता जी को दुष्ट राक्षस रावण उठा ले गया था जनस्थान से ?

सम्पाति : जनस्थान से ? वहाँ जटायु ने उसे रोका नहीं क्या ? मुझे अपने प्राणों से भी प्रिय है मेरा छोटा भाई। बड़ा गुण और पराक्रमी है वह। उसने रावण को मार नहीं भगाया था क्या ?

अंगद : बूढ़े गिद्धराज जटायु ने अपनी शक्ति रहते उसे भरसक रोका था किन्तु वह राक्षस अपनी तलवार से उनके पंख काट कर उन्हें जमीन पर गिरा गया था। श्रीराम ने गिद्धराज की अन्त्येष्टि की थी बाद में।

सम्पाति : **(आश्चर्य से)** जटायु मारा गया ? हाय, मैं यह क्या सुन रहा हूँ ?

(**सिसकने लगता है**) सुनो, तुम लोग मुझे नीचे उतार लो। मेरे पाँव जल गये थे। मैं उतर नहीं सकूँगा। मुझे अपने पास उतार लो (**रोने का सा स्वर। बंदर उसे उतार कर नीचे समुद्र-तट पर लाते हैं**) ठीक। बस ठीक है। मुझे समुद्र-तट पर उतार कर तुमने बड़ा अच्छा किया। तुम्हारा क्या परिचय है वानर? अवध के राजा दशरथ के कुमार राम की पत्नी को रावण क्यों ले गया! दशरथ कुमार से तुम्हारा क्या नाता है?

अंगद : मेरा नाम अंगद है। मैं किष्किन्धा के वानरराज बाली का पुत्र और किष्किन्धा का युवराज हूँ। राजा दशरथ ने अपनी मँझली रानी के कहने पर अपने पुत्र राम को वनवास दे दिया था जिनके साथ उनकी पत्नी सीता जी और उनके छोटे भाई लक्ष्मण भी साथ आ गये। नन में उन्होंने कई बलशाली राक्षसों को मारा। रावण धोखे से सीता जी को अपहरण कर ले गया। हम श्री राम के सेवक हैं। मेरे चाचा वानरराज सुग्रीव राम के मित्र हैं।

सम्पाति : हाँ, हाँ, याद आया अंगद बेटे। मैं इस पहाड़ी पर पड़ा था। एक विशालकाय काला-सा आदमी अपने रथ पर एक सुन्दर युवती को पकड़े हुए लका की ओर जा रहा था। वह बेचारी रो-रोकर 'हा राम! हा लक्ष्मण!' चिल्ला रही थी। वही सीता जी होंगी। और वह दुष्ट रावण ही रहा होगा।

अंगद : गिद्धराज! क्या वह लंका की ओर ही गया था?

सम्पाति : हाँ, निश्चय ही वह लंका गया था। विश्रवा का पुत्र रावण कुबेर का भाई है और विश्वकर्मा द्वारा विशेष रूप से बनायी गयी सुन्दर नगरी लंका, जो चारों ओर से समुद्र से घिरे त्रिकूट पर्वत पर बसायी गयी है, में रहता है। वह बहुत बलशाली है। महा-विद्वान होकर भी, ऋषि पुलस्त्य का नाती होने पर भी, वह महान अहंकारी है। निश्चय ही सीता जी उसके महलों में उसकी बन्दी हैं।

हनुमान : युवराज! गिद्धराज के कथन से यह तो तय हो ही गया कि सीता जी और कहीं नहीं लंका में ही हैं।

अंगद : हाँ, हनुमान चाचा! वह और कहीं नहीं लंका में ही हैं।

सम्पाति : हनुमान! मैं गरुड़-पुत्र हूँ। मेरी दृष्टि इतना विक्षिप्त-सा पड़ रहने पर भी सौ योजन दूर तक तो जाती है ही। मैंने उस रथ को ठीक लंकापुरी के ऊपर तक जाते हुए देखा था।

अंगद : आप धन्य हैं गिद्धराज ! आपने हमारी बड़ी सहायता की।

सम्पाति : सहायता क्या की बेटे, पंख जल जाने से शरीर में शक्ति है नहीं वरना मेरे भाई जटायु की जो मित्रता राजा दशरथ से थी उसे याद करके तो मन करता है जाकर रावण को मारकर अभी सीता बेटी को तुम्हारे हवाले कर दूं। किन्तु लाचारी है। मैं क्या करूँ? मेरा भाई जटायु भी नहीं रहा। मैं क्या करूँ! (**रोने लगते हैं**)

अंगद : लेकिन आपके पंख जल कैसे गये? आपकी यह दशा हो कैसे गयी?

सम्पाति : मैं और मेरा भाई जटायु बड़े ही पराक्रमी और उड़ने में वायु से भी अधिक तेज थे। एक बार हम अपने पराक्रम की परीक्षा लेने इन्द्र से लड़ने चले गये। हमने उन्हें हरा दिया। वह हमें सत्कार देने को तत्पर हो गये। फिर हमने सोचा, अपने उड़ने की शक्ति की भी परीक्षा ले ली जाय। हमने कैलास पर्वत पर बैठे तपस्वियों के सामने प्रतिज्ञा की कि दोपहर होते तक हम सूर्य को छूकर सूर्य डूबते तक पृथ्वी पर लौट आवेंगे।

हनुमान : अंगद! गिद्धराज का यह कौशल तो आश्चर्यजनक है। फिर क्या गिद्धराज?

सम्पाति : हनुमान! तुम्हारी जिज्ञासा सही है बेटे! हम दोनों भाई बड़ी तेजी से सूर्य की ओर उड़ चले। ठीक दोपहर में हम सूर्य के समीप पहुँच गये। पसीने से हम बुरी तरह भीग गये। प्यास से हमारे तालु सूख गये। बेचारा जटायु! छोटा ही तो था (**सुबकने-रोने लगते हैं। फिर सम्हलकर**) सूर्य की भयंकर गर्मी से छटपटाने लगा।

हनुमान : आप ठीक कहते हैं। भगवान अंशुमाली की प्रखर गर्मी का वहाँ पहुँच कर क्या ठिकाना रहा होगा।

सम्पाति : वहाँ से मैंने देखा, सम्पूर्ण पृथ्वी एक छोटी-सी बिन्दी की तरह लगती थी। सूर्य पृथ्वी से बहुत बड़ा लगता था। जटायु उस तेज गर्मी के मारे पंख फड़फड़ाकर नीचे गिरने लगा। मैं सूर्य तक पहुँचा तो न था पर जटायु के ऊपर सूर्य की ओर मैंने अपने पर फैलाकर छाया कर दी। इससे मेरे पंख बुरी तरह जल गये। हम दोनों धरती पर गिर पड़े। जटायु को मैंने जनस्थान में गिरते देखा था और मैं यहाँ आकर गिरा। तब से लाचार हूँ।

अंगद : तब से आप यहीं हैं?

सम्पाति : हाँ। कई बार आत्महत्या कर लेने का मन हुआ। किन्तु मेरे गुरु

निशाकर ऋषि ने कहा था, वह अपने तपोबल से देख रहे हैं कि कभी इक्ष्वाकु वंश के किसी वनवासी राजकुमार की सहायता करने के उद्देश्य से मेरे पंख फिर उग जायेंगे। शायद वह यही राम हों। शायद मैं फिर अपने पंख पाकर रावण से अपने भाई की मृत्यु का बदला ले सकूँगा।

जामवन्त : निशाकर ऋषि का वचन सच होगा गिद्धराज ! आपके पंख उगेंगे।

सम्पाति : देखो, आशा पर संसार है। तुम लोग लंका पहुँचो। किन्तु तुम्हें सौ योजन समुद्र लाँघ कर वहाँ जाना होगा। मेरे पंख होते तो मैं पलक झपकते वहाँ पहुँच जाता।

अंगद : गिद्धराज ! हम किसी तरह वहाँ पहुँचेंगे अवश्य आपने हमारा बड़ा शुभ किया कि ठीक-ठीक जगह बता दी। हमें संशय था कि सीता जी को शायद सीधे लंका न ले जाकर रावण ने यहीं कहीं जंगल में, किसी गुफा में रखा होगा।

सम्पाति : अंगद ! मुझे समुद्र के जल तक ले चलो, मैं जटायु को तिलांजलि दे दूँ। स्नान कर लूँ।

अंगद : चलिये, मैं ले चलता हूँ आपको।

दृश्य तीन

[समुद्रतट-पर]

अंगद : दादा, जामवन्त ! चाचा हनुमान और दूसरे पराक्रमी वानर ! बताइये तो समुद्र को लाँघकर कौन लंका जा सकता है।

[सब चुप रहते हैं।]

अंगद : अरे ! आप सभी चुप क्यों हैं। अपनी-अपनी शक्ति बताइये तो।

हनुमान : युवराज ! गज कहते हैं कि वह दस योजन की छलाँग मार लेंगे। गवाक्ष कहते हैं वह बीस योजन तक लाँघ लेंगे। शरभ वानर तीस योजन की छलाँग लगाने को कहते हैं। भूषण चालीस योजन तक लाँघने को कहते हैं। लेकिन वानर गंधमादन पचास योजन तक लाँघने को कह रहे हैं। वानर वीर मैन्द साठ योजन की बात कहते हैं। बली द्विविद सत्तर योजन तक लाँघ लेंगे। सुषेण जी कहते हैं कि वह एक छलाँग में अस्सी योजन तक लाँघ जायेंगे।

जामवन्त : बूढ़ा होने पर भी मैं नब्बे योजन तक कूद सकता हूँ ।

अंगद : जामवन्त, दादा ! मैं एक बार साहस करके सौ योजन लाँघ कर लंका तक पहुँच तो जाऊँगा पर वहाँ से इस महासागर को लाँघने की वही शक्ति मुझमें रहेगी कि नहीं, मैं कह नहीं सकता । फिर भी मैं तो इस सौ योजन समुद्र को लाँघने के लिए तैयार हूँ ।

जामवन्त : न-न, युवराज ! मैं जानता हूँ कि आप अपने यौवन के उत्साह में सौ योजन अवश्य लाँघ जायेंगे । वहाँ लंका में आपका सहायक कौन होगा । अपने युवराज को हम जोखिम में नहीं डालेंगे । राजा लड़ता है तो चारों ओर से सेना उसकी रक्षा करती है । वहाँ आपकी रक्षा राक्षसों से युद्ध छिड़ जाने पर कौन करेगा ?

अंगद : (क्रोध में) मुझे आप जाने नहीं देंगे और आपमें से कोई जावेगा नहीं तो हम सीता जी का पता लगायेंगे कैसे ?

जामवन्त : वीर हनुमान यह काम करेंगे ।

अंगद : वीर हनुमान कैसे कर सकेंगे ?

जामवन्त : मैं बूढ़ा अवश्य हूँ किंतु मुझे इसलिए साथ भेजा गया है कि मैं जानता हूँ हनुमान ही यह काम कर सकेंगे ?

हनुमान : दादा जामवन्त ! मुझे विश्वास नहीं हो रहा कि मैं इतनी लम्बी छलाँग लगा लूँगा ।

जामवन्त : हनुमान ! तुम वायु-पुत्र हो, इन्द्र की समस्त अप्सराओं में आगे रहने वाली प्रंजिकस्थला अप्सरा एक बार शापवश कपियोनि में पैदा हुई । उस समय वह वानरराज कुंजर की पुत्री और अपने मन से रूप धरने वाली पैदा हुई । इस धरती पर उससे अधिक कोई भी सुन्दरी नहीं थी । उसका नाम अंजना था । वह वानरराज केसरी की पत्नी थी । एक बार वह मानवी स्त्री का सुन्दर रूप धरकर एक पर्वत शिखर पर खड़ी थी । उस सुन्दरी पर वायु देवता मोहित हो गये और उन्होंने उसे अपनी बाँहों में लेकर महान पराक्रमी पुत्र को जन्म देने का वचन दिया ।

हनुमान : यह बात तो दादा, मैं जानता हूँ कि मेरे पिता वायु देवता हैं ।

जामवन्त : बाल्यकाल में ही जंगल में प्रातः के उगे सूर्य को देखकर तुम उसे पकड़ने आकाश में उड़ गये थे । तुम्हें सूर्य के समीप देखकर इन्द्र ने वज्र से प्रहार कर तुम्हारी हनुमानी ठोड़ी को टेढ़ी कर दिया था । इस पर वायु देवता ने रुष्ट होकर अपना काम बन्द कर दिया । संसार में वायु के बिना त्राहि-त्राहि मच गयी थी । तब उन्हें खुश करने के लिए ब्रह्मा और इन्द्र ने तुम्हें किसी के द्वारा भी

न मारे जाने, अपनी इच्छा से मरने, वायु से भी तेज गति से विचर सकने और बल में अतुलनीय होने का वरदान दिया था। तुममें महान शक्ति है हनुमान ! अपनी शक्ति को पहचानो।

हनुमान : हाँ-हाँ, मैं भी समझ रहा हूँ। यह देखो मेरा बढ़ा हुआ शरीर। कहो तो अभी इस समुद्र को पी डालूँ। कहो तो लंका उखाड़कर किष्किन्धा ले चलूँ। कहो तो रावण को मारकर सीता माता को श्री राम के पास पहुँचा दूँ।

जामवन्त : नहीं। जो काम हमें सौंपा गया है वही करो। लंका जाकर सीता जी का समाचार लाकर श्री राम को दो। आगे वह स्वयं ही कुछ करेंगे।

हनुमान : युवराज अंगद ! मैं लंका प्रस्थान कर रहा हूँ, कहिये तो रावण की मुश्कें बाँध कर यहीं इसी समुद्र-तट पर आपके चरणों में डाल दूँगा। कहिये तो जनकनन्दिनी को भी साथ लेता आऊँगा, ताकि अवधकुमार राम को अधिक प्रतीक्षा न करनी पड़े।

अंगद : आप जाइये पवन कुमार ! केवल सीता माता का पता लगाकर उनसे बातें करके और उन्हें धीरज बँधाकर लौट आइये। आगे श्रीराम क्या करेंगे उनसे मिलने पर ही पता चलेगा। हम उतना ही काम करें जितना हमें बताया गया है। अपने मन से कोई उतावली न करें ! आप बहुत सक्षम हैं यह जानते हुए भी हम सबकी शुभ कामनाएँ आपके साथ हैं।

हनुमान : यह देखिये, मैंने अपना शरीर कितना हल्का बना लिया है। आज मुझे पता चला है कि मैं कितना बलवान हूँ।

जामवन्त : यह तुम्हें ब्रह्मा जी का शाप जो था कि जब तक तुम्हें याद नहीं दिलाई जावेगी तब तक तुम अपने बल को भूले रहोगे। तुम्हारी शक्ति सदा अच्छे काम में ही लगेगी। वरना जो पैदा होने के बाद ही आकाश तक उड़कर सुबह के लाल सूरज को खाने का साहस कर सकता है उसके बल का क्या ठिकाना !

हनुमान : (**हँसकर**) तो प्रणाम लीजिये। मैं लंका की ओर चला। शीघ्र लौटकर यहीं मिलूँगा।

दृश्य चार

[समुद्र के ऊपर उड़ते हनुमान]

सुरसा : हा हा हा ! (**महीन हंसी**)हा हा हा ! कौन जानवर है रे ! जिधर मैं मुँह बढ़ा रही हूँ तू उधर से कभी बायें जा रहा है तो कभी दायें। जानता नहीं मैं बूढ़ी नागिन सुरसा हूँ। कोई भी शिकार मुझसे बचता नहीं। तू आकाश मार्ग से जा रहा है इसलिए राक्षसी बनकर आकाश में आई हूँ।

हनुमान : (**हाँफते स्वर में**)अरी सुरसा ! कोई और शिकार ढूंढ़ ले न। नीचे इतने बड़े समुद्र में तुझे कोई शिकार ही नहीं मिला ! अपनी बूढ़ी आँखों को फैलाकर किसी और को तलाश ले न ?

सुरसा : (**हँसकर**)हा हा हा ! क्यों रे वानर, मैं तुझे क्यों न खाऊँ ? भूखी हूँ। मछली, कछुए, केकड़े खाते-खाते मन भर गया है। आज तू मिला है वर्षों बाद---जमीन का एक प्राणी। मैं तुझे खाऊँगी।

हनुमान : (**हाँफते स्वर में**)तो ले खा। जितना बड़ा मैं हूँ उतना बड़ा तेरा मुँह भी है ! (**अपना आकार बढ़ा लेते हैं।**)

सुरसा : अच्छा, तू अपना शरीर बढ़ा भी लेता है ? मैं भी अपना मुँह बढ़ा लेना जानती हूँ। ले, ले, और खोलती हूँ। ले, ले, जितना कहो मैं अपने जबड़े फैला सकती हूँ।

[हनुमान सूक्ष्म रूप बनाकर उसके मुँह से घुमकर बाहर निकलते हुए]

हनुमान : माँ ! तेरी इच्छा पूरी हो गई। मैं तेरे मुँह से पेट में होते हुए बाहर आ गया हूँ। किसी जरूरी और बड़े काम से जा रहा हूँ। अब जाने दे। माँ ! क्षमा कर दे। मैंने तेरी प्रतिष्ठा बनाये रखी।

सुरसा : तूने मुझे माँ कहा ? सब मुझे दुष्टा कहते हैं। तूने मुझे माँ कहा ! हा हा हा ! जा बेटे ! तू जिस काम के लिए भी जा रहा है सकुशल जायेगा और सफल होकर आवेगा। जा-जा, हा हा हा !

हनुमान : अरे, कौन है तू ? मैं बढ़ता जा रहा हूँ। तू कौन है जो मेरी गति रोकने के लिए बीच में पहाड़ बनकर बैठ गया है। मुझे बढ़ने दे भई। समय कम है। मुझे बढ़ने दे।

मेरु : मैं हूँ मेरु पर्वत। समुद्र ने मुझे बताया कि मेरे मित्र पवन का पुत्र समुद्र के ऊपर हवा में लहर खाता हुआ सुदूर लंका की ओर जा रहा है। इसीलिए मैं आगे बढ़ आया हूँ बेटे।

हनुमान : चाचा, मेरा प्रणाम लें ! मुझे आगे बढ़ने दें।

मेरु : नहीं हनुमान ! तुम दूर से आ रहे हो। तो मैं समुद्र के बीच से यहाँ आकाश तक उठ जाता हूँ। तुम मेरी पीठ पर बैठकर थोड़ी देर सुस्ता लो तब आगे बढ़ना। वरना पवन मुझसे कहेगा कि तुम्हारे रहते मेरे बेटे को इतना कष्ट उठाना पड़ा।

हनुमान : (**हाँफते स्वर में**) चाचा ! मैं जब कोई काम शुरू कर देता हूँ तो काम के बीच कभी भी सुस्ताता नहीं हूँ। आप थोड़ी देर टिकने की बात कह रहे हैं और कह रहे हैं आपसे पवन देवता नाराज हो हो जावेंगे, तो लीजिये, अपनी दाहिनी भुजा आप पर थोड़ी देर के लिए टेक अवश्य लेता हूँ किन्तु आपकी पीठ पर आराम नहीं करूँगा। लीजिये, मैं आ गया न, अब जाने दीजिये। जै सियाराम। (**उड़ने की ध्वनि**)

[लंका में पहुँचकर]

हनुमान : कितना सुन्दर प्रदेश है ! यह लंका तो बड़ी सुन्दर जगह है। अच्छा, ऊपर पहाड़ी पर वो रहा रावण का स्वर्ण-महल। ये रहे मंत्रियों, सेनानायकों के महल। वह उधर जो सुन्दर-से घर दिखाई दे रहे हैं वे अवश्य राजनयिकों के घर होंगे। उधर बाजार में, नगर में बड़ी चहल-पहल है। थक गया हूँ। थोड़ी देर सुस्ता लूँ। दिन में नहीं रात को ही राजमहल से लेकर एक-एक घर छान मारूँगा। जहाँ भी सीता माता मिलेंगी वहीं जा कर ठहरूँगा।

दृश्य पाँच

[ढूँढ़ते हुए एक घर के पास रुक कर अन्दर जाना। वहाँ आरती के स्वर आ रहे हैं।]

हनुमान : जय ईश्वर की ! जय जगदम्बा की ! जय श्री राम !

विभीषण : इतने प्रात: ही मेरे घर में आप जैसे पवित्र मुनि ने आकर मुझे कृतार्थ कर दिया। मैं ईश्वर-भक्त हूँ। आप अन्दर आइये न।

हनुमान : लंका में कोई ईश्वर-भक्त भी है ! देखकर आश्चर्य होता है।

विभीषण : प्रभु ! आपने तो ऐसी ही बात कह दी जैसे कोई अयोध्या में भी आकर कहे कि अरे, अयोध्या में भी कोई पापी रहता है ! यह जान कर आश्चर्य हुआ। मुनि ! क्या काशी में कोई पापी है ही नहीं।

हनुमान : तुम धन्य हो वत्स ! इस लंका में मैंने केवल तुम्हारा घर देखा जो मन्दिर की तरह है, शान्त और पवित्र है और जहाँ सुबह-सुबह

ईश्वर की प्रार्थना हो रही है। इसीलिए वत्स, मैं अचानक यहाँ रुक गया।

विभीषण : संन्यासी! आप जैसे सत्पुरुषों का दर्शन इस लंकापुरी में दुर्लभ है। आपने किसी तरह मुझ अकिंचन को दर्शन दिये हैं तो पहले मेरे मन्दिर का यह विष्णु-प्रसाद लें। लीजिये भगवन! (**प्रसाद देते हैं।**)

[हनुमान प्रसाद ग्रहण करते हुए]

हनुमान : संत विभीषण! लो मैं अपना साधुवेश उतारकर सही रूप धारण करता हूँ। मैं पवन-पुत्र हनुमान हूँ।

विभीषण : तुम हनुमान हो? पवन-पुत्र हो? तुम्हें जानता हूँ मैं। मैंने धर्म और संस्कार की सारी बातें लंका में रहकर भी या तो पढ़ी हैं या पता की हैं। तुम हनुमान हो तो तुम अजेय हो। तुम्हारी शक्ति का कोई मुकाबला नहीं है।

हनुमान : विभीषण! मुझे तुम सीता जी का पता बता दो।

विभीषण : सीता जी का पता मैं बता दूंगा। क्योंकि मेरी पत्नी ने कहा था कि बाहर देश से लायी हुई एक सुन्दर तरुणी को रावण ने अपने महल की अशोक वाटिका में बन्दी बनाकर रखा है।

हनुमान : अशोक वाटिका में? कहाँ है यह अशोक वाटिका?

विभीषण : राजमहल के दक्षिण में एकदम समुद्र-तट से सटी हुई है। वाटिका के बाहर समुद्र की ओर बड़ी-सी दीवार है। तीनों ओर से घेरकर वह दीवार राजमहल की ओर छोटी हो गई है। राजा जब चाहे राजमहल से उस वाटिका में जा सकता है। विहार-वाटिका है वह।

हनुमान : विभीषण! मुझे अब सीता जी से अवश्य मिलना है।

दृश्य छः

[हनुमान का अशोक वाटिका में जाना। पेड़ पर चढ़कर बैठ जाना। तभी रावण का मन्दोदरी और दूसरी दासियों सहित आना। रावण मदिरा में धुत है। उसके पाँव लड़खड़ा रहे हैं।]

सीता : त्रिजटे! देखा, इधर मुख्य द्वार से तेरा लंकेश रानी सहित इधर आ रहा है। मुझे उससे बड़ा डर लगता है त्रिजटा!

त्रिजटा : हम भी तो असहाय हैं सीते!

[रावण सीता के समीप आता है।]

रावण : कहो राम की प्यारी सीता ! अब भी उम्मीद है कि तेरा वह डरपोक पति आकर तुझे रावण से छीन ले जावेगा।

सीता : लेकिन मेरा विश्वास कहता है कि वे अवश्य आयेंगे और मुझे ले जायेंगे।

रावण : (क्रोध से) वे आवेंगे, आवेंगे। आखिर तेरे उनके आने की मैं कब तक प्रतीक्षा करूँ ! हजार बार कह चुका हूँ कि मेरी रानी बनोगी तो संसार के सारे सुख पा जाओगी। पटरानी बना दूँगा तुम्हें। क्यों मन्दोदरी, इसको समझाओ कि मेरी पटरानी हो जाने पर यह कितनी सुखी होगी।

सीता : मैं रानी मन्दोदरी का बुरा भी नहीं देखना चाहती। वह बेचारी पटरानी बनी रहे। मुझे तो मेरे आर्य आकर ले ही जावेंगे।

रावण : ले ही जावेंगे ! इतनी लम्बी प्रतीक्षा अब मैं नहीं करूँगा। ज्यादा से ज्यादा एक महीने का समय और देता हूँ।

सीता : ठीक है रावण, ठीक है। मैं तेरे उपकारों की आभारी हूँ। तू समर्थ था। यहाँ लाते ही मुझे जबरदस्ती अपनी रानी बना लेता तो मैं क्या कर लेती। अबला हूँ, लेकिन तूने अब तक मुझे बड़े सम्मान से औरतों के साथ रखा है। मैं तेरे इस उपकार की आभारी हूँ।

रावण : मुझसे आप कहकर बोला करो। मैं लंकेश हूँ जिससे इन्द्र, वरुण, अग्नि, वायु और पृथ्वी तक थरथराते हैं।

सीता : सचमुच ही पूज्य हो रावण ! मैं आप तो क्या श्रद्धेय भी कहने को तैयार हूँ।

रावण : (हँसकर) हा हा हा ! हा हा हा ! सुन रही हो मन्दोदरी ! सीता मुझे श्रद्धेय कहती है। लेकिन सीता, मैं तेरी चिकनी-चुपड़ी बातों में आऊँगा नहीं। तुझे अब मैं ठीक एक महीने का समय दे रहा हूँ। इस एक महीने के अन्दर या तो तेरा पति राम तुझे मुझसे जीतकर ले जावे अन्यथा एक महीने बाद तुझे मेरी पटरानी बनना पड़ेगा। इसके अलावा फिर तेरे पास कोई विकल्प नहीं रहेगा।

सीता : लंकेश ! हाँ मुझे इतना समय और दे दो। निश्चय ही मेरी आत्मा कहती है कि मेरे आर्य मुझे ले जावेंगे।

रावण : ठीक है। मन्दोदरी, चलो ! त्रिजटा, इसका ध्यान रखना।

[सीता अशोक वन में बैठी है। त्रिजटा और दूसरी राक्षसी साथ हैं। ऊपर पेड़ पर हनुमान बैठे हैं।]

सीता : सुना तुमने त्रिजटा ? लंकेश रावण एक महीने की और मुहलत दे गया है। क्या पता तब तक भी मेरे आर्य आ पायेंगे कि नहीं !

उन्हें पता लग भी पावेगा कि मैं कहाँ हूँ ?

त्रिजटा : रानी ! आप इतने हतोत्साह क्यों होती हैं ?

सीता : इस एक महीने में मेरे राम क्या कर लेंगे ? इतने मास बीतने पर न आ सके तो अब क्या आ पावेंगे ? जाने कहाँ हैं ? कैसे हैं ?

त्रिजटा : हो सकता है, आ ही जावें ।

सीता : शायद उन्हें पता ही नहीं है कि मैं कहाँ हूँ ? अब तो रावण ने केवल एक महीने का समय दिया है। केवल एक महीने का।

त्रिजटा : कल राम मेरे सपने में आए थे। आपके राम अवश्य आते ही होंगे।

सीता : सपने सच नहीं होते त्रिजटा ! आना होता तो आ जाते । त्रिजटा, रावण ने पटरानी होने का समय मेरे लिए बाँध दिया है। बच सकने का मेरे पास अब उपाय भी क्या है ? बस एक ही रास्ता है कि मैं अग्नि को समर्पित हो जाऊँ। अपना जीवन होम कर दूं।

त्रिजटा : ऐसा न कहो सीते ! ऐसा नहीं कहते। जीवन इतना सस्ता नहीं हुआ करता।

सीता : सखी, सोच तो। तुझे तेरे पति से छीन कर कोई दूसरा पुरुष अपनी पत्नी बनाना चाहे तो क्या तू स्वीकार कर लेगी ?

त्रिजटा : स्वीकार करने से तो मर जाना पसन्द करूँगी, रानी !

सीता : तो त्रिजटे ! वही तो मैं भी कर रही हूँ। तब तू मुझे क्यों मना कर रही है ? मेरी रक्षा का और उपाय भी क्या है ?

त्रिजटा : रानी ! तुम्हारा दुःख मुझसे देखा नहीं जाता। फिर भी सोचूंगी। सुबह कुछ उपाय बताऊँगी। अब तो रात बहुत हो चुकी। तुम भी सो लो थोड़ी देर। चिन्ता में ही घुलती जा रही हो, थोड़ा आराम तो कर लो।

सीता : मेरा तो भाग्य ही सो गया त्रिजटे ! जिसका भाग्य सो जाय उसके लिए आराम का अर्थ क्या रह जाता है। खैर, तुम तो सो लो। जाओ, मैं ठीक हूँ।

[सीता अकेले अशोक के वृक्ष के तले लेटी है। हनुमान उसी वृक्ष पर बैठे हैं।]

हनुमान : **(त्रिजटा को जाते देखकर)** जो हाल यहाँ अवधकुमारी का है, वही वहाँ है श्री राम का। खोयी-सी सुबह, बिसरी-सी दुपहर, हाल खराब है और भी शाम का। अन्तर बस इतना, इधर अकेली रानी, उधर सेना असंख्य साथ है। भाग्य अब रावण का, रावण की सेना का केवल श्री राम के हाथ है।

सीता : **(चौंककर सुनती हुई)** आँखें तो मेरी खुली हैं, तब यह कैसा

सपना ? यहाँ कौन आर्य राम की बात करने वाला हो सकता है अपना ? भला अयोध्या से निष्कासित मेरे वनवासी और वियोगी आर्य के पास असंख्य सेना कहाँ से हो सकती है ? (**हँसकर**) राक्षस की माया मैं जानती हूँ। माया करने वाले राक्षस, तू जो भी है, मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मैं सतीत्व वाली दृढ़ संकल्प नारी हूँ।

हनुमान : सपने भी सच हो जाते हैं, अपरिचित भी अपने हो जाते हैं। विश्वास करें तो बीज सत्य का, सपने ही तो बो जाते हैं। त्रिजटा का भी सच सपना था, आपका सपना भी सच्चा है। जिसे आप माया समझी हैं माँ ! वह आपका ही बच्चा है।

सीता : (**चौंककर**) बच्चा ? कैसा बच्चा ? मेरा यहाँ कोई नहीं है। (**चिल्लाकर**) नहीं, नहीं, नहीं ! मुझे धोखा मत दो। मेरा कोई बच्चा नहीं है। (**रोकर**) और अब तो··· अब तो··· मैं कल सुबह ही समाप्त हो जाऊँगी। मेरा कोई बच्चा नहीं हो सकेगा (**फूट-फूटकर रोती हैं।**)

[पाँवों पर मुद्रिका गिरती है। चौंककर—]

सीता : (**मुद्रिका उठाकर देखते हुए**) अरे ! मुद्रिका ! मेरे प्राण की मुद्रिका वही मुद्रिका जो मैंने उनकी (**रोते स्वर में**) सुकोमल अंगुली में ब्याह के समय पहनाई थी। (**रोते-सिसकते**) यह मेरे प्राण की प्राणों से भी प्यारी मुद्रिका यहाँ कैसे आ गयी ? (**आँखों से मुद्रिका को छूकर**) मेरे आर्य की यह मुद्रिका (**चिल्लाकर**) राक्षसराज ! क्या तूने मेरे आर्य को मार डाला है ? उनकी यह मुद्रिका तू मुझे ठगाने ले आया है ? तभी न एक महीने का समय दिया तूने मुझे। धोखेबाज ! (**जोर-जोर से रोती है।**)

[हनुमान पेड़ से नीचे उतर कर, सीताजी के सामने घुटने के बल बैठकर हाथ जोड़कर]

हनुमान : माँ ! मैं श्री राम का दूत पवन-पुत्र हनुमान हूँ। श्री राम इस समय ऋष्यमूक पर्वत पर हैं। वानरों के राजा सुग्रीव असंख्य वानर, रीछ और लंगूरों की सेना के साथ उनकी सेवा में हैं। मैं अपने कुछ साथियों के साथ आपको ढूँढते हुए उन्हें समुद्र के किनारे छोड़कर किसी तरह अकेले यहाँ तक पहुँच सका हूँ।

सीता : (**संयत स्वर में**) मुझे विश्वास नहीं होता। मुझे तो तुम रावण की कोई कुटिल चाल लगते हो। ऐसी ही चाल खेलकर तो रावण जोगी का रूप बनाकर मुझे पंचवटी से हर लाया था। मैं तुम पर

विश्वास नहीं कर सकती ।

हनुमान : इस मुद्रिका को राघवेन्द्र ने इसीलिए मुझे दिया था कि आप मुझे उनके दूत के रूप में पहचान लें । क्या आपने उन्हें इतना शक्ति-हीन समझ लिया है कि रावण उन्हें मार लेगा ? जिस किष्किन्धा नरेश वानरराज बाली की काँख में रावण दबा पड़ा रहा, उसे उन बलशाली राम ने एक ही तीर से समाप्त कर दिया । उन्हें भला रावण तो क्या साक्षात यमराज भी नहीं मार सकता । वे दोनों भाई सुखी हैं । केवल आपके बिना उन्हें असीम दु:ख भोगना पड़ रहा है । आपकी खोज में ही हम सैंकड़ों बलशाली वनवासी बंदर रीछ आदि वन, गुफा, पर्वत, समुद्र तट में भटक रहे हैं । मेरे धन्य भाग्य कि मुझे आप मिल गयीं । आपको खोजने का श्रेय मुझे मिला यह मेरा सौभाग्य है ।

सीता : (हर्ष से) सच ! वे दोनों भाई सुखी हैं । कुशल से हैं ? मुझे भूले नहीं हैं ? पवन-पुत्र ! मुझे भी विश्वास है कि वे अजेय हैं । उन्हें रावण नहीं मार सकता ।

हनुमान : आप तो उनकी धर्मपत्नी हैं। मुझसे अधिक उन्हें जानती हैं । मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि आपके पतिदेव समस्त धनुर्धारियों में श्रेष्ठ हैं और पूरी तरह कुशल से हैं । बड़े भाई की सेवा में निमग्न श्री लक्ष्मण भी कुशल से हैं । उन दोनों भाइयों को आपसे न मिल पाने का असीम दु:ख है ।

सीता : यदि तुम मेरे आर्य के दूत हो तो मेरा आशीर्वाद तुम्हारा मंगल करेगा । यदि सारी लंका को छानकर तुम यहाँ तक आये हो तो मैं समझ लेती हूँ कि तुम बहुत बलवान हो बुद्धिमान हो । तुम्हारी रक्षा के लिए मुझे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि यहाँ चिड़िया के आने पर भी रावण ने रोक लगा रखी है । और फिर इतने बड़े समुद्र को लाँघ कर आना कोई खेल नहीं है । निश्चय ही ऐसा पराक्रम आर्य के सहायक ही कर सकते हैं । लेकिन, फिर भी रावण के छल से मैं डरती हूँ ।

हनुमान : मुझ पर संदेह न करें देवि ! मैं मायावी रावण का कोई रूप नहीं हूँ ।

सीता : आशंका इसलिए होती है कि मेरे राम का वानरों से कैसे सम्बन्ध हो सकता है ? मनुष्य और वानर की मित्रता का कारण क्या हो सकता है ?

हनुमान : राम की हम वानरों से, हम वनवासियों से मित्रता एक सुखद

संयोग था। पंचवटी से रावण द्वारा छल-कपट से आपके हरण के बाद राम और लक्ष्मण दोनों भाई आपको खोजते-खोजते ऋष्य-मूक पर्वत आये। वहाँ उनकी वानरराज सुग्रीव और मुझसे भेंट हुई। आकाश-मार्ग से जाते समय आपने अपने वस्त्र और आभूषण ऋष्यमूक पर्वत पर गिराये थे। उन आभूषणों को देखकर अवध कुमार फूट-फूट कर रो दिये। वानरराज सुग्रीव ने उन्हें आपको खोजने में, आपको पाने में सहायता करने का वचन दिया। अंततो-गत्वा मुझे आपको खोजने में सफलता मिल गयी है। आर्य राम ने सुग्रीवराज को उनके बड़े भाई बाली के अत्याचार से मुक्त कराया, बाली का वध करके सुग्रीव को राज्य दिलाया। श्री राम के हम पर अनन्त उपकार हैं पर उनका दुख आपके न मिल पाने से असीम हो गया है।

सीता : ओह, मेरे लिए वे इतने दुखी हैं ! वे दोनों भाई किसी कष्ट में तो नहीं हैं ? सुख से तो रह रहे हैं न ?

हनुमान : राघव सुखी और कुशल तो हैं किन्तु उनका सुख जैसे उनसे छिन गया है। वे धीरज से सब काम तो करते हैं किन्तु अक्सर अन्यमनस्क से हो जाते हैं। अपने आप में, अपने विचारों में खो जाते हैं।

सीता : आज कितने महीनों बाद मुझे उनका समाचार मिला है। लगता है वे स्वयं मेरे आगे खड़े हैं। क्या मैं रावण को उसके बन्धु-बान्धवों सहित शीघ्र मरा हुआ देख सकूँगी ! जिन श्री राम को मैं अपने माता, पिता, भाइयों से भी अधिक प्यारी थी। वे इतने दिनों मेरे बिना कैसे रह रहे होंगे ? हनुमान ! सच वे मेरे लिए बहुत व्याकुल रहते हैं न ?

हनुमान : बहुत अधिक। उन्हें अभी तक यह पता ही नहीं है कि आप हैं कहाँ ? रावण आपको कहाँ ले गया ? कहाँ छोड़ गया ? इसीलिए जैसे दानवों के यहाँ से इन्द्र शची को उठा ले गये थे वे आपको नहीं ले जा सके। अब जब मैं आपके यहाँ होने का समाचार उन्हें दूँगा तो वे सेना सहित आकर विजय कर आपको ले जावेंगे।

सीता : आर्यश्रेष्ठ ! तुम उनसे जाकर कहना कि वह शीघ्र आकर मुझे यहाँ से ले जावें।

हनुमान : आर्ये ! रघुनाथ आकर आपको ले जावेंगे। लेकिन ऐसा होने में कुछ समय लगेगा, इसलिए मेरा एक निवेदन है कि आप कृपा कर मेरी पीठ पर बैठ जाइये। मैं समुद्र को लाँघ कर आकाश-मार्ग से अभी आपको श्रीराम के पास ले चलता हूँ। मुझे इन राक्षसों का

कोई भय नहीं है। जैसे आया था वैसे ही लौट जाऊँगा। मुझमें वायु का वेग है और अग्नि का तेज है।

सीता : नहीं हनुमान ! मैं केवल अपने आर्य के साथ ही जाऊँगी। उनसे कहना, मुझे आकर शीघ्र ले जावें। क्योंकि रावण ने मुझे केवल एक महीने का समय और दिया है। कहा है कि यदि एक महीने में मेरे मनदेवता मुझे न ले जा सके तो फिर वह जबरन मुझे अपनी पटरानी बना लेगा। ऐसा होने से पहले उनसे कहना, मैं, जीवित नहीं रहूँगी। तुम न आ गये होते तो मैं कल प्रात: ही अपने को अग्नि को सौंप देती। तुम्हारे आने से जीवन की आस बँध गयी है।

हनुमान : श्रीराम आयेंगे और आपको ले जायेंगे। मैं लौटकर जाऊँगा तो आर्य राम पूछेंगे कि मेरी सीता ने क्या पहचान दी ? मुझे अपनी कोई निशानी दीजिये माँ !

सीता : श्रीराम से कहना कि तुम्हारी पत्नी सीता ने कहा है कि प्राणनाथ चित्रकूट के पास मंदाकिनी के तट पर वह घटना याद करें जब एक कौवे ने आकर मुझे लहूलुहान कर दिया था। तब आपने अपनी पत्नी सीता के प्रति जो प्रेम-व्यवहार दिखाया था, सीता उसी व्यवहार की आशा लगाये आज भी जीवित है।

हनुमान : लेकिन माँ ! उसका पूरा सन्दर्भ भी तो मैं जान लूँ।

सीता : (**हँसकर**) वह हम दोनों के बीच की बात थी, तुम बस घटना याद दिला देना। यह घटना केवल हम दोनों ही जानते हैं और कोई तीसरा नहीं जानता। इससे वह समझ लेंगे कि तुम मुझसे अवश्य मिले हो।

हनुमान : जैसी आज्ञा हो। माँ ! मैं बहुत भूखा हूँ, आप कहें तो यहाँ बहुत अच्छे फल लगे हैं, कुछ खा-पी लूँ।

सीता : कपि ! यहाँ मैं तुम्हारा सत्कार भी क्या कर सकती हूँ। तुम फल खा लो किन्तु···

हनुमान : इसकी चिन्ता आप न करें। मैं भी तो श्रीराम का दूत हूँ।

[प्रात: हो गयी है। सीता जी अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हैं। राक्षसियाँ जगकर उठ बैठती हैं। वानर हनुमान वाटिका में फलों को तोड़कर इधर-उधर फेंकते हैं। पेड़ों को जड़ से उखाड़ते हैं। शाखाओं को उठाकर समुद्र में फेंक देते हैं। सारा उपवन नष्टप्राय हो जाता है। राक्षसियाँ इधर-उधर दौड़ती-भागती-चिल्लाती हैं।

सीता के पास आकर—]

एक राक्षसी : सीता ! यह बन्दर जो अभी तुमसे बातें कर रहा था यह कौन है ? तुमसे क्या बातें कर रहा था ? यहाँ किसलिए आया है ? तुम डरो नहीं, बता दो इसने तुमसे क्या बातें कीं ?

सीता : अपनी इच्छा के अनुसार रूप धर सकने वाले राक्षसों को मैं क्या समझूँ और क्या पहचानूँ ? साँप के पैरों को साँप ही पहचान सकता है। इसे देखकर तो मैं भी बहुत डरी हुई हूँ। मैं तो इसे रावण का ही कोई रूप समझ रही थी। यह मुझसे ठीक वैसी ही बातें कर रहा था जैसे रावण वानर रूप धरकर श्रीराम का मित्र बनने का ढोंग कर रहा हो। कहता है मैं हनुमान हूँ।

दूसरी राक्षसी : सीता ठीक कहती है। यह कोई मायावी ही लगता है। बेचारी सीता उसे क्या जाने ? वह तो स्वयं यहाँ परदेशी है। चलो, अशोक वाटिका और प्रमदवन को नष्ट करने वाले वानर के बारे में हम तुरन्त राजा रावण को खबर दें। वरना कल यही होगा कि समय पर बताया क्यों नहीं गया ? तुरन्त सेना नहीं आयेगी तो सचमुच यह विकराल वानर तो सारा उपवन घड़ियों में उजाड़ कर रख देगा। यहाँ की हर खबर हमें महाराज को ही सीधे देनी होती है, उनके पास चलो।

दृश्य सात

[मंच पर पहले अँधेरा फिर प्रकाश उभरता है।]

[रावण का महल। संरक्षिकाओं का आना। रावण को नतमस्तक होकर प्रणाम करना।]

पहली राक्षसी : महाराज ! अशोक वाटिका में एक वानर घुस आया है। हमने उसे भगाने के लिए हजारों प्रयत्न किये किन्तु इसके बावजूद वह विशाल वानर वहाँ घुस आया है। उसने पहले तो सीता से बात की फिर विहार के फल-फूल, पेड़-पौधे तोड़-उखाड़ रहा है। वह वानर अभी भी वहीं मौजूद है। समय से राजन को सूचना देने के विचार से ही हम इस समय यहाँ तक आयी हैं।

रावण : तुम सब सीता की रक्षा में हो और तुम्हें पता ही नहीं वह कौन है ? सीता से क्या उसने शान्त रहकर बात की थी ?

दूसरी राक्षसी : जी हाँ, उससे बड़े प्रेम से बात हुई थी।

रावण : क्या बात !

दूसरी राक्षसी : जी ! हम नहीं जान सकीं ।

रावण : तुममें से कोई भी समीप नहीं थी ?

पहली राक्षसी : जी नहीं । लेकिन सीता कहती है वह कोई मायावी राक्षस है । रूप बदल कर आया है और अपना नाम हनुमान बताता है ।

दूसरी राक्षसी : हम उसे साधारण वानर समझी थीं किन्तु जब उसने उपवन उजाड़ दिया तो हमें आपके पास आना पड़ा ।

रावण : (**गरज कर**) तुम जिस हनुमान नाम के वानर का वर्णन कर रही हो अवश्य ही वह वनवासी राम का कोई दूत है (**ताली पीटकर**) किंकर ! किंकर ! !

[कुछ सेवकों के साथ किंकर प्रमुख आता है ।]

किंकर : लंकेश ! प्रस्तुत हूँ ।

रावण : किंकर ! कोई वानर मेरी अशोक वाटिका में घुसकर उसे नष्ट कर रहा है । (**गरजकर**) तुम अपने किंकरों के साथ तुरन्त जाकर उसे और यदि उसके साथी हों तो उन्हें भी पकड़ कर मेरे पास लेकर आओ । यदि जीवित पकड़ में न आये तो उसे मार कर लाओ ।

किंकर : जो आज्ञा महाराज की । मैं किंकर प्रमुख सारे किंकरों सहित अभी • वहाँ जाकर आज्ञा पालन करूँगा ।

[मंच पर अँधेरा । फिर प्रकाश]

[मंत्री का कक्ष में आना ।]

रावण : मंत्री ! एक वानर से इतने सारे किंकर मारे गये । प्रमाद में उस वानर ने अशोक विहार में बना मेरे चैत्य प्रासाद का भी विध्वंस कर डाला । उसके बाद इतने वीर राक्षस उस वानर ने मार डाले फिर मैंने प्रहस्त के बलवान पुत्र महाबली जम्बुमाली को रण के लिए भेजा । उस वानर ने उसे भी सेना सहित नेस्तनाबूद कर दिया । उसके बाद आपके सात पुत्रों को जो फौलादी और वीर विक्रम थे, एकसाथ सेना सहित भेजा था । वे सब तो युद्ध विद्या में महापारंगत थे । क्या वे सब भी खेत रहे ?

मंत्री : राजन् ! (**रोते हुए**) मेरे सातों पुत्र मारे गये हैं । वह वानर बड़ा ही दुर्द्धर्ष है । लगता है उसे जीतना आसान नहीं है ।

रावण : तुम्हारे साथ मेरी सम्वेदना है मंत्री । किन्तु एक वानर को जीतना तुम्हें लग रहा है कि आसान नहीं है ? कैसा दुर्द्धर्ष है वह ? उसे मार डालना है मंत्री । एक वानर ने रावण की शक्ति को चुनौती दी है

क्या ? उसकी चुनौती का कोई जवाब नहीं है क्या ? उसे कुकुर-मुत्ते के छत्ते की तरह पाँव से मसल दो। इतनी बड़ी राक्षस सेना भी, इतने बड़े-बड़े युद्धविद्या पारंगत वीर भी, एक वानर से हार गये, ताज्जुब है!।

मंत्री : वह वानर अद्‌भुत है महाराज ! उसे हराया नहीं जा सकता।

रावण : **(हँसकर)** क्या कहा, एक वानर को हराया नहीं जा सकता ? सेना-नायक विरूपाक्ष, युपाक्ष, दुर्धार, प्रघास और भासकर्ण को भेजा जाय। मेरे बेटे अक्षयकुमार से कहो कि उन्हें साथ लेकर वह भी जावे। अक्षय से कहो कि मुझे वह बन्दर जिन्दा ही चाहिए। जाओ देर न करो।

[मंत्री जाता है। मंच पर अँधेरा। दूर कोलाहल। मंच पर फिर प्रकाश उभरता है। रावण बैठा है। मंत्री-कक्ष में प्रवेश करता है।]

मंत्री : महाराज ! बड़ा दुखद समाचार है।

रावण : दुखद ? कैसा दुखद ? अक्षय कहाँ है ?

मंत्री : अक्षय कुमार सहित पाँचों सेनानायक भी उस बन्दर ने मार डाले हैं।

रावण : (**गरजकर**) क्या कहा ? अक्षय भी मार दिया गया ? रावण का बेटा अक्षय कुमार भी। (**थोड़ा रुककर तेज साँस लेते हुए**) निश्चय ही यह कोई बड़ा और भयंकर वानर है। यह केवल वन्दर नहीं, वानर के रूप में शायद देवताओं का राजा इन्द्र है।

मंत्री : हो सकता है महाराज ! हो सकता है। वह अत्यन्त निडर और महाबलशाली है। उस बन्दर के उत्पात अभी भी रुके नहीं हैं राजन् !

रावण : अगर यह इन्द्र है तो मैं स्वयं जाकर इसकी हड्डियाँ तोड़ डालूँगा। नहीं, मैं नहीं जाऊँगा। यह मेरी गरिमा के अनुकूल नहीं होगा। मेरा बेटा इन्द्रजीत पहले ही युद्ध में इसे हरा चुका है। मंत्री ! जाओ मेघनाथ से कहो कि वह तुरन्त जाकर या तो इस वानर की मुश्कें बाँधकर मेरे पास ले आवे या उसे मार कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दसों दिशाओं में फेंक दे। (**मंत्री जाता है**)

[मंच पर फिर अँधेरा]

[राजदरबार। प्रकाश उभरता है। वानर को बाँधे मेघनाथ आता है।]

मेघनाथ : पिताजी को प्रणाम। यह लीजिये, यह रहा वह धूर्त वानर। इसे

मैं ब्रह्म-फाँस से बाँधकर लाया हूँ। यह वास्तव में महाबली है, पिता जी।

रावण : **(जोर से हँसकर)** हा हा हा ! हा हा हा हा ! **(गौर से वानर को देखकर)** पकड़ लाये ! वानर बड़ा उत्पाती है तू। यों उछलता क्या है, चुपचाप सामने धरती पर बैठ जा। इससे पहले कि मैं तेरी खाल तेरे देखते-देखते उतारूँ, तुझसे अपने बेटे अक्षय कुमार और दूसरे वीरों के खून का हिसाब लूँ, तू मुझे बता कि तू है कौन ?

हनुमान : **(व्यंग्य से मुस्करा कर)** बड़ा नाम सुना था रावण, देखा आज ही है। दरबार में आये किसी दूत का, मेहमान का सत्कार करना भी जो राजा न जाने उसकी अशिष्टता पर हँसी ही आती है।

मेघनाथ : **(डपटकर)** चुप बन्दर। जानता नहीं किससे बातें कर रहा है। मेरे पूज्य पिता रावण का नाम सुनते ही दिशाएँ काँपती हैं। वायु यहाँ झाड़ू देती है, वरुण पानी भरते हैं, अग्नि प्रकाश देती है।

हनुमान : मालूम है। यमराज यहीं मौत भी देते होंगे !

रावण : **(गरजकर)** मुझे अपने प्रश्न का उत्तर चाहिए। तू कौन है ? लंका में कैसे घुस आया ? यह उत्पात क्या तूने अपने प्राणों का भय छोड़कर मचाया था ?

हनुमान : मैं अतुल बलशाली उन श्री राम का दूत हूँ जिनकी पत्नी को तू चुरा लाया है। मैं पवन-पुत्र हनुमान हूँ। लंका में मैं श्री राम की आज्ञा से घुस आया था उनकी पत्नी सीता जी की खबर लेने। यह उत्पात मैंने सारी लंका को समुद्र में डुबा देने के विचार से शुरू किया था किन्तु ब्रह्म-फाँस से इसलिए बँध गया कि ब्रह्मा जी का अपमान मैं करना नहीं चाहता था।

रावण : **(हँसकर)** अच्छा तो तू उन तपस्वी युवकों का भेजा हुआ है। जो स्वयं पत्नी तक नहीं आ सकते वे बन्दरों को उकसा कर उत्पात मचवा रहे हैं।

हनुमान : मैं उन गुणवान श्रीराम की ओर से यह कहना चाहता हूँ कि अपना, अपने स्वजनों का और अपनी लंका का भला चाहते हो तो सादर उनकी पत्नी को उनके पास ले जाकर, घुटने टेक कर, अपनी भूल के लिए उनसे क्षमा माँग लो। वे बड़े क्षमाशील हैं। तुम्हें भी क्षमा कर देंगे।

रावण : **(गरजकर)** यह कुटिल वानर है। मेघनाथ, इसे प्राणदण्ड दे दो।

विभीषण : बड़े भइया ! ऐसा आदेश न दीजिये। आपके दुश्मन का ही सही पर है तो यह दूत ही। और दूत को प्राणदण्ड देने की परम्परा

कहीं भी न तो नीति शास्त्र में है और न किसी देश में है।

रावण : (क्रोध में) विभीषण ! तुम फिर अपनी संतवाणी बोलने लगे न। अपना नीतशास्त्र और देशों की परंपरा तुम अपने ही पास रखो। मैं चाहता हूँ, इस वानर को मेरे सामने छील-छील कर कर इस तरह इसकी खाल उतारी जाय कि यह तड़पता रहे और तड़प-तड़प कर जान दे दे।

विभीषण : भइया ! इस वानर ने अपने को राम का दूत बताया है। राम आपके दुश्मन हैं और एक राजा के बेटे हैं। उनके दूत का अधिक से अधिक आप अंग-भंग कर सकते हैं, किन्तु उसके प्राण नहीं ले सकते। कुछ तो नैतिकता निभाइये। एक देश के राजा की तरह तो व्यवहार कीजिये।

रावण : मेघनाथ ! विभीषण ठीक कहता है। तुम जाओ विश्राम करो। मंत्री ! बन्दर को अपनी पूँछ बड़ी प्यारी होती है। तुम इसकी पूँछ पर कपड़ा बाँधकर उस पर तेल डालकर जला दो। ऐसे जलाओ कि सारी पूँछ जल जाय। जब पूँछ जल उठे तो इसे सारे शहर में घुमा-कर लोगों को इसकी दुर्गति दिखाओ। इसे बिना पूँछ का करके इसे इसके राम के पास जाने दो।

हनुमान : अरे रावण ! नाम बहुत सुना था तुम्हारा, काम भी आज देख लेंगे। मैं तुम्हारी बुद्धिमानी की दाद देता हूँ। सचमुच मुझे मेरी पूँछ बहुत प्यारी है। जै श्रीराम की !

[हनुमान की पूँछ पर आग लगायी जाती है। हनुमान उछल कर बाहर कूदते हैं। आग की लपटें, हाहाकार, मंच पर अँधेरा।]

दृश्य आठ

[सीता अकेली अशोक वन में बैठी हैं। हनुमान पहुँचते हैं।]

हनुमान : माँ ! रावण ने मेरी पूँछ पर आग लगा दी। यह आग लगाना मेरे लिए वरदान हो गया। मैंने उससे लंका के सारे दुर्ग को, सारे नगर की रक्षा व्यवस्था को देख भी लिया और नगर का बड़ा भाग और दुर्ग जला भी दिया है। आप धू-धू कर जलती हुई लंका को देखिये तो, रावण की यह सोने-सी लंका जलकर लगभग जैसे राख हो

गयी है। अग्निदेव ने मुझ पर इतनी कृपा की कि मुझे लगा कि जैसे मेरी पूँछ पर आग नहीं, बर्फ के ढेले बाँधे गये हैं।

सीता : हनुमान ! मैंने भी जब सुना कि रावण ने तुम्हारी पूँछ जला देने का दण्ड दिया है तो मैं बहुत घबरा गयी थी। तुरन्त ही मैंने भी अग्निदेव की पूजा की कि हे अग्निदेव तुम हमारे हनुमान को क्षत-विक्षत न करना बल्कि उसकी मदद ही कर देना। लगता है अग्निदेव ने मेरी प्रार्थना सुन ली।

हनुमान : अग्निदेव भी मेरे चाचा हैं। वायु के भाई हैं। वे भला अपने भतीजे को जलाते क्यों ? वे मेरी पूँछ पर बैठकर जलते तो रहे पर मुझे बर्फ की तरह शीतलता देते रहे।

सीता : हनुमान ! लंका तुमने जला दी। अधिकांश भाग जल गया है। यहाँ के रत्न, भूषण, सोना, चाँदी सब पिघल गया है। रावण का दर्प तो तुमने तोड़ ही दिया। हनुमन्ते ! अब भवनों का फिर से निर्माण कराने, नगर को ठीक करने और रत्न आदि जुटाने में समय भी लगेगा और सम्पत्ति भी घट गयी है।

हनुमान : आपका और श्रीराम का आशीर्वाद था माँ ! इसका रत्ती-भर भी श्रेय मुझे नहीं है जनकनन्दिनी ! केवल मैं रावण को इतना दिखा देना चाहता था कि राम का एक अकिंचन सेवक क्या नहीं कर सकता ? श्रीराम की तो बात ही छोड़ दो।

[हाहाकार की दिल दहला देने वाली आवाजें]

सीता : ये कैसी भयंकर आवाजें हैं हनुमान ?

हनुमान : माँ ! मैंने जो महल जला दिये, नगर को जो आग लगा दी है वहीं से चीत्कार की ये आवाजें आ रही हैं। रावण बड़ा वीर है न ! तो जाए, समुद्र से कहे कि लंका में ज्वार-भाटा आ जाये तो पानी बरसे और आग बुझे।

सीता : रावण चाहे कितना भी दुष्ट है किन्तु उसकी प्रजा को दण्ड न दो हनुमान ! आग में उसकी बेकसूर प्रजा बेघरबार हो जाएगी। लोग बिना कसूर जल कर राख हो जाएँगे।

हनुमान : हो जाने दीजिये। दुष्ट की प्रजा भी दुष्ट है। वह दुष्ट का साथ देती है इसलिए वह भी दुष्ट है। हनुमान दुश्मन को दुश्मन मानता है। क्या रावण की प्रजा ने कभी कहा कि सीता जी को छोड़ दो राजन् ! ऐसी अनीति न करो !

सीता : लोग तुम्हारे पराक्रम से कुछ अधिक ही प्रभावित हो गये हैं शायद। इतने कि जो तुम्हारे लिए भी उचित नहीं था। मेघ से प्रार्थना है

कि वह शीघ्र बरस कर लंका के लोगों को प्राण दें।

हनुमान : होने दीजिये। रावण तो बड़ा शक्तिशाली है। अब उन्हें बचाता क्यों नहीं ? आप मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। शीघ्र ही जाकर श्री राम को आपके सकुशल होने का समाचार दे दूं। वे बड़े चिन्तित हैं।

सीता : तुम हो तो लगता है, कोई तो यहाँ अपना है। किसी गुप्त जगह दो-एक दिन और रह जाओ न हनुमान !

हनुमान : रह जाता किन्तु आप जानती ही हैं कि आपके लिए रघुनन्दन कितने अधीर हैं। मैं उन्हें शीघ्र जाकर आपका समाचार देना चाहता हूँ। उनका दिन का चैन और रात की नींद गायब है। बड़े दुखी हैं वह।

सीता : समाचार तो तुम दोगे ही। मेरा यह विश्वास है कि मेरे आर्य मुझे इस कैद से छुड़ाने के लिए आएँगे अवश्य। लेकिन हनुमान, वे लंका तक पहुँचने के लिए यह सौ योजन का समुद्र कैसे लाँघ सकेंगे ? सारी सेना को समुद्र पार कराकर यहाँ तक कैसे ला सकेंगे ? मेरे विचार से तो केवल तीन ही लोग इस समुद्र को लाँघ सकते हैं। बाकी कौन लाँघ सकता है ?

हनुमान : वे कौन तीन भाग्यशाली हैं, वैदेही माँ ?

सीता : एक तो तुम्हारे पिता वायु हैं, दूसरे गरुड़ देवता हैं और तीसरे तुम हो हनुमान, वायु के पुत्र होने के नाते।

हनुमान : वरारोहे ! क्या आप मेरे श्रीराम की शक्ति को पहचानती नहीं ? या उन्हें शक्ति में कम आँकती हैं ? सौ योजन समुद्र क्या सहस्रों योजन समुद्र भी उनको प्रणाम करता है। वे मेरे राजेश्वर सुग्रीव और सेना सहित आकर पूरे आदर के साथ आपको वापस लिवा ले जावेंगे। आप निश्चिन्त रहें।

सीता : अपने स्वामी पर मेरा भी ऐसा ही विश्वास है हनुमान ! वे अपराजेय हैं। वे रावण को हराकर मुझे ले जाएँ, यही मैं भी चाहती हूँ।

हनुमान : आपने श्रीराम के एक अदना-से सेवक का जरा-सा करिश्मा देखा न ?

सीता : हाँ देखा तो।

हनुमान : मेरे ऐसे वहाँ एक नहीं हजारों हैं। आप निश्चिन्त रहें। जाकर पहले मैं आपके सही सलामत होने की खबर तो दूं। फिर आप देखिये कि रघुराज कैसे रावण को धराशायी कर आपको अपने रथ

पर बिठाकर ले जाते हैं। अब मुझे लौट जाने का आशीर्वाद दीजिये माँ !

सीता : मेरा अभय आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। मेरे आराध्य से कहना कि अब देर न करें। रावण कुटिल है, कहीं देर होने पर उसने···तो फिर वे मेरी लाश ही पावेंगे। उनसे कहना कि मैं अपने नाथ के साथ जीवित ही अवध जाना चाहती हूँ। रावण मुझे छूने की स्थिति में भी होगा तो मेरे प्राण समाप्त हो चुके होंगे।

हनुमान : ऐसा नहीं होने दिया जावेगा माँ ! पहले ही रावण को समाप्त कर दिया जावेगा। मेरा प्रणाम माँ ! मैं चलूँ।

सीता : जाओ, हमेशा जयी रहो हनुमान !

[हनुमान छलाँग लगाकर आकाश में उड़ जाते हैं।]

दृश्य नौ

[जामवन्त, अंगद सहित सभी कपियों का हनुमान को आते देख हर्ष के साथ नाच उठना]

समवेत स्वर : देखो, देखो, हनुमान आकाश मार्ग-से उड़ते हुए आ रहे हैं।

अंगद : चाचा, जामवन्त ! निश्चय ही आकाश में पर्वत की तरह जो इधर हमारी ओर आ रहा है यह हनुमान ही है।

जामवन्त : हाँ बेटे अंगद, ये हमारे हनुमान ही हैं। अब देखो उनका पूरा शरीर और चेहरा भी दिख रहा है। लो ये धरती पर उतर भी गये। हनुमान ! बड़े मुस्करा रहे हो !

अंगद : चाचा, हनुमान ! जनकनन्दिनी से मिल आये हो न ? उनका पता लगा लाये हो न ?

हनुमान : बहुत थक गया हूँ। थोड़ा रुको। सुस्ता लेने दो···हाँ, सीता जी भी मिल गयीं। उनका पूरा पता लगा लिया है। अपने कर्त्तव्य भी लंका में दिखा आया हूँ। लंकेश्वर को बता भी आया हूँ कि अवधेश श्रीराम क्या हैं ! मैं अपने से जो भी हो सकता था कर आया हूँ।

जामवन्त : तुम धन्य हो हनुमान ! तुमने हम सबकी जान भी बचा दी, आन भी रख दी। बधाई है तुम्हें। अच्छा, सुस्ता चुके हो, तो बताओ कि कैसे तुम लंका पहुँचे, कैसे सीता जी का पता लगाया और कैसे रावण को अपने कर्तब दिखाये ? क्या करके आये हो वहाँ ?

हनुमान : जब मैं यहाँ से चला था तो आपने देखा ही था। अपने बल का परिचय जब आपसे मुझे मिला तो मैं हवा हो गया और उसके बाद तो सारी घटना कैसे घटी वह सब बड़ी मजेदार कहानी है। समुद्र पार कर लंका पहुँचा, सीता जी से एकान्त में मिला, रावण से उसके दरबार में मिला और लंका का एक बड़ा हिस्सा ध्वस्त भी कर आया हूँ। मेरी उस यात्रा का वृत्तान्त आप लोग सुनना चाहते हैं तो सब शान्त होकर सुनिये।

[मंच पर अंधेरा हो जाता है। प्रकाश। फिर वही दृश्य]

अंगद : जामवन्त जी ! हनुमान जी ने जो वृत्तान्त अपने लंका जाने, लंका में रहने और फिर लंका को फूँकने का सुनाया है, उससे तो लगता है हम जगतजननी सीता जी को साथ लेकर ही श्रीराम और राजा सुग्रीव के पास पहुँचें। ऐसा देखकर वे बड़े प्रसन्न होंगे। चलो, हम लोग खुद ही रावण से निबट लेते हैं।

जामवन्त : ऐसा सम्भव नहीं है बेटे अंगद ! ऐसा हम नहीं कर सकेंगे।

अंगद : असम्भव कुछ भी नहीं होता। पहले तो सीता जी का पता लगा सकना और यहाँ से लंका तक जा सकना भी आप सभी को असम्भव लग रहा था, वैसा असम्भव जब सम्भव हो गया तो हर असम्भव को सम्भव कर देंगे हम। हम लंका जाकर रावण को मार कर सीता जी को लाकर श्रीराम को आश्चर्यजनक रूप से सौंप सकते हैं। हिम्मत होनी चाहिए। क्यों हनुमान जी ?

हनुमान : अंगद ! तुम्हारी बात उचित है लेकिन शायद तुम रावण और उसकी सेना का बल पूरी तरह आँक नहीं रहे हो।

अंगद : मैंने आँक लिया है। जब उसके छँटे हुए वीरों को आप अकेले मार सकते हैं, सम्पूर्ण लंका को जला सकते हैं, तो हम इतने लोग क्या नहीं कर सकते। माना कि आप हमसे बहुत बलशाली हैं, किन्तु हम भी कम बलशाली तो नहीं हैं !

हनुमान : मैंने यह नहीं कहा कि मैं बहुत बलशाली हूँ किन्तु मैं इतना तुमको बता दूँ कि रावण अत्यन्त बलशाली है। उसके बड़े शक्तिशाली सेनापति, सैनिक मैंने मारे तो हैं किन्तु अभी और जाने कितने वैसे ही वीर हैं।

अंगद : होंगे। हमारे साथ भी तो अश्विनीकुमारों के पुत्र ये दोनों वानर मैंद और द्विद हैं। ये बलशाली और बलवान तो हैं ही, साथ ही ब्रह्मा जी ने इनके पिता के कारण इनको यह वर दिया है कि इन्हें कोई

भी मार नहीं सकता। इसी वरदान के कारण इन्होंने देवताओं की विशाल सेना को मथकर अमृत पी लिया था। यह दोनों क्रोध में आ जायें तो समूची लंका का रावण सहित क्षण भर में नाश कर सकते हैं।

हनुमान : मैं लंका को, रावण की शक्ति को देख चुका हूँ। वह बहुत बलशाली है।

अंगद : तो हनुमान, अब मुझे वहाँ जाने दो। मैं अकेले ही उस लंका को, उसके राजा रावण को रौंद कर आऊँगा। अंगद के शरीर में भी बल है। मैं स्वयं सीता जी को अपने साथ लाकर श्रीराम के चरणों में सौंपूंगा।

जामवन्त : हनुमान ने तो सीता जी से कहा था कि मेरे साथ चलो। वह नहीं आयीं। अब हम सीता जी को श्रीराम के पास ले भी जायें तो क्या श्रीराम यह पसन्द करेंगे ? श्रीराम के पराक्रम के बिना सीता जी आना चाहेंगी ?

हनुमान : हमें श्रीराम ने भी, राजा सुग्रीव ने भी केवल सीता जी की खोज का काम सौंपा है। वह हमने कर दिया। अब आगे क्या करना है उसके लिए बिना श्रीराम और राजा सुग्रीव की आज्ञा के हम कुछ न करें। चलें युवराज ! चलकर शीघ्र आर्य श्रीराम को सीताजी का समाचार देकर उनका दुःख कम करें ?

अंगद : ठीक है। ऐसा ही करिये। पहले उनसे आज्ञा ले ली जाय कि वह क्या चाहेंगे। चलिये, अब और देर न कीजिये।

[सभी वानर-रीछ चल देते हैं। मंच पर अँधेरा हो जाता है। परदा गिरता है। दृश्य बदलता है। परदा उठता है।]

दृश्य दस

[प्रशन्नतावश पर्वत पर सुग्रीव की सेना सहित श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी की खोज में भेजे गये अंगद, हनुमान, जामवन्त आदि भी बैठे हैं।]

राम : हनुमान ! लंका जाने, सीता से मिलने, रावण के सेनापतियों, उसके पुत्र को मारने, रावण से बातचीत तथा लंका जलाने व दुर्ग की बनावट की बातें विस्तार से तुमने बताईं। तुम्हारा मुझ पर

सचमुच बड़ा उपकार है। मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, तुम्हें मैं क्या दे सकता हूँ। तुम्हारा यश हमेशा अमर रहे यही कामना है। लंका में मेरी सीता हर क्षण जिस पीड़ा और क्रूर कष्ट में काट रही है, उसे सुनकर मेरा मन बहुत अशान्त और क्रोधित हो गया है। बेचारी सीता कितना कष्ट सहकर मेरी प्रतीक्षा कर रही है। कितनी बेचैनी से मेरी राह देख रही है वह।

लक्ष्मण : भइया ! वानरवीर हनुमान ने जनक दुलारी की जो व्यथा-कथा सुनाई वह असह्य है। हमें उन्हें रावण की कैद से शीघ्र छुड़ाना चाहिये। क्यों हनुमान, उन्होंने भी यही कहा है न ?

हनुमान : हाँ, वीरवर लक्ष्मण ! उन्होंने तो स्पष्ट कहा है कि यदि एक महीने तक भी रावण का बध करके उनको न छुड़ा लिया गया तो वे जीवित रहेंगी ही नहीं। वह राक्षसों के हाथों अपमानित नहीं होना चाहेंगी। वे तो प्राण त्याग ही देतीं अगर मैं समय से न पहुँच गया होता। रावण उनसे कह गया है कि यदि एक महीने में उसकी बात न मानी तो वह उनका सिर उड़ा देगा। वह शरीर से बड़ी क्षीण हो गयी हैं। चलते समय उन्होंने चूड़ामणि उतारकर दी और आँखों में आँसू भर कर कहा कि हे स्वामिन् ! आपने मुझे किस अपराध से त्याग दिया है ? आपके दर्शन के लिए तरसती आँखें प्राण निकलने नहीं देतीं। आकर मुझे ले जाइये। वरना राक्षसों के हाथों मरने से भला है, वह स्वयं ही प्राण दे दें।

लक्ष्मण : राक्षसों के हाथों अपमानित ! भइया ! मुझे आज्ञा दें तो मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैं लंका पहुँचकर समस्त लंका को ध्वस्त कर जनकनन्दिनी को सादर ले आ सकता हूँ। मैं तो भइया, एक-एक राक्षस को रावण सहित धूल चटा-चटा कर मार डालूँगा। मैं सारी लंका के परखचे उड़ाकर रख दूँगा। मैं रावण की बोटी-बोटी नोच डालूँगा। हनुमान को ब्रह्मास्त्र से बाँधकर ले जाने वाले मेघनाथ की नाक पकड़कर मैं उसे चकरघिन्नी की तरह घुमाकर समुद्र में पटक दूँगा।

राम : तुम्हारा क्रोध उचित है सौमित्र ! हनुमान ने जो कुछ सीता के बारे में बताया है वह मन को छील देता है। रावण उसे धोखे से ले गया, यह उसने जघन्य अपराध किया। किन्तु अपने अन्तःपुर में ले जाकर भी उसने सीता के साथ अभद्रता नहीं की यह उस जैसे विद्वान के आचरण के योग्य ही है।

लक्ष्मण : रावण और विद्वान ! भइया, आप अब भी उसके आचरण की

दुहाई दे रहे हैं !

राम : ऐसा नहीं है लक्ष्मण ! मैं दुहाई नहीं दे रहा । एक महीने की अवधि बीतने पर उसकी राक्षसी प्रवृत्ति कुछ भी कर सकती है। सीता के साथ कुछ भी घट सकता है । सीता के संदेश में कितनी मार्मिकता और दुःख छलक रहा है। हनुमान ! तुम मेरे सच्चे साथी और सेवक हो । वानरराज सुग्रीव ! ···

सुग्रीव : जी । आप आदेश दें इससे पहले ही मेरा निवेदन है कि हम तुरन्त ही, समय गँवाये बिना सेना सहित यहाँ से चल पड़ें और लंका पर धावा बोल दें ।

राम : तुम ठीक कहते हो वानरराज ! मुझे सीता को मुक्त कराने के लिए तुरन्त प्रयास करना है । किन्तु जैसा कि हनुमान ने बताया उसमें एक तो कठिनाई हमें समुद्र पार करने की होगी और फिर उतने विशाल और जटिल लंका के दुर्ग पर विजय के लिए अपनी रणनीति ठीक-ठीक बना सकना भी कम कठिन नहीं है । यह भी सोच लो कि रावण की शक्ति बहुत बड़ी शक्ति है । क्या किसी इतनी बड़ी शक्ति से लड़ सकने में हम सक्षम हैं ?

सुग्रीव : जब दुश्मन ने हमारे घर में घुसकर हमें ललकारा है, तो क्या हम हाथ पर हाथ रखकर उसकी घुड़की सुनते रहें, उसके अन्याय सहते रहें । वह हमसे जो भी छीन ले जाए उसे छिन जाने दें ? आप महान वीर हैं, महान ज्ञानी हैं, मुझे बता दें कि दुश्मन बहुत बड़ा है क्या इसीलिए हम अपने को निर्बल मानकर अपनी प्रभुता, अपनी प्रतिष्ठा उसके हाथों में पड़ी रहने दें, आक्रान्त होते रहें उससे ? क्या देवी सीता उस क्रूर राक्षस से मुक्त न हो सकने की पीड़ा लिये अपने प्राण दे दें । राक्षसों के हाथों उन्हें अपमानित होने दें हम ?

राम : सुग्रीव ! सीता हमें अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी है । उसे पाने के लिए ही मैंने तुम्हारी सहायता माँगी है । किन्तु एक मेरी प्रिया के प्राणों की रक्षा के सिवा हमें दूसरी बातें भी सोच लेनी चाहिये । हमें अपनी रणनीति सोच-समझकर तैयार करनी होगी । बहुत जल्दबाजी में लिया गया निर्णय आवेश का निर्णय होगा । रावण की वास्तविक शक्ति और सुरक्षा-व्यवस्था का पूरा वर्णन हनुमान से सुन ही चुके हो । कभी भी दुश्मन की शक्ति को कम नहीं आँकना चाहिये ।

लक्ष्मण : भइया ! इस भूतल पर रावण चाहे जितनी बड़ी शक्ति हो, उसके

पास चाहे जितना अस्त्र-भण्डार हो, चाहे जितने बड़े योद्धा हों, तब भी वह हमारी देहरी पर दस्तक देकर गया है। हमने उसकी मन्दोदरी को छीनकर उसे युद्ध के लिए नहीं ललकारा, बल्कि हमारी माँ जनकनन्दिनी को अपहृत कर उसने हमें ललकारा है। वह चाहे जितनी बड़ी शक्ति हो, हम अपने सीमित साधनों में भी उसका प्रतिकार करेंगे। उससे लड़ेंगे। आज तो हमारे पास सुग्रीव के साधन और सैनिक हैं, बड़े-बड़े योद्धा और रणकुशल हैं। यदि ये हमारे साथ न होते, केवल हम दो भाई होते, तो भी क्या हम सीताजी को रावण से न छुड़ाते? उसे बड़ी शक्ति समझकर सिर झुकाकर बैठ जाते?

सुग्रीव : मैं बहुत बड़ी शक्ति चाहे नहीं हूँ किन्तु श्रीराम आप जैसे बलशाली और शस्त्र-निपुण को पाकर अपने साथियों, सैनिकों के साथ किसी भी बड़ी से बड़ी शक्ति के छक्के तो छुड़ा ही सकता हूँ। उस रावण जैसी बड़ी शक्ति को केवल ललकार ही नहीं सकता, मनोबल और अपनी प्रजा की इच्छा शक्ति से आपका नेतृत्व पाकर उसे जीत भी सकता हूँ। आप नेतृत्व करें और मैं सेना को हनुमान के बताये पथ से सीधे समुद्र-तट पर चलने की आज्ञा देता हूँ। समय हमारे पास कम है, बहुत सीमित है।

लक्ष्मण : भइया! इस धनुष की सौगन्ध! युद्ध के लिए सेना को चलने की आज्ञा दीजिये। प्राण रहते, आपकी रक्षा में रहते हुए, राक्षसों को मार-मारकर रावण की खाल उतारकर माँ स्वरूपा सीताजी को अयोध्या लाकर रहूँगा।

राम : सुग्रीव! लक्ष्मण! मैं मना नहीं करता किन्तु मेरी सीता के लिए यह युद्ध नहीं महायुद्ध होगा। इधर और उधर जो भी हताहत होंगे वह असंख्य ही होंगे।

लक्ष्मण : भइया! आप जनकनन्दिनी को अपनी पत्नी के रूप में वापस लाने की बात ही क्यों सोच रहे हैं। आप रावण जैसी बड़ी शक्ति की चुनौती को स्वीकार करने की बात क्यों नहीं सोचते? हम सीताजी को वापस तो लायेंगे ही, साथ ही उस बड़ी शक्ति को, जो राक्षसी बनकर हर अच्छा काम करने वाले को परेशान करती हैं, समाप्त करके ही दम लेंगे। हम राक्षस संस्कृति का दमन करेंगे।

राम : राजा सुग्रीव! लक्ष्मण ठीक कहता है। वास्तव में यही सोचकर चलना चाहिये कि हमारा संघर्ष केवल राम की पत्नी को लौटा

लाने का ही नहीं है। वास्तव में राम का भी लक्ष्य अपनी सीता को ससम्मान वापस लाने के साथ-साथ धरती से राक्षसी वृत्ति को समाप्त कर देने का है। ऐसी तुम्हारी भी धारणा है तो अपनी सेनाओं, सेनानायकों को कूच का आदेश दे दो। लक्ष्मण ! मेरे धनुष-तूणीर मुझे दे दो। और हनुमान, अंगद, जामवन्त यह दुपहर का समय है। विजय-मुहूर्त है। इस समय हमारा चल देना उपयुक्त है। आज उत्तरा फाल्गुनी नामक नक्षत्र है। कल चन्द्रमा का हस्त नक्षत्र से योग होगा। इसलिए सुग्रीव, हमें अभी चल देना चाहिये। मैं भी तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि लंकापुरी चाहे जितनी बड़ी शक्ति से, अस्त्रों से भरी हो, कितने ही आधुनिक अस्त्रों के भण्डार वहाँ हों, रावण के पास चाहे जितने भी नाना प्रकार के युद्ध-कुशल, युद्ध-पारंगत सेनापति और सेनानायक, सैनिक हों—मैं उन्हें धराशायी करके राक्षसों की देव-संस्कृति, विरोधी राक्षसी वृत्ति को समाप्त कर दूँगा, या स्वयं समाप्त हो जाऊँगा।

लक्ष्मण : भइया ! आपका यह आदेश हमारी विजय का आशीर्वाद बने। वानरराज ! दुंदुभी, नगाड़े बजवाइये। प्रस्थान हो।

सुग्रीव : हनुमान ! रणभेरी बजे। नगाड़े बजाए जावें। प्रस्थान हो।

हनुमान : अभी बजते हैं नगाड़े। सेना प्रस्थान के लिए आतुर है। आर्य श्रीराम चलें।

राम : नहीं, आगे-आगे अंगद, हनुमान और जामवन्त मार्ग दिखावें। पीछे हम हैं। हमें अब शीघ्र समुद्र-तट पर पहुँच जाना है।

[दुंदुभी और नगाड़े, रणसिंघे बजते हैं। सेना के कूच का स्वर]

सुग्रीव : हनुमान और अंगद कहते हैं कि वे लोग भटकते हुए कन्याकुमारी होते हुए फिर समुद्र-तट से चलते-चलते लंका के निकट समुद्र-तट पर पहुँचे थे। शीघ्र पहुँचने का मार्ग वे न बता सकेंगे श्रीराम !

राम : कोई बात नहीं। सुग्रीव, ऐसा करो कि तुम्हारी सेना में जो बाल और वृद्ध हैं, अक्षम हैं, वे किष्किन्धा चले जावें। सेनापति नील एक लाख सुधी वानरों को आगे-आगे लेकर चलें। उन्हें पथ का ज्ञान है। ऐसे पथ से चलें जहाँ सारी सेना के लिए कन्द-मूल-फल की अधिकता हो। शीतल छाया से ढके वन हों। शीतल जल मार्ग में मिलता रहे और मधु की भी अधिकता हो।

लक्ष्मण : भइया ! नील को यह भी समझा दिया जाए कि हो सकता है,

जिस मार्ग से वे सारी सेना को लेकर जाएँ वहाँ शत्रु के लोग पहले से ही कन्दमूल-फल और जल को विषाक्त कर दें। अतः इस ओर से भी सावधान रहें। क्यों हनुमान ?

हनुमान : आप ठीक कहते हैं। राक्षस बड़े मायावी हैं। यह भी कह दीजिये कि जहाँ गहरे गड्ढे हों, दुर्गम या साधारण जंगल हों, वहाँ हर तरफ कूद-फाँद कर देखते रहें कि कहीं शत्रुओं की सेना तो नहीं छिपी है। कहीं ऐसा न हो कि हम आगे बढ़ जावें और पीछे से शत्रु सेना छिपकर आक्रमण कर दे।

राम : और सुग्रीव ये भी देख लें कि यह महा कठिन युद्ध होगा। सैनिकों, योद्धाओं की सावधानीपूर्वक गिनती की जाय, उन्हें ठीक से जाँच लें और सब कुछ बता दें। जो डरपोक हों वे रुक जायँ। उछल-कूदकर इधर-उधर चलने वाले वानरों-रीछों की कमान के आगे-आगे श्री गवाक्ष सेनापति बनकर चलें।

सुग्रीव : ऐसा ही होगा। और अवधकुमार ! मैंने यह भी आज्ञा दे दी है कि उछल-कूद वाले वानरों की सेना को सेनापति ऋषभ सम्हालेंगे तथा गन्धहस्ती के समान दुर्जेय और वेगशाली गंधमादन वानर सेना के वामभाग में रहकर रक्षा करते हुए आगे बढ़ेंगे। मैंने हनुमान से कह दिया है कि मैं तुम्हारे कंधे पर इन्द्र की तरह बैठ-कर सारी सेना का आगे से पीछे तक निरीक्षण और संचालन करूँगा। क्योंकि हनुमान में वायुगति है। इसलिए सारी विशाल सेना पर नियंत्रण रखूँगा।

राम : हाँ, वानरराज, आपकी सेना भी तो असंख्य है। गिनी भी तो नहीं जा सकती।

सुग्रीव : तो भी सारी सेना हर सेनापति के साथ बाँटी हुई है। नियंत्रित है। कहीं भी भगदड़ नहीं मचेगी, राघवेन्द्र !

राम : हम चल तो दिये हैं वानरराज ! किन्तु आपने सेना की कैसी व्यवस्था की है वह भी तो मुझे बता दीजिये। मुझे भी पता रहे तो उचित ही रहेगा।

सुग्रीव : कालजयी लक्ष्मण शक्तिमान अंगद की पीठ पर चल रहे हैं। महाबाहु ऋक्षराज जामवन्त, सुषेण, और वानरवेगदर्शी वानर सेना के पीछे रक्षा में रत हैं। मैंने सेना को बड़े ही सुदृढ़ ढंग से बाँटकर आर्य वीर, आपके बीच में एकदम सुरक्षित रखा है।

राम : सुग्रीव ! मैं समझ गया कि आपने बड़ी दृढ़ व्यवस्था की है। अब हमें शीघ्र ही आगे-पीछे, अगल-बगल देखते हुए, लंका के समीप

के समुद्र-तट पर पहुँचना है। सेना को कहिये कि बढ़ते चलें और बढ़ते चलें। रुकना हमारा काम नहीं है आगे बढ़ना ही हमारा लक्ष्य है।

दृश्य ग्यारह

[दृश्य बदलता है। समुद्र-तट का दृश्य]

राम : देखो, सुग्रीव ! हम समुद्र-तट पर आ तो गये हैं किन्तु इस विशाल समुद्र को लाँघ सकना हमारी सेना के बस का तो नहीं है। हनुमान लाँघ चुके हैं फिर लाँघ लेंगे। बहुत साहस करें तो आप, अंगद और मैं तथा लक्ष्मण कोशिश कर लेंगे। हालाँकि हमारे लिए भी यह असंभव-सा ही है। यहाँ, समुद्र-तट की इस पहाड़ी पर खड़े होकर देखिये तो कितना विशाल समुद्र है ? यहाँ से तो लंका कहीं दिखती भी नहीं। जहाँ तक नजर आती है असीम जल ही जल दिखता है।

सुग्रीव : समुद्र यहाँ से अपार अवश्य है। सारी सेना को समुद्र पार ले जाना वास्तव में बहुत कठिन है आर्य राम !

राम : एक हनुमान के समुद्र लाँघ लेने से तो कुछ बनेगा नहीं। हमारे साथ तो, सुग्रीव, इतनी बड़ी सेना है। यदि यह सारी सेना समुद्र के पार नहीं उतरती है तो हम अकेले उस महाशक्ति की सेना का, उसके भीषण अस्त्र-शस्त्रों का मुकाबला करने की सोच भी कैसे सकते हैं ?

लक्ष्मण : भइया ! हमारे सामने और मार्ग ही क्या है ? दूसरा विकल्प भी क्या है ? इस विशाल समुद्र को लाँघना तो है ही, और लाँघकर सब पार जा नहीं सकते यह भी सत्य है। इसलिए हमें कोई उपाय सोचना होगा।

राम : क्या उपाय है लक्ष्मण ? कुछ भी तो समझ में नहीं आ रहा है ?

लक्ष्मण : भइया ! हमारे पास ऐसे मारक तीर हैं कि हम यहीं से चला दें तो लंका सहित रावण को ध्वंस कर दें।

राम : नहीं। इससे न हमारा विशेष लक्ष्य साधन होगा, न हम सीता को पा सकेंगे। मैं रावण की लंका में जाकर लड़ूँगा। मैं उसे उसी की लंका में हराऊँगा, उसी की धरती पर। लक्ष्मण ! हमें अपने

भयंकर अस्त्रों पर, तीरों पर ही निर्भर नहीं हो जाना है। वास्तव में प्रलय मचा देने वाले तीर हमें प्रयोग करने भी नहीं चाहिये। उससे सारी लंका समाप्त हो सकती है और उसके साथ ही सीता भी। यों भी हम केवल दुश्मन को मारना चाहते हैं और सो भी केवल उन्हें जो हमसे लड़ेंगे। बाकी सबको नहीं।

सुग्रीव : रघुनाथ! आपमें अपार शक्ति है। मेरे साथ भी जो लोग हैं, जो सेनानी हैं उनमें भी शक्ति कम नहीं है। किन्तु सम्पूर्ण सेना को समुद्र-पथ से लंका ले जाने का प्रश्न है। यही सबसे जटिल प्रश्न है। अन्यथा लंका पहुँचकर तो विजय हमारी ही है। ससम्मान हम जनकनन्दिनी को ला सकते हैं।

राम : इसके लिए हमारे पास भी रावण की तरह ही आकाशचारी रथ होते···

सुग्रीव : किष्किन्धा में हमने आकाशचारी रथ बनाने का प्रयत्न भी नहीं किया और हमें कभी आकाशचारी रथों या साधारण रथों की आवश्यकता भी नहीं पड़ी है। यह तो श्रीराम! आज लग रहा है कि हमें आकाशचारी रथ भी बनाने चाहिए थे। वरना वानर तो यों ही पेड़, पर्वत, लाँघते रहते हैं और फिर हमारे राजा बाली में तो ऐसा अतुल वेग स्वयं था कि वह सुबह ही पूर्व, दक्षिण और पश्चिम सागर तथा उत्तर के कैलास की पूजा कुछ ही क्षणों में करके लौट आता था। हम वनवासियों को रथों की क्या आवश्यकता?

लक्ष्मण : भइया! किष्किन्धा में आकाशचारी रथ होते भी तो इतने होते क्या, कि इतनी बड़ी सेना को हम पार उतार लेते? यहाँ हमारे साथ जामवन्त भी बुजुर्ग हैं, अनुभवों के सागर हैं, विवेक के धनी हैं और फिर कई भयंकर देव-असुर युद्ध इन्होंने देखे हैं। यही कोई उपाय बता सकते हैं।

जामवन्त : उपाय मैं क्या बता सकता हूँ सौमित्र! मेरे विचार से तो समुद्र से ही प्रार्थना की जाये कि वह हमें किसी तरह पार कर दे। समुद्र दयालु है। कोई उपाय बताएगा।

राम : लेकिन जामवन्त, समुद्र से किस तरह प्रार्थना की जाए कि वह हमारी प्रार्थना मान ले, हम पर अपनी दया करे?

जामवन्त : उसकी विधि है, श्रीराम! आप स्वयं तट पर व्रत रखकर बैठें और कहें कि आप समुद्र से मित्रता करना चाहते हैं।

राम : हाँ जामवन्त! मैं भी सामनीति को उचित समझता हूँ। प्रार्थना से पत्थर भी पिघल जाता है, यह तो सागर है। तरल, सुख, दुख

और गम्भीरता से भरा हुआ ।

राम : लक्ष्मण ! मैं समुद्र-तट पर जाकर एकान्त में बैठकर प्रार्थना करने जा रहा हूँ । तुम लोग अपने-अपने शिविरों में रहो । **(जाते हैं)**

दृश्य बारह

[समुद्र-तट के एकान्त में राम ध्यान-मुद्रा में बैठे हैं ।]

राम : अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपिवा समरेत्पुण्डरीकाक्षः सवाह्यांतरः शुचिः ओ३म आचमने । ओ३म् वरुणाये नमः ओ३म् वरुणाये नमः ओ३म् वरुणाये नमः ।

[समुद्र-तट पर राम समुद्र की पूजा में बैठे हैं । लक्ष्मण का आ जाना ।]

लक्ष्मण : भइया ! पूज्य भइया ! ध्यान छोड़िये भइया !

राम : **(चौंककर)** क्या हो गया लक्ष्मण ? शिविर में सब ठीक तो हैं न ?

लक्ष्मण : भइया ! शिविर में तो सब ठीक हैं । किन्तु बिना खाये-पिये, समुद्र की प्रार्थना करते हुए आपको आज तीसरा दिन हो गया है ।

राम : हो तो गया है लक्ष्मण, किन्तु समुद्र मेरी प्रार्थना सुनता ही नहीं । देखते हो, आकाश तक उठती इन उत्ताल तरंगों से लगता ही नहीं कि मेरी ओर उसका ध्यान गया भी है ।

लक्ष्मण : वह सुनेगा भी नहीं । लहरों के थपेड़ों में मस्त वह यह जानने की कोशिश भी नहीं कर रहा है कि श्रीराम ने उसकी प्रार्थना में तीन दिन भूखे रहकर निर्लज्ज रहकर बिता दिये हैं । आप सामनीति चाहते हैं और मेरा विश्वास दण्डनीति पर है । बिना दण्डनीति के तो आजकल पत्ता भी नहीं हिलता । प्रेम से, सम्मान से, आदर से बात करने का तो समय ही नहीं रहा । जो ऐसी बात करता है उसे लोग मूर्ख समझते हैं । आजकल तो डण्डे का समय है । डण्डा मारो तो सब सही है । क्षमा करें भइया ! सीधी अंगुली से कहीं घी निकलता है !

राम : लक्ष्मण ! मुझे वरुण की प्रार्थना करने दो । उन्हें भी समझाने का समय दो ।

लक्ष्मण : तीन दिन प्रार्थना कर ली भइया, अब बस भी करिये। मैं अब समुद्र को दंड देने जा रहा हूँ। मैंने धनुष उठा लिया है।

राम : हाँ ! तुम्हारी बात ठीक है लक्ष्मण ! हमारे पास बहुत कम समय है, फिर भी तीन दिन बीत गये। समुद्र के, वरुण के मन में कोई दया नहीं आयी। क्रोध केवल तुम्हें ही नहीं, अपनी अवमानना होने पर मुझे भी आता है। लक्ष्मण ! मेरा धनुष और तूणीर उठा लाओ। जिस दण्ड-दान की बात तुम कर रहे हो, वह मैं स्वयं ही करूँगा। मैं सारे समुद्र को एक ही तीर से सोखकर पूरा मरुस्थल बना दूँगा। इसे एक ही तीर से जला दूँगा। मूर्ख से विजय, कुटिल से प्रीति, कंजूस से उदारता, मोहवाले व्यक्ति से ज्ञान, लोभी से त्याग, क्रोधी से शांत होने की बात कहना व्यर्थ है। बिना डर के प्रेम भी नहीं होता।

लक्ष्मण : सुखाने से पहले मैं इसे जला दूँगा भइया ! लीजिये मैंने आपके नाम का स्मरण कर तीर मार दिया। सारा समुद्र-जल जावेगा। आप क्यों कष्ट करेंगे।

राम : न-न, ऐसा न करो लक्ष्मण ! समुद्र में रहने वाले जीवों को परेशान क्यों करते हो ?

लक्ष्मण : वो देखिये, मेरे एक तीर से ही दावाग्नि की तरह सारा समुद्र जल रहा है। आप अभी तक इसकी खुशामद करते रहे तो यह नहीं आया। अब जलने लगा है तो देखियेगा भइया, अभी आकर आपके पाँव पकड़ेगा।

राम : लक्ष्मण ! ऐसा नहीं करना था। बेचारे जलचर, मछलियाँ आदि जल कर मर जावेंगी। निर्दोष जीवों पर दया करनी चाहिये।

लक्ष्मण : हर अच्छे काम के लिए बुरा निर्णय भी लेना पड़ता है। ऐसे निर्णय मे निर्दोष भी दण्ड पा ही जाते हैं कभी-कभी।

[समुद्र का राम के पास आना।]

समुद्र : श्रीराम, मैं वरुण हूँ। समुद्र हूँ मैं। मेरा क्या अपराध था कि आपने मुझे अग्निबाण मार कर जला देना चाहा। मेरे अन्तर में तमाम जन्तु हैं, वे सब जल रहे हैं। उन्हें बचाइये अवधेश ! मैंने आपको पहचाना नहीं, यह मेरी भूल थी।

राम : वरुण ! आकाश, पवन, अग्नि, पृथ्वी और जल ये पाँच तत्त्व जड़ हैं। ये प्रार्थना से नहीं जड़ता से ही वस में आते हैं। मैंने ही भूल की थी कि तुम्हारी प्रार्थना करने बैठ गया था।

समुद्र : आर्य ! मैंने कहा न, मैं भारी भूल कर बैठा। आपको पहचान नहीं सका। मैं क्षमा चाहता हूँ। मुझे क्षमा करें। पहले अपने भाई से कहिये कि वह अपना अग्निबाण वापस ले लें। वरना जीवधारी कभी समुद्र में रहना ही नहीं चाहेंगे। समुद्र की तो प्रतिष्ठा ही गिर जावेगी। मर्यादा ही समाप्त हो जावेगी।

राम : लक्ष्मण ! अग्निबाण वापस ले लो।

लक्ष्मण : भइया की जैसी आज्ञा। मैं बाण वापस लिये ले रहा हूँ।

राम : समुद्र ! हमें अपनी वानर सेना सहित लंका जाना है। लक्ष्मण का विचार है कि मैं तीर से समुद्र के जल को सोख लूँ। ताकि हम सेना सहित लंका जा सकें।

समुद्र : अवधेश ! लक्ष्मण का कथन ठीक है। आप हमें शोख कर जा सकते हैं श्रीराम, किन्तु एक बात है···

राम : समुद्र ! निस्संकोच बताओ क्या बात है ?

समुद्र : मैं जानता हूँ अवधपति राम ! आपमें अद्भुत शक्ति है। आप एक क्षण में मुझे सुखा सकते हैं। किन्तु आप ऐसा करके समुद्र का सम्मान और प्रतिष्ठा समाप्त कर देंगे। मेरा जो सम्मान, जो पराक्रम, जो प्रतिष्ठा है उसे बनाये रखकर भी आप मुझे पार करके लंका तक जा सकते हैं। मैं आपका सहायक रहकर ऐसा होने दूँगा। आपकी सारी सेना मुझे पार करके लंका जावेगी। इससे मेरी मर्यादा भी रह जावेगी और आपका कार्य भी हो जावेगा।

राम : उसके लिए वरुण ! तुम्हें उपाय भी बताना पड़ेगा कि तुम्हारे इस विशाल परिवेश को पार कैसे करें हम ?

समुद्र : आपके पास नल और नील नाम के दो बड़े वास्तुकार हैं। उनसे कहिए कि वे आपका नाम ले-लेकर समुद्र में पुल बनाने के लिए पत्थर डालें। मैं उन पत्थरों को अपने ऊपर ही सतह पर स्थिर होने दूँगा। ऐसे ही कुशल नल-नील लंका तक पुल बाँधते जावें। आर्य राम ! आपकी सारी सेना लंका तक आसानी से पहुँच जावेगी। मैं हर तरह आपका सहायक रहूँगा।

राम : अच्छा, तुम्हारी बात मान लेता हूँ समुद्र। तुम जाओ। नल-नील पुल बाँधें तो उनकी मदद कर देना। अपनी भयंकर लहरों में उनके प्रयत्न को डुबा न देना।

समुद्र : श्रीराम ! मैं उनका साथ दूँगा। इससे मेरी भी प्रतिष्ठा बनी रह जावेगी और आपकी भी।

राम : ठीक है, मेरा काम हो जाये मैं यही चाहता हूँ। इसीलिए तुम्हारी

प्रार्थना कर रहा था। मैं भी तुम्हारी प्रतिष्ठा बनाये रखूँगा। समुद्र, मुझे आशा है, मेरे काम में तुम अवश्य सहायता करोगे।

समुद्र : रघुवर! मैं बराबर साथ रहूँगा। पूरी सहायता करूँगा। यह मेरा सौभाग्य होगा।

दृश्य तेरह

[दृश्य बदलता है। सुग्रीव का शिविर। राम का सुग्रीव के पास जाना। लक्ष्मण साथ हैं।]

सुग्रीव : आश्चर्य है आर्य! मुझे अपने पास बुलाने के बजाय आप मेरे शिविर में?

राम : वानरराज! इस युद्ध-शिविर के राजा आप हैं। मैं तो आपका सैनिक हूँ। युद्ध तो रावण में और वानरराज सुग्रीव में होना है। भला आपके शिविर में मेरा आना इतना आश्चर्यजनक है क्या!

सुग्रीव : इतना शर्मिन्दा न करिये रघुराज! जिनकी कृपा से मैं स्वयं वानरों का राजा बना हूँ, वह मुझे अपने शिविर में न बुलाकर स्वयं मेरे शिविर में आ गये—यह तो अनुचित ही है। सैनिकों को मेरा आदेश है कि आर्य श्रीराम मेरे द्वारा पूज्य हैं फिर उन सेना-रक्षकों ने आपको इधर आने कैसे दिया?

राम : सुग्रीव! छोड़ो भी राज-नियम। मैं वनवासी हूँ न। एक बात कहने आया था।

सुग्रीव : आज्ञा करें प्रभु!

राम : नल और नील हैं न साथ में?

सुग्रीव : जी हाँ, हैं। किन्तु योद्धा से अधिक तो वे वास्तुकार हैं।

राम : वे यहाँ से लंका तक पुल बना सकने की कोई रचना कर सकते हैं।

सुग्रीव : रचना तो कर सकते हैं। किन्तु समुद्र जितना गहरा है, उसमें पुल बाँध सकना उतना ही कठिन है।

राम : इस काम में समुद्र उन्हें सहयोग देगा। वह पुल बनाने का नक्शा बनाकर सेना के सभी साथी बन्दरों से पत्थर डलवाना शुरू कर दें। समय सीमित है। पुल यहाँ से लंका तक पाँच दिन में बन जाना है।

सुग्रीव : आज्ञा का पालन होगा आर्य! अभी मैं नल-नील के साथ सारी

सेना को इस काम में जुटा देता हूँ।

राम : सुग्रीव ! पुल तो बने ही, इसके साथ ही मैं एक काम और चाहता हूँ।

सुग्रीव : श्रीमान् ! वह भी हो जावेगा। आप आज्ञा करें।

राम : मैं यहाँ से प्रयाण करने से पहले शिवजी के शिवलिंग और उनके मन्दिर की यहाँ स्थापना करना चाहता हूँ। शिवजी का आशीर्वाद आवश्यक है। तुम किसी भी तरह पुल बाँधने से पहले यहाँ शिव-मन्दिर और शिवलिंग की स्थापना करने की व्यवस्था करो। मैं शिवजी का आशीर्वाद लिये बिना आगे नहीं बढ़ना चाहता। गिरिजा का भक्त हूँ मैं। अतः गिरिजापति का भी पूजन करके ही आगे बढ़ूँगा। वे दोनों मेरे आराध्य हैं।

सुग्रीव : वह भी होगा। हनुमान को मैं शिवलिंग लेने कैलाश भेजता हूँ। मन्दिर तैयार कराता हूँ।

राम : समय कम है। सभी काम कम से कम समय में पूरे हो जावें। नल-नील को भी तुरन्त अपना काम शुरू करने को कह दीजिये, वानर-नरेश !

सुग्रीव : आप अपने शिविर में आराम करें। मैं तुरन्त दोनों काम प्रारम्भ कराता हूँ।

दृश्य चौदह

[दृश्य बदलता है। मंच पर अँधेरा फिर प्रकाश। शिविर में राजा सुग्रीव के पास नल-नील बैठे हैं।]

नल : वानरराज ! हम वास्तुकार अवश्य हैं, किन्तु इतने बड़े सागर पर पुल बाँध सकना असम्भव है। आप सागर के विस्तार और गहरायी का स्वयं अनुमान कर लें।

सुग्रीव : नल ! तुम्हारी बात मैं समझता हूँ। किन्तु यह श्रीराम का आदेश है। सागर ने इस काम में स्वयं मदद करने का वचन दिया है। क्यों नील, तुम्हारा क्या विचार है ?

नील : राजन् ! आपकी और आर्य राम की आज्ञा मानी जावेगी। प्रयास तो असंभव के लिए भी किया ही जाना चाहिये। आपकी सेना में अपनी वास्तुकला का काम दिखाने के अलावा हमारी और उपयोगिता भी क्या है। हम अभी नक्शा तैयार कर काम

शुरू करते हैं। चलो नल, हम अपना काम तुरन्त शुरू करें।

[दृश्य बदलता है। समुद्र सामने है। सेना का कोलाहल। समुद्र में पत्थरों के गिरने के स्वर]

नल : नील! तुमने चुनौती के रूप में काम को हाथ में लिया और वास्तव में असम्भव सम्भव होता जा रहा है। सागर के जल में पत्थर दूध में जमने वाली मलाई की तरह स्थिर हो गये हैं और पुल लगभग तैयार है।

नील : हाँ नल, वो देखो अब लंका दूर ही कितनी रह गयी। शाबाश वीरो, और जल्दी करो। बस मंजिल मिलने ही वाली है मित्रो! और जोर लगाओ जरा! समझो पुल तैयार होते ही हमने रावण को आधा तो जीत ही लिया। रावण तो कल्पना भी नहीं करता होगा किन्तु आर्य राम के आदेश से यह असम्भव भी कितना सरल हो गया।

[दृश्य-परिवर्तन। श्री राम लक्ष्मण सहित शिविर में खुले आसमान के नीचे बैठे हैं। सुग्रीव नल, नील हनुमान के साथ आते हैं।]

सुग्रीव : आर्य! आपके आदेश के अनुसार पुल बनकर तैयार है। नल-नील ने शिवमन्दिर भी स्थापित कर दिया है। हनुमान शिवलिंग भी ले आये हैं। अब आप चलें। शिवलिंग की स्थापना करें।

राम : तुम धन्य हो सुग्रीव! नल-नील, तुम्हें लाख-लाख बधाइयाँ। तुम्हारा शिल्प अद्‌भुत है। तुम्हारे शिल्प की प्रशंसा तब तक होती रहेगी जब तक पृथ्वी रहेगी। यह समुद्र रहेगा। समुद्र को भी उसके भरपूर सहयोग के लिए मेरा नमस्कार है। लक्ष्मण! देख रहे हो हमारी सना की मेहनत? हमारे वास्तुकारों की अमर वास्तुकला? चलो अब शिवलिंग की स्थापना कर भगवान शंकर से अपनी विजय के लिए आशीर्वाद प्राप्त करें। भगवती दुर्गा मुझे सहायता प्रदान करें।

लक्ष्मण : भइया! रावण भी महान शिव-भक्त है।

राम : (**हँसकर**) मैं जानता हूँ। मैं उसे निमंत्रण दूंगा कि वह भी आवे। भगवान शंकर की शरण में आकर वह भी अपनी विजय की कामना करे। शंकर भगवान है। उनके सामने सबको हाथ जोड़कर सिर झुकाने और अपने कल्याण की कामना करने का अधिकार है। रावण महान विद्वान और शंकर-भक्त है। उसके कर्म उसका साथ देंगे और मेरे कर्म मेरे साथ रहेंगे।

अंक दस

दृश्य एक

[रावण का दरबार। मंत्रीगण, सेनापति आदि यथास्थान विराजमान हैं।]

द्वारपाल : सुनें, सावधान हों, लंकापति, राक्षसराज, देवताजयी महामान्य रावण राजसभा में पधार रहे हैं।

[राजसभा में खुसुर-फुसुर की आवाजें। रावण के आते ही सब खड़े हो जाते हैं]

मंत्री : मंत्रीगण, सभासद, मैं आप सबको लंकेश की आज्ञा से यह बता दूं कि आज महाराज ने यह सभा विशेष विचार के लिए बुलाई है। महाराज की असीम शक्ति को चुनौती देता हुआ एक तपस्वी युवक वानरों, रीछों की सेना के साथ समुद्र-तट तक आ गया है। उसी का एक दूत वानर यहाँ समुद्र लाँघ कर आया था और न केवल अशोक वाटिका को उजाड़कर बल्कि लंका को भी आग लगाकर गया है।

एक सभासद : वह महाबली था। उसने कितने ही शक्तिशाली राक्षस वीरों को अकेले मार डाला था। राजकुमार अक्षयकुमार को भी उसने समस्त सेना सहित अकेले मार डाला था।

रावण : मंत्री! कौन वेहूदा सभासद है यह? यह सदन की परम्परा भी नहीं जानता क्या? बीच में ही उस बन्दर के गुण गाने लगा है। इस मूर्ख से कहो कि वह एक मामूली बन्दर था।

सभासद : राजन्! क्षमा करें। वह मामूली बन्दर था और इतनी तबाही

मचा गया था तो आम और खास बन्दर तो और भी भयानक होंगे ? मैं माल्यवान हूँ, राजा रावण ! बूढ़ा अवश्य हूँ किन्तु बात अकल की करूँगा।

रावण : माल्यवान ? कौन माल्यवान ? मैंने पहचाना नहीं ?

माल्यवान : मैं तुम्हारे नाना का महामंत्री था। उन्होंने ही मुझे तुम्हारे साथ कर दिया था। तभी से तुम्हारे सेना में हूँ राजन् ! यहीं लंका में रहता हूँ।

रावण : वानर की बड़ाई करने वाले माल्यवान, जाओ सभा के बाहर चले जाओ। नहीं जाओगे तो द्वारपालों को कहूँगा कि वे तुम्हें धक्के मार कर बाहर फेंक दें।

विभीषण : बड़े भइया ! ऐसा न करिये। जरा सोचकर तो देखिये, बेचारे बूढ़े हैं। हमेशा बूढ़े ही तो सही अकल देते हैं फिर हमारे नाना के मंत्री रह चुके हैं। उनके अनुभव का लाभ लीजिये।

रावण : विभीषण ! तुम बैठो। रक्षक ! माल्यवान को बाहर ले जाओ।

माल्यवान : ले जाने का कष्ट क्यों देते हो लंकेश ! मैं स्वयं ही चला जाता हूँ ऐसे दरबार से जहाँ का राजा स्वयं परस्त्री का अपहरण करता हो··· (**कहते हुए बाहर चला जाता है।**)

विभीषण : भइया ! दूसरे की स्त्री को रखना वास्तव में बहुत बड़ा पाप है। दूसरे की स्त्री माँ के समान है।

रावण : (**भीषण हँसी हँसकर**) विभीषण ! कभी परस्त्री के साथ रहे होते तो पता चलता कि हर परस्त्री माता के समान नहीं होती है।

विभीषण : काम मनुष्य का दुश्मन है भइया ! काम के रास्ते में अड़चन आने पर क्रोध आता है। क्रोध मनुष्य को नष्ट कर देता है। लोभ, अर्थ और मोक्ष की कामना तो उतनी विनाशकारी नहीं है जितने कि काम और क्रोध हैं। काम की भावना पूरी न होने से ही आप, लगता है, क्रोध के वश में हैं। परायी स्त्री को लौटा दीजिये, कल्याण इसी में है।

रावण : बिभीषण ! यह राजसभा मैंने तेरे प्रवचन सुनने के लिए नहीं बुलाई है। मंत्री ! आगे की कार्यवाही की जावे।

मंत्री : राजन की आज्ञा से मैं कहना चाहता हूँ कि दुश्मन की सेनाएँ अभी तो समुद्र के पार हैं। किन्तु उस वानर की गतिविधि देखकर लगता है कि वे कभी भी हमारे दरवाजे पर आ सकते हैं। हमें उन्हें खतरनाक शत्रु मानकर अपनी रणनीति तय करनी है। (**मेघनाथ की ओर देखकर**) राजकुमार मेघनाथ ! कुछ कहना चाहते हैं

क्या ?

मेघनाथ : रावण की सभा में इतनी ओछी बात करते हो मंत्री ? जिन्होंने देवताओं, किन्नरों, गन्धर्वों को परास्त किया है उनको नर और वानरों का डर दिखाते हो ?

रावण : मंत्री ! मेघनाथ सही कहता है। फिर भी मेघनाथ ! छोटे दुश्मन से भी सावधान रहना चाहिए। दुश्मन दुश्मन होता है। एक छोटी सी चिनगारी भी उपेक्षा करने से विकराल आग बन जाती है।

मेघनाथ : यशस्वी राजन् ! आपके लिए उस तपवी युवक की वानर सेना माने क्या रखती है ? सब राक्षस उन्हें भुनी हुई मछली की तरह चबा जावगे। राक्षस लंका में बहुत भूखे भी रहते हैं। वानर आवें तो ये चट से चबा जावेंगे। जो बचेंगे उन्हें पकड़कर बांध दिया जावेगा। जब चाहेंगे राक्षस उन्हें खाते रहेंगे।

रावण : सभासद ! हमें मेघनाथ की बात में सत्यता लगती है। यदि वे वनवासी उन वानरों के साथ लंका में आवें तो उन्हें बीन-बीन कर खा जाने की तैयारी रहनी चाहिये। बन्दरों में शक्ति ही कितनी हो सकती है ?

विभीषण : भइया ! अनाचार, अत्याचार की कोई सीमा नहीं होती। आप अयोध्या के कुमार श्रीराम की पत्नी सीता से अनाचार करके कभी भी सुखी नहीं रह सकते। यह नारकीय काम होगा। ऐसा काम आप न करें भइया ! आप उन्हें आदर के साथ राम को लौटा दें।

रावण : विभीषण ! तू तो जिन्दगी-भर भगवान की पूजा ही करता रहा। राजा का भाई होकर भी तू हमेशा फकीर ही बना रहा। अपनी जिन्दगी के उपदेश मुझे मत दे तू। तू तो देवताओं का यश गाता है, उन्हीं का यश गा।

विभीषण : मेरे बड़े भाई हो इसीलिए रोकता हूँ। मेरे दुश्मन होते तो चाहे जितना बुरा काम करते न रोकता।

रावण : विभीषण ! रावण किसी के रोकने से न रुकता है, न किसी के कहने से चलता है। शूर्पणखा पर हाथ डाल कर, खर-दूषण को मार कर उन तपस्वियों ने मुझे चुनौती दी थी। मैंने उनकी चुनौती को स्वीकार किया। अब मैं उसकी पत्नी को ले आया हूँ तो मेरी चुनौती को वे स्वीकार करें ! उनमें बल है तो वह आकर सीता को ले क्यों नहीं जाते !

मंत्री : विषय बदल गया है राजन् ! वे सेना सहित हमारे सिरहाने पर आ चुके हैं। अभी-अभी गुप्तचरों ने समाचार दिया है कि वे शायद

लंका तक आने के लिए समुद्र पर पुल बाँध रहे हैं।

रावण : पुल बाँध रहे हैं ? (**गरजकर**) समुद्र ने उन्हें रोका नहीं ? वरुण को रावण का डर नहीं है क्या ?

विभीषण : भइया ! जय हमेशा सत्य की ही होती है। आपने श्रीराम की पत्नी को धोखे से लाकर उन्हें न चुनौती दी है, न अपना शौर्य दिखाया है। आप चोर की तरह उनकी अनुपस्थिति में उनकी पत्नी को उठा लाये हैं। यह आपने कोई चुनौती वाला नहीं चोरी वाला काम किया है। आप शायद उनकी शक्ति को जानते नहीं ?

रावण : उस बच्चे की शक्ति ? (**जोर से हँसता है**) उसमें शक्ति होती तो मनुष्य उसके साथ न होते ? देवता उसके साथ न होते ? वानरों और रीछों की शरण में वह वनवासी जाता ? (**हँसकर**) तुमने भी खूब उसकी शक्ति की बात कही।

मेघनाथ : पिताजी ! हमारे लिए तो वे जैसे गाजर-मूली हैं। भला वे क्या समुद्र पर पुल बनायेंगे ! कोई एक योजन समुद्र है क्या ? इतने बड़े समुद्र पर पुल बनाने की कल्पना करने वाले तो सचमुच बच्चे ही हो सकते हैं और फिर वानर क्या युद्ध करेंगे ? हम उन्हें बड़े-बड़े पिंजड़े बनाकर रोटी के टुकड़े दिखाकर बन्द कर देंगे। उनका मांस खायेंगे और खाल बेचेंगे। बन्दर की खाल बड़ी मुलायम और गर्म होती है।

रावण : इन्द्रजीत ! मैंने जो काम किया है उसका राजसभा से मैं समर्थन चाहता हूँ। आगे की रणनीति के लिए मैं सबका सहयोग चाहता हूँ। छः महीने की नींद पूरी करके आज मेरे भाई कुम्भकर्ण भी सभा में हैं। सीता मारे देवलोक और मृत्युलोक में सबसे सुन्दर स्त्री है। मैं उसे चाहता हूँ। उसने मुझसे एक वर्ष का समय माँगा था। वह समय मैंने दे दिया अब मैं उसे छोड़ना नहीं चाहता। कुम्भकर्ण ! तुम्हारी क्या राय है।

कुम्भकर्ण : (**जम्हाई लेते हुए**) मैं तो छः महीने बाद जगाया गया हूँ। फिर भी भइया, मैं पूछ सकता हूँ कि सीता को चुपचाप हर लाने से पहले आपने हम भाइयों से या इस राजसभा से सलाह ली थी ? परस्त्री का हरण तो भइया, मैं भी उचित नहीं मानता। या आप ऐसा करने से पहले हमें बता देते कि ऐसा काम करना आपकी और लंका की प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक हो गया है। शूर्पणखा के अपमान और खर तथा दूषण की मृत्यु का बदला उनकी पत्नी को चुरा लाने से नहीं चुकता। उस समय तुम्हें जाकर उस राम

के हाथ उखाड़ लेने चाहिये थे। लक्ष्मण को धरती पर पटक देना चाहिये था। उनकी दुष्टता थी तो वीरों की तरह उसका बदला लेना चाहिये था।

रावण : कुम्भकर्ण ! उस समय शूर्पणखा की हालत देखकर मैं इतना बेचैन हो गया था कि जो समझ में आया, जैसा कर सकता था वैसा किया मैंने। उस समय मुझे यही लगा कि शूर्पणखा के अपमान का यही उचित बदला है कि वह अपनी पत्नी के लिए तड़प-तड़प कर जान दे दें।

कुम्भकर्ण : तो भइया ! भोगो। पाप के काम में न मैं साथ दूँगा न विभीषण। मुझे आश्चर्य है कि भोजन में विष मिला देने जैसा काम करने वाले रावण को आज तक भी राम ने मार नहीं डाला ! कैसा पराक्रमी है वह ?

मेघनाथ : चाचा जी! यह बड़े भाई का अपमान है। आप न लड़ें, मैं मेघनाथ अकेला ही उनके लिए काफी हूँ।

रावण : ऐसा नहीं कहते मेघनाथ। भला कुम्भकर्ण मेरा साथ न दे यह कभी हुआ है ? कुम्भकर्ण ! तुम्हारा सम्पूर्ण भोजन तैयार है। बहुत ही सुवासित मांस और जितना चाहो उतनी मदिरा। छः महीने में तो जगे हो। जाओ भोजन करो, मैंने पूरी सुव्यवस्था कर दी है। जाओ छककर पियो और मन चाहे मांस का भोजन करो। समय पर बुलाऊँ तो आ जाना। तब तक जाकर फिर सोओ।

कुम्भकर्ण : ठीक है, अन्याय करो और बड़ा भाई होने के नाते अपने अन्याय में मुझे भी झोंक दो। मेरी यहाँ सुनेगा कौन ? मेरा भी क्या है ? मुझे तो बढ़िया मांस और मदिरा चाहिये। बला से मेरी, जो मन में आये करो। मैं जा रहा हूँ। **(जाता है।)**

रावण : मंत्री ! हमारी रणनीति क्या होगी वह बताओ न ? लंका की सुरक्षा व्यवस्था क्या रहेगी ?

मंत्री : राजन् ! यदि राम की सेना लंका की ओर आती है तो हमें लंका की सुरक्षा व्यवस्था को बहुत सुदृढ़ करना होगा।

विभीषण : भइया ! नाश की योजना क्यों बनाते हो ! सीता जी को लौटा दें, तो न लंका में युद्ध होगा न लंका का नाश होगा।

रावण : **(लात मारकर)** विभीषण ! बड़ा कृतघ्नी है तू। जा यहाँ से चला जा। मुझे अपना मुँह न दिखा।

विभीषण : मेरे पूज्य भ्राता ! विनाश जब समीप होता है तो बुद्धि इसी तरह

उल्टी पड़ जाती है। तुम्हारी यह लात मेरे लिए आशीर्वाद बनी रहे। हर क्रोधी को भला चाहने वाला ऐसा ही अक्षम्य लगता है। तुम लंका के रक्षक होकर, प्रजापालक होकर भी लंका का, प्रजा का विनाश चाहते हो तो और कोई कर भी क्या सकता है।

रावण (**क्रोध से चिल्ला कर**) इस सिरफिरे को धक्के देकर राजसभा से बाहर कर दो। यह मेरा भाई नहीं मेरा दुश्मन है।

विभीषण : (**हाथ जोड़कर विनीत स्वर में**) मैं स्वयं ही जा रहा हूँ। उन्हीं श्रीराम के पास जा रहा हूँ जिन्हें तू अभी समझ नहीं पा रहा है। मेरा प्रणाम है भइया ! मैं जा रहा हूँ।

दृश्य दो

[समुद्र-तट पर श्री राम, सुग्रीव सेना सहित पड़ाव डाल कर बैठे हैं। विशालकाय विभीषण का अपने चार अनुचरों सहित राम के आश्रम की ओर आना।]

रक्षक : कौन हो तुम ? तुम लोग कौन हो ? इधर क्यों बढ़ते आ रहे हो ?

विभीषण : भइया ! (**स्वास तेज चल रही है**) हमें रोको नहीं। हमें आर्यवर श्रीराम से मिलना है।

रक्षक : श्रीराम से ? उनसे क्यों मिलना है ? उनसे क्या काम है ? लंका की तरफ से आ रहे हो और सीधे श्रीराम से मिलोगे !

विभीषण : रक्षक, पहले सुन तो लो, मैं कौन हूँ। राम से क्यों मिलना है ? लंका से सीधे क्यों आ रहा हूँ ?

[सुग्रीव का शिविर-द्वार के निकट आना।]

सुग्रीव : रक्षक ! क्या बात है ?

रक्षक : राजन् ! देखिये तो, ये आये हैं। लंका से आये हैं और आर्य राम से मिलने की बात कहते हैं।

सुग्रीव : (**आगे बढ़कर**) राक्षस ? क्यों ? कौन हो तुम ?

विभीषण : रक्षक ने राजन् कहा है तो मैं भी समझ गया हूँ कि आप सुग्रीव हैं। राजन् ! मेरा नाम विभीषण है। मैं लंकापति रावण का छोटा भाई हूँ। ये चारों मेरे अनुचर हैं।

सुग्रीव : रावण का भाई ? रक्षको ! मार डालो इन्हें। यह आर्य राम के पास तक जाना चाहते थे क्या ?

विभीषण : हमें मारो नहीं वानरराज ! मैं तो रावण का भाई होकर भी

श्री राम का ही प्रशंसक हूँ। इसीलिए तो रावण ने मुझे अपने दरबार से निष्कासित कर दिया है।

सुग्रीव : निष्कासित कर दिया है ? सही कह रहे हो विभीषण ? राक्षस बहुत चाल चलते हैं। हमें राक्षसों पर विश्वास नहीं होता।

विभीषण : वानरराज ! मैं न राक्षस हूँ और न कोई चालाकी कर रहा हूँ। मैं श्रीराम का सेवक बनकर रहना चाहता हूँ। रावण के कार्यों से मैं बहुत दुःखी हूँ। कृपा कर हमें उनसे मिलने दीजिये।

सुग्रीव : रक्षक ! इन्हें आने दो। (**विभीषण अन्दर आते हैं।**)

सुग्रीव : चलिये, आप मेरे साथ आर्य राम के पास चलिये। अगर कोई प्रपंच रावण के कहने पर आपने यहाँ किया तो गर्दन साफ कर दूँगा।

विभीषण : सच मानिये, हम श्रीराम के साथी हैं। उनकी शरण पाना चाहते हैं।

सुग्रीव : यही बातें लंकेश के प्रपंच करने वाले गण भी कह सकते हैं। हम उनसे सतर्क हैं विभीषण ! सुन लो, एक बार भी तुम पर संदेह हो जायेगा तो जीवित नहीं बचोगे।

विभीषण : वानरराज ! मैं अपने सारे रिश्ते-नाते, भाई-बान्धव, घर-परिवार छोड़कर आर्य राम की शरण में आया हूँ। मैं धर्म के अधीन रहता हूँ। भला मैं अधर्म के रास्ते पर चल रहे अपने भाई का हित चाहकर धर्म की राह दिखाने वाले आर्य राम का अहित क्यों करूँगा ? विश्वास पर विश्व चलता है वानरराज !

[सुग्रीव का विभीषण को लेकर श्रीराम के शिविर में पहुँचना।]

सुग्रीव : प्रभु ! लंका से रावण का छोटा भाई विभीषण आया है। आपसे मिलना चाहता है। यद्यपि मुझे संदेह है कि वह हमारी सेना का भेद लेने आया है। फिर भी वह कहता है कि वह आपकी शरण में आ गया है, रावण ने उसे निकाल दिया है। इसी कारण मैंने उसे आपके पास ले आना आवश्यक समझा। आप देख लें कि वह शरणागत है या रावण का दूत है।

राम : मैं जानता हूँ सुग्रीव कि ये राक्षस मनमाना रूप भी रख लेते हैं और अन्तर्धान भी हो जाते हैं। तब भी विभीषण को भीतर आने दो।

सुग्रीव : आपके पास उसको ले आने से पहले मैं एक राजा होने के नाते अपना यह संशय भी बता देना चाहूँगा कि वह मित्र के रूप में

दुश्मन भी हो सकता है। वह हमारे साथ रहकर हमारी गति-विधियों की निरन्तर जानकारी अपने भाई रावण को दे सकता है और मौका पाने पर आपमें और हममें या हमारी सेना के बीच मन-मुटाव पैदा कर हमें भी तोड़ सकता है ?

राम : वानरराज ! आप ठीक कहते हैं। क्यों अंगद, राजनीति भी यही कहती है न ?

अंगद : भगवन् ! विभीषण शत्रु पक्ष से आया है। भले ही वह आपका साथी हो, यहाँ आप उसे अपने साथ रख भी लें, तो भी कुछ समय के लिए परीक्षा तो करनी ही चाहिये। एकाएक ही दुश्मन के खेमे से आये हुए व्यक्ति पर पूरा विश्वास नहीं कर लेना चाहिये। आप उसके गुण-दोष का विचार कर सकें, इतना समय तो लेना ही चाहिये। और फिर यह शरणागत होकर आ रहा है तो आने दीजिये किन्तु इसकी गतिविधियाँ देखते रहने के लिए कोई उपयुक्त गुप्तचर इसके पीछे लगा दीजिये।

हनुमान : युवराज अंगद ! जो हर समय आपके सामने है उसके पीछे गुप्तचर क्या लगाये जायें। इसकी गतिविधियाँ हम स्वयं देखेंगे। यों मैं तो लंका में रावण को, रावण के मंत्रियों को, विभीषण को स्वयं देख कर आया हूँ। मेरे विचार से तो रावण जितना क्रूर है, विभीषण उतना ही उदार है। वह एकदम साधु है। निश्चय ही वह आर्य राम का सेवक है, प्रशंसक है। मुझे विभीषण को अपना लेने में कोई भी आपत्ति तो नहीं दीखती बल्कि उनके हमारे साथ आ जाने से लाभ ही दीखता है।

राम : लाभ ? हनुमान किस तरह का लाभ हमें हो सकता है ?

हनुमान : आर्य ! हमें तमाम लाभ हो सकते हैं। सारी लंका की शक्ति, रणनीति, रणव्यूह सभी तो विभीषण से हमें ज्ञात हो सकते हैं। विभीषण धर्मवान होकर भी राजा के हर कार्य में अपना पूरा-पूरा दखल रखते थे। मैं विभीषण को जानता हूँ आर्य ! वह हमारे साथ, हमारे पास आ जावें तो हमारे लिए आधा युद्ध जीता हुआ-सा है।

राम : वानरराज ! विभीषण को मेरे पास आ जाने दीजिये। मैं उसे अपनी शरण में ले लेना ही श्रेयस्कर समझ रहा हूँ। शरण में आये दुश्मन को भी मना नहीं करना चाहिये। विभीषण मेरी शरण माँग रहा है तो मैं दूँगा। कल चाहे वह मेरे ही प्राण ले ले। हम शरणागत को अवश्य शरण देंगे। हनुमान जाकर स्वयं आदर के

साथ, विभीषण को मेरे पास लिवा लावें ।

दृश्य तीन

[विभीषण को लेकर हनुमान राम के पास आते हैं ।]

विभीषण : अयोध्या के राजकुमार आर्य राम को मैं रावण का छोटा भाई विभीषण प्रणाम करता हूँ ।

राम : आइये मित्र ! मेरे समीप आसन लीजिये । आइये पहले गले लग कर मिल लें । मैंने आपका नाम सुना था । हनुमान ने आपकी बहुत प्रशंसा की थी । मुझे पता है कि आपको अधर्म और अनीति से चिढ़ है । अपने भाई की रीति-नीति आपको कतई पसंद नहीं है । यहाँ कोई चिन्ता की बात नहीं मित्र ! मुझे अपना भाई मान कर मेरे साथ रहिये ।

विभीषण : अवधकुमार ! आप धन्य हैं । मैंने आपके बारे में जैसी कल्पना की थी आप उससे भी बढ़कर हैं । आपके सामने, इतने विशाल हृदय वाले पुरुष के सामने, अपने भाई के कुकर्म के कारण मेरा सिर झुका हुआ है । हनुमान के लौट आने के बाद भी मैंने उसे बहुत समझाया । किन्तु उसे तो अधर्म में ही आनन्द मिलता है । उसने सभासदों के सामने मेरा बुरी तरह तिरस्कार किया । अपमानित करके मुझे निकाल दिया । मैं पूरी आस्था के साथ अब आपकी शरण में हूँ ।

राम : शरण की क्या बात है विभीषण ! मैंने कहा न, यहाँ मेरे पास आप मेरे भाई की तरह हैं । परिवार और भाई-बहनों को कोई छोड़ता है तो उसका मन कितना दुखी होता है यह मैं जानता हूँ । आपका मन निष्कपट है । गलत कामों को आप सहन नहीं कर सकते । आप साधु हैं । दूसरों के हितैषी हैं ।

विभीषण : यह आपकी महानता है अवधपति ! मैं तो अकिंचन हूँ । आप तो चन्दन हैं प्रभु ! आपके चरणों में जो भी सेवा कर सकूँगा उससे मेरा जीवन धन्य होगा ।

राम : मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ विभीषण ! मेरे साथ कितने अच्छे लोग जुड़ गये हैं । हनुमान को देखिये, ये मेरे कितने प्रिय हैं, इन पर मुझे गर्व है । उपकार करना इनके जीवन का धर्म है । अन्याय से लड़ना इनके जीवन का कर्म है । सुग्रीव के साथ बाली ने जो

अन्याय किया उसे यह नहीं सह सके थे। मेरे हर काम के लिए प्राण हथेली पर लिये घूमते हैं। समुद्र को लाँघ सकना, लंका को जला सकना इन्हीं के बूते का था। यह पाताल में जा सकते हैं, पानी में योजनों तक तैर सकते हैं। हवा में उड़ सकते हैं। और देखिये, ये राजा सुग्रीव हैं। ये राजपाट और स्त्री को भी छोड़कर अपनी पूरी सेना सहित मेरे साथ हैं। ये अंगद हैं। युवा हैं। ये मेरे साथ जंगलों में मारे-मारे फिर रहे हैं। बाबा जामवन्त हैं। इस बुढ़ापे में भी मेरे लिए क्या नहीं कर रहे हैं। ऐसे ही और भी तमाम हैं। कहाँ तक बताऊँ। इन सबके साथ रह कर आपको बड़ा सुख मिलेगा। आप इन्हें पसंद करेंगे।

विभीषण : आपके चरण और यह सत्संगत पाकर मैं धन्य हो गया हूँ।

दृश्य चार

[रावण का दरबार]

मंत्री : लंकेश ! दूत समाचार लाया है। समुद्र पर पुल बाँध कर वानरों की सेना लंका में आ पहुँची है। समुद्र-तट पर उनके डेरे पड़ गये हैं। जब उनकी सेना आयी तो आगे-आगे राम और लक्ष्मण थे। उनके दाहिने आपके भाई विभीषण थे और बायें वानरराज सुग्रीव थे। हनुमान, अंगद, जामवन्त, नल, नील आदि प्रमुख वानर और रीछ उनके पीछे की पंक्ति में थे। उनके साथ वानर-रीछों की अपार सेना है राजेश्वर !

रावण : मंत्री ! हमारे दूत खुशखबरी लाये हैं—समुद्र पर पत्थरों से पुल बाँध दिया गया। समुद्र न होकर जैसे कोई पोखर हो गया। मुनि अगस्त्य ने इसे पी लिया था, ठीक ही किया था। देवताओं और असुरों ने इसका मंथन कर इसके सारे रत्न निकाल कर ठीक ही किया। जिन छोकरों को बाप ने घर से निकाल कर वनवास दे दिया वही बन्दरों को साथ लेकर समुद्र पर पुल बाँध लें ! इस पर भी यह समुद्र अपने को समुद्र ही समझ रहा है ? धिक्कार है इस समुद्र को ! धिक्कार है इसकी विशालता को ! मंत्री, समुद्र की इस लापरवाही के लिए उसे दण्ड देना चाहिये था। बन्दरों की सेना आ गयी है, तो आ जाने दो। भून डालूँगा सबको। नगर का घेरा कड़ा करवा दो। बाजार बन्द करवा दो। शत्रुओं को खाने-पीने

को कुछ न मिले। उनके आस-पास जितने भी कुएँ हैं सबमें विष डलवा दो। यदि लंका में कोई घुसे तो उसे मरवाकर उसकी खाल में भुस भरवाकर सारे नगर में घुमा दो। जो भी इधर आवे उसे बीन-बीन कर मार दिया जावें। विभीषण अपने घर आवे तो उसे भी।

मंत्री : राजन् ! जो आज्ञा है, पालन होगा।

दृश्य पाँच

[रावण अपने महल में है। मंत्री भी हैं।]

रावण : (**क्रोध से गरजकर**) कितनी लज्जा की बात है महामंत्री, एक मामूली-सा तपसी बालक इतने बड़े समुद्र पर पुल बाँध कर लंका तक आ गया है। अपनी वानर सेना के साथ और मेरे मंत्री, सेनापति, अमात्य सोते रहे।

महामंत्री : वास्तव में हमारे पास गुप्तचरों की बड़ी कमी है। हमें लंका से बाहर क्या होता है पता ही नहीं लगता।

रावण : (**गरज कर**) गुप्तचर नहीं हैं तो यह क्या मेरा काम है ? गुप्तचर क्यों नहीं हैं ?

महामंत्री : राजन् ! आपकी नीति है कि आपके लिए गुप्तचर आवश्यक नहीं हैं क्योंकि इधर कोई आँख उठा ही नहीं सकता।

रावण : महामंत्री, क्या मेरी यह भी नीति है कि लंका के अन्दर तक दुश्मन घुस आये और हमें पता भी न रहे ? इतने बड़े समुद्र में इतना विशाल पुल बँध जाये और लंकापति को पता ही न चले ? क्या इसी तरह शासन चलता है ? क्या इसी तरह राजनीति चलती है ? क्या तरह तरह युद्ध लड़े जाते हैं ?

महामंत्री : राजन् ! कोई अतिरिक्त राज्यादेश भी नहीं थे।

रावण : (**गरजकर**) अतिरिक्त राज्यादेश नहीं थे। महामंत्री ! क्या मुझे यह भी आदेश करना पड़ेगा कि अपने को बचाने के लिए तुम कुछ करो।

महामंत्री : हम क्या करते महाराज ?

रावण : (**व्यंग्य से**) तुम क्या करते ? तुम जाकर राम को राजमहल में बुला लेते और स्वागत-सत्कार करते। उसके साथ सीता को विदा कर देते। और तुम कर भी क्या सकते थे। कायर ! वानरों की

असंख्य सेना ने लंका में आकर पड़ाव डाल दिया है। जाओ उनके खाने-पीने की व्यवस्था करो। और तुम कर भी क्या सकते हो ? न समुद्र को डाँट सकते हो, न पुल बनना रोक सकते हो। न लंका में किसी को घुसने से रोक सकते हो। यह रावण की लंका न हुई, किसी चौराहे की धर्मशाला हो गयी। सबके सब नाकारा हो तुम। जहाँ-जहाँ वानर फैले हैं, वहाँ कुओं में विष डलवाया कि नहीं ? इस बात की निगरानी रखो कि दुश्मनों को लंका में कोई भी भोज्य पदार्थ न मिले। बन्दर आवें तो लोग लाठी मार कर भगा दें। हर घर में पर्याप्त लाठियाँ भिजवा दो।

महामंत्री : राजन् ? वे वानर हैं। घुसकर, कूदकर, नगर में फल-फूल तोड़ेंगे और खायेंगे। घरों में घुस कर पानी पियेंगे। बन्दरों की उछल-कूद को कैसे रोका जा सकता है महाराज !

रावण : तो तुम इतना भी नहीं कर सकते कि नगर में बन्दर घुस ही न पावें। ऐसी व्यवस्था तो अब तक कर देनी चाहिये थी। सेना को आदेश दो कि जो बन्दर जहाँ दिखे उसे तत्काल वहीं मार दिया जावे।

दृश्य छः

[रावण का अन्तःपुर में आना।]

मन्दोदरी : स्वामी ! मैं आपकी प्रतीक्षा कर रही थी, आइये। (**हाथ पकड़-कर**) आप इधर पलंग पर बैठिये न। स्वामी ! मैं आपसे एक प्रार्थना करती हूँ। मैंने दूतियों से सब सुन लिया है। स्वामी, बैर उसी से करना चाहिये जिसे बुद्धि से या शारीरिक बल से जीता जा सके। आपने देवताओं, गन्धर्वों, राक्षसों, किन्नरों को जीता है, मैं जानती हूँ। किन्तु राम मनुष्य है। आपने मनुष्य को जीतने का वर कभी किसी से नहीं माँगा। ब्रह्मा से भी यह वर आपने नहीं माँगा, क्योंकि नर-वानर को आप कुछ समझते नहीं थे। आज आपके विरुद्ध वही नर-वानर जुटे हैं नाथ ! इनको जीतने का वर आपके पास नहीं है। राम तो मनुष्यों में ही नहीं, सुना सभी के लिए अजेय हैं।

रावण : (**हँसकर**) मन्दोदरी ! वह मेरे लिए अजेय नहीं है। फिर सीता···

मन्दोदरी : आप सीता को पाने के लिए लंका का नाश न करिये। आप सीता

को लौटा दीजिये नाथ ! सीता को वापस पाकर राम सेना सहित लौट जावेंगे। आप उसे तुरन्त लौटा दीजिये। मुझे आपके प्राण सकुशल चाहिये। मैं इस हरी-भरी लंका को सनाथ बनी रहने देना चाहती हूँ।

रावण : (हँसकर) सीता को लौटा दूं ? (जोर से हँसकर) मन्दोदरी ! तुममें भी स्त्री-डाह हो गया है। तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारा बन कर रहूँ। सीता को छोड़ दूं। मन्दोदरी, सीता वास्तव में कमल है। वह चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दरी है।

मन्दोदरी : किन्तु सुन्दरी होकर भी वह किसी की पत्नी है। किसी की पत्नी का अपहरण महापाप है। मुझे कोई इस तरह हर ले जाता तो आप क्या नहीं करते ?

रावण : (हँसकर) हा हा हा हा हा ! नारी भी कितनी ईर्ष्यालु होती है मन्दोदरी ! रावण की प्रतिष्ठा का कोई प्रश्न तुम्हारे सामने नहीं है क्या ? एक छोकरे ने रावण को इतनी बड़ी चुनौती दे दी कि वह वानरों की सेना लेकर बेखटके लंका तक पहुँच गया जैसे रावण की हस्ती कोई हस्ती ही नहीं। जैसे रावण कुछ है ही नहीं !

मन्दोदरी : प्राणनाथ ! आपकी प्रतिष्ठा की चिंता करके ही, आपकी कुशलता के लिए ही मैं सीता को लौटा देने की बात कह रही हूँ। राम को आपने जता दिया कि आप उन्हें बहुत बड़ा दण्ड अब तक दे चुके हैं। दण्ड देने वाला कृपा भी कर सकता है, यही महानता है। यह भी बता दीजिये नाथ !

रावण : तुम तो प्रिये, नाहक डरती हो। संसार में कौन है जो मेरा सामना कर सके ? इन्द्र, वायु, वरुण, अग्नि, कुबेर, दिक्पाल आदि सभी तो मुझसे डरते हैं। राम जैसे मामूली तपस्वी से भला मुझे क्या डर ? मेरी मन्दोदरी ! तुम मुझसे बहुत प्यार करती हो न, इसीलिए मेरी इतनी चिन्ता करती हो। मेरा मंगल इसी में है रानी कि जो शत्रु बेधड़क लंका तक पहुँच गया है। उसे मैं जीवित न लौटने दूं।

मन्दोदरी : प्राणनाथ ! मैं इतना जानती हूँ कि राम को जीतना आसान नहीं है। सीता को आप रखें इसमें मुझे विरोध नहीं है, किन्तु मैं भी चाहती हूँ सीता रहे तो आप भी रहें। कहीं ऐसा न हो कि सीता तो रहे लेकिन मेरे प्राणनाथ न रहें।

रावण : (हँसकर) मेरी रानी को भी मेरी शक्ति पर संदेह है क्या ? मैं

भी रहूँगा और मेरे पास सीता भी रहेगी। लेकिन तुम अपनी जगह पटरानी बनी रहोगी। मैं तुम्हें वचन देता हूँ।

दृश्य सात

[रावण की राजसभा]

मंत्री : राजन् ! राम··· **(कांपती आवाज में)** के साथ जो बन्दर आये हैं, उन्होंने उत्पात मचाना···

रावण : महामंत्री ! कभी यह भी बताओ कि राम को सेना सहित खदेड़ दिया है। मेरे सेनापति मेरे सैनिक भी कुछ कर दिखा रहे हैं, कभी यह भी तो बताते ? उन कायरों से लड़ने की पूरी तैयारी करो बेटे प्रहस्त।

प्रहस्त : पिता जी ! ये मंत्री चाटुकार हैं। केवल हाँ में हाँ मिला देते हैं। ये भला सही सुझाव क्या देंगे। राम का एक बन्दर समुद्र लाँघ कर आया, वाटिका उजाड़ दी। लंका जला दी। ये सब लंका के वीर क्या सोये हुए थे। लंका के इन वीरों के भरोसे युद्ध लड़ोगे पिताजी ?

रावण : मैं इन्हें जानता हूँ प्रहस्त ! ये आलसी हैं। जब तक सिर पानी में न डूब जाय···

प्रहस्त : पिताजी ! लंका के योद्धा दोमुँहे हैं। राजा का तो नियंत्रण इन पर है ही नहीं। वह वानर जब लंका को जला रहा था तो लंका के योद्धा हँस रहे थे और वानर के करतब देख रहे थे। जैसे वह दुश्मन का दूत नहीं कोई मँदारी का बन्दर था जो अपने खेल दिखा रहा हो।

रावण : **(गरज कर)** वे वानर के करतब देख रहे थे ? तुमने उन्हें देखा था प्रहस्त ?

प्रहस्त : पिताजी ! वह वानर लंका जला रहा था और लंका के योद्धा न केवल हँस रहे थे बल्कि उस वानर की प्रशंसा भी कर रहे थे।

रावण : प्रहस्त ! क्या कहा ? हमारे लोग उस समय उस वानर की प्रशंसा कर रहे थे ?

प्रहस्त : जी, पिताजी ! आपके योद्धा आपके सामने तो आपकी जय-जयकार करते हैं किन्तु है कुछ और। आप इनकी मीठी बातों पर मन ही मन झूम जाते हैं। इन्हें वीर और योद्धा समझते हैं

आप !

रावण प्रहस्त ! मेरे सारे मंत्री, अमात्य, सेनापति सभी नाकारा हैं। बेटे ! तुम स्वयं सजग रहकर युद्ध सम्बन्धी समाचार मुझे देना। मेरा इन्द्रजीत पर, कुम्भकर्ण पर विश्वास है। वह भेदिया विभीषण तो मेरे दुश्मन से जा ही मिला है। प्रहस्त ! तुम चैतन्य रहकर अपने लोगों पर भी निगाह रखो। समझे ?

प्रहस्त : जी, पिताजी ! मैं तो चैतन्य रहूँगा ही। आप भी अपने इन सेना-पतियों, मंत्रियों को चाटुकारिता छोड़कर चैतन्य बने रहने को कठोरता से कहें।

रावण : मुझे सबको काम सौंप देना होगा प्रहस्त ! मैं इनसे काम लेना जानता हूँ। महामंत्री !

महामंत्री : जी, राजन् !

रावण अब तक कोई सूचना तुमने मँगायी कि राम के साथ कितनी सेना है ? उन्होंने क्या रणनीति बनायी है ? उनकी व्यूह-रचना क्या है ?

महामंत्री : मैंने सारी सूचना मँगायी है, किन्तु थोड़ा समय लगेगा महाराज !

रावण : सूचना मँगायी है। (तड़पकर) जैसे कह रहे हैं जैसे लंका का बजट बनाने के लिए पिछले वर्ष के व्यय की सूचना मँगायी हो। सूचना मँगायी है, जैसे मैंने पूछा हो कि लंका में कितने खाते-पीते लोग हैं और कितने गरीब ? सूचना मँगायी है जैसे राजसभा ने जानना चाहा हो कि पीने के लिए जल कितने मुहल्लों में पर्याप्त है और कितने मुहल्लों में सफाई व्यवस्था भी नहीं है ? तुमने सूचना मँगायी है ! यह सूचना राजा सुग्रीव को पत्र लिखकर मँगायी है ? दूत-कार्य में प्रसिद्ध शुक और सारण को बुलाओ। मैं स्वयं यह काम कराता हूँ।

महामंत्री : कोई जाओ, जल्दी से शुक और सारण को साथ लिवा लाओ।

[मंच पर जरा देर के लिए अँधेरा होता है। फिर प्रकाश। शुक-सारण आते हैं।]

शुक : राजन् ! प्रणाम स्वीकार हो।

सारण : राजन् का यश अमर रहे।

रावण : (गरजकर) राज से वेतन पाते हो तो करते क्या हो। समुद्र पर पुल बाँधा गया, तुमने बताया ?

सारण : महामंत्री को पहले-पहल यह हमीं ने बताया था राजन्, कि समुद्र पर पुल बँध रहा है। यह भी हम ही ने बताया था कि शत्रु लंका

में आ गये हैं।

रावण : तो तुम दोनों जाओ। राम की सारी सेना का, सेना के वीरों का, बड़े योद्धाओं का, उनकी रणनीति का पता करके आओ और आकर मुझे बताओ कि उनके पास कौन-कौन से बड़े और भीषण अस्त्र हैं। अपने सहायकों को भी संगठित कर इस तरह के काम पर लगा दो। राम की, राम की सेना की हर गतिविधि की सूचना मुझे तत्क्षण मिलनी चाहिए।

[शुक-सारण दोनों सिर झुकाकर चले जाते हैं।]

दृश्य आठ

[राम का युद्ध-शिवर। विभीषण श्री राम के पास आते हैं। वहाँ सुग्रीव, लक्ष्मण, हनुमान आदि बैठे हैं।]

विभीषण : आर्य कुमार की जय !

राम : क्या बात है विभीषण ? आओ।

विभीषण : ये दो दूत रावण के हैं। हमारी सेना में घूम-घूमकर ये कुछ अपने पास लिख रहे थे। मैं इन्हें जानता हूँ। ये दोनों रावण के प्रमुख दूत हैं—शुक और सारण।

सुग्रीव : ये रावण के गुप्तचर हैं तो इन्हें तुरन्त मार दिया जाये। मेरा आदेश है यह।

राम : ठहरो सुग्रीव ! ऐसा आदेश आप इतने शीघ्र न दें।

सुग्रीव : आर्य राम ! ये हमारे भेद जान रहे थे। ये गुप्त रूप में हमारी रणनीति जान रहे थे।

राम : ये दूत हैं, इन्हें मारा नहीं जाना चाहिये। दूत राजा का सेवक होता है, उसे अपना काम करना ही है। आप ऐसा आदेश न दें। **(गुप्तचरों की ओर मुड़कर)** तुम लोग हमारे युद्ध-शिविर में हमारे बारे में सूचना एकत्र करने आये हो न ? आओ, इधर मेरे पास आकर बैठ जाओ।

शुक : श्रीराम ! हमें आश्चर्य है कि आपकी सेना का भेद लेने वाले हम दोनों दूतों को राजा सुग्रीव द्वारा हमें मारे जाने के आदेश देने पर भी आप हम पर क्रोध करने के बजाय आदर से अपने पास बैठने को कह रहे हैं। अन्यथा दूत को पकड़कर बन्द कर दिया जाता है और फिर दुश्मन का भेद जाना जाता है।

राम : *तुम्हें रावण ने मेरी सेना की पूरी जानकारी लेने के लिए भेजा है न ?*

शुक : भेजा तो है। किन्तु हम विभीषण के कारण पहचान में आ जाने से पकड़े जा चुके हैं।

राम : मेरी सेना की जानकारी तुमने कुछ ली ?

सारण : जी, कुछ तो ले ली थी। आपकी व्यूह-रचना, रणनीति पूरी तरह नहीं जान पाये थे।

राम : तो छुपकर आने की क्या बात थी ? सीधे मेरे पास ही आ जाते। क्या दूतों को भी और रावण जैसे बड़े राष्ट्र के इतने कुशल दूत प्रमुखों को भी कहीं मन में आशंका थी कि राम के पास सीधे चले जाने पर सेना सम्बन्धी कोई सूचना छिपाई जावेगी।

शुक : श्रीराम ! यह युद्ध है। राम और रावण का युद्ध। युद्ध में एक पक्ष की सूचना दूसरे पक्ष को बहुत गुप्त रूप से सारे जोखिम उठा कर ही मिल सकती है। ऐसे दूत मार भी दिये जाते हैं जो सेना की शक्ति और नीति का भेद लेते हैं।

राम : शुक ! यही तो अन्तर है। राम केवल अन्याय के विरुद्ध लड़ता है और जब लड़ता है तो खुलकर लड़ता है। रावण महान है, मैं मानता हूँ। वह विद्वान है, मैं हृदय से मानता हूँ। लेकिन उसमें तमाम श्रेष्ठ गुण होने पर भी राक्षसी वृत्ति है। इसीलिए वह हमारे लिए पूज्य ब्राह्मण होकर भी अन्याय और अनीति का पोषक है। रावण श्रेष्ठ और विद्वान होकर भी अपने अति भोग-लालसा और अहंकार के कारण राक्षस है। अहंकार किसी को भी राक्षस बना देता है।

सारण : ब्राह्मण और शिव-भक्त होकर भी यह सही है कि हमारे राजा दुष्कर्म में अधिक पड़े रहते हैं। वह नीति-अनीति में, धर्म-अधर्म में भेद नहीं करते।

राम : सही है सारण ! रावध ने अपनी बहिन शूर्पणखा का दोष देखे बिना मुझसे बैर ले लिया। बैर भी ऐसा कि सामने न लड़कर मेरी पत्नी को अधर्म और अनीति के मार्ग से उठा लाया। यह वीरता का काम नहीं था। कायरता का काम था। दुष्ट पुरुष भी बली होता है। इसीलिए सालभर मैं इसी बली पुरुष के कपट व्यवहार के कारण परेशान रहा हूँ। मैं जानता था, अकेले मैं रावण को तो मार लूंगा किन्तु लंका जैसी बड़ी शक्ति से लोहा लेने के लिए मुझे बाहरी सहायता लेनी आवश्यक थी। वह मुझे सुग्रीव

से मिली। अब मैं उन्हें जीत लूँगा यह मेरा विश्वास है।

शुक : असम्भव है राम! रावण के पास बड़े ही आधुनिक अस्त्र हैं। रावण की शक्ति असीम है। इन्द्रजीत जैसा उसका पुत्र इन्द्र को भी हरा चुका है। शक्ति में उसका कोई मुकाबला नहीं है।

राम : अस्त्र मेरे पास भी हैं। शक्ति मेरे पास भी है। मुझे असंख्य रावण-सेना के विरोध के लिए अपनी सेना चाहिये थी। वनचारी होकर भी मैंने वह जुटा ली। मेरे साथ वनचारी हैं, आदिवासी हैं। यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों में जीने और जूझने वाले उपेक्षित से रहे किन्तु वे पराक्रमी और वीर हैं। ये धरती से आकाश तक और आकाश से पाताल तक मेरे साथ भूखे-प्यासे रहकर भी प्राण हथेली पर लेकर लड़ने वाले हैं। मेरी रणनीति खुली है। जाओ, मेरी सेना, शस्त्रागार और रणनीति सब देख लो। जाकर रावण को बता देना। हनुमान!

हनुमान : जी, आर्य!

राम : देखो, गुप्त जानकारी प्राप्त करने के लिए विशेषज्ञ शुक और सारण लंका से आये हैं। इन्हें ले जाकर हमारी सेना का, शस्त्रों का, रणनीति का पूरा परिचय दे दो।

हनुमान : आर्य! ये लंका से आये हैं। ऐसा उचित नहीं है।

राम : उचित है। इन्हें जो भी ये जानना चाहें बता देना। कुछ भी छुपाना नहीं।

हनुमान : जैसी आज्ञा।

राम : जाओ शुक और सारण, हनुमन्त के साथ जाकर सारी सूचना ले लो। जाकर लंकापति रावण को ब्योरेवार दे देना। उनसे एक बात अवश्य कह देना कि युद्ध के लिए अस्त्र-शस्त्र से भी अधिक आवश्यकता होती है साहस की, नैतिक बल की जो आन्तरिक ऊर्जा से अधिक सद्कर्म से अर्जित होती है। वह न नापी जा सकती है न आँकी जा सकती है और न देखी जा सकती है। हमारे पास वह पर्याप्त है। रावण के पास कितनी है, यह उसे स्वयं समझ लेना है। युद्ध का अन्तिम निर्णय उसी आन्तरिक शक्ति से होना है। जाओ हनुमान के साथ तुम लोग जा सकते हो।

दृश्य नौ

[राम की सभा। राम अपने साथियों के साथ बैठे हैं।]

राम : वानरराज ! लंका तक तो हम आ गये हैं। अब हमें आगे की बात सोचनी चाहिये।

लक्ष्मण : भइया ! हमारे सभी वीर तैयार बैठे हैं। रण का बिगुल बजे तो हम लंका पर टूट पड़ें। रावण को बाँधकर आपके चरणों में डाल दें। सारी लंका को खाक कर दें और एक-एक राक्षस को बीन-बीन कर मार डालें। मेरी आँखें पूज्या जनकदुलारी जी को देखने को तरस रही हैं। जितना शीघ्र हो सके हम उन्हें आपकी बगल में बैठी देखना चाहते हैं।

राम लक्ष्मण ! रावण से युद्ध करने के साहस के साथ ही हम लंका तक आये हैं। किन्तु युद्ध बहुत अच्छी बात नहीं है। युद्ध के बड़े दूरगामी परिणाम होते हैं। सैनिकों का बलिदान व्यर्थ में करना पड़ता है और सारे देश की जनता को भी बहुत कुछ भोगना पड़ता है। देश टूट जाता है। नाश और तबाही के अलावा युद्ध क्या परिणाम छोड़ता है? बच्चे अनाथ हो जाते हैं, युवा पत्नियाँ अपना सिन्दूर मिटाकर लाचार विधवा और आश्रय-हीन हो जाती हैं। बूढ़े माँ-बाप बुढ़ापे का सहारा खो देते हैं। यदि युद्ध अधिक भयंकर हो उठे तो देश के देश समाप्त हो जाते हैं। यहाँ तक आकर हमने अपनी शक्ति का परिचय रावण को दे दिया है ताकि वह हमें कमजोर और अकेला न समझे। सीता को ले जाने के लिए भी मेरा यहाँ तक आना वैसे भी आवश्यक था ही। यों हम युद्ध के लिए तैयार होकर ही आये हैं फिर भी मैं चाहता हूँ कि एक बार हम युद्ध को बचाने का प्रयत्न कर सकें तो अच्छा है। क्यों सुग्रीव ! आप क्या सोचते हैं?

सुग्रीव आर्य ! आपका विचार उत्तम है। किन्तु रावण बिना युद्ध के मानेगा नहीं। उसे अपनी शक्ति पर बहुत घमण्ड है। वह शायद आपको बहुत ही साधारण समझ रहा है। हमारी इस विशाल सेना को वह बन्दरों की सेना कहकर उपहास कर रहा है।

राम : लेकिन वानरराज ! हम इतने बड़े समुद्र पर पुल बाँध कर इतनी बड़ी सेना के साथ रावण के देश में आ गये हैं। और अब युद्ध उसी के देश में होगा। उसी की धरती पर। क्या इस सबका विचार,

हमारी शक्ति का अनुमान रावण को अब भी नहीं हुआ होगा।

लक्ष्मण : भ्राता ! लातों के भूत बातों से नहीं मानते। जो किसी की पत्नी को चुरा सकता है वह क्या सीनाजोरी करने से कतरायेगा। उसे देवराज इन्द्र को हराने का, देवताओं को, किन्नरों को परास्त करने का नशा जो है। मनुष्यों को, वानरों को तो वह गाजर-मूली समझे बैठा है। वह देवता और राक्षस के अलावा मनुष्य को तो कुछ समझता ही नहीं।

राम : फिर भी वानरराज और विभीषण, आप यह भी सोचें कि लोग हमें महत्वाकांक्षी और स्वार्थी न समझें। कभी कोई यह न कहे कि यह युद्ध केवल सीता को पाने के लिए हुआ था। केवल अपनी एक पत्नी के लिए इतनी बड़ी तबाही मैं नहीं चाहता। एक अकेली सीता को पाने के लिए लाखों पत्नियों को विधवा मैं नहीं बनाना चाहता। उसने मेरी सीता को अलग उपवन में रखा है, वहीं से वह उसे मुझे ले जाने दे तो यह युद्ध क्यों हो ? हम सबमें जामवन्त वृद्ध हैं। उनकी सलाह उत्तम होगी। मैं वीरवर जामवन्त की राय जानना चाहता हूँ। चाहता हूँ कि किसी तरह रावण को यह समझाया जाये कि अपनी एक जरा-सी तुष्टि के लिए वह असंख्य लोगों का बध न करायें। अपने भरे-पूरे प्यारे देश को नष्ट न करे।

जामवन्त : श्रीराम ! आपके विचार से मैं पूरी तरह सहमत हूँ। युद्ध विनाश का ही दूसरा नाम है। रावण महारानी सीताजी को लौटा दे तो सारी लंका को हमें कंकालों से पाट देने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यदि वह सीता जी को लौटा देगा तो आप उस दुरात्मा को क्षमा भी कर देंगे।

विभीषण : और फिर आर्य श्रीराम ! सीता जी तो प्रतीक हैं रावण की अहम्मन्यता अहंकार, अनीति और अधर्म की चरम परिणति की, उसके पाप के घड़े भर जाने की, दण्डकारण्य, विन्ध्य और चित्रकूट के तपस्वी, ऋषियों, विद्वानों को प्रताड़ित करने, सताने और उनके यज्ञों, सत्कर्मों को विध्वंस करने के उसके कुत्सित प्रयासों और देव संस्कृति को नष्ट करने के उसके घृणित अभियान तथा भोग की महत्ता व सत्ता कायम करने के उसके दुराग्रह की। आप इस युद्ध को इस दृष्टि से देखिये। केवल सीता जी को मुक्त कराने का प्रयत्न भर नहीं है यह युद्ध ?

जामवन्त : हाँ आर्य ! लंकापति विभीषण ठीक कहते हैं। मैं उन्हें लंकापति

या लंकेश ही कहूँगा, क्योंकि उन्हें यही नाम आगे चलकर ग्रहण करना भी है । ***(सब हँसते हैं इस सत्य पर)*** वास्तव में युद्ध का निमित्त जनकसुता अवश्य है किन्तु इस युद्ध की अनिवार्यता उन्हीं तमाम कारणों से है जिन्हें विभीषण बता रहे हैं । दण्डकारण्य के ऋषि-मुनि, तपस्वी वर्षों से आपसे आशा लगाये बैठे हैं। उनका संताप दूर करने की आपकी प्रतिज्ञा है। फिर भी यदि युद्ध बच जाय, युद्ध के बिना रावण को सद्बुद्धि आ जाय तो रक्तपात और विध्वंस क्यों किया जाय ?

विभीषण : सीता जी को लौटा देने का अर्थ है, रावण ने अपनी हार स्वीकार कर ली और सद्मार्ग अपना लिया, विध्वंस की राह छोड़ दी।

जामवन्त : इसका सीधा अर्थ होगा कि उसने राक्षस संस्कृति, भोग और अव्यवस्था की संस्कृति के आगे देव संस्कृति, योग और सुसंस्कारों की, तपस्वियों और सतोगुणियों की परम्परा को सर्वश्रेष्ठ मान लिया है । इसलिए रावण को हमें सोचने-समझने का एक अवसर देना चाहिये श्रीराम ! आपके विचार से मैं सहमत हूँ ।

राम : जामवन्त जी ! तब कोई उपाय बताइये कि रावण को युद्ध से पहले सोचने-समझने का अवसर दिया जाये । आप हम सबमें वृद्ध हैं, आपकी सलाह सही सलाह होगी ।

जामवन्त : रावण स्वर्गीय वानरराज बाली का मित्र है । मेरे विचार से बाली-पुत्र अंगद को रावण के पास भेजा जाय। वह रावण को समझाये । अंगद निर्भीक भी है, बलवान भी है, समझदार भी है, और तर्कशील भी है । आर्य राम के दूत बनकर अंगद रावण के पास जावें। उससे कहें कि जब उसने सीता जी को पवित्र रखते हुए एक साल से नगर में भी नहीं उपवन में रखा है तो वह इतनी उदारता और दिखावे कि उन्हें आदर सहित राम को सौंप दे । युद्ध को टाल दे ! युद्ध के लिए मन को चाहे जितना उकसा ले पर उसके परिणाम देश को वर्षों तक पीढ़ियों तक भोगने पड़ते हैं ।

राम : जामवन्त ठीक कहते हैं। युवराज अंगद ! तम जाकर एक बार रावण को समझाओ। शायद सही रास्ते पर पर आ जावे । विध्वंस टल जावे ।

अंगद : आर्य राम ! यह मेरा सौभाग्य है कि आपने मुझे इस लायक समझा। मैं जाता हूँ, रावण को समझाने का प्रयत्न करूँगा। आपका संदेश दूँगा कि युद्ध को टालकर वह सीताजी को सौंप दे।

राम : अंगद ! तुम बहुत समझदार और तर्कशील हो। जामवन्त ने तुम्हारा नाम सही सुझाया है। तुम मेरे भी विश्वासपात्र हो। तुम्हारे पिता का रावण मित्र था इसलिए तुम इस काम के लिए और भी उपयुक्त हो। लेकिन बात करने में तुम लक्ष्मण की तरह प्रखर हो। किन्तु रावण से बात करते समय यों ही प्रखर मत हो उठना। पहले उसे शान्त भाव से समझाना। न माने तो फिर जितना भी रौद्र रूप दिखा सको दिखा देना।

अंगद : अवध नरेश ! अब आपके साथ रहकर बहुत कुछ सीख चुका हूँ। पहले अवश्य शान्त रहकर बातें समझाऊँगा। वह दुर्मति नहीं मानेगा तो आर्य, मैं अपना बल दिखाने में चुकूँगा नहीं।

राम : (हँसकर) बेटे अंगद, बल दिखा देना लेकिन सम्पूर्ण नहीं। तुम्हारा सम्पूर्ण बल हमें युद्ध में चाहिए।

अंगद : तो आर्य आज्ञा दें। मैं जा रहा हूँ। आशीर्वाद दें।

[दृश्य बदलता है।]

दृश्य दस

[लंका में अंगद का घूमना]

एक राक्षस : अरे, ओ बन्दर इस तरह सिर ऊँचा किये किधर जा रहा है ? क्या नाम है तेरा ?

अंगद : (मुँह बनाकर) मेरा नाम तो अंगद है। लेकिन तुम कौन हो ?

राक्षस : मैं लंकापति का पुत्र हूँ। यहाँ सभी सिर झुका कर चलते हैं। तुम्हें शायद पता नहीं।

अंगद : यहाँ की प्रथा से मुझे क्या लेना-देना। मैं किष्किन्धा का युवराज हूँ। मुझे आदत जो है सिर उठाकर चलने की। हमारे देश में सिर झुका कर चलने की प्रथा ही नहीं है।

राक्षस : अरे युवराज हो ? कहाँ जा रहे हो ? किसी देश का युवराज दूसरे देश में इस तरह मारा-मारा नहीं फिरता। वह राजा का अतिथि होता है। तुम यहाँ किससे मिलने सड़कों पर घूम रहे हो ?

अंगद : रावण है कोई यहाँ, मुझे उससे मिलना है।

राक्षस : वह तो लंकेश हैं। मेरे पिता हैं।

अंगद : (**उसे नकारते-से स्वर में**) होगा, होगा। मुझे उसी रावण के पास जाना है। राजकुमार, चल तू मेरे रास्ते से हट न। (**उसे**

बकेलता है।)

राक्षस : बड़ा बदतमीज है तू बन्दर.

अंगद : जाने भी दे मित्र ! जो कोई रावण यहाँ का राजा है मुझे उसी के दरबार में जाना है। मिलना है उससे।

राक्षस : जो कोई रावण ? (**जोर से हँसता है**)अरे पागल, सृष्टि में एक ही रावण है। तू उसके पास तक जा भी नहीं सकता। (**हँसकर**) बन्दर और लंकापति रावण के दरबार में जावेगा ? (**हँसता है।**)

अंगद : क्यों तू हँसता क्यों है रे ?

राक्षस : रावण-पुत्र से रे, वे में बात करते हो ?

अंगद : तो क्या तुझे मैं पूज्यपाद, श्रीमान कहूँ ?

राक्षस : अरे बन्दर ? अपनी औकात पर रह।

अंगद : औकात तो मेरी यह है कि मैं तुझे चक्करघिन्नी की तरह घुमा कर सामने की दीवाल पर पटक देता हूँ। राजकुमार है, शक्तिशाली है तो अपने प्राण बचा (**झपटकर पकड़ लेता है।**)

[राजकुमार चिल्लाता है। अंगद उसे उठाकर चारों तरफ घुमाकर दीवाल पर पटक देता है। हाहाकार]

एक नागरिक : इस बन्दर ने राजकुमार को इस दीवाल पर पटक दिया। बेचारे का सिर फटकर भेजा बाहर निकल गया है। मर गया है।

दूसरा नागरिक : (**डरे स्वर में**) वानर को आगे जाने का रास्ता दो। भीड़ क्यों लगा दी ? नगर-सुरक्षा वाले जाकर लंकेश को समाचार दें। इस महाबली वानर का रास्ता न रोको। वरना यह दो-चार को और पटक देगा ! ये वानर बड़े खतरनाक हैं। एक आया था तो लंका को जला गया था। ये दूसरा आया है तो सर फोड़ रहा है।

[सब हट जाते हैं। अगद आगे बढ़ जाता है।]

दृश्य ग्यारह

[रावण की राजसभा]

मंत्री : यम, कुबेर, वरुण, अग्नि और वायुदेव इस तरह ऊँची आवाज में क्यों बातें कर रहे हैं आप ? यह लंकापति रावण का राजदरबार में आने का समय है। आप सभी देवता शान्त रहें। वे पधारने वाले हैं।

द्वारपाल : सावधान ! सावधान ! राजसभा में लंकापति रावण पधार रहे

हैं। आप सब सावधान रहें।

[रावण आता है और सिंहासन पर बैठता है।]

रावण : महामंत्री ! राजसभा में जिन बातों पर विचार होना है, बताया जाय।

महामंत्री : श्रीमन् ! राम से युद्ध की बात करनी थी। किन्तु राम ने एक वानर को यहाँ दूत बनाकर भेजा है। वह दरबार में खड़ा है। **(संकेत करता है।)**

रावण : **(उधर देखकर)** अच्छा ! तो वानर तुम हो ? कौन हो तुम ?

अंगद : राजन् ! मैं आर्य श्रीराम का दूत हूँ।

रावण : तो मेरी राजसभा में क्यों आये हो ?

अंगद : मित्र-भाव से आया हूँ।

रावण : मित्र-भाव से ? आश्चर्य है, कैसा मित्र-भाव ? अपने को राम का दूत बताते हो और मुझसे मित्र-भाव की बात कहते हो ? राम के दूत से मेरी मित्रता का अर्थ क्या है ?

अंगद : राजन् ! मेरे पिता आपके परम मित्र थे। इसीलिए आपके हित की कुछ बात करने आया हूँ मैं।

रावण : ठीक है, होंगे। बताओ क्या कहने आये हो ? सुग्रीव की बन्दर सेना का कोई गुप्त समाचार लाये होगे। शुक और सारण ने मुझे सभी समाचार दे दिये हैं। अब तुम क्या समाचार दोगे ?

अंगद : आप पुलस्त्य ऋषि के नाती हैं। आपने ब्रह्मा और शिव की अगाध तपस्या की। उन्होंने अमित बल-वैभव का वरदान भी दिया आप को। उसी वरदान से देवताओं, इन्द्र और दिक्पालों को आपने जीता है।

रावण : **(हँसकर)** ह ह ह ! ह ह ह ! तुम ठीक कहते हो बन्दर। तुमने देखा भी होगा कि राजदरबार के बाहर तमाम देवता हाथ जोड़े खड़े हैं। जो जरा अक्खड़ हैं न, वे बंदीगृह में सड़ रहे हैं। वे पड़े-पड़े सड़ते रहेंगे।

अंगद : राजन् ! एक काम आपने अच्छा नहीं किया। उसी से आप बदनाम हैं। उससे आपका यश घटा है।

रावण : वह कौन-सा काम है, जिसने रावण का यश घटाया है ?

अंगद : आप सीता जी को चोरी से हर लाये थे।

रावण : **(चिल्लाकर)** सीता को चोरी से ले आया था ? और मेरी बहन को जो उन तपसी बालकों ने अपमानित किया था ? मैं क्या उनसे डरता था ? मैं ईंट का जवाब पत्थर से देता हूँ, वानर ! मैंने वह

दिया ।

अंगद : अरे पत्थरबाज जी ! सूनी कुटिया से उन्हें बहाने बनाकर तो न लाते ! चोरों की तरह का काम तो न करते ? राजन् ! शूर्पणखा तो अपनी वासना की आग बुझाने की प्रार्थना लेकर गयी और न मानने पर सीता जी को खा जाने को तैयार हो गयी। उन सुन्दर सुकुमारों ने वैसी चरित्रहीन युवती को ठीक दण्ड दिया। नाक-कान काट के उसे विरूप कर दिया। ऐसी दुराचारिणी के लिए यही उपयुक्त दण्ड था भी।

रावण : और मैंने भी, मेरी बहन को विरूप करने वालों को बहुत सही दण्ड दिया वानर !

अंगद : राजन ! मैं आपका हितैषी बनकर यह कहने आया हूँ कि आप अपनी पत्नी मन्दोदरी के साथ जाकर श्रीराम को उनकी पत्नी सादर लौटा दें। वे करुणा के सागर हैं। अवश्य आपको क्षमा कर देंगे। वह आपको वैसे ही शरण देंगे जैसे आपके भाई विभीषण को दी है। वे महान और यशस्वी हैं। आप मेरे पिता के मित्र हैं, इसलिए प्रार्थना करता हूँ कि उनसे आप बैर न लें।

रावण : (**गरजकर**) दुष्ट वानर! सम्हलकर बात नहीं करता। मैं देवताओं का दुश्मन हूँ और तेरा राम देवताओं का भक्त है। वह देवताओं की कृपा पर जीता है, जिन्हें मैं बार-बार हरा चुका हूँ। तूने तो बताया भी नहीं कि तेरा पिता है कौन ? अपने पिता का नाम तो बता।

अंगद : लंकेश! मैं स्वनामधन्य किष्किन्धा नरेश बाली का पुत्र हूँ। जिनकी काँख में आप छः महीने तक पड़े रहे और बगलगंध से चिचियाते रहे थे, बेचारे ! बाली ने आपकी सुध तक नहीं ली थी। चाचा जी, मैं उसी महान बाली का पूत्र हूँ।

रावण : (**गरजकर**) क्या कहा, तुम बाली के पुत्र हो ? जिस राम ने तेरे पिता को धोखे से मार डाला तुम उसी के दूत बनकर आये हो ? अरे तुम तो कुल-कलंक हो। तुम्हारा जन्म ही व्यर्थ है। तुम्हें तो तुरन्त पिता के बैरी से बदला लेना था। बाली का रक्त है तुम्हारी रगों में। मौका है अब भी बदला ले सकते हो। मैं तुम्हारा साथ दे सकता हूँ बेटे। रावण का सहारा लेकर तुम पिता की मृत्यु का बदला ले सकते हो।

अंगद : बीस नेत्र और कान वाले राजा रावण ! आश्चर्य है कि राम जैसे अजेता, गुणी और उपकारी को समझ सकने में तुम इतन

देर कर रहे हो ? अंधे-बहरे भी उन्हें समझ सकते हैं। वे मुझे सचमुच मेरे पिता और चाचा सुग्रीव से अधिक प्यार करते हैं।

रावण : ठीक है दूत ! राजधर्म के नाते मैं तुझे मारता नहीं हूँ तो तू उछल-उछल कर बातें करता है। अरे, दूत है तो अपनी मर्यादा में रह। इतना तो समझ वानर बच्चे कि तू किसी सम्राट से बातें कर रहा है। तुझमें इतनी भी शिष्टता नहीं कि कोई दूत राजा से किस तरह बात करता है ?

अंगद : मैंने राजा को ठीक से समझ लिया है। आपसे किस तरह बात करनी चाहिए यह भी मैं समझ गया हूँ राजन् !

रावण : अरे बन्दर ! राजधर्म के नाते मैं तुझे मारने की आज्ञा नहीं दे रहा हूँ। याद रख, तू दूत न होता तो अब तक मैं तेरा तेल निकलवा डालता।

अंगद : आप सम्राट हैं तो मैं भी युवराज हूँ। आप राक्षसों के राजा हैं तो मैं वानरों के साम्राज्य का युवराज हूँ। सोचिये तो वानरराज हूँ। मुझे आपसे बराबरी की बात करने का पूरा अधिकार है। आप किस मायने में मुझसे बड़े हैं। मैं कोई साधारण दूत नहीं हूँ। राज-नीति के कारण यहाँ दूत बन कर आ गया हूँ।

रावण : राजनीति की दुहाई देता है ? अरे वानर, तू राजनीति क्या जाने ?

अंगद : मैं राजनीति नहीं जानता तो लंकेश्वर, तुम धर्मनीति नहीं जानते। परायी नारी को चुरा लाना किस धर्मशास्त्र में लिखा है ?

रावण : **(क्रोध से गरजकर)** सभासदो ! इस मूर्ख वानर को सभा में क्यों आने दिया ? किसने आने दिया ?

अंगद : मैं इसे अपना सौभाग्य कहूँ या दुर्भाग्य कि आर्य राम ने आपके दर्शन करने मुझे ही भेज दिया। आप मेरे पिता के मित्र हैं इस-लिए समझाने आया था कि आप सीता जी को सादर ले जाकर श्री राम को सौंप दें। अपने किये की क्षमा माँग लें। लंका को युद्ध की भीषण विभीषिका से बचा लें। लेकिन अच्छी बात तो लंकेश्वर, आपकी समझ में आती ही नहीं।

रावण : दुष्ट, तू मेरे मित्र का बेटा नहीं मेरा दुश्मन है। मैंने कहा न, दूत न होता तो मैं कब का तुझे मार डालता। जो ऊल-जलूल बक गया, उसके लिए इसे क्षमा माँगनी चाहिए। सभासदो, इसे मेरी शक्ति के बारे में बता दो। इसे बता दो कि यह राजसभा में अनर्गल बातें नहीं बोल सकता। मेरे मित्र का बेटा है, इसलिए मैं

सहन कर लेता हूँ। महामंत्री ! जाओ, इसे अलग ले जाकर समझाओ, तब फिर राजसभा में आकर यह अवश्य क्षमा माँगेगा। युवा खून है, ऊँच-नीच नहीं समझता अभी। मेरे बारे में इसे जानकारी भी बहुत कम होगी। दोष इसका नहीं है। इसकी अपरिपक्व बुद्धि है, इसीलिए इठलाता है। न इसने किष्किन्धा से बड़ा राज्य अभी देखा है, न सुग्रीव से बड़ा वीर यह अभी किसी को समझता है। जंगलों में रहकर दुनिया की समझ कहाँ से लाये बेचारा। इसे ले जाकर समझाओ मंत्री।

अंगद : लंकेश ! अपने महामंत्री से मुझे अलग ले जाकर अपनी शक्ति के बारे में क्या बताना चाहते हो ? आपकी शक्ति मैं जानता हूँ। लेकिन आपकी राजसभा में वह सब बताकर मैं आपका अपमान नहीं करना चाहता। मैं तो एक सीधा-सा प्रस्ताव लाया हूँ। युद्ध विनाशकारी होता है। उससे बचा जाय तो अच्छा है। वरना सारी लंका ध्वस्त हो जायेगी और आपकी शक्ति सूखे हाड़-मांस में धरी रह जावेगी।

रावण : (**क्रोध से**) अरे मन्दबुद्धि ! मेरी शक्ति की बात करता है ? मेरी इन्हीं भुजाओं ने कैलास पर्वत को उठाया। मैंने सुर-असुर, अग्नि, वरुण, वायु, गरुड़, किन्नर और देवताओं सहित देवराज इन्द्र को हराया है। तुम मेरी शक्ति की बात करते हो ? कौन है तुम्हारी सेना में जो मेरा मुकाबला कर सके ? वह छोकरा तपसी युवक राम, जो अपनी पत्नी के शोक में सूख गया है ? उसका भाई लक्ष्मण, जो अपने भाई के दुःख में दुखी तो बहुत रहता है पर कर कुछ भी नहीं पाता। और विभीषण को तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ। कायर कहीं का ! वह क्या जाने लड़ना, बस केवल भजन भर कर सकता है। जामवन्त में शक्ति थी किन्तु वह इतने बूढ़े हैं कि बेकार हैं। सुग्रीव क्या लड़ेगा जो बाली के डर से बीवी को छोड़ कर भाग खड़ा हुआ। हाँ, हनुमान नाम का एक बलवान वानर अवश्य है जो आकर समुद्र लाँघकर मेरी लंका को जला कर भाग गया था।

अंगद : (**हँसकर**) आप गुण वाले की बहुत प्रशंसा करते हैं राजन्! इसीलिए तो अशोक वाटिका को उजाड़ देने वाले, आपके पुत्र अक्षय को मारने वाले, लंका में आग लगा जाने वाले उस मामूली बन्दर की आप इतनी बड़ी प्रशंसा कर रहे हैं। आप लज्जा और शरम को कितनी अच्छी तरह पचा लेते हैं। यह मैं स्वयं अनुभव कर

रहा हूं।

रावण : **(क्रोध से)** मेरे मित्र के बेटे हो इसलिए सोचा था जैसा मेरा बेटा मेघनाथ वैसे तुम। चाहता था, मेरा साथ दो और राम से लड़ो। किन्तु तुम तो धिक्कारने लायक हो, यदि ऐसे बुद्धिहीन न होते तो बाप को क्यों खा जाते ?

अंगद : **(तुरन्त गरजकर)** खाकर बाप को अपने रावण तुम्हें भी खा डालूंगा। मेरे पिता ने भी परायी स्त्री छीनी थी, तुमने भी छीनी रावण। सुन ले, वही दशा होगी, वही दशा···हा-हा-हा ! **(जोर से हँसता है।)**

रावण : मुझको खा जायेगा, और तू ? **(जोर से हँसकर)** मित्र का बेटा समझकर मैं तुझ पर दया करता जा रहा हूँ और तू समझ रहा है कि किसी मँदारी से बातें कर रहा है ? तेरे राम इतने बलवान हैं तो बार-बार दूत क्यों भेजते हैं ? शत्रु से संधि की बात करते लाज नहीं आती उन्हें ? मेरी वीरता दिक्पालों से पूछो, देवताओं से पूछो, मैंने अपने हाथों अपने सिर काट-काट कर अग्नि को चढ़ा दिये। संसार में ऐसा कौन है जो मेरा मुकाबला कर ले। तू बन्दर बच्चे ! मुझे खा जाने की बात करता है, नादान ! मूर्ख तुझे मैंने मारा नहीं तो इतना इतराने लगा है !

अंगद : **(गरजकर)** चूहे को मार देने से बिल्ली शेर नहीं कही जाती। गाल बजाने वाला महाबली नहीं हो जाता। पिता का मित्र समझ कर ही लंकेश, मैं भी तेरी यह कठोर बातें सहता जा रहा हूँ। वरना मैं तुझे उठाकर धरती पर पटक देता। तेरी सारी सेना को चींटियों की तरह मसल डालता। तेरी सारी लंका को उठाकर समुद्र में फेंक देता और तेरी रानी मन्दोदरी को महारानी सीता की दासी बनाकर सीता जी को ले जाकर आर्यवर श्रीराम को सौंप देता। किन्तु आर्य राम ने मुझे यह सब करने की आज्ञा नहीं दी है। मुझे तुम्हारे मित्र का बेटा समझकर केवल तुम्हें समझाने भेजा था। इसलिए सहन कर रहा हूँ, तुम्हें मार नहीं रहा हूँ। वरना राक्षसराज ! मेरी रगों में उसी भयंकर और बलशाली बाली का रक्त है जिसने छः महीने तक तुझे काँख में दाबे रखा। उसे भी तो तू अपनी यही शक्ति और यही अहंकार दिखाने गया था।

रावण : मेरी शक्ति को मेरा अहंकार कहता है नादान ! सचमुच मैं बाली से लड़ने गया था। वह पूर्व के समुद्र-तट पर पूजा कर रहा था।

लेकिन वह वास्तव में बलवान था। तू बार-बार उसका पुत्र होने की दुहाई देता है। और उसके मारने वाले का सेवक बना फिरता है। धिक्कार है बन्दर बच्चे तुझे! तूने कभी अपनी माँ की माँग देखी जिसका सिन्दूर तेरे राम ने पोंछ दिया? बाली के बाद तुझे राजा होना था, लेकिन तूने कभी सोचा कि बाली के बाद तू नहीं, सुग्रीव कैसे राजा हो गया? किसने बना दिया? बड़ा नाकारा और नासमझ है तू!

अंगद अवधेश राम की बुराई तो लंकेश, मैं सुन भी नहीं सकता। उनका बुरा चाहने वाले को मैं जीवित नहीं देख सकता। उनकी बुराई करके तुम मुझे अपना बध इसी राजसभा में कराने को क्यों बाध्य कर रहे हो?

रावण : (**क्रोध के स्वर में**) मेरी राजसभा में मुझसे गुर्रा रहा है रे वानर! नीच, तू छोटे मुँह बड़ी बात करता है! लगता, तू यहीं मेरे हाथों मरना चाहता है। तू उस राम के बल पर कूद रहा है जिसमें न बल है, न बुद्धि। वह बेचारा इतना गुणी होता तो उसका बाप उसे राज न देकर धक्के देकर वनवास दे देता? और वह कायर राम चुपचाप पत्नी के साथ वन को चला आया। उसमें बल होता तो वह अवध के राजसिंहासन के लिए लड़ता नहीं? मगर राम तो ठहरा कायर, भीरु, डरपोक।

अंगद : (**क्रोध से चिल्लाकर पृथ्वी पर हाथ पटक कर**) बस कर, बस कर पापी राक्षसराज! आगे मत बोल। मेरे राम के लिए एक शब्द भी बोलेगा तो मुँह तोड़ दूँगा।

रावण : (**घबराये-से स्वर में**) महामंत्री! महामंत्री!

कई स्वर : राजन्! बचाइये राजन्!

रावण : यह भवन काँप क्यों उठा? डोल-सा क्यों रहा है। भवन? (**सिंहासन से गिर पड़ता है**)

मेघनाथ : भूकम्प है शायद। पिताजी! देखिए, आप भूमि पर आ गिरे हैं। उठिये, सिंहासन पर बैठिये। (**उठाकर सिंहासन पर बिठाता है।**)

रावण : (**सिंहासन पर बैठते हुए**) मेरे मुकुट गिर पड़े हैं। उन्हें उठा लो।

अंगद : (**हँसकर**) लंकेश! छः मुकुट तो ये पड़े हैं। महामंत्री! अपने राजा को पहना दो।

मेघनाथ : महामंत्री! चार और गिर पड़े होंगे।

अंगद : वे मैंने उठाकर फेंक दिये हैं।

मेघनाथ : फेंक दिये हैं? लंकेश के राजमुकुट फेंक दिये हैं तुमने?

अंगद : हाँ, वे आर्य राम के शिविर में गिरे होंगे। उन्हें मैंने सही जगह फेंक दिया है।

रावण : (**गरजकर**) मेरे मुकुट राम के दल में? अरे सेनापतियो! अमात्यो! क्या देख रहे हो? इस मामूली-से मेरे मुँह लग रहे वानर को पकड़कर मार क्यों नहीं डालते तुम सब! नगर में कहीं इसके साथी भालू-वानर हों तो उन्हें भी मार डालो। इसे तो अभी तुरन्त मेरे सामने मार दो।

अंगद : रावण! मैंने तेरी जिह्वा न निकाल ली तो कहना। अरे नीच! दुष्टों के सरताज! पाप के पुतले, लंकेश! मरने-मारने की बात तो बहुत दूर है। मैं तो केवल तेरी परीक्षा लेना चाहता हूँ। अरे बलशाली! मुझे तू मार तो डालेगा ही लेकिन रावण! मैं अपने राम का नाम लेकर अपना पैर इस राजसभा में जमाकर खड़ा हो रहा हूँ। तुम्हारे बड़े से बड़े योद्धा मेरा पाँव एक इंच भी उठा दें तो मैं हार तो मान ही लूँगा, साथ ही यह भी वचन देता हूँ कि श्रीराम सीता को बिना लिये वापस लौट जावेंगे।

रावण : (**गरजकर**) मुँह क्या ताकते हो। इसकी टाँगें पकड़कर इसे धरती पर पटक दो।

[योद्धा टूट पड़ते हैं। पाँव उठाने का भरसक प्रयत्न करते हैं।]

रावण : इतने वीरों ने एक-एक कर जाकर देख लिया। कोई तिलभर भी इस अंगद का पाँव नहीं उठा सका तुममें से। जाओ, अब सब मिल कर शक्ति लगाकर इसका पाँव उखाड़ दो।

[सब मिलकर शक्ति लगाते हैं। पाँव हिलता तक नहीं।]

रावण : अरे कायरो, छोड़ो। एक मामूली बन्दर का पाँव क्या हो गया बड़ा भारी लौहस्तम्भ हो गया। तुम सब हटो। बेटे, मेघनाथ! इसका पाँव उठाकर उसे आकाश में घुमाकर पृथ्वी पर पटक दो। इसे अपने बल का बड़ा अभिमान है।

मेघनाथ : जी, पिताजी! अभी करता हूँ।

[आगे बढ़कर पाँव उठाने की कोशिश करता है। पसीना-पसीना हो जाता है।]

रावण : आश्चर्य है मेघनाथ! तुम भी इस वानर का पाँव नहीं उठा सके। सारे वीर हार मान गये! (**हँसकर**) ठीक है, मैं अभी इसका पाँव हटाकर इसे धरती पर पटकता हूँ। (**सिंहासन से उठ खड़ा**

होता है।)

अंगद : रावण ! दूत के पाँव न पड़ अपनी मुक्ति चाहता है तो चल सीता जी को साथ ले जाकर मेरे आर्य राम के पाँव पकड़, उनके पाँव पकड़कर क्षमा माँग।

रावण : (**पीछे हटकर**) ठीक है, ठीक है। दूत के पाँव भला मैं क्यों पकड़ूँगा। वानर, जा उन तपसी युवकों से कह दे, रावण लड़ेगा। लड़ेगा ! लड़ेगा !

अंगद : ठीक है रावण ! समझाने आया था। युद्ध की भयंकरता और विनाश तू भी जानता है। तू नहीं मानता तो युद्ध होगा, युद्ध होगा और युद्ध होगा !

दृश्य बारह

[रावण का महल। रावण और मन्दोदरी अपने कक्ष में बैठे हैं।]

रावण : रानी ! बन्दर मेरे दरबार में इतने बेहिचक होकर आने लगे हैं, जैसे रावण के दरबार में नहीं किसी खेत में घुस रहे हैं। राम के दूत बनकर आते हैं इसलिए दुष्टों को मरवाता नहीं। वरना··· (**क्रोध से**) वरना···।

मन्दोदरी : स्वामी ! मैंने सब सुन लिया है। आपको जाने क्या हो गया है ? मैं आपके पाँव पकड़कर कितनी बार कह चुकी हूँ कि आप इस वानर सेना वाले तपस्वी राम से बैर न करें। लेकिन आप हैं कि मेरी भी बात नहीं सुनते। पहले उसका एक दूत आया था। उसने मेरे अक्षय को मारा, अशोक वाटिका उजाड़ी, सबके देखते-देखते लंका में आग लगा गया। आज यह दूसरा दूत आया तो लंकापति तक का मान-मर्दन कर गया। जिनके दूतों की ये हालत है वह स्वयं कितने वीर होंगे !

रावण : (**हँसकर**) ह ह ह ! मन्दोदरी ! मैं उनका बल और पौरुष देखना चाहता हूँ। खर और दूषण को मार देने से उनके दिमाग खराब हो गये हैं। वे सोचते हैं, रावण को भी हरा देंगे ? ह ह ह ! ह ह ह !

मन्दोदरी : नाथ ! शिव के धनुष पर इसी राम ने प्रत्यंचा चढ़ाकर तोड़ा है। मारीच के प्राण लेना इतना आसान नहीं था किन्तु इन्होंने ले

लिये ! उसके भाई लक्ष्मण ने पंचवटी में कुटी के बाहर धनुष की नोक से जो रेखा खींची थी उसे आप भी लाँघने का साहस नहीं कर सके थे । अब जब वे इतनी बड़ी सेना के साथ आये हैं तो उन्हें जीतना आप इतना आसान क्यों समझ रहे हैं ! किस तरह जीतना चाह रहे हैं आप उन्हें ?

रावण : (**हँसकर**) ह ह ह ! मेरी रानी, मैं उन्हें केवल जीतना चाह नहीं रहा, जीतूँगा भी । ह ह ह !

मन्दोदरी : अपनी पत्नी को तो हर पति कम अकल का ही समझता है। लेकिन मेरे नाथ जो इतने बड़े समुद्र पर पुल बाँधकर, अजेय लकेश की परवाह किये बिना लंकाधीश के देश में घुस आया वह इतना साधारण नहीं है जितना आप समझ रहे हैं । मेरी बात मानिये मेरे प्राण । उनकी सीता को लौटाकर युद्ध समाप्त कर दीजिये । युद्ध देशों को, राष्ट्रों को समाप्त कर देता है। आने वाली पीढ़ियाँ इन युद्धों की यातना भोगती रहती हैं । एक जरा-सी बात के लिए अपनी और अपने देश की बर्बादी क्यों मोल ले रहे हैं आप ? देवताओं को, इन्द्र को, यम को आपने हराया है। वह प्रतिष्ठा अपनी बनी रहने दीजिये । अपनी उस कीर्ति पर पराजय का दाग न लगने दीजिये ।

रावण : ठीक है, ठीक है, मेरी वो प्रतिष्टा बनी रहेगी रानी ! वे मेरे देश में घुसकर मुझे चुनौती दें और मैं उनसे डरकर पीछे हट जाऊँ ! ह ह ह ! (**हँसता है**) कैसे सोचती हो तुम कि मेरी पराजय भी हो सकती है ?

मन्दोदरी : प्राणनाथ ! वह शान्ति चाहते हैं युद्ध नहीं । इसीलिए बार-बार दूत भेज रहे हैं ! झगड़ा केवल सीता को रखने और लौटाने का है ?

रावण : रानी ! मैं सीता को उन्हें नहीं लौटा सकता ।

मन्दोदरी : राजन् ! आपको सीता की लौटाने में संकोच होता है तो मैं स्वयं जाकर राम को उनकी सीता सौंप आऊँगी ।

रावण : मन्दोदरी ! तुम रावण जैसे जेता की पत्नी हो । इतनी डरी-दबी बातें क्यों करती हो ? तुम सोचती क्यों नहीं कि तुम अजेय लंकेश की पत्नी हो । मेरे देश में घुसकर आक्रमण की चुनौती राम ने दी है, मैंने नहीं । राम की सेना से मेरी सेना को लोहा लेने दो । मैं इस तपसी बच्चे को बता दूंगा कि ताड़का, मारीच, खर, दूषण क्या थे और मैं क्या हूँ ? (**जोर से हँसता है**) उन्हें मेरी मर्यादा

माननी होगी। मुझसे अपनी मर्यादा नहीं मनवा सकते।

[दृश्य बदलता है]

दृश्य तेरह

[राम का युद्ध-शिविर, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, जामवन्त आदि बैठे हैं।]

राम : विभीषण! रावण ने युद्ध की घोषणा कर दी है। नगर के हर द्वार पर वीर सैनिकों का कड़ा पहरा लगा दिया है। प्रातः उसके सैनिक हमारे युद्ध-शिविर पर धावा बोल सकते हैं। मैं चाहता हूँ कि युद्ध हमारे शिविर में नहीं रावण के नगर में घुसकर किया जाय। उसकी सेना हमें आकर घेरे इससे पहले हमें नगर में अपने वीर सैनिकों को घुसा देना चाहिये। आक्रमण की हमारी क्या नीति हो बन्धु! तुम्हीं बता सकते हो।

विभीषण : आर्य! लंका के भीतर जाने के चार द्वार चारों दिशाओं में हैं। अतः हमें अपनी सेना के कुछ वीरों को चार हिस्सों में बाँटकर प्रत्येक द्वार पर एक सेनापति तैनात कर देना चाहिये, जिसके नेतृत्व में सौ नायक और प्रत्येक नायक के साथ कम से कम दस हजार सैनिक हों। उत्तरी द्वार पर हनुमान और पूर्वी द्वार पर जामवन्त तथा पश्चिमी द्वार पर सुषेण सेनापति रहें। बन्दर दीवारों, कंगूरों, पेड़ों पर चढ़कर नगर में टिड्डी दल की तरह घुसकर तबाही मचा दें और प्रतिरोध करने वाले राक्षसों को बीन-बीन कर मार डालें।

राम : वानरराज! विभीषण लंका से चिर-परिचित हैं, वह जैसा कहते हैं आप सेना की वैसी रचना करके ब्राह्म मुहूर्त में ही युद्ध का बिगुल बजा दें। युद्ध की यही नीति है कि दुश्मन को उसके घर में घुस के घेरकर मारा जाय। रावण ने अभी सामूहिक युद्ध घोषित किया है। जो राक्षस जिस बन्दर को देखे मार डाले। मेरी भी यही आज्ञा है, जो बन्दर जिस राक्षस को पाये, मार डाले। घरों में घुसकर राक्षसों को बाहर खींचकर मार डाले। वह किसी विशेष सेनापति या वीर को सेना के साथ भेजकर युद्ध की बात करता तो मैं भी उसी तरह नीति तय करता। चारों द्वारों पर मेरे चारों सेनापति जमे रहें, राक्षसों को बाहर न आने दें और

बन्दर वीर अन्दर नगर में घुस पड़े।

सुग्रीव : जैसी आप आज्ञा देंगे आर्य, वैसा ही होगा। मैं सेना तैयार करता हूँ और युद्ध का बिगुल बजवाता हूँ। दुर्बुद्धि रावण ने जो युद्ध-नीति बनाई है उससे हम पहले दिन ही उसे बहुत अच्छा सबक दे देंगे।

राम : ठीक है, आप सब जाकर तैयारी करें। देवताओं का आशीर्वाद हमारे साथ रहे, मैं यही कामना करता हूँ वानरराज !

[भारी कोलाहल—श्रीराम की जय ! श्री लक्ष्मण की जय ! अवधकुमारों की जय ! वानरराज सुग्रीव की जय !]

[नेपथ्य में युद्ध का बिगुल, रण के बाजे बजते हैं। युद्ध के स्वर]

अंगद : आर्य राम ! हमारी सेना के दबाव से राक्षस बहुत विचलित हो उठे हैं। उधर दक्षिण द्वार पर हनुमान अकेले पड़ गये हैं। उनके कहने पर उनकी सारी सेना नगर के अन्दर पहुँच गयी है। वहाँ द्वार पर इन्द्रजीत मेघनाथ आ पहुँचा है। वह हनुमान को कहीं परास्त न कर दे। आप आज्ञा दें तो मैं जाकर हनुमान की सहायता करूँ।

राम : युवराज अंगद ! आप अवश्य जाएँ। आपके वहाँ पहुँच जाने से हनुमान को बल मिलेगा और मेघनाथ भाग खड़ा होगा।

[दृश्य बदलता है।]

[नेपथ्य में भीषण युद्ध और हाहाकार के स्वर]

[रावण के महल का कक्ष]

रावण : इतना बड़ा अँधेर ! मेघनाथ ! तुम हनुमान की लात छाती पर पड़ते ही बेहोश हो गये ? उस बन्दर ने तुम्हें परास्त कर दिया ? जिसे तुम मेरे पास दरबार में पकड़कर लाये थे ?

मेघनाथ : पिताजी ! न जाने मुझे क्या हो गया था। हनुमान का पाँव जैसे इन्द्र के वज्रप्रहार से भी भयंकर था।

रावण : बेटे, इन्द्रजीत ! पहले दिन के युद्ध में हमारे इतने अधिक सैनिक मारे गये हैं कि अब इस तरह सामूहिक युद्ध नहीं हो सकता। अब तुम एक ही सेनापति के सेनापतित्व में युद्ध करने की नीति अपनाओ।

मेघनाथ : ठीक है पिताजी ! कल के युद्ध का सेनापति मैं स्वयं रहूँगा। मैं राम के वानर दल में तबाही मचा दूंगा। मैं सुग्रीव, हनुमान,

अंगद, जामवन्त सहित राम को जीवित नहीं छोड़ूँगा।

रावण : (हँसकर) बेटे मेघ! तुम मेरे लायक बेटे हो। जाओ कल के युद्ध की तैयारी करो।

दृश्य चौदह

[रण का दृश्य। युद्धभूमि में अपने रथ पर खड़ा हुआ मेघनाथ]

मेघनाथ : अरे अयोध्या के तपस्वी बालको! आज इन्द्रजीत मेघनाथ तुम्हें जीवित नहीं छोड़ेगा। (हँसकर) हनुमान, सुग्रीव, अंगद, जामवन्त, नल और नील कहाँ हो तुम? आगे क्यों नहीं आते? प्राणों का संकट आ गया। कहाँ है वह पौरुषहीन देशद्रोही चाचा विभीषण? मैं उसे आज चींटी की तरह मसल डालूंगा।

राम : इस तरह चिल्लाओ नहीं रावण-पुत्र। युद्ध के लिए इस शक्ति को बचाकर रखो। सुग्रीव और हनुमान अपने वीर साथियों के साथ बढ़ चले हैं। उनसे अपने को बचाओ।

[घोर युद्ध और हाहाकार के स्वर]

राम : लक्ष्मण! हनुमान ने पहाड़ उठाकर मेघनाथ के रथ पर फेंककर रथ तहस-नहस तो कर दिया किन्तु वह दूसरे रथ से आकाश में उड़कर तीरों से आग बरसा रहा है। वानर बड़ी संख्या में घायल हो रहे हैं और भाग रहे हैं। सुग्रीव और अंगद भी उसकी मार नहीं झेल पा रहे हैं। अब शाम हो चली है, युद्ध बन्द करने का बिगुल बजा दो।

लक्ष्मण : भइया! अभी शाम होने में देर है। आप आज्ञा दें तो मैं सुग्रीव, हनुमान की सहायता करूँ। मैं उस दुष्ट को मारकर ही लौटूँगा भइया!

राम : तुम्हारी इच्छा है तो जा सकते हो। किन्तु उसे भयानक और मेधावी शत्रु समझकर ही युद्ध करना होगा। बहुत सतर्क रहकर।

लक्ष्मण : आप चिन्ता न करें। लक्ष्मण के तीरों से वह बच नहीं पायेगा। (जाते हैं।)

[नेपथ्य में भीषण युद्ध के स्वर। हनुमान अचेत लक्ष्मण को उठाये श्री राम के युद्ध-शिविर में आते हैं।]

दृश्य पन्द्रह

[सुग्रीव, अंगद आदि सभी वानर सिर झुकाये आते हैं। राम देखते ही सहमकर]

राम : यह क्या हुआ सुग्रीव ? हनुमान, यह क्या हो गया ? लक्ष्मण अचेत है। इसके सीने में यह घाव ! खून की यह धार ! यह क्या हो गया वानरराज ! ओह, मैंने स्वयं युद्ध में न जाकर लक्ष्मण को अकेले क्यों भेज दिया ?

सुग्रीव : राघवेन्द्र ! कुमार लक्ष्मण बड़ी वीरता से लड़ रहे थे। उनके बाणों ने जब प्रलय मचा दी तो मेघनाथ घबड़ा गया। उसने अपने सब बाण कटते हुए देखकर अन्त में वीरघातिनी शक्ति छोड़कर लक्ष्मण पर भयंकर प्रहार कर डाला। वह तीर लगते ही अवधकुमार अचेत होकर धरती पर गिर पड़े, जिन्हें हम उठाकर तुरन्त यहाँ ले आये हैं।

राम : (**विलाप के स्वर में**) हाय लक्ष्मण ! यह मैं क्या देख रहा हूँ कि तुम युद्धभूमि में आहत हो गये ? यहाँ अचेत पड़े हुए हो। (**विलाप के स्वर में**) तुम्हें खोकर यदि सीता मिल भी जाती है तो मैं उसे लेकर क्या करूँगा। क्योंकि तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रह सकता सौमित्र ! इस मृत्युलोक में मुझे सीता के समान दूसरी नारी शायद मिल जाय किन्तु तुम जैसा सहायक और युद्ध-कुशल वीर और विश्वासी भाई नहीं मिल सकता।

विभीषण : धीरज से काम लें आर्यपुत्र ! यह धीरज खोने का समय नहीं है।

राम : विभीषण ! कैसे धीरज धरूँ ? लक्ष्मण की इस हालत को देखकर मैं धीरज धर कैसे सकता हूँ ? लक्ष्मण के बिना मैं क्या मुँह लेकर अयोध्या लौटूँगा। बड़ी माँ, मँझली माँ को क्या कहूँगा। चौदह साल से अपने बेटे से बिछुड़ी छोटी माँ को मैं क्या उत्तर दूँगा ? सुग्रीव ! क्या भरत और शत्रुघ्न से मैं यह कहूँगा कि लक्ष्मण मेरे साथ वन गया था किन्तु मैं उसे खोकर लौट आया हूँ। (**सिसकते हैं।**)

सुग्रीव : हम अपना जीवन देकर भी लक्ष्मण कुमार को बचाने का प्रयत्न करेंगे श्रीराम !

राम : उस बेचारी उर्मिला का, लक्ष्मण को मेरे साथ वापस न देखकर, क्या हाल होगा ? कोई कल्पना कर सकता । ओह ! मैं जीवित

नहीं रहूँगा अब। लक्ष्मण अगर नहीं रहेगा तो राम भी नहीं रहेगा। जब-जब मैं धीरज खोता था लक्ष्मण! तुम्हीं तो मुझे साहस बँधाते थे। आज तुम चुप क्यों हो भइया! तुम आँख क्यों नहीं खोलते? कितने ही राक्षसों को स्वयं मौत के घाट उतार कर अब तुम एक बाण के मारे जाने पर ही सो गये हो। तुम नहीं उठोगे लक्ष्मण, तो वन में जिस तरह तुम मेरे पीछे-पीछे आते थे—यमलोक में मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे आऊँगा। मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी तुमने मुझसे कोई कठोर बात कही हो जबकि तुम्हें मैं अक्सर झिड़क दिया करता था। सुषेण, सुग्रीव, हनुमान, अंगद, नल-नील, जामवन्त, गवाक्ष—तुम सभी वीरों की वीरता और सहायता का मैं आभारी हूँ। मित्रो, तुम सब समुद्र पार लौट जाओ, मैं यहीं लक्ष्मण के साथ अपने प्राण त्याग दूँगा।

विभीषण : इतने हताश क्यों होते हैं अवधेश! मैं युक्ति बताता हूँ। यहाँ लंका में सुषेण बहुत बड़े चिकित्सक हैं। हम हनुमान से प्रार्थना करते हैं कि वह तुरन्त जाकर सुषेण वैद्य को उठाकर यहाँ ले आवें। वे लक्ष्मण को बचा लेंगे। वह लंका के श्रेष्ठ और अद्भुत वैद्य हैं।

राम : क्या यह सच है विभीषण? क्या उनके उपचार से लक्ष्मण को बचाया जा सकता है? तो हनुमान, यह उपकार मुझ पर करो भइया! लक्ष्मण को किसी तरह बचा लो। मेरे लक्ष्मण को किसी भी तरह बचा लो हनुमन्त! यह उपकार और कर दो मुझ पर। लक्ष्मण नहीं बचेगा तो मित्र, मैं भी नहीं बचूँगा, यह मेरा प्रण है।

हनुमान : मैं अभी जाकर सुषेण वैद्य को ले आता हूँ आर्य! आप धीरज से काम लें। हम सब अपने प्राण देकर भी आर्य लक्ष्मण के प्राण बचायेंगे।

सुग्रीव : हाँ, हनुमान, शीघ्रता करो। हमारी व्याकुलता बढ़ती जा रही है।

हनुमान : घबड़ाइये नहीं, वानर-नरेश! विभीषण, उनके घर का पता दीजिये, मैं वायु की तरह सूक्ष्म रूप से जाकर उन्हें अभी ले आता हूँ। (जाते हैं।)

[मंच पर अँधेरा। फिर प्रकाश]

राम : विभीषण! आप लोगों को लगता है कि लक्ष्मण बच जावेगा। देखो तो मेघनाथ के शक्तिबाण ने इसके हृदय को छलनी कर

दिया है ।

विभीषण : श्रीराम ! आपने कोई बुरा काम नहीं किया है फिर आपके भाई जीवित क्यों न रहेंगे ? विपत्तियाँ मनुष्य की परीक्षा के लिए आती हैं । वो देखिये, हनुमान अपनी पीठ पर वैद्य सुषेण को लेकर आ रहे हैं ।

[हनुमान का सुषेण को लेकर आना]

राम : वैद्य ! मेरे भाई को बचा लीजिये । देखिये मेरे वनवास की अवधि बीतने ही वाली है । मैं इसके बिना अयोध्या में नहीं जा सकूँगा । मैं कितना भाग्यहीन हूँ वैद्यजी कि बड़ा भाई होकर भी मैं तो जीवित हूँ और लक्ष्मण मृत्युशैया पर पड़ा है । ऐसे में मुझे जीवित रहने का कोई अधिकार है क्या ?

[वैद्य लक्ष्मण की नाड़ी देखते हैं । घाव का परीक्षण करते हैं फिर राम की तरफ देखकर]

वैद्य : आप इतने क्यों घबरा रहे हैं राम । मैंने आपके भाई को देख लिया है । हालत गम्भीर तो अवश्य है फिर भी एक बूटी है जो इन्हें जीवन लौटा सकती है ।

राम : बताइये वैद्य जी, वह कौन-सी बूटी है ? कहाँ मिलेगी वह ?

वैद्य : उस पौधे का नाम संजीवनी है । लेकिन एक कठिनाई है ।

राम : क्या कठिनाई है ?

वैद्य : वह पौधा केवल द्रोणागिरि में पाया जाता है । उसकी जड़ें, और जड़ के ऊपर की गाँठ रात के अँधेरे में दिये की बाती की तरह दमकती हैं । अगर वह बूटी रात के अँधेरे में ही लाकर पीसकर लक्ष्मण को पिला दी जाय तो यह जी सकते हैं ।

राम : द्रोण पर्वत पर···और रात ही में लानी होगी···वैद्यजी ! यह तो बड़ा ही कठिन काम है । द्रोणागिरि तक जाने में ही कई दिन लग जावेंगे, आज ही रात को लाने की तो बात ही नहीं सोची जा सकती ।

वैद्य : शक्ति बाण से आहत होने पर जीवन पाने की और कोई दूसरी दवा मेरी समझ में नहीं है ।

हनुमान : चिन्ता न करें आर्य ! मैं रात में ही वह बूटी ले आऊँगा । पिता का आशीर्वाद है मेरे साथ ! मेरी गति असीमित है ।

राम : हनुमान ! मैं जानता था कि यह उपकार भी तुम्हीं कर सकोगे आर्यपुत्र ! बेचारे लक्ष्मण को वह बूटी लाकर बचा लो मेरे मित्र !

वैद्य : हनुमान ! द्रोण पर्वत पर उस पौधे की जड़ का भाग दीये की तरह दिख रहा होगा। वैसे एक-दो ही पौधे आपको वहाँ मिलेंगे। उन्हें उखाड़ कर ले आना।

हनुमान : श्रीराम ! आशीर्वाद दीजिये। मैं जा रहा हूँ और रात बीतने से पहले ही लौट आऊँगा।

राम : मेरा आशीर्वाद तो है ही, हनुमान ! तुम शीघ्र जाकर शीघ्र लौट आओ। यह केवल लक्ष्मण के प्राणों का ही नहीं मेरे प्राणों का भी प्रश्नहै।

[हनुमान जाते हैं।]

राम : सुग्रीव ! अपनी सीता को खो देने के बाद तुम्हारे सहयोग से उसे पा लेने की आशा हो गयी थी। किन्तु सीता को पाने के लिए लक्ष्मण जैसे भाई को खो देना मेरे लिए सबसे बड़ी निर्लज्जता होगी। लक्ष्मण तो बचपन से ही सखाभाव के अतिरिक्त मुझमें अनुराग और भक्तिभाव रखते थे। मेरे वनवास के आदेश पर वह स्वयं अपनी माँ और युवा पत्नी को छोड़कर, सारे सुख छोड़कर मेरे साथ आ गये थे। ऐसे भाई के बिना राम का जीवन एकदम व्यर्थ है। लक्ष्मण नहीं बचेगा तो राम भी जीवन दे देगा वानर-राज !

सुग्रीव : धीरज धरें नाथ ! संजीवनी बूटी पीकर यह जीवन पा लेंगे। हमें आशा नहीं छोड़नी चाहिए।

राम : जीवन पा लेंगे, यह तो अभी कल्पना है सुग्रीव। लक्ष्मण का यह निर्जीव शरीर जैसे मन ही मन क्रोध करता-सा, अपने में उभरती उद्दंडता को रोकता-सा, हर घड़ी वायु की गति से भी अधिक सक्रिय-सा, मेरे सामने पड़ा हुआ है। यह मेरा भाई नहीं सचमुच जैसे मेरा पिता था। मुझे पिता से भी अधिक इसी का भरोसा था। यह था तो मैं भी था, यह न होता तो शायद मैं भी न होता। अपने बड़े भाई के लिए अपना जीवन सुखा देने का इस संसार में एक ही उदाहरण है यह लक्ष्मण। लक्ष्मण-सा भाई पाकर मैं कितना बड़ा भाग्यशाली था और आज लक्ष्मण के बिना मैं कितना तो अधूरा-अधूरा हो गया हूँ। अंगद ! लक्ष्मण के मुँह में पानी डालो तो। इसमें अब प्राण शेष नहीं हैं शायद। अब मुझमें प्राण रहने का भी कोई मतलब नहीं है। विभीषण ! कुछ करो वन्धु ! कि मेरे भी प्राण चले जावें।

विभीषण : ऐसा कहकर हमें भी हताश न करिये नाथ ! मैं किस आशा से

लंका छोड़कर आपकी शरण में आया था। आपने मेरा राज्याभिषेक भी लंका के राज्य के लिए, युद्ध के पहले दिन कर दिया था। लंका में भी यह समाचार पहुँच चुका है। बताइये, मैं क्या मुँह लेकर फिर रावण के पास जाऊँगा ?

राम : मैंने तुम्हें लंका का राजा बनाने का वचन दिया है। पर अब मैं क्या करूँ विभीषण ! सचमुच मैं लक्ष्मण के बिना जीवित नहीं रह पाऊँगा। लगता है, हनुमान रात को ही नहीं लौट पायेंगे। यह सम्भव हो सकेगा क्या कि वह रात में ही लौट आयें। दिन निकल जाने पर तो वह बूटी कोई असर नहीं कर पावेगी।

अंगद : नहीं, वे गये हैं तो सौ बाधाओं के बाद भी रात को ही लौट अवश्य आवेंगे।

राम : अंगद ! तुम ठीक कहते हो। हनुमान बात के धनी हैं। वह रात में ही बूटी लेकर अवश्य लौट आवेंगे। शायद उस बूटी से लक्ष्मण जी उठेगा।

वैद्य : यदि वह रात बीतते से दो-एक क्षण पहले भी आ जावेंगे तो काम बनने की आशा है।

अंगद : वो देखिये, आकाश में रेंगता हुआ-सा एक पहाड़ इधर आ रहा है। यह हनुमान ही हो सकते हैं। शायद हनुमान कोई पहाड़ उठा लाये हैं।

[सब आकाश की तरफ देखते हैं।]

राम : किधर है वह, अंगद ? देखें तो···अरे वो···दो तो कोई विशाल पर्वत आकाश में तैर रहा है, युवराज !

अंगद : ये चाचा हनुमान ही हो सकते हैं अवधकुमार ! देखिये तो, वे हमारे शिविर की ओर ही आ रहे हैं। देखिये न, वे नीचे उतर रहे हैं।

सब हर्ष से : हाँ, हाँ, वही हैं, हनुमान आ गये। (**खुशी से गले मिलते हैं।**)

[हनुमान का द्रोण पर्वत को उठाये हुए युद्ध-शिविर में आना]

वैद्य : तुम तो हनुमान, पूरा पर्वत ही उठाकर ले आये।

हनुमान : वैद्य जी ! मुझे उस पर्वत पर सभी पौधे दीये की तरह चमकते से लगे। अन्दाज नहीं आया, इसीलिए जल्दी में सारा पर्वत ही उठा लाया हूँ।

[वैद्य उस लाये गये पहाड़ पर चढ़कर जड़ी ढूँढ़ते हैं। एक पौधा उखाड़कर नीचे उतरते हैं।]

वैद्य : **ये लो, ये है संजीवनी बूटी। इसे पीसकर पानी में मिलाकर लक्ष्मण को पिला दो। जल्दी करो, अभी रात का घना आवरण पृथ्वी को ढके है।**

[जामवन्त स्वयं अंगद की सहायता से पत्थर पर जड़ी पीसते हैं। उसे निचोड़कर लक्ष्मण के मुँह में डालते हैं।]

लक्ष्मण : **(नींद में जागते हुए-से)** भइया ! मैं इतनी गहरी नींद में कैसे सो गया था ? मैं तो मेघनाथ से लड़ रहा था न ?

राम : **(हर्ष के स्वर में प्रफुल्लित भाव से)** सौमित्र ! तुम मेघनाथ से अब भी लड़ रहे हो। उसने तुम्हें घायल कर दिया था। उठो उसे तुम्हें ही मार डालना है। मुझे देखो लक्ष्मण, मैं तुम्हारे पास हूँ। तुम नहीं सोये थे, मेरे प्राण सो गये थे। उठो मेरे प्राण, मेरी गोद से सिर उठाकर देखो —ये सब मित्र तुम्हारे जागने की प्रतीक्षा में हैं।

[लक्ष्मण उठकर बैठ जाते हैं।]

सुग्रीव : देखिये न आर्य ! लक्ष्मण कुमार का जीवन लौट आया है।

राम : हाँ, वानरराज ! वैद्य जी और हनुमान का मैं आभारी हूँ कि इन्होंने न केवल लक्ष्मण का वरन् मेरा भी जीवन लौटा दिया है। वैद्यराज ! मैं आपका आजीवन ऋणी रहूँगा। हनुमान ! तुम जैसे वैद्यराज को उनके घर से लाये थे वैसे ही उन्हें पहुँचाकर आओ। यह काम तुम्हीं कर सकते हो।

अंक ग्यारह

दृश्य एक

[रावण का महल। मंत्री, सेनापति आदि खड़े हैं।]

रावण : सेनापति! राम के दल में हँसी के स्वर सुने थे। मेरे बेटे इन्द्रजीत ने राम के छोटे भाई लक्ष्मण को शक्तिबाण मारा, वह तब भी जी उठा है। मूर्खो! जाओ, धूम्राक्ष से कहो कि आज का युद्ध उसके सेनापतित्व में लड़ा जायेगा। रोज इन्द्रजीत ही युद्ध में नहीं जावेगा।

रावण : महामंत्री क्या कहा? धूम्राक्ष को हनुमान ने मार डाला और वज्र-कष्ट को अंगद ने मार डाला। वीर अकम्पन को भी हनुमान ने मार डाला (**ठहर कर सोचते हुए**) तो मेरे बेटे प्रहस्त को युद्ध का नायक बनाकर भेजो।

मंत्री : राजराजेश्वर! बड़े खेद के साथ बताना पड़ रहा है कि आपका बेटा प्रहस्त भी युद्ध में मारा जा चुका है। नील ने उसे मार डाला है।

रावण : (**गहरे शोक के भाव से**) नील ने प्रहस्त को मार डाला? ये वानर हैं कि आफत के पर हैं। मेरे प्रहस्त को भी मार डाला उन्होंने? तो अब कल मैं स्वयं युद्ध में जाऊँगा। नहीं, पहले कुम्भकर्ण को जगाया जाय। कल के युद्ध का सेनापति मेरा भाई महावीर, कुम्भकर्ण होगा। उसे जगाने का उपाय करो।

मंत्री : मैं शहनाईवादकों को उनके पास भेज रहा हूँ।

रावण : शहनाई के स्वर कुम्भकर्ण को नहीं जगा सकते। नगाड़ा, तुरही,

रणसिंहा बजाओ। इससे भी नहीं जागता है तो हाथी से उसके हाथ-पाँव हिलवाओ। फिर भी नहीं जागे तो उसकी नाक में दूर तक रस्सी डलवाओ। उसे छींक आ जायेगी तो जाग उठेगा। उसकी नींद कोई साधारण नींद नहीं है। आओ, मेरे साथ आओ, मैं जगाता हूँ उसे।

[कुम्भकर्ण का छींककर जागना। अकड़ते हुए क्रोध में कहना]

कुम्भकर्ण : किस पागल ने जगा दिया है मुझे! मैं उसे खा डालूँगा।

रावण : तुम्हें मैंने जगाया है भइया! देखो, लंका में क्या हो रहा है? एक तपसी बालक और वानरों की सेना ने प्रलय मचा दी है। खर, दूषण, त्रिशिरा, अक्षयकुमार, दुर्मुख, अतिकाय, अकम्पन, कालनेमि, महोदर, धूम्राक्ष, वज्रदंष्ट्र और मेरे प्रिय बेटे प्रहस्त तक को मार चुके हैं। मैंने सोचा कि तुम्हें न जगाऊँ तो मेरा सत्यानाश ही हो जायेगा। मुझे तुम पर भरोसा है कुम्भकर्ण! विभीषण की तरह तुम मुझे धोखा नहीं दे सकते। तुम्हारा सम्पूर्ण मांसाहारी भोजन और घड़ों मदिरा रखी है। जाओ, आज का सेनापति मैंने तुम्हें बनाया है। राम-लक्ष्मण को सेना सहित मार कर लौटो।

कुम्भकर्ण : ठीक है, मैंने उस दिन भी कहा था कि सीता को लाकर तुमने गलत काम किया है। तुम शूर्पणखा की बातों में आ गये। वह तो विष की बेल है। खैर, तुमने राम से बैर लिया है तो भाई होने के नाते मैं तुम्हारा साथ दूँगा ही। सेना की मुझे कोई आवश्यकता नहीं। मेरे अस्त्र उठाकर कुछ लोग चलें। मैं उस तपसी राम को मार कर ही लौटूँगा।

[दृश्य बदलता है]

[युद्ध हो रहा है। राम के पास विभीषण आते हैं।]

विभीषण : आर्य राम! मेरे भाई कुम्भकर्ण ने प्रलय मचा दी है। हनुमान, अंगद, सुग्रीव, जामवन्त, नल, नील गवाक्ष सभी तो उससे लड़ते रहे हैं। हजारों वानर, रीछ, मूर्छित पड़े हैं। चिकित्सा-शिविर में जगह नहीं रह गयी है। उसने सुग्रीव और अंगद को काँख में दबा कर दौड़ लगायी थी। जब हनुमान ने उसकी छाती पर घूँसा मारा तो उसने भी हनुमान के मुँह पर ऐसा घूँसा मारा कि हनुमान बेहोश हो गये थे। अंगद और सुग्रीव ने किसी तरह उसकी काँख से निकल कर उसके नाक-कान काट डाले। अपना खून बहते देख वह और पागल हो गया। उसने फिर सुग्रीव, अंगद को पकड़ कर धरती पर

पटक डाला। उसका यही विकराल रूप रहा तो हमारी सेना तो आधी भी नहीं रह जायेगी। श्रीराम! आप कुछ करें।

राम : लक्ष्मण! विभीषण ठीक कहते हैं। तुम शेष सेना को सम्हालो। मैं आगे बढ़ता हूँ। वहाँ अंगद, सुग्रीव, हनुमान सहित सभी वीर हैं। मेरी चिन्ता न करना, मैं कुम्भकर्ण को देखता हूँ।

[घोर युद्ध होता है]

कुम्भकर्ण : (हँसकर) ह ह ह ह! अरे राम! तेरे वीर वानर तो सभी बोल गये और तू आकर मेरे राक्षस सैनिकों को तीर मार-मार कर उड़ा रहा है। आ, मुझसे लड़ न। मेरा मुकाबला कर।

राम : कुम्भकर्ण! मैं तुम्हीं से लड़ने आया हूँ। सुना है तुम बड़े पराक्रमी हो। लेकिन कोई इच्छा रह न जाय तुम्हारी, इसीलिए मुझ पर अपने सारे अस्त्र चला कर देख लो।

कुम्भकर्ण : यह ले राम! मेरे दाहिने हाथ का खड्ग कभी खाली नहीं जाता।

राम : (हँसकर) तो ले तेरा खड्ग भी गया और दाहिना हाथ भी।

कुम्भकर्ण : दाहिना हाथ गया तो क्या हुआ! मेरे बायें हाथ से चला यह अस्त्र तुझे छोड़ेगा नहीं।

राम : (हँसकर) वीरवर! उस अस्त्र को धरती में समा देने के साथ ही मैंने तुम्हारा दूसरा हाथ भी काट डाला है।

कुम्भकर्ण : लेकिन कुम्भकर्ण अभी बचा है। ले मैं मुँह में दबाकर यह अस्त्र फेंकता हूँ।

राम : कुम्भकर्ण! बड़े बली हो तुम। लो तुम्हारा सिर तुम्हारे भाई रावण के पास भेज दे रहा हूँ।

कुम्भकर्ण : सर गया तो धड़ लड़ेगा राम। ले, ले, देख कितने वानर मरे, गिन ले।

राम : ले धड़ के भी टुकड़े-टुकड़े किये देता हूँ। अब तो तू समाप्त है न!

[राक्षसों के युद्ध क्षेत्र से भागने का स्वर। वानरों के उल्लास का स्वर।]

दृश्य दो

[लंकेश के महल के रनिवास]

रावण : आश्चर्य है, कुम्भकर्ण भी मारा गया!

[रानियों के रोने के स्वर]

रानियाँ : हमारे पति मारे गये ! वे कभी किसी के भले-बुरे में साथ नहीं रहते थे। सोते रहते थे। वे जगते थे तो हमसे मिलते थे, बस। कभी मानते थे तो भाई की बात मानते थे। इनके चलने से धरती हिलती थी। धँसती थी। इन्हें भी मार डाला किसी ने। (**रोती हैं।**)

रावण : रोओ नहीं। जाओ, तुम सब अपने महलों में जाओ। मैं कुम्भकर्ण की मृत्यु का बदला अवश्य लूँगा। मुझ पर भरोसा करो।

रानियाँ : हमारे पति गये तो आप बदला लेते रहें। अब भरोसा करके हमें क्या मिलना है ?

रावण : कहा न, यह शोक अपने महलों में जाकर करो। कुम्भकर्ण एक वीर की मौत मरा है। मरना कौन नहीं ? कोई आज तो कोई कल। वह युद्ध में शहीद हुआ है। मुझे उसकी मृत्यु पर गर्व है। तुम्हें रोना है तो मेरे सामने मत रोओ।

[मेघनाथ का आना]

तुम आ गये मेघनाथ ! कुम्भकर्ण भी मारा गया है बेटे।

मेघनाथ : सुना मैंने पिताजी ! कल मैं ऐसा प्रलयकारी युद्ध लड़ूँगा कि राम लक्ष्मण सहित सभी वीर वानरों की लाशें आपके चरणों में पड़ी होंगी। मुझे आशीर्वाद दीजिये।

रावण : तुम जयी होओ। मेरा आशीर्वाद है, बेटे ! अब तुम्हीं पर मेरा एकमात्र भरोसा है।

[युद्ध क्षेत्र। एक ओर राम की सेनाएँ हैं और दूसरी ओर से रावण की सेनाएँ बढ़ रही हैं। (इस दृश्य को छाया-चित्र में या स्लाइड फिल्म स्ट्रिप्स से भी दिखाया जा सकता है)]

राम : विभीषण ! रावण के सैनिकों के साथ हमारे सभी वीर तो लड़ रहे थे। यह बाण किसने चलाया है जिससे अग्नि ही अग्नि बहने लगी है। मेरी सेना इन लपटों से मूर्छित हुई जा रही है।

विभीषण : यह जो रथ बढ़ाकर राक्षस सेना के आगे खड़ा होकर तीर चला रहा है। आर्य, मेरा भतीजा मेघनाथ है। यह बाणविद्या में बड़ा निपुण है। ये आग की लपटें उसी के तीर की देन हैं।

राम : (**हँसकर**) हाँ, अग्निबाण है। अग्निदेवता को प्रणाम करता हूँ। वह अभी मेरी बाण-विद्या से परिचित नहीं है। वरुण देव को प्रणाम कर यह वरुणास्त्र चलाता हूँ। जिससे भयंकर जलवर्षा होगी। (**तीर चलाते हैं।**)

विभीषण : लीजिये, मेघनाथ ने वायव्य बाण छोड़ दिया है जिससे तेज हवा चल रही है। भयंकर आँधी है यह। पेड़ और पहाड़ भी उड़ रहे हैं आर्य !

राम : तो लो, मैं मरुत बाण चलाता हूँ जिससे हवा का सारा वेग उसी की ओर हो जावेगा और उसके सैनिक हवा में उड़ने लगेंगे।

विभीषण : ये देखिये, उसने नागबाण चला दिया है। सहस्रों नाग फनफनाकर हमारी सेना पर झपट रहे हैं। हमारे वीर भागने लगे हैं युव-राज !

राम : विभीषण ! ये मेरा गरुड़ वाण है, (**बाण चलाते हैं**) अब देखो, ये गरुड़ सभी साँपों को उठा ले रहे हैं। हमारे वीर फिर मेघनाथ की सेना पर टूट पड़े हैं।

विभीषण : आर्य ! देखिये तो वृद्ध जामवन्त उसके रथ के आगे खड़े होकर उससे लड़ रहे हैं। उसने जामवन्त को बूढ़ा समझकर अपना त्रिशूल उन पर फेंका है, वह देखिये जामवन्त ने त्रिशूल उल्टा उसी पर फेंक दिया है। वह घायल हो गया है। अचेत होकर रथ पर गिर पड़ा है। रथ उसे लेकर नगर की ओर लौट गया है। उसके सैनिकों में हाहाकार मच गया है।

राम : ठीक है। शाम हो रही है। लक्ष्मण ! अब युद्धबन्दी का बिगुल बजवा दो। विभीषण ! चलो वानरराज की ओर चलें और शिविर में चलकर जामवन्त को बधाई दें।

[मंच पर प्रकाश धीमा होता है फिर प्रकाश बढ़ता है। वही दृश्य]

विभीषण : आर्यपुत्र ! सुना है जामवन्त से युद्ध हारने के बाद मेघनाथ देवी-पूजन कर रहा है। वह अक्सर अपवित्र यज्ञ करके देवी से वर माँग लेता है। उसका यह यज्ञ पूरा हो गया, तो वह अपने अजेय हो जाने का वर ले लेगा। हमें उसका यह यज्ञ रुकवाना चाहिये।

राम : उसे हम अवश्य रुकवायेंगे। लक्ष्मण ! मैं चाहता हूँ कि मेघनाथ मरे तो तुम्हारे हाथ से ही मरे। सुग्रीव, अंगद, हनुमान, नील, जामवन्त, नल और गवाक्ष सबको ले जाकर उसका तप भंग करो। और हो सके तो उसे वहीं मारकर आओ।

लक्ष्मण : भइया ! यही मेरी भी इच्छा है। मेघनाथ को मैं अपने हाथ से मारना चाहता हूँ।

राम : वह इस समय देवी का यज्ञ कर रहा है। वह देवी को रिझाकर जयी होने का वरदान पाये इससे पहले ही लक्ष्मण तुम जाकर उसे

मार डालो। जाओ मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।

[राम को प्रणाम कर सब जाते हैं। पर्दा गिरता है। प्रकाश मंच पर बुझता है।]

दृश्य तीन

[पर्दा उठता है। प्रकाश होता है।]

लक्ष्मण : हनुमान ! तुमने गुफा के अन्दर जाकर देखा वह क्या कर रहा है।

हनुमान : लक्ष्मण वीर ! वह गुफा में देवी की मूर्ति के सामने बैठा हुआ रक्त, मदिरा और मांस की आहुतियाँ दे रहा है।

लक्ष्मण : मेरे साथ चलो। मैं तीर मारकर उसके पूज्य त्रिशूल को खण्डित कर देता हूँ, (**वैसा करते हैं**) आओ इसे अपने हथियारों से कोंचो।

[हनुमान आदि मेघनाथ को कोंचते हैं तो वह बिफर पड़ता है।]

दुष्ट मेघनाथ ! यह देवी की अभ्यर्थना छोड़ो और हिम्मत हो तो मेरे साथ युद्ध करो।

मेघनाथ : ये कौन है जो मुझे पूजा भी नहीं करने दे रहा है ? ये कौन है जो मेरे यज्ञ में विघ्न पैदा कर रहा है ? (**आँख बन्द किये पूजा कर रहा है**)

लक्ष्मण : वह मैं हूँ। अवधनरेश श्री राम का छोटा भाई लक्ष्मण। युद्ध वीरों की तरह लड़ो मेघनाथ। देवी की शरण में क्यों जाते हो ? अपना अस्त्र उठाओ मेघनाथ, अपनी शक्ति पर भरोसा नहीं रह गया है तुम्हें क्या ?

मेघनाथ : अरे लक्ष्मण ! मैं तुझे मार चुका था। तो भी तू जी गया। यहाँ युद्ध करने आया है तो चला अपना बाण, देखें तो कितनी शक्ति है तुझमें मैं देवी का पूजन इसलिए करने आया था कि वह मेरी इष्ट है इसका यह अर्थ नहीं है कि शक्ति में तुझसे कम हूँ।

लक्ष्मण : मुझे अगस्त्य मुनि ने यह बाण दिया था। मेघनाथ, तुझमें शक्ति है तो इसे झेल।

मेघनाथ : अरे मेरी भुजा ? ओह, मार डाला। ओह !

लक्ष्मण : मेघनाथ की भुजा कटकर उसकी पत्नी सुलोचना के पास चली गयी है। इसका सिर दूसरे तीर से काटकर मैं अपने भइया राम के

पास भेज रहा हूँ और धड़ (हँसकर) सुनो हनुमान ! ये धड़ लंकेश के पास भिजवा दो।

दृश्य चार

[मेघनाथ के महल का एक कक्ष]

सुलोचना : देखो सखी, आकाश से कोई चीज हमारे आँगन की ओर आ रही है।

सखी : अरे, यह तो हमारे युवराज मेघनाथ का हाथ है।

सुलोचना : मेरे नाथ का हाथ ? नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता ? वह तो कहते थे कि मुझे वही मार सकता है जिसने बारह साल तक नारी, निद्रा और अन्न का परित्याग किया है। मुझे तो यह हाथ देखकर भी विश्वास नहीं होता कि यह मेरे पति का हाथ है। मेरे पति बड़े जेता हैं। वह किसी से भी हार तो सकते ही नहीं थे। भला इस पृथ्वी पर उन्हें कौन मार सकता है ? सखी, कहो कि यह झूठ है।

सखी : यह भुजा उन्हीं की है युवरानी।

सुलोचना : मेरे मेघनाथ की भुजा है तो इससे जो मैं कहूँ वह यह लिख दे। क्योंकि उनकी रगों का खून जल्दी ठंडा नहीं पड़ सकता। हाय, मैं अभागिन इस दिन को देखने के लिए पैदा ही क्यों हुई थी ? मैं सच्ची पतिव्रता हूँ तो नाथ, ये लेखनी पकड़िये और अपने मारने वाले का नाम लिख दीजिये।

सखी : देखिये न रानी ! वह लिख रहे हैं : 'प्रिये ! मुझे लक्ष्मण ने मारा है, वही मुझे मार सकता था। मेरा सिर श्री राम के समीप पड़ा है और मेरा धड़ दुर्ग के द्वार पर पड़ा है।'

सुलोचना : हाय, प्राणनाथ ! यह क्या हो गया। मैं क्या करूँ अब। (रोती है)

दृश्य पाँच

[सुलोचना रावण के कक्ष में आती है।]

रावण : न रो बहू ! न रो। यह युद्ध है। युद्ध में वीर ही शहीद होते हैं। मुझे

अक्षय के मरने का, प्रहस्त के मरने का इतना दुःख नहीं हुआ। मैंने कलेजे पर पत्थर रखकर कुम्भकर्ण की मृत्यु का समाचार सुन लिया। लेकिन मेरे इन्द्रजीत के मरने का समाचार मुझसे भी नहीं सहा जा रहा है। **(सुलोचना सिसक रही है)** मुझे अपने बेटे मेघ पर बड़ा भरोसा था। मैं आज असहाय हो गया हूँ। मन्दोदरे! तुम धीरजवान माँ हो, आँसू वे लोग बहाते हैं जो विपत्ति से घबरा उठते हैं। बहू को भी धीरज दो। तुम बहादुर बेटों की माँ हो, बहादुरी से काम लो। सुनयने, अपने को सम्हाल बेटे! रोने से हमारा मेघ हमारे पास लौट नहीं आयेगा।

सुलोचना : पिता जी! मुझे मेरे पति का सिर चाहिये। मैं नहीं चाहती कि दुश्मन उस पर ठोकर मारें। **(सिसकती है।)**

रावण : **(क्रोध से मुट्ठियाँ भींचकर)** वह मैं युद्ध में जब लक्ष्मण का सिर काटूँगा, तो उसके साथ ही तुम्हें दूँगा।

मन्दोदरी : नाथ! **(रोते-सिसकते हुए)** आप अब भी उन्हें इतना साधारण समझ रहे हैं। मेरी बात आपने मानी होती तो यह दुर्दिन क्यों देखना पड़ता? अब भी मान जाइये। राम को, लक्ष्मण को हराना आसान काम नहीं है। सब तो चले गये। मेरे बेटे एक-एक कर मैंने खो दिये। अब आप तो रहिये, कुछ तो सोचिये। हमारे सिर पर आपका साया ही रहे।

रावण : **(गरजकर)** सब चले गये और मैं रह जाऊँ? मैं भीख माँगूँ अपने प्राणों की उस वनवासी राम से? तुम्हारी अक्ल तो ठिकाने है रानी! मैं रावण हूँ रावण। लंकापति रावण! मैंने देवताओं को प्राणों की भीख दी है। मैंने इन्द्र जैसे देवराज को प्राणों की भीख दी। मैंने एक-एक कर अपने सिर शिवजी के सामने काट डाले। मैंने शिवजी से कुपित होकर कैलाश पर्वत को कंधे पर उठा लिया। तुम कहती हो मैं अपने प्राण बचाने की खातिर उन नर-वानरों से डर जाऊँ। क्षमा माँग लूँ उनसे। कह दूँ कि मैं तुम्हारा मुकाबला नहीं कर सकता। तुम जीते!

मन्दोदरी : नाथ! इतना अभिमान अच्छा नहीं। गुणी और वीर के सामने छोटा होने में लज्जा कैसी! लज्जा ओछे और गलत काम में होनी चाहिये।

रावण : लज्जा? मैं मेघनाथ जैसे बेटे और कुम्भकर्ण जैसे भाई को मारने वालों को छोड़ दूँ? मैं विभीषण जैसे पाखंडी को शरण देने वालों को न मारूँ? असम्भव। यह असम्भव है रानी!

मन्दोदरी : बेटी, सुलोचना ! यह हमारी बात नहीं सुनेंगे। तुम स्वयं लज्जा छोड़कर राम के पास चली जाओ। वे क्षमाशील हैं, उनसे अपने पति का सिर माँग लो। वे अवश्य दे देंगे। यह तुम्हारे जीवन की अन्तिम चाह है बेटे। वह इस चाह की इज्जत अवश्य रखेंगे। मेरा मन कहता है।

दृश्य छः

[राम का शिविर]

विभीषण : श्रीराम ! मेघनाथ की वधू सुलोचना है यह। यह आपसे कुछ कहना चाहती है।

राम : ओह ! महान पतिव्रता सुलोचना। आओ बहिन बासुकिनन्दिनी ! इधर आकर बैठो।

सुलोचना : अवधकुमार ! आपके भाई ने मेरे पति को मारा है। मैं जानती हूँ। युद्ध विनाश करता ही है। लेकिन उन्हें तब क्यों मारा जब वह पूजा-तप कर रहे थे ? यह वीरों के काम नहीं हैं। वीरता का यह काम भी नहीं है कि उनका सिर काट कर आप रख लें। उनके शरीर पर मेरा अधिकार है। आप कौन होते हैं मेरा अधिकार छीनने वाले ?

राम : बहिन ! तुम ठीक कहती हो। तुम्हारी मनोदशा मैं समझ रहा हूँ। मेरी सहानुभूति तुम्हारे साथ है। मैं तुम्हारी दशा देख कर बहुत दुखी हूँ। किन्तु युद्ध के ऐसे परिणाम हुआ ही करते हैं। इनसे बचा भी तो नहीं जा सकता। तुमने व्यर्थ ही कष्ट उठाया। तुम संदेश भेज देती तो मैं सादर इसे तुम्हारे पास भिजवा देता। तुम चाहो तो मैं मेघनाथ को जीवित कर दूँ। तुम्हें उसे सौंप दूँ और वह सैकड़ों साल तक जी सके।

सुलोचना : मुझे आपके पास आने में संकोच नहीं था। किन्तु आयी हूँ तो आप यह क्यों समझ रहे हैं कि मैं उनके प्राणों की भीख माँगूँगी आपसे ! तुम्हारे भाई लक्ष्मण को मेरे पराक्रमी पति ने अपने प्राणदान दिये हैं। मैं उन्हें कैसे माँग सकती हूँ। मैं नहीं मानती की पूजा करते हुए किसी असावधान व्यक्ति को मार देना कोई पराक्रम है। लेकिन मेरे पति को असावधान अवस्था में भी मारना बहुत कठिन था इसीलिए मेरे पति की कटी भुजा ने लिखा है कि लक्ष्मण यती

है, महान साधक है केवल वही उन्हें मार सकते थे। इसलिए मुझे कोई शिकायत नहीं है। पर उनका सिर आपके पास है, वह मुझे दे दीजिये। ताकि मैं उनका अन्तिम संस्कार कर अपने को उन्हें समर्पित कर सकूँ।

राम : लक्ष्मण! मेघनाथ का सिर इन्हें दे दो।

लक्ष्मण : यह रहा मेघनाथ का सिर। लेकिन भइया, यह बात समझ में नहीं आयी कि कटा हुआ हाथ भी लिख सकता है।

सुलोचना : वीरवर लक्ष्मण! मेरे पति के लिए यह असम्भव नहीं है। मैं पतिव्रत हूँ तो परीक्षा दे सकती हूँ। वह मरकर भी अमर हैं। मेरे पतिव्रत पर विश्वास न हो तो ये देखो मुझे देखते ही मेरे पति हँसेंगे। **(मेघनाथ के सिर पर झुक कर)** नाथ! मैं आपकी वीरता मानती हूँ। यदि मैंने तन, मन, धन से हमेशा केवल आपको ही माना है, आपको ही आराधा है तो इन्हें हँसकर दिखा दीजिये न मेरे नाथ! हँस दीजिये न! मैं आपकी मृत्यु के बाद भी आपके पराक्रम से महान साधक लक्ष्मण को अवगत करा देना चाहती हूँ कि आप जो कुछ भी थे, मृत्यु के बाद भी हैं व उनकी कल्पना से भी कहीं अधिक है। मेरे नाथ! बता दीजिये न कि आप मृत्यु से दुखी नहीं हैं। हँसकर इन्हें बता दीजिये।

[मेघनाथ जोर-जोर से हँसता है।]

दृश्य सात

[रावण का महल। मन्दोदरी का रावण को समझाना]

मन्दोदरी : **(सिसकते हुए)** नाथ! देख रहे हैं लंकेश के इस सुनसान राजमहल को जो हर क्षण खुशी और चहल-पहल के गीतों में झूमता-सराहता था। हम कितने अकेले हो गये हैं प्राणनाथ!

रावण : माँ हो न। अपने बेटों—खासकर इन्द्रजीत मेघनाथ—के दुःख से दुखी हो। मैं भी दुखी हूँ रानी। लेकिन इस दुःख को लेकर बै जाने से क्या लाभ?

मन्दोदरी : सेना में अब वीर ही कितने बचे हैं। स्वामी! आप हठ छोड़ कर अब भी मेरी बात मान लें। युद्ध का नशा भी दूसरे नशों की तरह एक लत है। इस नशे को छोड़कर सीता को सौंप दीजिये उस राम को जिसने एक स्त्री के लिए सारी लंका को तबाह कर डाला है।

आप हैं तो जहान है नाथ। आप अपने को तो बचाये रखें।

रावण : **(ऐंठकर)** तुम समझती हो सब कुछ खोकर मैं केवल अपनी जान बचाकर तुम्हारे प्रेम के आँचल में मुँह ढाँप लूँ। मैं इन वीरों के खून का बदला न लूँ? लाखों स्त्रियों को अनाथ करके मैं तुम्हारा सिन्दूर बचा लूँ। लाखों घरों को अँधेरा बनाकर मैं अपने राज-महल में दिये जलाता रहूँ। लाखों बिलखते बच्चों का क्रन्दन मैं अपने कानों पर तुम्हारी हथेलियाँ रखकर सुनना बन्द कर दूँ। सारी लंका के घरों को उजाड़ कर मैं मन्दोदरी का घर बचा लूँ। रावण इतना नीच और गिरा हुआ नहीं है। मैंने देवराज इन्द्र, पवन और दिग्पालों को हराया है। रानी, मैं वानर, रीछों को, ये जो मेरी लंका के समीपस्थ आदिवासी हैं, सुला दूँगा। राम-लक्ष्मण को भी मार दूँगा। तुम चिन्ता न करो रानी।

मन्दोदरी : राजन्! जब से युद्ध शुरू होने जा रहा था तब से आप यही कहते आ रहे हैं। हमारे सारे वीर और तमाम सैनिक खेत आ गये लेकिन राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, अंगद, जामवंत आदि सभी जीवित हैं। उनकी सेना भी अधिक संख्या में बची हुई है।

रावण : **(कुपित भाव से)** मेरा मन कमजोर न करो रानी! मुझे उत्साह दो। अब मैं स्वयं युद्ध करने जा रहा हूँ। जो न केवल प्रलयकारी होगा बल्कि राम व लक्ष्मण सहित इन सारे वनवासियों को समाप्त करने वाला होगा। फिर सब कुछ खोकर भी तो यहाँ मैं हूँगा, तुम होगी और होगी वह जनकदुलारी सीता, बची-खुची प्रजा, रहा-सहा नगर।

मन्दोदरी : **(रोकर)** न-न, ऐसा न करें नाथ! अब युद्ध रोक दें। अब शेष भी क्या है!

रावण : **(क्रोधित होकर)** युद्ध होगा। अरे कोई है?

द्वारपाल : **(कक्ष में आकर)** जी महाराज! आज्ञा दें।

रावण : सारथि से कहो, हमारा युद्धरथ सजाकर सारे भीषण और भयंकर शस्त्र रखे। सैनिक तैयार हो जावें। आज हम स्वयं युद्ध करेंगे। युद्ध का नगाड़ा बजे।

दृश्य आठ

[रणभूमि। युद्ध के बाजे-नगाड़े बज रहे हैं। लंकापति

रावण की जय और अवध नरेश राम की जय के नारे गूँज रहे हैं।]

रावण : (**राम को देखकर**) आर्य राम ! तुम्हें अपने सामने धनुष-तीर उठाये देखकर मैं प्रसन्न हो उठा हूँ। मैं हमेशा वीरता को प्रणाम करता हूँ। निश्चय ही तुम वीर हो। ये मस्तक, जो शिव के सिवा और किसी के आगे नहीं झुका, तुम्हारे आगे झुका कर प्रणाम करता हूँ। तुम्हें मेरा आशीर्वाद है युवक, कि तुम दोनों भाई मेरे भयंकर अस्त्रों से सुरक्षित रहो। अपने प्राण बचाते रहो।

राम : लंकापति रावण को, इस उदारता और उनकी वीरता के लिए संकल्प की रक्षा के लिए, बलिदान तक हो जाने की भावना के लिए, मेरा आदर और प्रणाम। सचमुच रावण, तुम महान हो। मैं तुम्हें बार-बार प्रणाम करता हूँ।

रावण : लेकिन राम ! तुम अपराधी हो। तुमने मेरी बहन शूर्पणखा की नाक काटी, खर-दूषण, त्रिशिरा और मामा मारीच को मारा। तुम्हीं ने हनुमान को भेजकर मेरी अशोक वाटिका को उजड़वा कर लंका में आग लगवाई। मेरे बेटे अक्षय को मरवाया। राम ! तुमने मेरे भाई कुम्भकर्ण को मार दिया और विभीषण को मेरे विरुद्ध भड़काया। मेरे बेटे मेघनाथ को तुम्हारे भाई लक्ष्मण ने मार डाला—वह भी उस समय जब वह पूजा कर रहा था। मेरे बेटे प्रहस्त सहित तमाम वीर योद्धा तुमने अपने सहयोगियों से मरवा डाले। राम ! तुमने अपनी पत्नी के लिए लाखों वानरों और लाखों राक्षसों को मरवा डाला। सुलोचना जैसी लाखों विधवाओं की माँग का सिन्दूर पोंछकर तुमने अपनी भार्या सीता की माँग में सिन्दूर बनाये रखना चाहा है। तुम्हारे अपराधों की सूची बड़ी लम्बी है।

राम : ऐसा नहीं है रावण, (**हँसकर**) केवल सीता को पा जाना मेरा लक्ष्य नहीं है। यही लक्ष्य होता तो अयोध्या ही क्यों छोड़ता ? सीता ही मेरे जीवन की गति होती तो पिता के न चाहने पर भी वन क्यों आता ? वन आना मेरी विवशता नहीं थी रावण ! मेरा धर्म था। पृथ्वी से अन्याय को, शोषण को, सामन्तशाही को, दुराचार को समाप्त करना ही मेरा उद्देश्य था। (**हँसकर**) सीता के लिए राम ने इतना बड़ा युद्ध किया, ऐसा जो भी सोचता है, लंकेश, वह गलत है। सीता मेरी पत्नी है। उसी की रक्षा करना मेरा धर्म है। किन्तु यहाँ अन्याय और शक्तिवान को मिटा सकने में सीता एक

माध्यम है और मेरे अभियान का सहायक है। राक्षसराज ! वन में रहने पर भी सीता इतनी असुरक्षित नहीं थी कि तुम उसे उठा लाते। किन्तु उसे तुम उठा लाये क्योंकि नियति को शायद राम और रावण का यह युद्ध स्वीकार था। और फिर आज इस युद्ध में मैं चाहता तो अयोध्या के इस राजकुमार के पक्ष में क्या दस-बीस राजा भी अपनी सेना लेकर नहीं आ सकते थे ? अवध से भरत की, मिथिला से जनक की, काशी से कुशध्वज की सेनाएँ तो मैं बुला ही सकता था। लेकिन नहीं, वह मेरे लिए कतई आवश्यक नहीं था। किष्किन्धा जैसे वनप्रान्तर के वानर और रीछ जाति के लोग मेरे साथ हैं। उन्हें भी मैंने इसलिए साथ लिया कि एक तो ये तुम्हारे सीमान्त-वासी हैं, गरीब हैं, वैभव और धन से दूर हैं, न्याय इनका धर्म है, चरित्र इनकी लगन है, गलत से ये कभी जुड़ते नहीं और सत्य को प्राण देकर भी कभी छोड़ते नहीं। वैभवशाली असुरों से लाख गुना बेहतर हैं ये, इसलिए तुम असुरों पर इनकी विजय आवश्यक है। इनकी श्रेष्ठता मेरे लिए अभिमान है।

रावण : (हँसकर) बड़ी अच्छी बातें बना लेते हो राम। वाह, सुनकर आनन्द आ गया। विमाता के कहने पर तुम्हारे पिता दशरथ ने तुम्हें घर से निकाल दिया, वनवास दे दिया, इस बात को बड़ी शालीनता से तुमने अपने उद्देश्य से जोड़ दिया। इस जंगल में रहने वाली जातियों के हितैषी राम, तुमने इनके बलशाली राजा और मेरे *मित्र बाली को छुपकर क्योंकर मारा ? उसमें तुम्हें न्याय, सत्य, लगन, चरित्र, आदर्श कुछ नहीं मिला ?*

राम : रावण ! बाली बलशाली अवश्य था किन्तु अनीति, अन्याय, अधर्म ने उसकी आँखें तुम्हारी तरह बन्द कर दी थीं। वह इन गरीबों, आदिवासियों, समाज में दलित और असभ्य समझे जाने वालों का खुला शोषण कर रहा था। इतना धर्मान्ध भी हो गया था वह, कि अपने छोटे भाई की पत्नी को भी भोगने में उसे संकोच नहीं हुआ था। यह उसका चरित्र था। अनीति-अन्याय का अर्थ है—राक्षस, असुर वाली वृत्ति का हो चुका था बाली। राक्षसपने को मिटा देना मेरा उद्देश्य था रावण ! कल लक्ष्मण जैसा मेरा प्रिय भी यही काम करने लगे तो मैं उसे भी छोड़ूँगा नहीं।

रावण : यह युद्धभूमि है राम ! युद्ध की बातें करो। मैंने तुम्हारे अपराध इसलिए गिनाये थे कि उनके लिए तुम अब भी क्षमा माँग सकते

हो। अपने प्राणों की रक्षा के लिए अब भी मेरे शरणागत हो सकते हो !

राम : रावण ! आरोप लगाने से ही विजय होनी हो तो सुनो। तुमने ऋषियों के गाँव उजाड़े। मुनियों की समाधि भंग की। तुमने आश्रम उजाड़े। यज्ञ में बराबर विघ्न डलवाये। राज्य लूटे। देवताओं को परेशान करने के लिए बार-बार उनको युद्ध के लिए विवश किया। झूठे आडम्बर और यश के लिए आतंक मचाने के लिए ताड़का , मारीच, खर और दूषण अकम्पन और कालनेमि जैसे राक्षसों, दुष्ट आत्माओं को उकसा कर तपोवनों को विध्वंसकों के चरागाह बनवाया। दण्डकारण्य की शांति बार-बार भंग कर तपस्वियों के तप को विघ्न डालकर खंडित किया। नारियों का अपहरण किया, भला मेरी पत्नी को चोर की तरह अपहरण करने का क्या अर्थ होता है ? धोखे से अपहरण करने वाले से बड़ा संसार में कोई पापी या अपराधी नहीं होता है। तुम इतने ही वीर थे तो मुझसे अपनी बहन के अपमान का बदला लेते।

रावण : मैं तुम तपस्वी बालकों से आकर लड़ता ? तुमने कभी रावण की विशालता का पता लगाया ? कभी मेरे बारे में देवराज इन्द्र से पूछा ? देवताओं, नागों, गन्धर्वों ने कभी तुम्हें मेरे बारे में कुछ बताया नहीं क्या ? तुम रावण को जानते नहीं, रावण कभी भी झुकता नहीं झुकाता है। रोता नहीं रुलाता है। देखो राम, मुझे धर्म और नीति न सिखाओ। तुम्हारा आशय मैं समझ रहा हूँ। ठीक है, आओ क्षमा माँग लो और जान प्यारी है तो अयोध्या भाग जाओ प्राण बचाकर। यदि युद्ध ही करना चाहते हो तो अस्त्र उठाओ।

राम : न मैं पहले आक्रमण करता हूँ, न मुझ पर आक्रमण करने वाले से मैं पहले लड़ता हूँ। अब तुम ही अपनी सेना में अकेले वीर रह गये हो। कहा किससे लड़ोगे ? सुग्रीव से ? अंगद से ? हनुमान से ?

रावण : (**गरजकर**) तुमसे लड़ूँगा राम तुमसे। लंकापति हूँ मैं ! तुम ही से लड़ूँगा।

राम : (**हँसकर**) राजन् ! आपके लिए मेरे पास अभी अनेक वीर हैं। कोई भी आपको धूल चटा सकता है।

रावण : (**क्रोध से**) सैनिको, युद्ध हो। वानरों को बीन-बीन कर मारा जाय।

[दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध होता है]

रावण : (**हँसकर**) देखा सारथि ! मेरे तीरों ने ऐसी अग्नि-वर्षा की है कि वानर जल-जल कर, तड़प-तड़प कर मर रहे हैं। अरे, यह वर्षा का तीर किसने छोड़ा, सारी आग बुझा गया।

सारथि : राजन् ! वह श्री लक्ष्मण हैं और वह तरह-तरह के तीर छोड़ते आगे बढ़ रहे हैं।

रावण : (**ललकार कर**) लक्ष्मण ! ठहर जा वहीं। मैंने अपने मेघनाथ का बदला लेना है तुमसे। ले यह मेरा बाण सँभाल। (**तीर प्रत्यंचा पर खींचकर मारता है**)

लक्ष्मण : राजेश ! तुम्हारा बाण ये काटा मैंने। (**तीर चलाते हैं**) ठहरो, भागते कहाँ हो लंकापति !

[दोनों ओर से तीर पर तीर चलते हैं। भयानक युद्ध]

रावण : भागा कहाँ हूँ लक्ष्मण ! यह लो, इसे झेलो तो जानूँ।

[लक्ष्मण का अचेत होना। रामादल में हाहाकर। युद्ध बन्द। वानरों द्वारा उन्हें उठाकर ले जाना]

राम : (**दुखी स्वर में**) सुग्रीव ! रावण ने लक्ष्मण को अचेत कर दिया। यह बार-बार मेरे साथ क्या घट रहा है !

विभीषण : आर्य ! देखिये न, वह पर्वत और बूटी युद्ध-शिविर में है। हनुमान अभी जाकर वैद्य जी को लाते हैं। हम युद्ध-शिविर में उपचार की तैयारी करें। वीरवर लक्ष्मण अभी स्वस्थ हो जायेंगे।

[मंच पर प्रकाश धीमा होता है। फिर प्रकाश]

लक्ष्मण : भइया ! भइया !

राम : लक्ष्मण ! तुम ठीक हो न भइया !

लक्ष्मण : मैं ठीक हूँ। मेरा तूणीर कहाँ है अंगद, तुम कहाँ हो, जरा मेरा तूणीर दो तो, मैं अभी उसे मार कर आता हूँ।

राम : सौमित्र ! अभी युद्ध बन्द है। विश्राम करो। तुमने जिद्द की थी रावण से लड़ने की तो आज भेज दिया था। रावण कम बलवान नहीं है। कल मैं उससे स्वयं लड़ूँगा।

दृश्य नौ

[युद्धभूमि में रावण का राम से युद्ध। युद्ध के भयंकर स्वर। जय श्रीराम ! जय लंकापति ! एक सुन्दर रथ राम के पास आकर रुकता है।]

राम : लक्ष्मण, यह कैसा स्वर्णजटित वैभव-सम्पन्न रथ है ?

मातलि : अयोध्या-कुमार श्रीराम के चरणों में सारथि मातलि का प्रणाम। मैं देवराज इन्द्र का सारथि हूँ। रावण विशाल रथ में चढ़कर लड़ रहा है और आप नंगे पाँव जमीन पर दौड़ रहे हैं। रेत तपी हुई है। सभी देवताओं की इच्छा से देवताओं के राजा इन्द्र ने अपना सबसे श्रेष्ठ, युद्ध के अस्त्रों से भरा रथ आपके लिए भेजा है। आवें, इस पर बैठकर मुझे भी सेवा का अवसर दें।

राम : नहीं मातलि ! मैं वनवासी हूँ। मुझे वनवासियों की तरह लड़ने दो। मैं इस तपती धरती पर अपने साथी रीछ-वानरों के साथ नंगे पाँव दौड़कर ही यह युद्ध जीतूँगा। देवराज इन्द्र को मेरा धन्यवाद देना। देवताओं का इस कृपा के लिए मैं आभारी हूँ। तुम यह रथ लौटा ले जाओ।

[रथ लौट जाता है]

लक्ष्मण : भइया ! रावण ने तबाही मचा दी है। हमारे सैनिक बेतहाशा मर रहे हैं और घायल हो रहे हैं। वानरराज सुग्रीव और जामवन्त रावण से लड़ रहे हैं किन्तु उनकी मदद के लिए आप मुझे आज्ञा दें।

राम : रावण युद्धकला का महारथी है, लक्ष्मण ! उसके अद्भुत पराक्रम मैं देख रहा हूँ। वह महान है। जब मैं उससे मायावी युद्ध का मुकाबला कर रहा था तो मैं बेहोश होकर गिर पड़ा था। हनुमान ने मुझे ढक कर रावण की गदा की मार अपनी पीठ पर झेल ली थी। तभी रावण तुरन्त रथ से नीचे उतर आया था और अपने वस्त्र फाड़ कर मेरे घावों से बहता खून पोंछ कर अपने मुकुट से मुझे हवा दे रहा था। वह चाहता तो उस समय भयंकर तीर मार कर धरती पर शिथिल पड़े हुए राम को समाप्त भी कर सकता था। किन्तु उसने ऐसा नहीं किया यही उसकी महानता है, यही उसके श्रेष्ठ युद्धशास्त्री होने और रण के नियमों की पारंगतता का उदाहरण है।

लक्ष्मण : भइया ! उसकी इस धूर्तता को आप महानता कहते हैं। आप उसे नीतिज्ञ कहते हैं, विद्वान कहते हैं, युद्ध-निपुण कहते हैं—जबकि आप अच्छी तरह जानते हैं कि वह कितना लम्पट है, कितना नीतिहीन है, कितना अमानवीय है, कितना अहंकारी है, कितना पशुता से भरा और खूँखार है। साधुओं, सज्जनों का कितना बड़ा शोषक और दुश्मन है वह।

राम : मैं उसके उसी बुरे पक्ष के कारण तो उसे समाप्त कर देने को प्रतिबद्ध हूँ, बावजूद उसकी तमाम श्रेष्ठताओं के। विभीषण ! विभीषण !

विभीषण : श्री आर्य आज्ञा करें।

राम : जाओ मैं चाहता हूँ, इस बार हम सबकी ओर से तुम रावण से आमने-सामने हमारे प्रतिनिधि बनकर लड़ो।

विभीषण : मेरी भी यही इच्छा थी आर्य ! लीजिये मैं उसके सामने जा रहा हूँ।

[रावण के सामने जाकर, रावण को प्रणाम कर]

विभीषण : बड़े भइया ! मैं अपना यह तीर आपको प्रणाम के तौर पर भेज रहा हूँ और अब लीजिये दूसरा, तीसरा, चौथा तीर। वाह ! हिल उठे न लंकापति ! पाप का घड़ा भरने कितनी देर लगती है बड़े भइया ! जो बुरे और घृणित काम करता है वह पहले तो दिन दूना रात चौगुना फलता-फूलता है किन्तु उसका जब अन्त होता है तो कोई आँसू बहाने वाला नहीं मिलता। कितना घृणापूर्ण अन्त होता है।

रावण : अरे कायर ! मुझे अब भी भइया-भइया कहता है ! मेरे शत्रु की जीत के लिए मुझसे लड़ने आया है। कायर ! तुझे धिक्कार है। तू मेरा भाई नहीं है। तेरी रगों में वह खून नहीं है जो मेरी रगों में है। ले मेरी गदा के ये प्रहार झेल। ले, ये ले।

विभीषण : (हसकर) भाई मतिहीन हो जाय तो क्या करें। ले मेरे भी अस्त्रों का उत्तर दे। (घमासान युद्ध) गिर पड़े लंकापति। नहीं झेल सके न ! (हँसकर) जय श्री राम की। (हँसता है।)

[युद्ध बन्द होने का बिगुल बजता है। रावण की सेना में हाहाकार]

दृश्य दस

[रावण का राजभवन]

रावण : ओह ! मैं कहाँ हूँ अरे, यहाँ अपने राजभवन (दुर्ग) में ? मैं तो युद्ध-भूमि में था। मैं तो विभीषण से लड़ रहा था। मैं यहाँ कैसे आया ? सारथि ! तुम मुझे युद्धभूमि से यहाँ उठा लाये। अरे कायर ! तूने सोचा भी कि तूने यह क्या कर डाला ? तूने युद्ध में मुझे कायर बना दिया ! रावण अजेय है। उसे कोई नहीं मार सकता। जरा-सी बेहोशी आने पर ही तू रथ वापस भगा लाया क्या।

सारथि : राजन् ! आप बहुत घायल हो गये थे । बेहोश हो गये थे। शाम हो चली थी । युद्ध थम गया था । आपके घावों का उपचार करना आवश्यक था । वैद्य अभी-अभी गये हैं । युद्ध के बाद इस हालत में आपको वहाँ कैसे छोड़ता । इसीलिए ले आया था ।

रावण : कितनी देर है सुबह होने में । मुझे तुरन्त युद्धभूमि में ले चलो । मैं राम, लक्ष्मण सहित आज विभीषण को भी मारूँगा । विभीषण अब बच नहीं सकेगा । पहले सीता को मार डालूँ । नहीं, नहीं, मैं सीता को राम, लक्ष्मण के कटे सिर दिखाऊँगा । उसे मारूँगा नहीं । वह रहेगी । वह मेरे पास रहेगी ।

[युद्धभूमि]

रावण : (गरजकर) अरे राम ! मेरे रथ से इतनी दूर क्यों जाता है ? आगे आ न ! मुझे तुझे मारना है, तेरे छोटे भाई को मारना है और देशद्रोही विभीषण को मारना है ।

राम : घबड़ाते क्यों हो लंकेश ! तुमसे मैं ही लड़ूँगा । विभीषण को मैंने लंका का राज सौंपने का वचन दिया है इसलिए विभीषण के हाथों नहीं मैं तुम्हें अपने ही हाथों मारूँगा ।

रावण : (हँसकर) रावण अजेय है, अमर है ।

राम : बढ़-बढ़कर बातें न करो रावण । लो अस्त्र सम्हालो ।

[अंधाधुंध अस्त्र-शस्त्रों की मार । कराहें, आहतों के स्वर]

राम : लक्ष्मण ! विभीषण किधर हैं, उन्हें यहाँ लाओ ।

लक्ष्मण : विभीषण ? विभीषण तो वो रहे । अच्छा अभी इधर बुलाकर लाता हूँ । (जाते हैं)

[विभीषण समीप आते हैं]

राम : विभीषण ! मैं रावण के सिर काटता हूँ फिर जुड़ जाते हैं । हाथ काटता हूँ फिर लग जाते हैं । सारी विद्या आजमा ली लेकिन यह दुष्ट मरता ही नहीं । भीषण और भयंकर अस्त्रों में अब मेरे पास मुनि अगस्त्य का दिया एक ही दिव्य अस्त्र शेष रह गया है । यह भी खाली गया तो मैं रावण को नहीं हरा सकूँगा ।

रावण : (हँसकर ठठाकर) अरे राम रुक क्यों गये । अस्त्र क्यों नहीं चलाते ? विभीषण से बातें करने आये हो या रावण से युद्ध करने ।

राम : विभीषण !

विभीषण : आर्य ! इसके नाभिकुण्ड में एक अद्भुत क्रिया वाला अमृत-कुण्ड है । कोई भीषण अस्त्र इसे सुखा दे तो यह मर सकेगा ।

राम : तो यह अन्तिम भयंकर अस्त्र मैं उसके नाभिकुण्ड पर मार कर

राम : अमृत सुखा देता हूँ। (अस्त्र के जाने का स्वर)

[रावण चिल्लाकर रथ से धरती पर आ गिरता है]

रावण : आह, ठीक है राम। तुमने मुझे मार डाला। मुझे मार सकना इतना आसान नहीं था। मुझे को कोई साधारण आदमी मार नहीं सकता था, (दर्द की चेतना) आह ! ओह ! सचमुच मैं अहंकारी हो गया था। देवत्व को मैंने अपने पाँव के अँगूठे के नीचे दाब लिया था। मेरे समीप आओ राम ! तपती रेत पर पड़े मेरे शरीर पर अपने शरीर की छाया करो राम ! आगे आओ रघुवर, मेरे पास आओ।

राम : लंकापति ! तुम्हारी महानता को कभी मैंने कम नहीं माना। मेरा विरोध तुम्हारी दुष्टता से था। वह दुष्टता जिसे लोग राक्षस कहकर जानते थे। मैं जन्म से ही इस दुष्टता, इस राक्षसपन के विरोध में लड़ता रहा हूँ।

रावण : राम मैं अब भी नहीं मानता कि मैं श्रेष्ठ नहीं था, या तुम मुझसे अधिक श्रेष्ठ थे। मत समझो कि तुमने मुझे हरा दिया। मैं हारा नहीं हूँ राम ! मैं हारा नहीं हूँ। वास्तव में मेरे और तुम्हारे रास्ते अलग-अलग थे। मैं अपने रास्ते को सही मानता था। रास्तों को पहचानने की गलती हो सकती है।

राम : मैं कब कहता हूँ राक्षसराज, कि मैंने आपको हरा दिया है। मैंने तो अन्याय, शोषण और अहंकार के लिए आपको दण्डित करना चाहा था। इसीलिए राजमहलों को छोड़कर वनवीथियों पर आना मेरा सार्थक हो गया। मैं उनका हो गया जिनका कोई नहीं था, जो प्रताड़ित थे, कातर थे, विवश थे। आप जिन अर्थों में श्रेष्ठ थे उन...

रावण : (पीड़ा का स्वर) श्रेष्ठ ? किन अर्थों में ? चलो, अच्छा किया। मुझे...आह... तुमने मार डाला। आने वाली पीढ़ियाँ भी खुश होंगी कि मुझे मार डाला राम ने। तुमने ठीक कहा कि मैं बुराई का, गलत काम का, शोषण का, अन्याय और अनीति का, अहंकार का, बड़प्पन और सामंतशाही का प्रतीक था। राम ! तुम अच्छाई के प्रतीक बने रहो। मैं एक बात का तुम्हें विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि तुम्हारी प्रतिज्ञा बनी रहे इसके लिए मैंने भरसक कोशिश की—यहाँ तक कि अपहरण करने के बाद कभी तुम्हारी अर्द्धांगिनी सीता को मैंने नगर में नहीं रखा। राजमहल में नहीं रखा। रखा तो अशोकवन में। उस देवी को, उस पवित्र देह को

कभी छुआ तक नही, आदर ही दिया। ताकि वह हमेशा तुम्हारी बनी रहे, पवित्रम बनी रहे। मै आहत हूँ, भूमि पर पडा हूँ, स्वय उस देवी के पास तक जाकर उन्हे सौप सकने का सुख नही पा सकता। पर पूरे आदर के साथ मै तुम्हारी पत्नी तुम्हें वापस करता हूँ। उन्हे ले जा सकते हो तुम। आह ··मुझे अपनी गति पर परम सतोष है अवधकुमार···ओह ··ओह ··!

राम . लक्ष्मण ! आओ, इस महान आत्मा को प्रणाम कर हम अपनी मौन श्रद्धाजलि अर्पित करे। नीति का, तप और साधना का, शिवभक्ति और वेदज्ञान का एक महान प्रकाश-पुञ्ज हमारे सामने विलुप्त होने जा रहा है। हम, हमारे सभी योद्धा, वानरराज सहित उन्हे श्रद्धाजलि अर्पित करते ह।

दृश्य ग्यारह

[युद्धभूमि मे रावण का क्षत-विक्षत शरीर पडा है। राम लक्ष्मण विभीषण, सुग्रीव अगद, हनुमान, जामवन्त आदि घेर कर खडे है।]

विभीषण . (**रुंधे गले से**) आर्य श्री राम ! सारे ससार को अपने भय और आतक से भयभीत किये रहने वाले मेरे बडे भाई अब नही रहे। महान पराक्रमी, कार्यकुशल, नीतिज्ञ दशानन, जो हमेशा बहुमूल्य बिछौनो पर सोया करते थे। आज समुद्र-तट की इस तपती रेत मे निर्जीव पडे है। उनके माथे पर का सूर्य के तेज से भी प्रखर यह मुकुट मिट्टी मे सना पडा है। मेरे स्वर्गीय भ्राता ! अपने आसुओ के अर्घ्य के सिवा अब मै तुम्हे और दे भी क्या सकता हूँ। (**सिसकता है।**)

राम . अब धीरज से काम लो विभीषण ! रावण महान वीर था, उसने वीरगति पायी है। और फिर रावण कहाँ मरा है, यह तो एक राजा का अहकार अत्याचार और आतक मैने मार दिया है।

विभीषण अवधकुमार ! इन्द्र भी जिसे कभी पीछे न ढकेल सका। दाताओ मे महान दानी, भोगो मे महान भोगवादी, मित्रो का परम मित्र और शत्रुओ का घनघोर शत्रु मेरा बडा भाई मेरे सामने किस दशा मे पडा हुआ है वह मुझसे सहा नही जाता आर्य ! (**रोता है।**)

राम : विभीषण ! आज यह तुम्हारी तरह ही मेरे भी स्नेह और आदर

का पात्र है। वैर जीवन तक तो चल सकता है लेकिन जीवन खतम होने के बाद नहीं। धीरज से काम लो और समस्त लंका-वासियों को भी धीरज दो। जाकर रावण की अन्त्येष्टि करो। लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव, आप सब जाकर मेरे वचन के अनुसार विभीषण का लंका के राजसिंहासन पर अभिषेक करके आओ। हाँ, मन्दोदरी को लंका में राजमाता का पद प्राप्त रहेगा। विभीषण उनकी आज्ञा मानेंगे।

[दृश्य बदलता है। राजमहल का कक्ष। विलाप करती हुई मन्दोदरी दासियों तथा अन्य स्त्रियों से घिरी है। विभीषण, लक्ष्मण और सुग्रीव के साथ उनके समीप पहुँचते हैं।]

मन्दोदरी : मेरे नाथ, **(रोकर)** कितनी बार आपके पाँव पकड़कर समझाया कि यह युद्ध न लड़ो। प्राणनाथ! एक बार तो मेरी बात सुन लेते? मेरे नाथ! जो डर मुझे था वही हुआ **(रोती है।)**

विभीषण : भाभी, जैसी बातें बड़े भइया को आपने समझायी थीं वैसी ही मैंने भी समझायी थीं। हमने उन्हें समझाने में कोई कोर-कसर बाकी न रखी, पर वह सुनते किसकी थे? न मानने का ही आज यह फल उन्हें मिला है।

मन्दोदरी : लेकिन सगे भाई होकर भी तुम अपने बड़े भाई के दुश्मन के साथी हो गये थे। **(सिसकी और विलाप)** अब जब मेरे लंकेश नहीं रहे तो मेरे लिए सारी दुनिया नहीं रही। **(साथ आये लोगों की तरफ मुड़कर)** पूरे राज-संस्कार के साथ इनकी अन्त्येष्टि होनी चाहिए। यह जितने महान थे इनका अन्त भी उतना ही महान हुआ है। अपनी कोशिश में यह कभी हिचके नहीं, अड़े रहे। मंत्री कहाँ हैं?

मंत्री : महारानी की जय हो! मैं उपस्थित हूँ महारानी!

मन्दोदरी : मंत्री, लंकेश की पत्नी होने के कारण अब लंका की रक्षा की जिम्मेदारी मुझ पर आ गयी है। हमें लंका को अपने प्राण रहते वानरराज या राम के अधीन होने से बचाना होगा। युद्ध की तैयारियाँ की जायें।

मंत्री : युद्ध की तैयारियाँ! महारानी! जो सैनिक बच गये, वे या तो घायल पड़े कराह रहे हैं या डर के मारे घरों में छुप गए हैं। युद्ध का सेनापति होगा कौन? किसके सहारे लड़ेंगे वे लोग?

मन्दोदरी : अब प्राण रहते तक युद्ध का संचालन मैं करूँगी। महान रावण की इस प्यारी लंका में मैं आक्रमणकारियों की सत्ता स्वीकार नहीं

करूँगी। मैंने अपने बेटों को खो दिया है। अपने यशस्वी पति को खो दिया है। जब तक मैं केवल नारी थी, लंकाधिपति की पत्नी मात्र थी, तो अपने पति को युद्ध के लिए रोकती रही थी, किन्तु अब लंका पर राम का आधिपत्य रोकने का उत्तरदायित्व मेरे ऊपर आ गया है।

विभीषण : अब किस बात का युद्ध महारानी ! आर्य श्री राम ने महारानी के पास अपने भाई लक्ष्मण को स्वयं भेजा है। यह देखिये आर्य लक्ष्मण और वानरराज सुग्रीव यहाँ उपस्थिति हैं।

मन्दोदरी : विभीषण ! लंका में जो बच गये हैं उनको बन्दी बनाने का प्रस्ताव लेकर आये हो न ? वह समझ रहे होंगे कि लंका की सत्ता पर उनका अधिकार हो गया है, लेकिन अभी मन्दोदरी जीवित है। मन्दोदरी लंका के बचे हुए लोगों और सैनिकों के साथ लंका को बचाने के लिए उनसे लड़ेगी। लंका के लोग, लंका के सैनिक अपने वतन की रक्षा के लिए एक बार फिर लड़ेंगे।

लक्ष्मण : महारानी ! मेरे भाई आर्य श्री राम ने मुझे यहाँ विभीषण का राजतिलक करने भेजा है। वह पिताजी की आज्ञा के कारण नगर में आते नहीं हैं। वह लंका पर राज्य नहीं करना चाहते। उन्होंने लंका का राजा विभीषण को बनाया है। आपको राजमाता के सारे अधिकार रहेंगे। सारी लंका आपकी रहेगी। लंकावासी जैसे स्वतंत्र थे वैसे ही रहेंगे। लंका पर किसी बाहरी व्यक्ति का कोई अधिकार नहीं रहेगा, बल्कि जब आप चाहेंगे हम इसकी रक्षा में आपका साथ देंगे।

मन्दोदरी : लंकावासी स्वतंत्र रहेंगे ? लक्ष्मण कुमार ! मेरे प्राणनाथ को जीतकर भी श्रीराम लंका में शासन नहीं करना चाहते ? वे कितने महान हैं। मंत्री ! बहन सीता अब स्वतंत्र हैं। कल प्रातः ही सीता जी को मैं पूरे सम्मान के साथ अपने साथ ले जाकर श्रीराम को सौंप आऊँगी। इस समय मेरे प्राणनाथ के अन्तिम संस्कार की व्यवस्था करो और फिर विभीषण के राजतिलक की। लक्ष्मण कुमार इसी काम के लिए नगर में आये हैं।

दृश्य बारह

[राम का युद्ध-शिविर, पालकी में सीता जी को बिठा

कर मन्दोदरी, विभीषण आदि आते हैं। राम को मन्दोदरी सम्बोधित करती है।]

मन्दोदरी : अवध नरेश ! मेरा प्रणाम लें। मैं अभागिन दशानन की रानी पूरे सम्मान और आदर के साथ आपकी पत्नी आपको सौंपने आयी हूँ।

राम : धन्यवाद महारानी ! मुझे दुःख है कि जो हुआ उसे रोक पाना मेरे वश में नहीं था, इसके लिए आप मुझे क्षमा करेंगी। होनहार होकर ही रहती है। उसे रोका नहीं जा सकता। इस संसार में कुछ भी निश्चित नहीं है। किन्तु मृत्यु निश्चित है। यह दुखद घटना अवश्य है किन्तु इसे रोकना ब्रह्मा के हाथ में भी नहीं था।

मन्दोदरी : हाँ, आर्य ! इसे मैं स्वीकार करती हूँ। शायद मेरे नाथ को भी यह पता था कि उनका अंत आपके हाथों ही होना है। इसलिए वह अंत तक प्रसन्न भाव से सब कुछ गँवाकर भी युद्ध के लिए अटल रहे। मुझे लगता है कि उन्हें इसका आभास था। इसीलिए सेतुबन्धु रामेश्वरम् की स्थापना के यज्ञ में ब्राह्मण पुरोहित होकर उन्होंने स्वयं ही आपको विजय का आशीर्वाद दिया था। अब आप सीता जी को प्राप्त करें। इन्हें हमारे कारण जो कष्ट उठाने पड़े उसके लिए इनसे भी मैं क्षमा माँगती हूँ।

राम : सीता को सामने पाकर जैसे संसार का सारा अलभ्य मिल गया है किन्तु जानकी, तुम्हें मैं नहीं स्वीकार कर सकता। तुम बारह महीने तक पराये पुरुष के पास रही हो। मर्यादा मुझे रोकती है कि मैं तुम्हें स्वीकार करूँ।

सीता : नाथ ! यह क्या कह रहे हैं आप ? **(स्वर थर्रा उठता है।)**

लक्ष्मण : भइया ! यह क्या कह दिया आपने ?

मन्दोदरी : आर्यश्रेष्ठ ! बहन सीता अग्नि और गंगाजल से भी अधिक पवित्र हैं। मेरे पति ने कभी इनके शरीर को छुआ तक नहीं है। वह जब भी सीता जी के पास कुछ समझाने या धमकाने आये मुझे हमेशा साथ लाये। सीता जी पर ऐसा लांछन लगाना उनका घोर अपमान है।

सीता : नाथ ! आप जो चाहें मैं वह परीक्षा देने को तैयार हूँ। मेरा एक-एक क्षण आपके बिना कितनी पीड़ा से कटा है शायद आप नहीं सोच सकते।

राम : एक शर्त है सीते ! तुम अग्नि में प्रवेश करके परीक्षा दो। यदि

तुम निष्कलंक होगी तो सोने की तरह निखर कर अग्नि से बाहर निकलोगी।

सीता : मुझे स्वीकार है आर्य ! यदि मैंने पवित्र मन से हमेशा आपका ही ध्यान किया होगा और मन-वचन से मैं आपके लिए ही सदा समर्पित रही हूँ, तो अग्नि मुझे निष्कलंक सिद्ध करेगी। लक्ष्मण ! लकड़ियाँ बटोरकर मेरे अग्नि-प्रवेश की व्यवस्था करा दो।

दृश्य तेरह

[सीता जी अग्नि-परीक्षा में खरी उतरती हैं। अग्नि-देव प्रकट होते हैं।]

अग्निदेव : आर्य श्री राम ! महारानी सीताजी सचमुच निष्कलंक हैं। वह निष्पाप हैं। मैं अग्नि स्वयं इस पवित्रता की मूर्ति को आपको सौंपता हूँ।

राम : प्रणाम अग्निदेव ! प्रिय सीते ! आओ। मर्यादावश मैंने तुम्हारी अग्नि-परीक्षा ली है। आओ मेरे पास बैठो।

विभीषण : आर्य ! अब लंका में चलकर हमें कृतार्थ करें।

राम : न-न, विभीषण ! मेरे वनवास की अवधि में अभी तीन दिन शेष हैं, इसलिए मैं नगर-प्रवेश अभी नहीं करूँगा। इन तीन दिनों में हमें लम्बा रास्ता पार कर अयोध्या पहुँच जाना है अन्यथा माता जी, भरत आदि समय पर हम नहीं पहुँचेंगे तो परेशान हो जायेंगे। तुम कर सको तो अयोध्या तक हमें पहुँचाने की व्यवस्था कर दो और मेरे साथी, मित्र सभी वानर-रीछ, मैं आप सबका आजन्म आभारी रहूँगा। आप सब अपने-अपने घरों को जायें। अपने बच्चों से मिलें। कोई काम कभी भी मुझसे पड़े तो निःसंकोच बतायें। वानरराज सुग्रीव, अंगद, नल, नील, हनुमान, जामवन्त आदि जो भी मेरे साथ चलना चाहें, चल सकते हैं।

विभीषण : आर्यश्रेष्ठ, रथ तैयार है। जिस गति से चाहें, जितने लोगों के साथ चाहें यह रथ ले जा सकेगा। मैं स्वयं आपको अयोध्या तक पहुँचाने आना चाहता हूँ। आशा है आप आज्ञा देंगे।

राम : ठीक है, विभीषण ! महारानी मन्दोदरी ! हमारा प्रणाम लें। बाकी लोग लौटने की तैयारी करें। वानरराज सुग्रीव, युवराज अंगद, जामवन्त, हनुमान, गवाक्ष, नील, नल, सुषेण आदि जितने

भी मेरे मित्र योद्धा मेरे कष्ट में प्राणपण से मेरे साथ रहे हैं उनका आभार मैं शब्दों में प्रकट नहीं कर सकता। विजय का सम्पूर्ण श्रेय उन्हीं को है। अयोध्या आप सबके लिए अपना घर है। वहाँ आकर, वहाँ रहकर जो भी जितने अधिक समय तक मुझे उपकृत करेंगे मैं उनका आभारी ही रहूँगा। **(मुस्कराकर)** हाँ हनुमान, आपके यश से मैं इतना अधिक प्लावित हूँ, आकंठ आपके ऋणों में डूबा हूँ कि आप मेरे लिए हमेशा मेरे सगे भाई रहेंगे। आपके बिना अब राम की कल्पना भी नहीं की जा सकेगी। वानरराज, मैं आपके प्रति क्या कहूँ ? मेरे पास कहने को है भी क्या ? जो लोग मेरे साथ चलना चाहें चल सकते हैं। तैयारी करें। बाकी लोग किष्किन्धा को, अपने घरों को, अपनी गिरि-कन्दराओं को लौट जावें। सबको मेरा प्रेम-भरा, आभार-भरा अभिवाद है।

दृश्य चौदह

[राम, सीता; लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव, अंगद, जामवन्त, नल, नील आदि पुष्पक विमान पर बैठे हैं। राम और सीता आगे हैं। (इस दृश्य को फिल्म स्लाइड, स्ट्रिप्स या छाया-चित्र द्वारा पर्दे पर दिखाया जा सकता है) विमान ऊपर आकाश में उड़ रहा है। राम का स्वर सुनाई पड़ रहा है।]

राम : सीते ! उत्तर से दक्षिण तक का सारा मार्ग बड़े दर्शनीय स्थलों वाला है। देखो यह लंका का मैदान यहीं लक्ष्मण ने पास की गुफा में मेघनाथ को मारा था। वह देखो ऊँचा टीला-सा अस्थिपंजर, वह कुम्भकर्ण का है। समुद्र-तट पर देख रही हो, रावण की चिता की राख पड़ी है ढेर जैसी। ये जो खँडहर, ढहे मकान देख रही हो, इन्हें हनुमान और सुग्रीव ने गिरा दिया था। ढेर के ढेर मृत राक्षस सैनिक पड़े हैं। यह जो पुल बँधा है समुद्र में, वास्तुकार नल-नील ने हमारे सैनिकों की सहायता से तीन दिन के अन्दर बनाया था। वह देखो शिव-पार्वती जी का मन्दिर है जिसे मैंने युद्ध पर आने के पहले स्थापित किया था। इन्हें यहीं से प्रणाम कर लो। उनकी बड़ी कृपा रही है हम पर। यह देखो, सुग्रीव की किष्किन्धा नगरी दिख रही है। यह पम्पा सरोवर और मतंग

ऋषि का आश्रम दिख रहा है और उसके पास जो पहाड़ दिख रहा है वह ऋष्यमूक पर्वत है। यहीं सबसे पहले हनुमान मिले थे, फिर सुग्रीव से भेंट हुई थी। यदि सुग्रीव सहायता न करते तो जानकी, मैं तुम्हें कैसे पा सकता था! अब हम मुनि अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, शरभंग और अत्रि ऋषि के आश्रमों के ऊपर से होते हुए प्रयागराज की ओर बढ़ रहे हैं।

सीता : नाथ! यहाँ रुकेंगे न! मैंने वन आते समय गंगा जी से कहा था कि हम तीनों प्राणी सकुशल लौट आयेंगे तो मैं गंगा मैया को पियरी (चुनरी) चढ़ाऊँगी।

राम : हम भरद्वाज जी के आश्रम में उतरेंगे। तुम लक्ष्मण के साथ जाकर गंगा जी की पूजा करके चुनरी चढ़ा आना। गंगा पार करके शृंगवेरपुर में थोड़ी देर के लिए अवश्य रुकना है। वहाँ निषादराज से मिलना है। उन्होंने हमें गंगा पार करायी थी। वह चाहेंगे तो उन्हें भी हम अयोध्या ले चलेंगे। यहीं से हम हनुमान जी को आगे भेज देंगे, नन्दिग्राम में भरत को समाचार देने। ताकि अयोध्या में माँ को भी समाचार मिल जावे। वे सब बेचैनी से प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

[दृश्य बदलता है]

दृश्य पन्द्रह

[नन्दिग्राम में भरत राम की मूर्ति की पूजा कर रहे हैं। हनुमान आते हैं।]

भरत : संत सरीखे वानर! आप कौन हैं? यहाँ मेरे पास नन्दिग्राम कैसे आना हुआ? मैं अयोध्या के नरेश श्री राम का छोटा भाई हूँ—भरत।

हनुमान : वीरवर! आप बड़े साधक हैं। आपके बड़े भाई श्रीराम, अपनी सौभाग्यशाली पत्नी और भाई लक्ष्मण सहित अयोध्या पहुँचने ही वाले हैं।

भरत : बन्धु! मुझे धोखा तो नहीं दे रहे तुम? तुम कौन हो, अपना परिचय दो। मैं तो उनके बिना क्षण-क्षण बड़े ही कष्ट से काट रहा हूँ। इससे बड़ा शुभ समाचार मेरे लिए और क्या हो सकता है।

हनुमान : मैं वानर हनुमान हूँ—श्री राम जी का सेवक। वे लंकापति रावण को मारकर अपने वनवास की अवधि पूरी कर सकुशल अपने अन्य मित्रों के साथ आ रहे हैं।

भरत : भाई, आपने बड़ा शुभ समाचार दिया। इस समय मेरे बड़े भ्राता कहाँ हैं? यहाँ कब तक आवेंगे? वे तीनों प्राणी सकुशल हैं न!

हनुमान : मैं उन्हें भरद्वाज मुनि के आश्रम प्रयागराज छोड़कर आया हूँ। आज रात वह वहीं रहेंगे। कल प्रातःकाल अयोध्या आवेंगे। वे तीनों सकुशल हैं।

भरत : तो चलें! अयोध्या के मुख्य द्वार पर हम उनकी प्रतीक्षा करें। यह सेवक जाए, महलों में माताओं को समाचार दे दे कि बड़े भाई श्रीराम आ रहे हैं। नगर में घोषणा कर दे, श्रीराम आ रहे हैं। उनके स्वागत की भव्य तैयारियाँ की जायें। अवधपुरी दुल्हन की तरह सजा दी जाय। अयोध्या के राजा अपने नगर लौट रहे हैं। घर-घर में दीये जलाये जायें। नगर में दीवाली मनायी जाय। मिष्टान्न बाँटे जायें।

[दृश्य-परिवर्तन]

दृश्य सोलह

[राम के विमान का अयोध्या की तरफ आना। विमान अयोध्या पहुँचकर धरती पर उतरता है। राम सबसे पहले उतरते हैं। भरत उनके चरणों पर गिर पड़ते हैं]

राम : भरत! उठो भइया! चरणों पर क्यों पड़ते हो। आओ मेरे गले लगो भरत। कितने दुर्बल हो गये हो तुम!

भरत : भइया! भइया! (हर्ष की सुबकियाँ लेते हुए) चौदह साल बाद भइया, आज मेरी साँस चैन से चल रही है। मेरे हृदय की धड़कनें आज सही हुई हैं भइया!

राम : भरत! हर्ष के आँसू मेरी आँखों में भी हैं। अरे शत्रुघ्न! देखो कितने बड़े हो गये हो तुम। मैं पहचान भी नहीं सका। मैं वन में था, भरत नन्दिग्राम में। मैंने सुना कि राज्य-संचालन, सुरक्षा, जन-सेवा का सारा काम तुम बड़ी सफलता से करते रहे।

शत्रुघ्न : यह तो बड़े भइया, आपका स्नेह और आशीर्वाद था। मैंने छोटे

भाई के कर्तव्य के नाते आपके राज्य की सेवा की है।

भरत : भाभी ! भरत का प्रणाम स्वीकार करें।

सीता : भरत ! मेरे अच्छे देवर ! अरे शत्रुघ्न, पाँव ही पकड़े रहोगे कि कुछ मुँह से भी बोलोगे।

लक्ष्मण : भइया ! लक्ष्मण का प्रणाम लें।

भरत : आओ भैया, सौभाग्यशाली लक्ष्मण, तुमको कितना बड़ा भाग्य मिला है। मेरे गले लगो भइया !

लक्ष्मण : शत्रुघ्न ! उठो न। मैं तुमसे बहुत खुश हूँ। मेरे छोटे भाई होने का अच्छा कर्तव्य निभाया तुमने।

राम : भरत ! ये हैं लंकेश विभीषण, वानरराज सुग्रीव, जामवन्त, अंगद मैंद, द्विविद, नील, ऋषभ, सुषेण, नल, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ आदि मेरी सहायता करने वाले मेरे मित्र।

भरत : सभी महानुभाव मेरा प्रणाम लें। हनुमान से मैं सारी कहानी सुन चुका हूँ। आप सबकी कृपा से ही आज यह शुभ दिन आया है।

राम : गुरुदेव ! राम का साष्टांग प्रणाम।

लक्ष्मण : लक्ष्मण का भी प्रणाम गुरुदेव !

सीता : गुरुदेव ! सीता भी प्रणाम करती है।

वशिष्ठ : कितना शुभ दिन है यह ! राम, लगता ही नहीं था कि कभी हम मिल भी पावेंगे। लक्ष्मण, तुम्हारे त्यागमय इतिहास को लोग कभी नहीं भूलेंगे। सीता बेटी, बड़ी सौभाग्यशाली हो तुम। मेरा आशीर्वाद है तुम सबको। तुम्हारी कीर्ति सदा अमर रहे।

राम : माँ ! माँ ! मेरा प्रणाम लो माँ।

लक्ष्मण : यह लक्ष्मण भी प्रणाम करता है माँ !

सीता : अपनी सीता का प्रणाम स्वीकारें माँ !

कौशल्या : बेटे, आ मेरे कलेजे से लग जा मेरे राम ! राम, मेरे राम, (**सिसकने लगती है**) बहू सीता, बेटे लक्ष्मण, तुम लोग न होते साथ तो अपने राम के लिए सोच-सोच कर ही मर गयी होती मैं।

राम : मँझली माँ ! छोटी माँ ! राम-लक्ष्मण-सीता का प्रणाम लें।

कैकेयी : मेरे राम ! मेरी बहू ! लखन बेटे ! इस अपराधिनी को क्षमा कर देना। मन में कोई बात न रखना बेटे राम !

राम : क्या बात करती हो माँ ! आप आज्ञा न देतीं तो इतने राक्षस कैसे मरते ? संसार से बुराई कैसे समाप्त होती ? यह तो संसार

पर आपका उपकार है मँझली माँ।

सुमित्रा : बेटे राम ! बहू ! मेरे अभिमान लखन ! आओ मेरे सीने से लग जाओ। लक्ष्मण, भाई का साथ देकर तूने मेरा सिर कितना ऊँचा किया बेटे, मैं ही जानती हूँ।

उर्मिला : नाथ ! चरण छूती हूँ।

लक्ष्मण : मेरी उर्मिला ! आ समीप आ न। सुभगे ! चौदह साल तक मेरी प्रतीक्षा करने वाली, तुम कितनी महान हो ! तुम्हारी तो शक्ल ही बदल गयी।

राम : लक्ष्मण ! उर्मिला का त्याग सचमुच तुमसे बड़ा त्याग है। मेरे पाँव क्यों छूती हो ! पाँव तो तुम्हारे छूने चाहिए बहू। तुम सच-मुच त्याग और सेवा की मूर्ति हो। तुम्हारा त्याग युग-युग तक पूजा जायेगा आर्ये !

लक्ष्मण : भाभी माण्डवी, प्रणाम ! कितनी दुर्बल हो गयी हैं आप ! अरे बहू, तुम ! सौभाग्यवती रहो।

राम : उठो माण्डवी, भरत ने तुमसे दूर रहकर तुम्हें यातना ही दी। छोटी बहू ! सौभाग्यशालिनी रहो। सुमंत्र, वृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, अशोक, मंत्रपाल, अयोध्या के आठों मंत्री, मेरा प्रणाम स्वीकार करें। नगरवासियो, मित्रो, साथियो, मेरा अभिवादन लें। मुझे खुशी है कि मैं आप सबके बीच लौट आया हूँ।

[अभिवादन ! अभिवादन ! भीड़ के जय के स्वर। हर्षनिनाद]

भरत : भइया ! ये हैं मुझे दी हुई आपकी पवित्र चरण-पादुकाएँ। इन्हें पहनें। आपकी धरोहर यह सारा अवध राज्य मैं आपके चरणों में अर्पित करता हूँ। (**राम मुस्कराकर चरण-पादुका पहनते हैं**)

[दृश्य-परिवर्तन। राजसभा। राम सिंहासनारूढ़ हैं]

राम : गुरुदेव ! मेरा राजतिलक तो हो गया। अवध का यह महान राज्य सुखी और सम्पन्न तथा निरापद रहे इसका उत्तरदायित्व मैंने ले लिया। राज्यसभा के सभी सभासदों से मेरा निवेदन है कि मुझे राजा नहीं सेवक माना जाय। रामराज्य में समानता, समभाव, समान अधिकार, अनीतिहीनता ही राज्यसत्ता के सिद्धान्त होंगे। अवध का विनम्र सेवक होकर मैं सारी जनता को आश्वासन देता हूँ कि नियम और कानून सर्वोपरि होगा। न्याय

पाने का जनता को आश्वासन देता हूँ। नियम और कानून के अन्दर न्याय पाने का अधिकार हर किसी को होगा। न्याय की स्वतंत्र सत्ता होगी। अनीति का दण्ड राजा और सामान्य नागरिक के लिए एक समान होगा। रामराज्य केवल राजा राम का नहीं जन-जन का है। इस राज्य की खुशी और कल्याण के लिए केवल राम नहीं हर आदमी जी-जान से काम करेगा, त्याग करेगा, जन-सेवा करेगा। सभासद हमेशा देखें, मैं स्वयं अनीति करूँ तो मुझे दण्ड दिया जाय। राष्ट्र की एकता, बन्धुत्व की भावना हमारे जीवन का ध्येय होगा। राजा का प्रजा के साथ मित्र का भाव होगा। धर्म हमारे हृदय की विशालता होगी और विचारों की संकीर्णता से हम परहेज करेंगे। कृषि की उन्नति और जनकल्याण के कार्यों को शासन प्राथमिकता देगा। हर एक को स्वास्थ्य व शिक्षा का समान अवसर देना राजा का कर्तव्य होगा।

वशिष्ठ : राम ! हम जानते हैं, तुम आदर्श की तरह अयोध्या को आदर्श राज्य बना सकोगे। प्रजा का तुम पर विश्वास है और भरोसा है।

[दृश्य-परिवर्तन]

दृश्य सत्तरह

[लक्ष्मण का निजी भवन। उर्मिला शयन-कक्ष में पलंग पर बैठी पति के आने की प्रतीक्षा कर रही है।]

लक्ष्मण : उर्मिले ! उर्मिले ! अरे, तुम तो इस तरह चुप बैठी हो ?

उर्मिला : नाथ ! मैं तो जैसे भूल ही गयी थी कि कभी आप मेरे शयन-कक्ष में आते थे। यों ही उदास बैठने की आदत है, सो बैठी हूँ। मेरे नाथ लौट आये, लगता है संसार का सारा सुख मिल गया है आज। आज मुझसे अधिक भाग्यशाली संसार में और कौन है ?

लक्ष्मण : (**पास बैठकर**) तुम रो रही हो उर्मिला ? तुम्हारी आँखों में ये आँसू ?

उर्मिला : नाथ ! आज तो मैं हर्ष से रो रही हूँ। मैं समझ भी नहीं रही थी कि उर्मिला के जीवन में चित्रकूट मिलन के बाद कभी इतनी खुशी आयेगी।

लक्ष्मण : ठीक कहती हो उर्मि ! युद्ध में रावण पुत्र मेघनाद ने मुझे मार डाला था। शायद तुम्हारी कामना ने, तुम्हारी प्रार्थना, तुम्हारी साधना ने ही साथ दिया कि मर कर भी मैं जी उठा था। वरना उर्मिला की साधना के बिना ऐसा कैसे होता कि वरण कर लेने के बाद भी मृत्यु मुझे छोड़ गयी, मैंने सुना है कि तुम साधक की तरह धरती पर सोती थीं, षट्रस भोजन छोड़कर चौदह साल तक सूखी रोटी खाती रही। हर इतवार, मंगल, शुक्र, शनि को पति के मंगल के लिए व्रत लेती रहती थी। किसी ने बताया था कि हर नवरात्र पर दस दिन निर्जल व्रत रखो तो वह भी रखा। तभी न आज मैं तुम्हारे सामने हूँ। तुम्हारी साधना का ही सुफल है यह।

उर्मिला : वह मेरी साधना नहीं थी, मेरा कर्त्तव्य था नाथ ! आपके वन में रहते मैं सुख का जीवन कैसे भोगती ?

लक्ष्मण : तभी न इतनी दुर्बल हो गयी हो तुम उर्मिला ?

उर्मिला : जब आप आये थे तो मुझे पहचाना था ?

लक्ष्मण : तुम्हें खोज अवश्य रहा था, किन्तु दो-चार क्षण तो ऐसा लगा था जैसे तुम वहाँ नहीं हो। मुझे तब आश्चर्य भी हुआ था। फिर माँ के बगल में तुम्हें खड़ी देखा तो मुझे पहचानने में आधा क्षण भी न लगा। मैं तुम्हारे सामने आ गया था किन्तु आश्चर्य तुम्हारी कृषकाय को देखकर हुआ था। तुम तो जैसे हड्डियों की माला बनकर रह गयी हो। मेरी तीनों माताएँ तुम्हारी देहयष्टि का सीता जी व माण्डवी जी से श्रेष्ठ मानती थीं।

उर्मिला : अब जैसी भी हूँ प्राणनाथ ! आपके सामने हूँ मैं। शरीर है यह, सुख अनुभव करेगा तो फिर से हृष्ट-पुष्ट हो जावेगा। आप नहीं थे तो आपकी चिन्ता में सूखता रहा है यह शरीर। अब आपको पा लिया है।

लक्ष्मण : जब कभी अवध राज्य का इतिहास लिखा जावेगा उर्मिले, तुम्हारा महान त्याग भुलाया नहीं जा सकेगा। पतिव्रता नारियाँ बड़े गर्व से तुम्हारा स्मरण करेंगी।

उर्मिला : त्याग मेरा नहीं था नाथ ! अपने पति के त्याग की रक्षा की थी मैंने। वह इतिहासकार यदि मुझे मिलेगा तो उससे मैं कहूँगी कि वह मुझे भूल जाये, केवल मेरे पति का त्याग रेखांकित करे। जानते हैं हनुमान जी ने माताओं को आपके बारे में क्या बताया ?

लक्ष्मण : क्या बताया ?

उर्मिला : जब आपने इन्द्रजीत को मारा तो उसका हाथ कटकर उसकी पत्नी

सुलोचना के पास जाकर गिरा। आश्चर्य से सुलोचना ने पूछा कि तुम्हें तो कोई मार ही नहीं सकता था। तुम मुझे लिखकर बताओ कि वह कौन यती, त्यागी, साधक है जिसने बारह वर्ष तक बिना सोये, बिना बिछौने पर पड़े, बिना अन्न खाये, बिना स्त्री सत्संग किये, कठिन से कठिन त्याग-जीवन जिया था। तो इन्द्र-जीत ने लिखा था—लक्ष्मण है वह, उस सीमा से भी अधिक कठिन तपस्वी, त्यागी, साधक !

लक्ष्मण : माँ ने सच मान लिया क्या ?

उर्मिला : इसमें झूठ क्या था ? माँ क्या नहीं जानतीं ?

लक्ष्मण : अब तुम हमेशा मेरे पास, मेरे साथ रहोगी उर्मिले ! अब मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।

उर्मिला : (**वैसा ही उन्मुक्त प्रणयस्वर**) अब आप जहाँ भी जायेंगे प्राण, मैं आपके साथ रहूँगी। अब मुझे दूर न कीजियेगा नाथ !

दृश्य अठारह

[माण्डवी का शयन-कक्ष। माण्डवी निद्रामग्न है]

भरत : माण्डवी ! इतने अंधकार में सोयी रहने का आशय ?

माण्डवी : नाथ ! आप भी तो चौदह साल बाद ही राजभवन में आये हैं। वह अवध के बाहर का आपका नन्दीग्राम जहाँ मेरे पहुँचने पर आपने प्रतिबन्ध लगा दिया था। जैसी आर्य उर्मिला वैसी ही मैं। मैं तो वन न गये पति के भी दर्शन नहीं कर सकती थी। उर्मिला के लक्ष्मण तो वन में थे, दाक्षिणात्य थे, तो अपने पति से बहुत दूर न होकर भी उनसे दूर बनी रही। मैंने अपने को अँधेरे में पड़ी रहने का आदी बना लिया था। लीजिए दीप जला देती हूँ।

भरत : वह मेरा कर्त्तव्य था माण्डवी। वह मेरा धर्म भी था और प्रण भी। बड़े भ्राता साधु बने वनों में फिर रहे थे तो मुझे राजसुख भोगने का अधिकार था क्या ?

माण्डवी : आर्य, आपके उस महान संकल्प की रक्षा में मैंने जितना मुझसे हो सका साथ दिया लेकिन आपके कष्ट और कठिन जीवन की खबर मुझ तक तो रोज ही आती थी ! सुनकर मन बेचैन हो जाता था। सोचती थी, मैं इतने समीप रहकर भी अपने पति की सेवा तक नहीं कर पा रही हूँ।

भरत : तुम्हारे भरत को, इस आर्यावर्त को, रघुकुल को तुम्हारे त्याग और संकल्प पर गर्व है माण्डवी ! सचमुच जिस कुल में आर्य सीताजी हों, तुम और लक्ष्मण-पत्नी हों वह कुल कितना महान हो जाता है । आओ प्रिये, मेरे समीप आओ । चौदह वर्ष के बाद की हमारी यह मिलन-घड़ी हमारे जीवन की कितनी बड़ी साध को सार्थक कर रही है ।

माण्डवी : अब तो नाथ इन बाँहों से मुझे कभी भी दूर न होने दीजिये । जब भी प्राण निकलें इन्हीं बाँहों में पड़े-पड़े ही निकलें । इन चरणों से मैं कभी दूर न रहूँ ।

भरत : मेरी माण्डवी ! मेरी प्रिय माण्डवी (उसके कंधों पर हाथ रख देते हैं) अब हमारा वियोग कभी न होगा ।

दृश्य उन्नीस

[कनक भवन में राम और सीता]

राम : सीते ! इतने वर्षों बाद आज अपने कनक भवन में ऐसा लग रहा है जैसे स्वर्ग उतर कर धरती पर आ गया है ।

सीता : आर्य ! लंका में रहकर तो मैंने आशा ही छोड़ दी थी कि कभी अपने कनक भवन में वापस आ भी सकूँगी । हर क्षण यही लगता था कि शायद अगले क्षण मैं जीवित नहीं रह सकूँगी ।

राम : तुम्हारा दुःख मैं समझता था सीते ! किन्तु मेरी बेचैनी, मेरे मन की क्षण-क्षण बढ़ती तड़पन का अन्दाजा तुम नहीं लगा सकती थी । एक तरफ तुम्हारा असहनीय विरह और दूसरी तरफ अपने कर्त्तव्यों को पूरा कर सकने की ललक । जिस दिन देवद्रोही राक्षसों के संहार के बाद लंकापति रावण को मैंने मारा, उस समय मुझे जीवन की सबसे बड़ी खुशी हुई थी । वास्तव में वही क्षण था जब मुझे लगा था कि अपने गुरु महर्षि विश्वामित्र की गुरुदक्षिणा दे सका हूँ ।

सीता : मुझे विश्वास था नाथ ! कि दुरात्माओं, दुरभावनाजीवियों का नाश आप करेंगे । इसी आशा पर जिन्दा भी रह सकी थी । आपकी शक्ति पर मुझे भरोसा भी था ।

राम : मैं जानता था कि तुम मेरी प्रतीक्षा में जिन्दा रहोगी, वरना सच कहता हूँ कि यह राम भी जिन्दा न रहता ।

सीता : (हँसकर) हाँ, तभी मैंने उतने लोगों के बीच कह दिया, मैं तुम्हें

ग्रहण नहीं कर सकता, तुम पहले अग्नि-परीक्षा दो।

राम : (हँसकर) मैं जानता था सीते, तुम्हारा चरित्र जल-सा निर्मल और बर्फ-सा धवल है उस परीक्षा ने सबकी नजरों में तुम्हारा सम्मान बढ़ा दिया।

सीता : मेरे आर्य, मेरे नाथ, आपकी कीर्ति धवल रहे, इसीलिए मैं भी परीक्षा देने को तैयार हो गई थी। अब अपने लोगों के बीच आ गयी हूँ। अपने अवध में आ गयी हूँ तो लगता है जैसे सारे दुख भूल गयी हूँ।

राम : सीते ! किन्तु यह राजसत्ता का भार! मुझे अजीब-सा लग रहा है। हमेशा बचपन से ही वन-प्रान्तर के उन्मुक्त वातावरण में रहा हूँ।

सीता : आर्य ! अगर हो सके तो कभी एक बार फिर ऋषियों के आश्रमों उन्मुक्त वनों और निर्झरों के दर्शन का सुख पाना चाहती हूँ। ऋषियों, ऋषि पत्नियों के सान्निध्य का सुख कभी फिर पाना चाहूँगी।

राम : (हँसकर) अभी मन भरा नहीं ?

सीता : आर्य। (हँसती हैं) जीवन और जीवन में प्राप्त वातावरण से कभी मन भरता है ?

राम : सीते ! (हँसते हैं। सीता भी हँसती हैं)

[पर्दा गिरता है]

दृश्य बीस

[कनक भवन में सीता जी रामचन्द्र जी की प्रतीक्षा कर रही हैं। राम का आना]

राम : सीते, देर हो गयी न मुझे। कितनी बार कहा मेरी प्रतीक्षा न किया करो। मैं राजकार्य में इतना व्यस्त हो जाता हूँ कि समय कब बीतता है, पता नहीं चलता।

सीता : आर्य श्रेष्ठ ! आप इतना काम करते हैं, प्रजा के लिए दिन-रात चिन्ता करते हैं। मैं क्या प्रतीक्षा भी नहीं कर सकती आपकी ? इसमें मुझे क्या कष्ट होता है ?

राम : तुमने सुना प्रिये ! राम-राज्य के सारे संसार में गीत गाये जा रहे हैं। गरीबों का शोषण करने के लिए साहूकारों, सेठों को अब

बहुत आसान अवसर नहीं मिलते। राज्य में जो भी मुख्य व्यवसाय व कल-कारखाने हैं उन्हें राजकर्मचारी निश्चित वेतन पाकर चला रहे हैं, मुनाफा जो भी होता है वह जनता की सुख-सुविधाओं के साधनों पर खर्च किया जा रहा है। शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, सिंचाई तथा पीने के पानी के कुएँ, बावड़ी बनाने आदि में यह धन व्यय हो रहा है। फलदार वृक्ष और भवनों तथा ईंधन के लिए वन-उपवन लगाने पर व्यय हो रहा है। कृषकों को पशु, सुधरे बीज, अच्छे हल आदि राज्य से उपहार में दिये जा रहे हैं ताकि खेती से वह अधिक पैदावार ले सकें। सरयू के घाटों पर भी कोई स्वस्थ प्राणी भीख माँगता नहीं मिल सकता। सब अपनी मेहनत का खा रहे हैं। सबको रोटी, कपड़ा और रहने को घर मुहय्या है। न कोई भूखा है न कोई बहुत विलासी जीवन बिता रहा है। अपाहिजों, अपंगों की सेवा की जा रही है।।

सीता : मैंने सुना है नाथ! जो दण्ड पा रहे हैं वह नाराज हैं। हालांकि पहले जो शेर थे अब वह भी बकरी के साथ एक ही घाट पर हैं, पर वे राम-राज्य के विरोधी बन गये हैं। मैं नहीं चाहती कोई आपका विरोधी बने। सब संतुष्ट रहें।

राम : नियम, अनुशासन, सुरक्षा न्याय सभी के लिए समान है सीते! अब अनीति पर जाने वाले नहीं जी सकते। अब समाज में इज्जत केवल मेहनत करने वाले की है। मेहनत का शोषण करने वाले की नहीं। समाज में जाति-पाँति, भेदभाव की ऊँचता, नीचता ने कर्म की प्रधानता के आधार पर भाईचारे की भावना को बल दिया है। राष्ट्रीय और सामाजिक एकता को भी।

सीता : नाथ! महीनों हो गये। आप राज्य व्यवस्था को सुधारने में ही लगे हैं। मैं जानती हूँ आप अपना वह अमूल्य समय मुझसे अधिक अपने देश के जनकल्याण के लिए देते हैं। देना भी चाहिये। मैं भी चाहती हूँ कि देते रहें। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, सुमंत्र आदि आपको पूरा सहयोग दे रहे हैं। किन्तु जीवन-भर आपने सुख नहीं भोगा। थोड़ा समय अपने सुख के लिए भी निकालिये।

राम : अब सब ठीक है। मेरा ध्यान अब निम्न वर्गों पर है। उनका स्तर, उनकी शिक्षा का अनुपात मुझे बढ़ाना है। मैंने उनकी समस्याएँ, उनके दुःख, उनकी कमियों का पता लगाने के लिए आजकल उनकी बस्तियों में ही अधिक चतुर गुप्तचर लगा रखे हैं। महिलाएँ भी निर्विघ्न बाजारों, सड़कों पर निकल सकें, लोग-

निरापद और सुरक्षित रह सकें यह व्यवस्था भी कर दी है।
राहजनी, डकैती, हत्याओं और आत्महत्याओं का तो यह हाल हो गया है कि शायद ही कोई घटना महीनों में घटती हो। जो घटती है उसका भी निष्कर्ष निराकरण दो दिन के अन्दर कराता हूँ। दोषी को न्यायाधिकारी प्रमाण पर आधारित न्याय के अन्तर्गत मृत्यु-दण्ड, अंगभंग-दण्ड देता हूँ।

सीता : एक खुशी की बात बताऊँ नाथ ?

राम : खुशी की बात ? तो क्या खुशी की बात भी मुझसे छिपाओगी जानकी !

सीता : नाथ !

राम : कहो न ?

सीता : लज्जा होती है।

राम : कैसी ?

सीता : नाथ, आप पिता बनने वाले हैं।

राम : (**हँसकर**) हम पिता बनने वाले हैं ! तुम्हारे चेहरे की कान्ति से मुझे भी कुछ ऐसा ही लग रहा था कि अवश्य कोई शुभ समाचार तुम मन में छिपाये हो। यह तो मेरे लिए, रघुवंश के लिए, और अवध राज्य के लिए सबसे सुखद समाचार है।

सीता : मैं संकोच से बता नहीं पा रही थी नाथ !

राम : माँ को पता है सीते ?

सीता : माँ को मैंने बता दिया है। उन्होंने शिव जी की प्रार्थना की थी।

राम : तब इस शुभ सुनाने की खुशी में तुम हमसे जो चाहोगी हम करेंगे, जो माँगोगी हम देंगे।

सीता : आर्यवर ! मैंने एक बार प्रार्थना की थी कि एक बार फिर ऋषि-आश्रमों, नन्दन वनों, जंगलों, निर्झरों, नदियों के दर्शन करना चाहती हूँ, कहते संकोच होता है। आप व्यस्त रहते हैं।

दृश्य इक्कीस

[अयोध्या का एक मुहल्ला। राजदूत दुर्मुख चलते-चलते रुक जाता है। दो मियाँ-बीवी झगड़ रहे हैं।]

धोबी : कुल्टा ! रात-भर कहाँ रही तू ? अरे रात-भर बीवी पति से अलग रहे तो पति बीवी को सती मान ले क्या ? मेरी आँखों में धूल

झोंकती है री बरेठिन ।

धोबिन : हाँ, हाँ, रात-भर मैं अलग रही । अरे मुहल्ले की तमाम औरतें मेरे साथ थीं । रात भर राम-राज्य का मेला देखते रहे । अब तुम लांछन लगा रहे हो ?

धोबी : सरासर झूठ बोलती है । तू राम-राज्य के मेले में कहाँ थी ?

धोबिन : हाँ-हाँ, मैं थी । क्या मेले में जाना कोई पाप है ? कोई गाय-भैंस नहीं हूँ जिसे तुम खूँटे पर बाँध कर रखो । जहाँ मेरी मर्जी होगी मैं जाऊँगी ।

धोबी : अरी चण्डाल ! रातभर मौज मारती रही, अब राम-राज्य की दुहाई देती है । चल हट मेरे घर से । मैं कहता हूँ निकल जा मेरे घर से । अरी धोबन ! मैं थूकता हूँ तुझ पर । तू चरित्रहीन है ।

धोबिन : तू क्या थूके है रे ? तुझ पर मैं ही थूकती हूँ । तू अपने को समझे क्या है । क्या एक रोटी कमाना इस राम-राज्य में मुझे मुश्किल है ? मैं तो करूँगी मेहनत और खाऊँगी भर पेट । तुम मरो अकेले कुढ़-कुढ़ कर ।

धोबी : बड़ी आयी राम-राज्य वाली ! मैंने तो पहले ही कह दिया कि मैं वो राम नहीं हूँ जो तेरह महीने तक पत्नी के लंका में रहने पर भी उसे गले लगा ले । जिसकी पत्नी पराये पुरुष के पास रही हो, उसका पति इतना अंधा है कि बीवी को पवित्र मान ले ।

धोबिन : मैंने पहले भी कहा था सीता जी की इस तरह बात मत करो । लेकिन तुम इस बेहूदगी से बाज नहीं आते । राम हमारे राजा हैं । इसका तो लिहाज करो । उनकी पूज्यता पर तो आँच न लाओ ।

धोबी : लिहाज ! हा हा हा ! (हँसता है) बीवी रहे परदेश पति घूमें बने महेश । ऐसे राम को मैं नहीं मानता राजा । राजा देवता होता है । देवता पराये घर रही पत्नी को देवी नहीं मान लेता । खैर वे बड़े लोग हैं, कौन उन पर अँगुली उठा सकता है । लेकिन मुझे जात-बिरादरी में रहना है, मैं तुझ छिनार को घर में नहीं रख सकता । जा अपना काला मुँह कर । जा यहाँ से ! (**धक्के देकर निकालता है**)

धोबिन : अच्छा, अच्छा, मैं चली जाती हूँ । मुझे ऐसे अपमान की जिन्दगी नहीं जीनी है । तू रह अपनी जात-बिरादरी में (**चली जाती है । दुर्मुख भी चल देता है ।**)

दृश्य बाईस

[श्रीराम अपने महल में सीता जी के कक्ष से बाहर आ रहे हैं। दुर्मुख का आकर प्रणाम करना।]

राम : कहो दुर्मुख ! क्या समाचार लाये हो ?

दुर्मुख : प्रजा हर तरह से आपका मंगल चाह रही है। आपके गुण चारों ओर गाये जा रहे हैं किन्तु··· (**रुक जाता है।**)

राम : हाँ ! सभी गुप्तचर यही समाचार लाते हैं। कोई मुझसे अप्रसन्न भी तो होगा। किन्तु कहकर तुम रुक क्यों गये ? शायद उस किन्तु के बाद कुछ ऐसा है जो तुम कहने में हिचक गये। बताओ मित्र ! वह क्या बात है ?

दुर्मुख : महाराज ! आपको बचपन से देखा-पाला है। आपको जानता हूँ अच्छी तरह। फिर भी आज एक मुहल्ले में आप पर अपने कानों से लांछन सुनकर, अपनी आँखों से सारी घटना देखकर आ रहा हूँ।

राम : क्या लांछन है वह ? क्या घटना थी वह ?

दुर्मुख : दो पति-पत्नियों का झगड़ा हो रहा था। पति पत्नी से रात-भर घर से गायब रहने पर बिगड़ रहा था। पत्नी उसे सफाई दे रही थी। लेकिन जब उसने यह कहा कि मैं राम नहीं हूँ जो तेरह महीने तक पर-पुरुष के यहाँ रही पत्नी को भी अपना सकता है। वह कहता था कि वह तो राजा हैं, बड़े आदमी हैं, उनके लिए यह कोई बात नहीं है पर मुझे तो अपनी जात-बिरादरी में रहना है। मैं रात-भर तुम्हारे घर से गायब रहने के बाद तुम्हें नहीं अपना सकता। धक्के देकर उसने अपनी पत्नी को निकाल दिया और बेचारी पत्नी सफाई देती रही कि वह मुहल्ले की दूसरी स्त्रियों के साथ राम-राज्य का मेला देख रही थी। आखिर उसे घर छोड़कर जाना पड़ा।

राम : ऐसा है दुर्मुख ! यदि जनता में मेरे प्रति ऐसी भी धारणा है तो मेरे लिए यह बहुत बड़ा विचारणीय प्रश्न है। तुम जाओ। मैं इस पर सोच कर कुछ ऐसा निदान निकालता हूँ कि जनता में अपने प्रति विश्वास पैदा कर सकूँ।

दुर्मुख : आप इसे अन्यथा न लीजियेगा! क्योंकि सत्य समाचारों से आपको अवगत कराना ही हमारा धर्म है राजन !

राम : तुमने ठीक किया दुर्मुख ! राजा को जनता की सही स्थिति, सही विचार न मिलने से राजा अँधकार में रह जाता है। अब तुम जा सकते हो।

दृश्य तेईस

[राम का महल]

लक्ष्मण : भइया ! आपने मुझे बुलाया है।

राम : (**भरे गले से**) हाँ लक्ष्मण, बुलाया है।

लक्ष्मण : लेकिन इतनी प्रात: ही क्या आवश्यकता पड़ गयी भइया !

राम : क्या बताऊँ लक्ष्मण। कुछ समझ में नहीं आ रहा है। शब्द न मुँह में आ पा रहे हैं और न मन में पच पा रहे हैं। बहुत बड़े धर्म-संकट में पड़ गया हूँ भइया। बहुत बड़ा प्रश्न आ खड़ा हुआ है मेरे आगे।

लक्ष्मण : रात ही रात में ऐसा क्या हो गया भइया ? कौन सा धर्म-संकट हो सकता है, यह मुझे बताइये भइया। जानूँ तो क्या बात है।

राम : लक्ष्मण ! सीता को मैंने अग्नि-परीक्षा लेने के बाद अपनाया था, तुम साक्षी हो लेकिन सीता के निष्पाप, निर्मल चरित्र पर अवध के लोगों को शंका है। अवध के पवित्र राजसिंहासन पर बैठे व्यक्ति की मर्यादा पर उनके मन में प्रश्नचिह्न बना हुआ है। बताओ मैं क्या करूँ सौमित्र ?

लक्ष्मण : (**गरजकर**) कौन है वह जो अग्नि से भी पवित्र, जल से भी निर्मल और आकाश से भी उच्च चरित्र वाली जनकनन्दिनी पर संदेह करता है। मुझे बताइये भइया ! मैं उस धूर्त की जीभ खींच लूँगा। कौन लोग हैं वह अवध के जिनकी जुबान इतनी लम्बी हो गयी है। सारा अवध एक स्वर से भी ऐसा कहता है तो मैं सारे अवध को भून डालूँगा आज। इतनी नीच बात, इतनी पतित बात जिन लोगों के मुँह से निकली है, मैं उन्हें जीवित नहीं छोड़ूँगा।

राम : लक्ष्मण ! सुनकर मुझे भी बुरा लगा था। सीता को तुमसे भी अधिक मैं जानता हूँ। सीता को कलंकित करना अग्नि को कलंकित करने के समान है ! यह ऐसा ही है जैसे कोई नासमझ अपनी माँ पर लांछन लगा दे किन्तु मैं क्या करूँ, लोगों की जुबान तो नहीं रोक सकता मैं ?

लक्ष्मण : जुबान रोकना ? रोकने की क्या बात है भइया। ऐसी जुबान पर अंगारे रख दिये जावेंगे। ऐसे मुँहों पर कीलें ठोक दी जावेंगी। ऐसे लोगों को जिन्दा ही जमीन में गाड़ दिया जावेगा।

राम : लेकिन अवध के इस पवित्र सिंहासन पर बैठने वाले राजा के लिए, एक ऐसे राजा के लिए जिसने यह घोषणा की है कि एक मामूली आदमी की हैसियत में और राजा राम की हैसियत में कोई अन्तर होगा, यह सब करना कभी भी, किसी तरह भी सम्भव नहीं है।

लक्ष्मण : सम्भव हो या न हो भइया। मैं ऐसे अनर्गल लांछन को सुनने के बजाय आत्महत्या कर लेना श्रेयस्कर समझूँगा! ऐसे राजसिंहासन को मैं ठोकर मारता हूँ जो जनकसुता की प्रतिष्ठा की कीमत पर हमें मिले?

राम : मेरे सामने प्रश्न सिंहासन का नहीं है, मेरे सामने सवाल सीता की प्रतिष्ठा का नहीं है, मेरे सामने प्रश्न न्याय का है। सीता के चरित्र पर यदि जनता के मन में आशंका है तो उस आशंका को निर्मूल करना होगा।

लक्ष्मण : झूठी आशा को निर्मूल करना होगा? ये क्या बात करते हैं भइया आप, किस तरह निर्मूल करना होगा?

राम : रास्ता मैंने सोच लिया है। मन पर पत्थर रखकर अपने साथ, सीता के साथ अन्याय करके भी मैंने तय किया है कि अपनी प्राणों से भी प्यारी जनकदुलारी को मुझे त्याग देना होगा।

लक्ष्मण : क्या कहा भइया! इतना बड़ा अनर्थ! नहीं, नहीं यह नहीं होगा। यह नहीं हो सकता भइया! यह नहीं होगा।

राम : यह जानते हुए भी लक्ष्मण कि मैं अपने प्रति, अबोध-सी सीता के प्रति तथा अपने गर्भस्थ शिशु के प्रति अपराध और अक्षम्य अपराध कर रहा हूँ लेकिन अवध सिंहासन की मर्यादा के लिए मेरा सही निर्णय है कि सीता आजन्म बनवासी रहे, मुझसे अब उसका कोई सम्पर्क नहीं रहेगा।

लक्ष्मण : गर्भस्थ शिशु? भइया! कितना बड़ा अनर्थ हो रहा है यह उस बेचारी के भाग्य में जीवन भर कभी भी सुख नहीं है क्या?

राम : जीवन में ऐसे क्षण भी आते हैं लक्ष्मण! जब अपने लिए भी वज्र से भी कठोर और घातक बन जाना पड़ता है। आज मेरे मन के अन्दर जो हाहाकार मचा हुआ है, अपने ही निर्णय ने मुझे जिस तरह असहाय कर दिया है उस स्थिति में अब तुम्हीं मुझे सँभाल सकते हो।

लक्ष्मण : आपके मन में हाहाकार ? और उस हाहाकार से उपजा आपका यह निर्णय भइया ! कभी आपको अपमान के शब्द नहीं कहे लेकिन आज वह सीमा भी लगता है टूट जायेगी ।

राम : नहीं लक्ष्मण नहीं । ऐसा न कहो कि मेरे लिए फिर जीने का अर्थ ही समाप्त हो जाए । मैं जानता हूँ, तुम ऐसा कुछ नहीं करोगे जो मेरे धू-धू कर धधकते, जलते मन को घी की आहुति दे । सोचो तो भइये ! सीता को त्यागकर राम बच ही कितना जाते हैं (**भरे गले से**) क्या तुम्हें नहीं लगता कि संसार में राम से अधिक दुखी कोई व्यक्ति नहीं होगा । सीता की तरह मेरा जीवन भी तुम्हें हमेशा दुःखों से भरा नहीं लगता । क्या सीता के बिना भी राम के लिए कोई सुख शेष रहता है ।

लक्ष्मण : भइया, समय आदमी को बदल देता है । वह समय के क्षण होते हैं जो आदमी को साहसी बना देते हैं या कायर बना देते हैं । आप वही राम हैं जिन्होंने अहल्या को, जो इन्द्र की कामवासना से दूषित हो चुकी थी, अवध की जनता की परवाह किये बिना अवधराज की ओर से सामाजिक प्रतिष्ठा दी थी । आप वही राम हैं जिन्होंने सीता को अपहरण के समय छू लेने वाले रावण को बन्धु-बान्धवों-पुत्रों सहित नष्ट कर डाला और आज ? आज आप भी वही राम हैं जो किसी के द्वारा बिना देखे-सुने, बिना किसी प्रमाण-साक्ष्य के सीता के चरित्र पर दोष लगा देने पर ही उस पवित्र देवी को त्यागकर वनवास दे रहे हैं । जिसकी लाखों लोगों, वनवासियों के सामने आपने अग्नि-परीक्षा ली थी ।

राम : भावनाओं में इतना न बहो सौमित्र ! कि राम अपने निर्णय से डिगने लगे । सीता ने एक बार फिर वन-दर्शन की माँग की थी । मैं तुम्हें यह काम सौंपता हूँ कि रथ ले जाकर तुम सीता को तमसा नदी के तट पर बने ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आओ । वह गुरुकुल है, वहाँ सीता सुरक्षित जीवन बिता सकेगी । लेकिन सीता को जब तुम आश्रम में छोड़ो तभी मेरा निर्णय बताना अभी नहीं । वरना वह मेरे सामने ही टूट जावेगी । सुनकर उसकी जो हालत होगी उसे मैं देख नहीं सकूँगा ।

लक्ष्मण : क्षमा करें भइया ! यह काम मैं नहीं कर पाऊँगा । आपने मुझे इतना गिरा हुआ समझ लिया कि माँ से भी प्रिय और पूज्य जनकनन्दिनी को मैं पत्थर दिल बनकर वन में छोड़ आऊँगा ?

राम : यह समय बहस करने का नहीं है लक्ष्मण ! तुम जाओ, यह मेरा

आदेश है तुम्हें।

लक्ष्मण : आदेश ? (**कांपते स्वर में**) आपका आदेश है ! यह कैसा निर्णय है ? कैसा आदेश है ?

दृश्य चौबीस

[सीता कनक भवन में बन जाने की तैयारी कर रही है। लक्ष्मण का आना]

सीता : लक्ष्मण ! तुम अच्छे समय पर आ गये । मैंने आर्य से कहा था, एक बार फिर से वन और ऋषि-आश्रमों को देखने का मन कर रहा है। आर्य ने आज्ञा दे दी है । मैं शीघ्र ही लौट आऊँगी लक्ष्मण ! लेकिन कितना अच्छा होता कि तुम भी साथ होते । क्या तुम्हारा मन नहीं करता कि तुम भी एक बार फिर वन और ऋषि-आश्रमों को देखने जाओ ।

लक्ष्मण : (**भरे गले से**) मन तो करता है ।

सीता : तो साथ चलो न । कितना अच्छा लगता है वनों में । ऋषि-आश्रमों का वह पावन वातावरण कहाँ मिलता है । मन कितना शांत हो जाता है वहाँ ।

लक्ष्मण : ठीक है, आपके साथ चलूंगा । आर्यवर की भी आज्ञा है कि मैं आपके साथ जाऊँ । आप तैयार हो जाइये । मैं रथ तैयार कराता हूँ । माताओं से भी मिल आइये ।

दृश्य पच्चीस

[वन के बीच से गुजरता हुआ राजरथ ।]

सीता : लक्ष्मण, वन में कितना सुन्दर लग रहा है। अयोध्या में तो जीवन जैसे थम गया था । यहाँ मन को अद्भुत चिरपरिचित-सा अहसास हो रहा है ।

लक्ष्मण : जी ।

सीता : जब हम लोग उस समय वन गये थे तो मेरा मन कम्पित था । फिर वर्षों वनों में रहकर जितना भी देखा-भोगा वह सब राजमहल में इतना याद आया कि मन हुआ पंछी बन कर, उड़ कर वन में,

वनों के बीच बहती कलकल निनाद करती नदियों के सुनसान तटों पर तुमुल ध्वनि करती झाग उगलती निर्झरों के पास खड़े होकर तथा ऋषिकुलों के वट, पीपल के छाँव में बने यज्ञ स्थलों के अग्निहोत्रों से उठते हवन के महकते धुएँ के सामने खड़े होकर तन-मन सुवासित और सौन्दर्यमय कर लें।

लक्ष्मण : जी।

सीता : तुम इतने अन्यमनस्क से क्यों हो लक्ष्मण ?

लक्ष्मण : अन्यमनस्क ? नहीं तो।

सीता : तब, जी-जी ऐसे कह रहे हो जैसे कह रहे हो कि कुछ भी तो अच्छा नहीं था। क्या सोच रहे हो लक्ष्मण ? तुम्हें वन में रथ पर दौड़ते अच्छा नहीं लग रहा है क्या ? देखो वन की शाम कितनी अच्छी लग रही है। सूरज विशाल वृक्षों के पीछे किस तरह की आँख-मिचौली कर रहा है !

लक्ष्मण : जी हाँ।

[रथ की टापें सुनाई पड़ती रहती हैं]

लक्ष्मण : यह तमसा नदी है। समीप ही ऋषि वाल्मीकि का गुरुकुल है।

सीता : अरे ! रथ रोक क्यों दिया। चलने दो ना। ऋषि आश्रम तक तो जा ही सकते हैं हम।

लक्ष्मण : (**भरे गले से**) रथ तो जा सकता है, आर्ये। लेकिन...।

सीता : लेकिन क्या ?

लक्ष्मण : आश्रम पर जाकर फिर मेरा लौट सकना मुश्किल होगा।

सीता : तुम्हारा लौटना मुश्किल होगा, मैं कुछ समझी नहीं लक्ष्मण !

लक्ष्मण : आर्ये ! कुछ देर यहाँ रुककर मैं अपना मन शान्त और दृढ़ कर लेना चाहता हूँ।

सीता : हम वन भ्रमण के लिए आये हैं, लक्ष्मण ! तुम इस निर्जन वन में रथ रोक क्यों रहे हो और फिर तुम्हारे मन का शान्त होने, दृढ़ होने का क्या आशय है ? तुम्हारा मन इतना स्थिर क्यों है लक्ष्मण ?

[लक्ष्मण चुप रहते हैं]

सीता : तुम चुप हो। मेरी तो समझ में नहीं आ रहा है। मन की यह कैसी अस्थिरता है।

लक्ष्मण : (**फफककर**) अन्यथा न सोचिये आर्ये ! मैं आपको क्या कहूँ ? कैसे कहूँ ? किस मुँह से कहूँ ? शब्द मुँह पर आ नहीं रहे हैं, लेकिन लाने पड़ रहे हैं। भइया ने आपको त्याग दिया है और वन में ही

आजीवन रहने का आदेश दिया है।

सीता : (**आश्चर्य से**) आर्य ने मुझे त्याग दिया है ? जीवन भर वन में रहने का आदेश दिया है ? (**कुछ क्षण सोचती स्तब्ध रहती हैं**) नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। भला आर्य मुझे ऐसा आदेश कैसे दे सकते हैं। किस कारण दे सकते हैं ?

लक्ष्मण : मैंने इस आदेश का, इस निर्णय का भइया से घनघोर विरोध किया लेकिन वे नहीं माने, नहीं माने तो नहीं माने। भइया ने जबदरस्ती यह काम मुझे सौंपा कि मैं आपको वाल्मीकि आश्रम पर छोड़कर आऊँ।

सीता : क्यों, ऐसा क्या किया था मैंने ?

लक्ष्मण : आपने कुछ नहीं किया ? आपके लंका में आर्य से अलग रहने पर अवध में किसी ने या कुछ लोगों ने आपके चरित्र पर संदेह कर दिया, इसी पर भइया ने यह कठिन निर्णय ले लिया।

सीता : क्या अग्नि-परीक्षा ले लेने के बाद भी आर्य को मेरे चरित्र पर संदेह रह गया था ?

[साँस तेज चलने लगती है। चेहरे पर क्रोध की-सी कालिमा है।]

लक्ष्मण : उन्हें संदेह नहीं था। वे बहुत दुखी थे। उनकी आँखों में एक बार मैंने तब आँसू देखे जब रावण आपको ले गया था, दूसरी बार अब देखे थे जब उन्होंने मन पर पत्थर रखकर मुझे अपना ऐसा निर्णय, ऐसा आदेश सुनाया था।

सीता : वह जानते हैं कि मैं बेकसूर हूँ। वह जानते हैं कि अपहरण के समय मेरा शरीर छूने के अलावा रावण ने कभी भी मुझे छुआ नहीं था और फिर आर्य तो हर तरह परीक्षा ले चुके थे तब भी कोई कह दे कि सीता लंका में रही तो कुछ अवश्य घटा होगा तो अवध के राजा को मान लेना चाहिए ? उनका अपना विवेक नहीं था क्या ? सिंहासन ने उन्हें इस तरह खरीद लिया है कि वह अपने जीवन की खुशी भी बेच डालें ?

लक्ष्मण : मैं आपको जानता हूँ आर्ये ! मैं आपके पवित्र और निर्मल चरित्र की अग्नि-परीक्षा का साक्षी हूँ। लेकिन मुझे यही आदेश है आर्ये !

सीता : आदेश है तो वाल्मीकि आश्रम तक क्यों ? मुझे यहीं छोड़ दो। अबला सीता को निर्जन वन में छोड़ दो। खा जायें मुझे जंगली जानवर। वनवास दिया है मेरे पति ने तो आश्रम में क्यों छोड़ते हो ? इतनी दया किस बात की ?

लक्ष्मण : मुझे क्षमा कर दें आर्य, मैं कर भी क्या सकता हूँ।

सीता : मेरे राम से कहना ! मुझे त्यागना ही था तो मुझे स्वयं आदेश देने का साहस क्यों नहीं किया ? क्या मैं उनका आदेश न मानती ? कम से कम अन्तिम बार उनके चरण अपने आँसुओं से धो सकने का संतोष तो पा जाती। सासुओं से, बहिनों से कह तो आती कि मैं हमेशा के लिए जा रही हूँ। जाओ, तुम लौट जाओ लक्ष्मण ! **(रोती हैं।)**

लक्ष्मण : यदि वहीं आपको बता देते तो आपकी उस समय जो हालत होती उसे भइया सह न पाते। उन्हें डर था तब कहीं उन्हें अपने निर्णय से डिग न जाना पड़े। तब जब अयोध्या के लोग जानते, माताएँ जानतीं, आपको अपने प्राण देकर भी कोई वन आने न देता।

सीता : **(सिसकते हुए)** तब आर्य की ऐसी क्या विवशता थी कि उनके लिए मुझे त्यागने के सिवा और कोई विकल्प ही नहीं रह गया था ?

लक्ष्मण : उनका कहना था कि वह लोकोपवाद से राजपद को बचाये रखना चाहते हैं। पूर्वजों के जिस पवित्र सिंहासन की मर्यादा की रक्षा का भार उन्हें सौंपा गया है उसे न वह अपने व्यक्तिगत हित के लिए त्याग सकते हैं न प्रजा के मन में उसके प्रति संदेह की स्थिति आने दे। आपकी पवित्रता का सम्मान करते हुए अपनी ओर से आपको निष्कलंक मानकर स्वीकार करने के बाद भी वह केवल लोकोपवाद के भय से इतना कठोर निर्णय लेने को विवश थे। उन्होंने कहा कि सीता को आश्रम में छोड़ते समय बता देना कि राम हमेशा सीता का है और सीता हमेशा राम की। उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि वह अपने मन से एक क्षण को भी आपको कभी अलग नहीं करेंगे। यदि राजधर्म के कारण कभी उन्हें दूसरी पत्नी का विधान मानने में विवश होना पड़ेगा तो वह उस समय इसी प्रतिज्ञा के लिए राजसिंहासन भी, और आवश्यकता पड़ी तो, संसार भी त्याग देंगे। किन्तु आपका स्थान किसी को नहीं देंगे।

[लक्ष्मण का स्वर रुँध जाता है, आगे बोल नहीं पाते]

सीता : मेरे राम की, मेरे आर्य की मुझ पर बड़ी कृपा है। यह वह अपने मुँह से मुझसे कह देते तो इतना विश्वास उन्हें मुझ पर करना चाहिये था कि उनके पूर्वजों के आदर्शों के लिए, किसी भी

लोकोपवाद से उन्हें बचाने के लिए मैं अपने प्राण भी उनके चरणों समर्पित कर देती। मुझे उन्होंने इतनी दुर्बल क्यों समझ लिया ? मुझे यहीं छोड़ दो लक्ष्मण ! तुम जाओ। **(रोती हैं।)**

लक्ष्मण : (फफककर) मेरा प्रणाम··· **(भरे मन से शब्द पूरे किये बिना रथ लौटा लेते हैं।)**

अंक बारह

दृश्य एक

[नदी-किनारे के वन में सीता बैठी रो रही हैं। ऋषि वाल्मीकि के आश्रम के कुछ शिष्य वहाँ आकर आश्रम की ओर लौट जाते हैं।]

शिष्य : मुनि श्री ! मुनि श्री !

वाल्मीकि : क्या है ? चिल्ला क्यों रहे हो । क्या बात है ?

शिष्य : मुनि श्री ! यहीं पास के वन में एक राजस्वी-सी महिला घुटनों पर सिर धरे रो रही है । अवश्य ही वह कोई देवमाया है मुनिवर ! इतनी सुन्दर, इतनी साध्वी, इतनी पुनीता स्त्री तो हमने कभी देखी ही नहीं ।

वाल्मीकि : रो रही है वह ?

शिष्य : हाँ मुनि श्री ! वह बहुत रो रही है ।

वाल्मीकि : मेरे आश्रम के पास है ? रो रही है ? कौन हो सकती है वह ? चलो मैं देखता हूँ उसे ।

शिष्य : आइये गुरु श्री, हम दिखायें आपको । आइये, इधर से आइये ।

[शिष्यों के साथ वाल्मीकि नदी-तट पर जाते हैं। स्त्री के रोने-सिसकने के स्वर ! स्वर बढ़ते जा रहे हैं ।]

वाल्मीकि : इस वन में जहाँ केवल वेदों की ऋचाएँ मुखरित होती हैं, यह तुम कौन हो ? क्यों रोती हो ? रुदन के यह दिल हिला देने वाले स्वर । अबले रोने के तुम्हारे इन करुण स्वरों से लगता है तुम इस समय दुनिया की सबसे अधिक दुखी नारी हो। बताओ तुम कौन हो ?

तुम्हें क्या दुःख है ?

[सीता केवल रोती-सिसकती रहती हैं ।]

एक शिष्य : ऋषि ! निश्चय ही यह किसी बड़े कुल की अत्यन्त दुखी नारी है ।

दूसरा शिष्य : कहीं यह बेचारी माध्वी भूल से राज-रथ से इस वन में गिर पड़ने से अकेली तो नहीं हो गयी है ?

वाल्मीकि : ऐसा नहीं है शिष्य ! बेटी, यह ऋषि वाल्मीकि का साधना क्षेत्र है । यहीं समीप ही इसी नदी तट पर वाल्मीकि आश्रम है । गुरुकुल । समीप ही वनवासियों की बस्ती भी है । मैं ही ऋषि वाल्मीकि हूँ । निर्भय होकर मुझे पिता मानकर अपना अगाध दुःख बताओ बेटी ?

[सीता सिसकती रहती हैं ।]

इस तरह रोती-सिसकती रहोगी तो इस निर्जन वन में अकेली ही पड़ी रहोगी । हम भी क्या सहायता कर सकेंगे । हमें अपना कष्ट निःसंकोच बताओ बेटी, तभी हम भी तुम्हारी कोई मदद कर सकेंगे ।

सीता : (**सिसकते हुए**) पिता तुल्य ऋषि ! मैं सचमुच इस संसार की सबसे बड़ी अभागिनी हूँ । मेरे जीवन का दूसरा नाम ही दुःख है । सब कुछ होते हुए भी मैं आज कुछ भी नहीं हूँ । किसी की भी नहीं हूँ । मैं सर्वस्व वाली होकर भी सर्वस्वहीन हूँ ऋषि !

वाल्मीकि : लेकिन स्पष्ट क्यों नहीं बताती बेटी कि तुम कौन हो, कहाँ से आयी हो, यहाँ किस तरह रुक गयी हो ? किसके साथ आयी हो तुम ?

सीता : पिताश्री ! लज्जा आती है बताने में । क्या बताऊँ कि मैं कौन हूँ !

वाल्मीकि : मुझे पिता तुल्य मानकर भी तुम अपना परिचय देने में इतना हिचक रही हो ? पिता से इतनी हिचक रही हो ? पिता से इतनी हिचक होती है क्या ?

सीता : पिता से पुत्री को कैसी हिचक ? पिता जन्म देने वाला है । पिता से, माँ से, बेटे-बेटी का क्या कुछ छुपा रहता है । आत्मा भी, शरीर भी, प्रकृति भी, आचार भी, सभी कुछ तो माता-पिता की ही देन होती है । मैंने भी आपको पिता तुल्य कहा है । लेकिन आपकी बातों से मन करता है आपको पिता तुल्य नहीं, पिता ही कहूँ तो उपयुक्त होगा मुझ अभागिन को निर्जन वन में पिता मिल जाय (**सिसकती है**) यही मेरे भाग्य का आधार लगता है मुझे ! आपने

मुझे अपनी पुत्री मानकर मेरे जीवन की घोर निराशा में एक आशा किरण दिखायी है।

वाल्मीकि : इस तरह सिसकती क्यों हो बेटी ? अब मैं यहाँ तुम्हारा पिता हूँ। तुम मेरी बेटी हो। मन का कोई भेद छिपाना नहीं। जो सही है, मुझे बताओ ।

सीता : **(सिसक कर)** पिता आप हैं तब भी, अपने सारे दुःख के बावजूद भी शब्द मुँह पर आते नहीं तो बताऊँ क्या ? बोलिये तो एक लाचार औरत क्या बता सकती है ? एक मरी हुई नारी टूटी-टूटी साँसें लेकर क्या बता सकती है ? एक परम पुरुष की निरीह पत्नी अपने पति के राज्य की सीमा में पड़ने वाले वन में बैठी अपने पति के बारे में क्या बता दे ?

वाल्मीकि : सत्य बता दे। बेटी ! सत्य बता देना पतिव्रत को कम नहीं करता।

सीता : **(हँसकर)** ह ह ह ह पतिव्रत ? कैसा पतिव्रत ? सत्य क्या होता है ? अग्नि-परीक्षा सत्य नहीं होती क्या ? लेकिन शायद नहीं होती।

वाल्मीकि : परीक्षा जो भी है वह सत्य होती है।

सीता : नहीं, नहीं, नहीं। परीक्षा सत्य होती तो अग्नि-परीक्षा सत्य क्यों नहीं थी ? कौन-सी परीक्षा सत्य है। अग्नि-परीक्षा सत्य नहीं है तो कौन-सी परीक्षा सत्य है, गुरुदेव ! सत्य और परीक्षा का कोई सम्बन्ध है ही नहीं ? है तो परीक्षा सत्य क्यों नहीं होती ? **(रोने लगती हैं।)**

वाल्मीकि : बेटी, परीक्षा परीक्षा है। मात्र परीक्षा। सत्य, सत्य है। सत्य को पा सकने के लिए परीक्षा है। परीक्षा सत्य को प्रमाणित करने का माध्यम हो सकेगी, यह कोई शर्त नहीं हो सकती।

सीता : गुरुदेव ! मैं तो अब तक यही समझती रही थी कि सत्य तक पहुँचने के लिए परीक्षा सही माध्यम है। इसीलिए मैंने परीक्षा दी भी। यदि पता होता कि परीक्षा देने के बाद भी सत्य कहीं अलग होगा तो मैं ऐसी परीक्षा क्यों देती। प्राण देना उस परीक्षा से श्रेयस्कर होता मेरे लिए।

वाल्मीकि : बहुत दुखी हो बेटी ! बहुत निराशाहत हो जीवन से !

[सीता फिर सिसकती हैं।]

चलो मेरे शिष्यों के साथ चली चलो। तुम बहुत बदहवास, बेचैन, डरी-डरी-सी हो। बेखटके चलो। मैं अपने आश्रम के पास वनवासियों की बस्ती में स्त्रियों के साथ ही तुम्हें रखूंगा।

सीता : नहीं। मैं कहीं न जाऊँगी, गुरुदेव ! यहीं पर समाधि लगाकर मैं मर जाऊँगी। जिन्होंने मुझे नहीं छोड़ना था जब उन्होंने ही छोड़ दिया तो अब जीने का अर्थ ही क्या रह गया है ? अब किस उम्मीद में जीती रहूँ मैं ?

वाल्मीकि : जीवन इतना सस्ता नहीं है बेटी ? इसे तुम्हें सम्हालना, सँवारना होगा। जीवन तुम्हें तुम्हारे कहने से नहीं मिला है, जिसने इसे दिया है उसे ही इसे रखने या मिटाने का अधिकार है।

सीता : लेकिन गुरुदेव, जीवन जीने का कोई उद्देश्य होता है न ? मैं अब जीवन क्यों जियूं ? इस जीवन में मेरे लिए रह क्या गया है ?

वाल्मीकि : यह सारा मूल्यांकन मैं तभी कर सकूँगा जब तुम अपना परिचय दोगी ?

सीता : आपने जनकपुरी के राजा सीरध्वज जनक का नाम सुना है ?

वाल्मीकि : हाँ राजा जनक को कौन नहीं जानता ?

सीता : मैं उन्हीं की पुत्री सीता हूँ, जिसका विवाह शिव-धनुष तोड़कर अयोध्या के नरेश पुत्र श्री राम के साथ हुआ था।

वाल्मीकि : बस-बस। बेटी, मैं सारी कहानी जानता हूँ। श्री राम के वनवास से लंका जीत कर अवध आने तक की कथा मैं जानता हूँ। तप करते-करते एक समय मुझे लगा था कि इस युग के सबसे बड़े धर्मात्मा राजा अयोध्या के श्री राम कहीं अपनी पत्नी का त्याग न कर दें ? लगता है वह घटना घट गयी है।

सीता : (सिसककर) हाँ, वह घटना घट गयी गुरुदेव !

वाल्मीकि : लेकिन बेटी, यह राम द्वारा तेरा परित्याग नहीं है। वह तुम्हे चाहते हैं। मेरा तप, मेरी तपस्या कहती है कि राम तुम्हें अपने प्राणों से भी अधिक चाहते हैं। लोक-अपयश, लोक-अपवाद का भाव उनके मन में न जागे यही मेरी आशंका थी और वही शायद हुआ भी है।

सीता : (रोते हुए) जी हाँ, वह चाहते रहे होंगे किन्तु मुझे चाहते तो नहीं। चाहते तो मुझे शेष जीवन के लिए त्यागते क्यों ? त्यागते तो वनवास क्यों देते ?

वाल्मीकि : जीवन में बाधाएँ आती हैं, जीवन में अवरोध आते हैं। कष्ट और अभाव जीवन में आते ही हैं। जीवन केवल सुख का नाम नहीं होता।

सीता : बाधाएं आती हैं तो कोई पत्नी को ही त्याग देता है क्या ?

वाल्मीकि : सीता, बेटी ! धैर्य धरो। कुछ सोचकर ही श्री राम ने तुम्हें मेरे आश्रम के समीप छुड़वाया है। चलो आश्रम ही चलो। मेरा आश्रम आज से तुम्हारा पितृगृह है।

सीता : मैं अब जिन्दा रहना ही नहीं चाहती। क्योंकि पति से छोड़ दिये जाने के बाद अब मेरे जीने का अर्थ क्या है? लक्ष्य क्या है? आकर्षण क्या है मेरे जीवन में अब ?

वाल्मीकि : ऐसा क्यों सोचती हो बेटी !

सीता : तो क्या सोचूँ ? किसके लिए जिन्दा रहूँ ? कोई भी जिन्दा क्यों रहता है ? किन्हीं सम्बन्धों के लिए ? मैं किसके लिए जिन्दा रहूँ ? पति के लिए, जिन्होंने मुझे छोड़ दिया ? माता-पिता के लिए, जिन्हें मैं वर्षों पहले छोड़कर पति के घर को अपना घर बनाने आ गयी थी ? देवर-देवरानियों, बहनों के लिए ? वह मुझे छोड़ गये ? घर के लिए वे बेखबर रहेंगे और बेखबर रखे जावेंगे। अगर उन्हें पता लग भी जावेगा तो वे करेंगे भी क्या ? गुरुदेव ! मैं किसके लिए जिन्दा रहूँ ? पत्नी के लिए पति ही होता है जो उसका पिता, भाई, सखा, मित्र, अपना-पराया, सब कुछ होता है। जब उन्होंने ही छोड़ दिया तो अब मैं किसके लिए जीवित रहूँ ?

वाल्मीकि : बेटी, तुम माँ होने वाली हो। तुम्हारे गर्भ में किसी यशस्वी का पुत्र है, उसे जीवन देने के लिए तुम्हें जिन्दा रहना होगा। अपने लिए नहीं, उसके लिए, उस धरोहर के लिए तुम्हें जिन्दा रहना है।

सीता : हाँ, वह है। यह मेरा अपराध मेरे पेट में है। यह मेरी अधोगति मेरे गर्भ में है।

वाल्मीकि : बेटी ! यह अपराध नहीं है। अवधपति से अब तुम्हारा सम्बन्ध है या नहीं है। यह बात छोड़कर भी केवल अपने लिए और अपने पेट में पल रहे शिशु के लिए क्या तुम मेरे आग्रह को ठुकरा दोगी कि मेरे आश्रम नहीं चलोगी ?

सीता : देवता ! गुरुदेव ! यह मैं कैसे कह सकती हूँ कि उनसे मेरा सम्बन्ध नहीं है। सम्बन्ध तो है, वह मेरे आराध्य हैं, मेरे प्राणधन हैं। उनका पौरुष, उनका ओज मेरे गर्भ में उनकी सन्तान के रूप में है। जिसके सहारे मैं आगे का जीवन जीने का एक लालच मन में रखती हूँ। आवेश में, क्रोध में मैं यह सब भूलकर ही तमसा नदी को अपना जीवन समर्पित करने का पागलपन कर रही थी। मैं माँ बनने वाली हूँ यह अपनी निराशा में, निर्दोष होने पर भी पति के परित्याग का दण्ड पाने की व्यथा मैं भूल ही गयी थी। उन्होंने ही मुझे त्यागा है। मैंने तो उन्हें नहीं त्यागा है। लक्ष्मण ने छोड़कर जाते समय उनके मन की कातरता बतायी थी। उनका असीम दुःख मैं समझती हूँ। उनकी विवशता, मर्यादा के

प्रति उनका समर्पण भाव मैं जानती हूँ। पितरों, पूर्वजों की परम्परा के लिए उनका कोई भी बड़ा से बड़ा त्याग मैं समझ सकती हूँ।

वालमीकि : बेटी ! आवेश में, क्रोध में मन का अनियमित हो जाना बड़ा स्वाभाविक है। तुम्हारे साथ अचानक जैसा घटा उसे सह पाना तुम्हारे लिए एकाएक इतना आसान नहीं था। समय का अन्तराल दु:ख के घावों को पाट देता है। समय तुम्हें भी अपनी समझ के दायरे में लौटा ला रहा है। तुम शान्त होकर सोचोगी तो तुम्हें लगेगा कि तुम्हारे पति की विवशता ने ही उन्हें इतना कठोर निर्णय लेने के लिए बाध्य कर दिया। अन्यथा तुम पर उनका इतना अनुराग न होता तो वह तब तुम्हें आसानी से त्याग कर अवध लौट आते। जब रावण तुम्हें ले गया था तब वह अपना और अपने मित्रों का जीवन देकर तुम्हें पाने के लिए महीनों बेचैन क्यों रहते। धीरज से काम लो और मेरे आश्रम में चलकर अन्न-जल, फल-फूल ग्रहण कर मन शांत करो।

सीता : गुरुदेव ! मेरे पति ने मुझे उचित आश्रम में ही छोड़ने को लक्ष्मण से कहा। मैं पहले क्या जानती थी। मेरे प्रभु ने मुझे सही जगह छुड़वाया है। आपने मुझ पतिता को अपनाया है। मैंने आपको पिता बनाया है। आपने मुझे अपनी बेटी माना है। चलिये, मैं चलूँगी। जहाँ आप कहेंगे मैं चलूँगी।

दृश्य दो

[वालमीकि आश्रम]

वालमीकि : रिताश्री ! बेटी सीता का मन स्वस्थ तो है न ? उसे लेकर यहाँ यज्ञ-स्थली पर आ जाओ।

रिताश्री : अभी आई गुरुदेव ! बेचारी रो-रोकर बेहाल है। आँखें सूज गयी हैं उसकी रोते-रोते। वह देखिये, उसने आपका स्वर सुन लिया है। बेचारी स्वयं ही इधर आ रही है।

वालमीकि : दु:ख सनातन है रिताश्री ! दु:ख झेल सकने के लिए आत्मसंघर्ष करना पड़ता है। सीता के लिए दु:ख और वियोग कोई नई स्थिति नहीं है। राम के वियोग का विषम दु:ख वह भोग चुकी है। **(सीता समीप आकर पाँव छूती है)** कल्याण हो भद्रे ! आओ, इधर यज्ञशाला में निर्विकार मन होकर मेरे समीप बैठो।

सीता : **(फफककर)** गुरुदेव ! मेरे किस कल्याण के लिए आशीर्वाद दे रहे हैं आप ? मेरा कौन-सा कल्याण शेष रह गया है अब ? इस पृथ्वी पर दुःख का अगर कोई दूसरा नाम हो सकता है तो वह है सीता।

वाल्मीकि : यह तुम्हारे मन की निराशा है बेटी ! इस निराशा को तुम्हें जीतना है। तुम ठीक कहती हो कि असीमित दुःखों का कोई एक नाम अगर हो सकता है तो सचमुच वह सीता है। किन्तु तुम यह क्यों नहीं सोचती कि असंख्य और असीमित दुःखों को झेल जाने की अदम्य शक्ति के लिए कोई उचित शब्द ढूँढ़ा जाय तो वह भी केवल 'सीता' ही हो सकता है। सीता दुःखों का नाम नहीं है, सीता तो दुःखों को जीत जाने का, सह जाने का नाम है।

सीता : **(रुँधे गले से)** मन बहलाने को इससे अच्छी बात और सोची भी क्या जा सकती है। मुझे तो आश्चर्य इस बात का है कि सबको, राजा को भी और सामान्य नागरिक को भी एक-सा न्याय देने वाले अवध-नरेश ने मेरे प्रति इतना अन्याय क्यों किया ? पति के चरणों को धोकर पूज सकने का भी न्याय नहीं मिला इस सीता को जिसके चरित्र की वह भली भाँति परीक्षा ले चुके थे।

वाल्मीकि : तुम यह क्यों भूलती हो कि राम राजा हैं और जिस तरह का राज्य वह चला रहे हैं उसमें उन्हें अपने ऊपर प्रजा के किसी भी व्यक्ति का अंगुली उठा देना सहन नहीं हो सकता। वह तुम्हारे लिए राजपद छोड़ दें तो जो बात एक ने कही थी वही कल सौ और हजार लोग कहने लगेंगे। उससे तुम्हारा चरित्र बेदाग नहीं होगा बल्कि राम को कमजोर कहकर लोग हँसी करेंगे। राम ने राजपद की मर्यादा को निभाते हुए जिस तरह का व्यक्तिगत त्याग किया है वह अवश्य ही महान है। सामन्तशाही राजा रावण को हराकर राम अवध में जिस तरह की राज्य-व्यवस्था दे रहे हैं, उसके लिए उनका स्त्री-त्याग उनकी व्यक्तिगत क्षति हो सकती है, तुम्हारे लिए दुःखदायी हो सकती है किन्तु जनता को राम का राजा रहना लाभप्रद हो रहा है। लोकहित में उनका राजा बना रहना आवश्यक है।

सीता : चलिये आप कहते हैं तो मान लेती हूँ, किन्तु उनकी पत्नी होने के नाते मेरा भी तो उन पर कोई अधिकार था ? उनका भी तो मेरे प्रति कोई दायित्व था ? मुझे त्याग देने के निर्णय से पहले अयोध्या के राजा ने क्या मेरे अधिकार और अपने दायित्व की बात भी सोची ? आमने-सामने खड़े होकर यह भी नहीं कह सके

कि इन-इन विशेषताओं के कारण मैं तुम्हें त्याग रहा हूँ। उनके कर्तव्य में, मर्यादा-निर्वाह में मैं बाधक न बनती इतना तो विश्वास उन्हें मुझ पर करना ही चाहिये था। मुझे अन्तिम बार चरण छू सकने का भी अवसर न दे सके वह। मुझे रोना तो इसी बात का है कि न मैं उनके चरण छू सकी, न अपनी गलतियों के लिए उनसे क्षमा माँग सकी, न सासुओं के और न देवरों, न बहिनों से विदा ले सकी।

रिताश्री : गुरुदेव ! सीता ठीक कहती है। एक तो सीता दोषी नहीं थी। अगर श्री राम को सीता जी को त्यागना ही था तो ठीक तरह अपने से और घर भर से विदा तो होने देते।

वालमीकि : मैं राजा राम का पक्ष नहीं ले रहा हूँ रिताश्री ! उस स्थिति का अहसास करो जब राम को बेटी सीता को त्यागना था। राम का निर्णय सुनकर तब सीता क्या जिन्दा रह पाती ? एक जरा-सी बात क्या बतंगड़ न बन जाती ?

सीता : तो गुरुदेव ! आशीर्वाद मेरे कल्याण का नहीं मेरे पतिदेव के कल्याण का दीजिये। वे सुखी रहें। वह जनता में मान्य रहें। उनकी जनता सुखी रहे।

वालमीकि : (हँसकर) वह तो सुखी रहेंगे ही, उनकी जनता भी सुखी रहेगी ही। बेटी, मेरे सामने तो प्रश्न तुम्हारे सुखी रहने का है।

सीता : मैं सुखी रहकर करूँगी भी क्या ? किसके लिए सुखी रहूँ मैं ?

वालमीकि : उसके लिए बेटी जिसे तुझे जन्म देना है।

सीता : उसके लिए··· (हँसती है) अभागा ! वह राजभवन छोड़कर वन में जन्म लेगा ! वहाँ जन्मता तो राजा होता, यहाँ जन्मेगा अब, तो साधू-संन्यासी होगा ऐसे जन्म की क्या खुशी !

वालमीकि : तुमने किसी का भाग्य देखा है ? वन में जन्मने वाला भी राजा हो सकता है। तुम भी तो खेत में जन्मी थी। राजा की बेटी बनकर रही, राजा की बहू बनी, राजभवन में रही। महारानी होकर रही।

सीता : राजभवन में रहने के बाद वन में भी तो रही, आज भी वन में ही तो हूँ !

वालमीकि : निराशा मनुष्य की शत्रु है बेटी। तुम्हें प्रसन्न रहना चाहिये। चलो तुम्हें मृगशावकों के पास ले चलूँ। तुम्हें मृगछौने बहुत प्यारे हैं न, चलो थोड़ी देर उनसे खेलो, उन्हें प्यार करो।

[दृश्य वही । ऋषि आश्रम में मंत्रोच्चारण हो रहा है ।
रिताश्री का स्वर थोड़ी दूर से आता है —]

रिताश्री : गुरुदेव ! गुरुदेव ! आश्रमवासियो सुनो ।

[स्वर और समीप आता है]

वाल्मीकि : क्या है रिताश्री ?

रिताश्री : गुरुदेव ! सीता जी को पुत्र··· (**साँस तेज चल रही है**)

वाल्मीकि : क्या कहा ? पुत्र उत्पन्न हुआ है सीता को ?

रिताश्री : जी हाँ ! दो पुत्र ।

वाल्मीकि : धन्य हुआ यह आश्रम । जहाँ जनकनन्दिनी को पुत्ररत्नों की प्राप्ति हुई । आश्रमवासियो, शुभ मन्त्र पढ़ो । चलो मैं उन सुन्दर शिशुओं को देखूँगा ।

रिताश्री : (**हर्ष से**) आइये गुरुदेव ! माँ-बच्चे स्वस्थ हैं । सीता जी उन्हें देख कर रह-रह कर मुस्करा रही हैं ।

[दृश्य बदलता है]

[सीता की पर्णकुटी । नवजात बच्चों के रोने के स्वर]

वाल्मीकि : सीता बेटी ! मैं अन्दर आ रहा हूँ ।

सीता : आइये गुरुदेव ! आइये ।

वाल्मीकि : देखूँ तो कितने सुन्दर बच्चे हैं यह । आहा ! परम सुन्दर । राजा राम के ये पुत्र अजेय हों, रूपवान हों, विलक्षण शक्ति और महान गुणों से विभूषित रहकर ये अपनी माँ के सुख और हर्ष का वैभव निरन्तर बढ़ाते रहें ।

रिताश्री : देखा गुरुदेव ! कैसे टुकुर-टुकुर देख रहे हैं । रोना भी भूल गये हैं जैसे ।

वाल्मीकि : हाँ रिताश्री ! यह क्षण परम सुख दे रहा है । शीघ्र इन्हें स्नान कराओ । मंत्रों से इन्हें शुद्धि प्रदान करो ।

सीता : गुरुदेव ! आज अगर यह मेरे कनक-भवन में जन्म लेते तो इनके पिता जी इन्हें देखकर कितनी खुशी अनुभव करते। इनकी दादियाँ, चाचा-चाचियाँ, दास-दासियाँ, महल, राजसभा के कर्मचारी, नगरवासी कितने प्रसन्न होते । अवध में कितनी हल-चल मच जाती, खुशियों के कितने अम्बार लग जाते !

वाल्मीकि : यहाँ तो जन-जन और वन-वन खुशी छा गयी है बेटी । देखो न चिड़ियाँ किस तरह चहचहा रही हैं । नदी किस तरह हिलोरें ले रही है । वृक्ष-वृक्ष, पत्ता-पत्ता किस तरह विभोर होकर झूम रहे हैं । प्रकृति भी हमें खुश देखकर नाच उठी है । रिताश्री !

रिताश्री : जी गुरुदेव !

वाल्मीकि : यह लो इस पवित्र कुशा को पकड़ो। कुश से इसका लव अलग कर लो। दोनों का इस कुश से और इसके लव से अच्छी तरह मार्जन करो।

रिताश्री : कुश से और लव से ?

वाल्मीकि : हाँ, एक का कुश से और एक का लव से मार्जन करो। इससे इनका मंगल होगा। यह भय-बाधाओं से मुक्त रहेंगे। इसी से इनका नामकरण भी होगा। कुश से जिसका मार्जन हो वह कुश और लव से जिसका मार्जन हो वह लव। इनके नाम इसी पवित्र वनस्पति पर रखे जावें।

सीता : कुश और लव कितने सुन्दर नाम दे दिये गुरुदेव आपने ! ये मेरा कुश और ये मेरा लव।

वाल्मीकि : बेटी सीता ! मैं इन कुश और लव का दादा हूँ बेटी ! अब यह फूल की तरह मेरे आश्रम में अपनी प्रभा बिखेरेंगे और वाल्मीकि के नाम की कीर्ति को उजागर करेंगे। मैं चलकर यज्ञ, हवन और पूजन कराता हूँ। रिताश्री तुम्हारी देखभाल करेगी। अच्छा रिताश्री, मैं स्नान कर यज्ञशाला में जा रहा हूँ। तुम ध्यान रखना सीता बेटी का और दोनों बच्चों का।

दृश्य तीन

[राजमहल ! राम अपने कक्ष में गुमसुम बैठे हैं। सुमंत्र आते हैं।]

सुमंत्र : राजा राम को सुमंत्र प्रणाम करता है।

राम : महामंत्री ! मुझे एकान्त में जाने क्यों इतना सुख मिलता है। जब मैं अकेले में होता हूँ तो लगता है जैसे मैं नहीं हूँ। मुझे जब लगता है कि मैं नहीं हूँ तो मुझे अद्भुत सुख और संतोष अनुभव होता है। मेरा होना मेरे लिए मेरे न होने से अधिक सार्थक नहीं है। सीता के बिना एक क्षण मुझे सौ-सौ सालों की तरह लगता है। मैं सोचता हूँ कि अगर मैं राजपुत्र न होता, राज्याभिषेक मेरी नियति न होती तो क्या सीता मेरे साथ वन जाती ? मैं अवध राज्य का नरेश न होता तो आज सीता मुझसे दूर वन में क्यों होती ?

सुमंत्र : राजा राम आप इतने···

राम : कितना सुखी होता मैं, अगर मैं एक साधारण आदमी होता। मैं राजा दशरथ के घर पैदा न होकर किसी साधारण घर में जन्म लेता तो मैं और मेरी सीता कितने सुखी रहते? बड़ा आदमी होना और बड़ा आदमी होकर भी जनकल्याण और सिद्धांत से जुड़ा होना कितना कष्टप्रद होता है महामंत्री!

सुमंत्र : आप अवध के राजा होकर भी एक गरीब साधु की तरह का जीवन जी रहे हैं। आप चुप रह कर राजसेवा और जनसेवा में कोल्हू में जुते बैल की तरह खट-खटकर भी अपने-आप को क्या दे रहे हैं? आपकी दयनीय और करुण स्थिति को देखकर अवध की जनता परेशान है। महारानी सीता को आपके निर्णय से वन-वास दिये जाने की सूचना जब युवराज लक्ष्मण के द्वारा जन-जन तक पहुँच ही गयी तो जन-जन मन से रो पड़ा था। आपने देखा था कि वह बेचारा धोबी बेदशरन पश्चाताप में कनक भवन के मुख्य द्वार पर धाड़ें मार-मारकर सिर पटक-पटक कर रोया था। वह गिड़गिड़ा कर कहता था कि बरेठन को रुलाकर वह केवल मजाक करना चाह रहा था। उस मजाक का यह परिणाम भी हो सकता है, यह उसकी छोटी बुद्धि ने कभी सोचा भी न था। उस बेचारे को यह क्या पता था कि राज्य व्यवस्था को जन-कल्याणकारी बनाने के लिए इतनी मजबूत और सक्रिय दूत व्यवस्था राजा की ओर से की गयी होगी।

राम : सुमंत्र! राम जो निर्णय लेता है सोच-समझ कर लेता है। धोबी बेदशरन अपनी बात को भूल कह सकता है किन्तु उस आवाज को, तथाकथित भूल को मैंने जन-भावना के रूप में लिया था। एक कह सकता है तो सौ और हजार भी कह सकते थे। मजाक भी मन की भावना से ही उपजता है। मैं वह राजनेता नहीं हूँ जो रोज अपने विचार बदलता है, अपने सिद्धान्त बदलता है और अपने निर्णय बदलता है तथा अपना आचरण बदलता है। अपने निर्णय पर मुझे पश्चाताप है भी नहीं। मुझे पश्चाताप केवल इस बात पर है कि यदि सीता से मुझे इतना प्यार था तो मैं राजकुल में पैदा हुआ ही क्यों? मैं राजा होकर पग-पग पर क्षण-क्षण पर जनता के अधीन हूँ और राजा का जनता से अलग अपना निजी कुछ भी नहीं होता, जीवन भी नहीं।

सुमंत्र : उधर देखिये, लक्ष्मण इसी ओर आ रहे हैं।

राम : जब से मैंने सीता को त्यागा है, लक्ष्मण मुझसे भी ज्यादा दुखी है। मैं भी क्या करूँ ? किस तरह लक्ष्मण को मना सकता हूँ, उसे कैसे समझा सकता हूँ।

[लक्ष्मण का आना]

लक्ष्मण : भइया ! प्रणाम।

राम : सौमित्र ! इस तरह घबराये हुए क्यों हो ? राज्य में सब कुछ ठीक तो है न ! कानून-व्यवस्था मैंने तुम्हें सौंपी है। तुम्हारा काम ठीक चल रहा है न ?

लक्ष्मण : भइया ! सब ठीक चल रहा है। आप आज भी राजभवन में नहीं आये, इससे बड़ी चिन्ता हो रही थी। आप स्वस्थ तो हैं न।

राम : मेरे स्वास्थ्य को क्या होना है लक्ष्मण ! मैं तो स्वस्थ ही हूँ।

लक्ष्मण : आप स्वस्थ हैं किन्तु कितने बुझे-बुझे से रहते हैं आप ! हर समय यह उदासी आपको घेरे रहती है। लगता है जैसे जीवन के प्रति आपमें कोई ललक ही नहीं है।

राम : मुझे केवल इस बात का संतोष है कि मेरा क्षण-क्षण मेरा रोआँ-रोआँ जनता की सेवा, उसके कल्याण के काम आ रहा है। मेरे स्वस्थ रहने का, मेरे जीवित रहने का और अर्थ भी क्या है।

लक्ष्मण : मैं तो समझ ही नहीं पाता भइया कि आप अपना सारा सुख सुखाकर जन-कल्याण की किस वर्षा के सहारे जी रहे हैं।

राम : महामंत्री सुमंत्र, आप जा सकते हैं। राज-काज के जो भी आवश्यक कागजात हों मेरे पास अभी भिजवा दें। राज्य-सीमाओं की सुरक्षा की जो नयी व्यवस्था आप करना चाह रहे हैं, वैसी कर लें। आप मेरे लिए पिता समान ही हैं, आपका अनुभव अधिक प्रखर है, जो उचित समझें कर लिया करें। मुझसे पूछने की आपको क्या आवश्यकता है। आपसे ही तो मैंने राजकाज के सारे गुर सीखे हैं।

सुमंत्र : ठीक है, महाराज, मैं जा रहा हूँ। **(चले जाते हैं)**

राम : लक्ष्मण ! तुम्हारी परेशानी भी मैं जानता हूँ। मेरा दुर्भाग्य है लक्ष्मण कि मैं तो स्वयं दुखी हूँ ही मेरे दुःख ने तुम्हें और भी परेशान कर रखा है। जीवन-भर मैं दुखी रहा हूँ और दुखी ही रहूँगा। लेकिन अब तक तुम्हारा साथ हर क्षण मेरे दुख को कम और कम करता रहा है। आज भी और आने वाले कल को भी

मुझे तुम्हारा वह साथ थी सकने, जीते रह सकने की ताकत के लिए मिलना चाहिये, वरना लक्ष्मण ! मेरा कौन है, मैं किसके लिए हूँ । मैं जिनके लिए जी रहा हूँ उनके लिए जीने दो मुझे। एक सिद्धान्त के लिए ही सही, मुझे जीने की शक्ति दो लक्ष्मण ।

लक्ष्मण : भइया ! मेरी शक्ति के स्रोत आप हैं । मैं क्या हूँ । जो आपने कहा मैंने माना । आगे भी जो कहेंगे, जीवन रहते मानूंगा। आपके सिवा मेरा भी कौन है और ? आपका दुःख मेरा भी दुःख है, आपका सुख मेरा भी सुख है ।

राम : लक्ष्मण ! सीता से दूर रहकर तो जैसे मैं कुछ भी नहीं रह गया हूँ । अब सीता के माँ बनने का समय आ गया है। शायद वह माँ बन भी गयी हो । कितना दुखद है कि मैं उसके बच्चे का पिता होकर भी यह नहीं जान सकता कि मेरा बच्चा कैसा है ? पुत्र है कि पुत्री । कैसा है, कितना सुन्दर है। अवध का राजा होकर भी मेरी यह कितनी बड़ी लाचारी है ।

लक्ष्मण : यह लाचारी केवल लोक-अपवाद के कारण है तो जनता आपको रोकती नहीं है कि आप वाल्मीकि आश्रम तक न जायें । भइया ! आपने अपने को संकुचित कर लिया है । आप नहीं जा सकते तो मुझे आज्ञा दीजिये, मैं ऋषिकुल तक जाकर समाचार ले आऊँ । मैं उन्हें तमसा तट पर छोड़ आया था, क्या पता वह वाल्मीकि आश्रम तक गयीं भी कि नहीं, या जंगली जानवरों की शिकार हो गयीं । भइया, मुझे पता लगाने जाने दीजिये न !

राम : छोड़ो भी लक्ष्मण ! जो भी हुआ वह तो हो ही गया होगा । यह सब तो मेरे साथ, मेरे जीवन मे घटता ही रहेगा। राजकाज तो ठीक चल रहा है न !

लक्ष्मण : भइया ! इस समय रामराज्य पूरी तरह से चरम सफलता पर है ।

राम : जनता जो चाहती है वही हो रहा है न। सब सुखी तो हैं मेरे राज्य में ?

लक्ष्मण : आपने राज्य व्यवस्था को सही ही नहीं किया है बल्कि स्वराज्य की भावना भी जनता में जगायी है। जनता जाग रही है और रामराज्य को स्वराज्य मान रही है। सभी के लिए राष्ट्रहित सबसे ऊपर है ।

राम : यदि आजीवन दुखी रहने की पीड़ा मुझे है तो अपनी जनता को

सुखी रखने का संतोष भी है। मैंने अपने को निजी सुखों से दूर कर जनता को समर्पित कर दिया है। मैं रहूँ या न रहूँ मेरी जनता रहनी चाहिये। उसे ऐसा कभी न लगे कि वह किसी राज्य की प्रजा है, किसी सामन्त के सुख उसके सुख की कीमत पर पनपते हैं। बल्कि उसे लगे कि राज्य की मालिक प्रजा है और जो राजा है उसका जनता के सुख से अलग अपना कोई सुख नहीं होता।

लक्ष्मण : यही नहीं भइया! आपकी बात में इतना और जुड़ा होना चाहिये कि केवल राजा का अपना अलग सुख नहीं होता अपितु राजपरिवार के किसी का भी अपना कोई अलग सुख नहीं होता।

राम : (हँसकर) लक्ष्मण! तुम्हारा भी और परिवार के अन्य सदस्यों का क्रोध और कष्ट भी मैं जानता हूँ। यह मेरी विवशता है कि मैं अपने और अपने परिवार की खुशियों, सुविधाओं और सुखों को अधिक महत्व नहीं देता हूँ जबकि दूसरे राजा अपने सुखों को जनता के सुखों से छीन कर पनपाते हैं। मुझसे यह नहीं हो सकता। मैं अपने को राजा नहीं राज्य का, प्रजा का मात्र अकिंचन-सा, अदना-सा सेवक मानता हूँ। पता नहीं क्यों, पिताजी की तरह ही मैं भी जनता के कल्याण के लिए, उनके सुख-दुःख के लिए अपने को समर्पित पाता हूँ। लोग सुखी दीखते हैं तो मुझे लगता है मैं सुखी हूँ, मेरा परिवार सुखी है, मेरा देश सुखी है। लोग हँसते दिखते हैं तो मुझे लगता है मैं हँस रहा हूँ, यह राष्ट्र यह धरती हँस रही है।

लक्ष्मण : प्रजा में चाहे आपकी जय-जयकार हो रही हो भइया किन्तु पड़ोसी राजा आपकी नीति से नाराज हैं, वे यह नहीं चाह रहे हैं कि अवध की राजनीति इतनी अलग हो जाए कि उनकी प्रजा उनकी विरोधी हो जाए।

राम : रघुवंश की, आर्यावर्त की एक मर्यादा है लक्ष्मण! पिताजी उसी मर्यादा के पक्षधर थे। मनुष्य को मनुष्य का दर्जा देना ही चाहिये। वे सामंतवादी संस्कारों के राजा प्रजा को पशु समझ कर सताते ही नहीं हैं, उनकी खून-पसीने की कमाई पर अपने सुखों के महल खड़े करते हैं। वे भला राम की नीतियों से नाराज क्यों नहीं होंगे?

[सुमंत्र का आना]

राम : महामंत्री सुमंत्र ! मैंने तो कहा था, कागजात भेज देना। आप कागजात के साथ स्वयं भी आ आ गए। आप दिन-भर के थके हैं, अब आराम करते।

सुमंत्र : आप क्या नही थके हैं राजन् ! आह प्रातःकाल से लेकर आधी रात के बाद तक राजकाज करते हैं, तो क्या मैं नही कर सकता !

राम : मैंने तो सुमंत्र चाचा, अपनी आदत बना ली है। मेरे पास और करने को है भी क्या ? किन्तु आप तो वृद्ध हैं। इस आयु मे अधिक परिश्रम आपको नही करना चाहिये।

सुमंत्र : आप न सोएँ तो क्या हमे सोने का अधिकार है। हम भी इसी राज्य का अन्न खाते है।

राम : ठीक है महामंत्री ! अब तो आप जावें। लक्ष्मण ! तुम भी जाओ मैं भी आराम करता हूँ।

दृश्य चार

[वाल्मीकि आश्रम। सीता जी अपनी कुटी का आंगन लीप रही है। गुरु वाल्मीकि लव-कुश को तीर चलाना सिखा रहे है।]

कुश : गुरुदेव ! गुरुदेव ! वह देखिये मेरा तीर बिलकुल सही निशान पर लगा। लव, देखो तुम अपने तीर से उस वृक्ष की सूखी डाल पर बैठे उस पंछी को साधो तो। (**लव साधकर तीर मारता है**) अरे, साध लिया, लो वह तीर के साथ ही उड़ गयी।

वाल्मीकि : बहुत ठीक कुश। तुम और लव तीर चलाने की विद्या में धीरे-धीरे पारंगत होते जा रहे हो। युद्ध-कौशल के लिए तुम्हें केवल संकेत भर चाहिये। आखिर तुम्हारे रक्त मे युद्ध-कौशल की निपुणता जो है।

सीता : (**समीप आकर**) गुरुदेव ! आपकी शिक्षा का दोनों बच्चे भरपूर लाभ उठा रहे है। मेरा लव रात को कह रहा था कि गुरुदेव जितने भी नीति के पाठ पढाते हैं उसे वह अक्षरशः याद हो जाते हैं। कुश कहता है कि नीति, धर्म और युद्ध तीनों शास्त्रो मे उसे बडी रुचि हो गयी है।

वाल्मीकि : बेटी, सीते ! पुत्र तो तुम्हारे ही है न। रक्त और संस्कारों का

असर होता है। तुम उन्हें संसार और मानवता का व्यावहारिक पाठ पढ़ा रही हो और मैं शास्त्रीय। बच्चे मेधावी हैं, बड़ी शीघ्रता से सब कुछ सीखने की लगन है इनमें। और वातावरण का भी असर है। वातावरण, संगति, संस्कार और रक्तबीज बच्चों के मन पर अपना अमिट असर छोड़ते हैं, और फिर यही आयु होती है जब जीवन अपनी दिशा ले लेता है।

सीता : आपके इस महान आश्रम में सचमुच मेरे बच्चे जीवन की सुखद, उज्ज्वल और कीर्तिपूर्ण दिशा की ओर ही बढ़ रहे हैं।

वाल्मीकि : बच्चो ! दोपहर के भोजन का समय होने को है। ब्राम्हमुहूर्त से अब तक तुम पाठ पढ़ते, यज्ञ में साथ देते और युद्ध-शास्त्र के प्रयोगात्मक पाठ करते रहे हो। माँ के साथ जाओ और भोजन पाकर, थोड़ी देर विश्राम कर फिर अग्निहोत्र के पास आ जाना। मैं अपने अन्य शिष्यों के साथ वहीं रहूँगा।

लव-कुश : जी, गुरुदेव ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। (**वाल्मीकि चले जाते हैं।**)

कुश : माँ ! युद्धाभ्यास में हम बहुत थक भी गये हैं और शरीर पसीने और धूल से म्लान भी हो रहा है। आप आज्ञा दें तो नदी-तट पर जाकर पुन: स्नान कर आवें।

सीता : (**हँसते हुए**) देखो, अकेले नदी-स्नान करने न जाओ। कोई सयाना तुम्हारे साथ नहीं है। चलो मैं तुम दोनों भाइयों को चौकी पर नहला दूंगी। तुम्हें नहलाते हुए मुझे कितना सुख मिलता है बेटे !

लव : माँ ! कुश भइया ठीक कहते हैं। हमें नदी में स्नान कर आने दो। (**हँसते हुए**) हम अब स्वयं सयाने हैं, और फिर इतने बड़े बच्चों को माँ के सामने नहाते लाज भी तो आती है।

सीता : (**हँसकर**) चुप कर, शैतान कहीं का। देखा कुश बेटे, यह लव कितना नटखट हो गया है। यह इतना बड़ा हो गया है कि इसे माँ से भी लाज आती है। (**हँसती हैं।**)

कुश : लव ठीक कहता है माँ ! नदी में स्नान का आनन्द ही कुछ और है।

सीता : अच्छा-अच्छा, तुम दोनों मेरी मानोगे तो हो नहीं। सयाने हो गये हो न। लाज आती है। (**हँसती हैं**) जाओ, शीघ्र लौट आना। मैं भोजन के लिए इन्तजार कर रही हूँ।

दोनों : अच्छा माँ, अच्छा। हमारी अच्छी माँ !

दृश्य पाँच

[राम-भवन। राम, लक्ष्मण और भरत बैठे हैं।]

राम : भरत ! राज्य-व्यवस्था ठीक चल रही है न ? मेरे कर्त्तव्यों में कहीं कोई कमी तो नहीं है ?

भरत : भइया ! पिछले कई महीनों से आप राजधानी से बाहर राज्य-भ्रमण पर रहे हैं। आपने स्वयं भी देखा-सुना होगा कि राज्य-व्यवस्था बहुत अच्छी चल रही है। जन-जन सुखी और सुरक्षित है। बाजार भावों पर, कानून व्यवस्था पर राज्य का पूरी तरह नियंत्रण है। आपने कुछ अन्यथा सुना हो तो बतावें। उसे भी सुधारा जावेगा।

राम : यों तो भरत, पूरे राज्य की जनता सुखी है और महसूस कर रही है कि यह सुराज भी है और स्वराज्य भी। लेकिन राजधानी में इस बीच लोग क्या सोच रहे हैं मैं यह जानना चाहता था ?

भरत : देश के विकास और वित्तीय मामले मेरे पास हैं। उसमें राजधानी के लोगों सहित राजम-भर की जनता खुश है। कानून और सुरक्षा व्यवस्था, वह चाहे देश के अन्दर की हो या देश के बाहर की, उसे लक्ष्मण देखते हैं। मेरे विचार से वह पहले से अधिक नियोजित और दृढ़ है। राजस्व, राजपथ, सिंचाई व शिक्षा तथा स्वास्थ्य का काम शत्रुघ्न देखते हैं। उसमें भी जनता संतुष्ट और प्रसन्न ही लगती है। यों लक्ष्मण यहाँ पर हैं तो जनसुरक्षा और राष्ट्र की रक्षा की बात वह बतावेंगे।

लक्ष्मण : भइया ! मेरे जिम्मे जो काम हैं वह सब ठीक और जनता की इच्छा के अनुरूप चल रहे हैं। लेकिन जनता के एक प्रश्न का उत्तर मेरे पास नहीं है। उसका उत्तर मैं दे भी नहीं सकता।

राम : वह कौन-सा प्रश्न है ?

लक्ष्मण : लोग बार-बार प्रश्न करते हैं कि अवध की महारानी जनकदुलारी कहाँ हैं ? वह कब आ रही हैं ? उन्हें निर्दोष होकर भी त्यागा क्यों गया ? अब भला इसका मैं क्या उत्तर दूं भइया ! इसका उत्तर तो आप ही दे सकते हैं।

राम : सीता के बारे में पूछते हैं लोग ! जनता सीता को इतना चाहती है ?

लक्ष्मण : उन्हें जनता ने कब नहीं चाहा ? उनके बारे में लोगों ने पूछना कब बन्द किया था ?

राम : कहा नहीं कि जनता के कहने पर ही राम ने उन्हें त्याग दिया है।

लक्ष्मण : किससे कहूँ ? किसके कहने पर आपने उन्हें त्यागा था ? जिस धोबी की बात आप करते हैं वह आये दिन राजभवन की ड्योढ़ी पर माथा टेककर रोकर कहता है कि अनजाने में मुझसे अपराध हो गया। तब सोचा भी नहीं था कि ऐसा अनर्थ हो जावेगा। सीता माँ को राज-भवन में वापस ला दो। वह तो बेचारा तब से पागल-सा हो गया है।

राम : शीघ्रता से मैंने भी अनर्थकारी निर्णय ले लिया था। राजा का ऐसा निर्णय जो जनता को मान्य नहीं हो, राज्य के लिए पाप बन जाता है। तभी न बाप के रहते बेटे मर रहे हैं। मैं महसूस करता हूँ लक्ष्मण ! इसका प्रायश्चित्त मैं राजसूय यज्ञ करके करना चाहता हूँ।

भरत : लक्ष्मण ! भइया ने बात तो ठीक ही सोची है। राजसूय यज्ञ हो। मैं तो सोचता हूँ तमाम अन्य राजाओं को भी हम अपने अधीन करें और यदि वे युद्ध करें तो हम युद्ध जीतने के लिए जूझते रहें।

लक्ष्मण : (**हँसकर**) जितना बड़े भइया सोचते हैं उतना तो ठीक है। भला जब सारे राजा हमारी प्रभुता को मानते हैं तो राजसूय यज्ञ कर उनसे युद्ध ठानकर उनकी और अपनी शक्ति क्षय करने के बजाय हम उन्हें शांति और मित्रता से रहने का संदेश दें और युद्ध की भयंकरता को त्याग कर एकता और संगठन में विश्वास करने का मौका दें ?

राम : लक्ष्मण ठीक कहता है भरत ! भारत कुल में ही नहीं दक्षिणापथ में भी राजा सुग्रीव से लेकर राजा विभीषण तक सभी तो हमारे हैं। केवल एक वह लवण है, लवणासुर जो हमारे विरुद्ध है।

लक्ष्मण : उस लवणासुर के दाँत खट्टे कर दिये जावेंगे।

राम : यों भी लक्ष्मण, सीता के वियोग के लिए, सीता के साथ अन्याय किये जाने के लिए मुझे किसी यज्ञ से परिमार्जन करने की आवश्यकता तो है ही।

लक्ष्मण : भइया ! सम्पूर्ण आर्यावर्त में अन्याय, अनीति करने वालों को ललकारने के लिए एक अश्व विश्व में छोड़ दिया जाय। इसे अश्वमेध यज्ञ कहा जाता है। आपके या आपके विचारों के प्रति-रोध में आपके अश्व को जो भी रोकेगा उसे आप युद्ध द्वारा, नीति द्वारा अपना पथ, अपना लक्ष्य, अपना विचार स्पष्ट करेंगे। जो

भी आपको चुनौती देगा आपका घोड़ा पकड़कर बाँध लेगा। जब नीति द्वारा या युद्ध द्वारा उसे आप परास्त कर देंगे तभी आपका घोड़ा वह छोड़ देगा।

राम : लक्ष्मण ठीक कहते हैं, भरत ! तब ठीक है, राजसूय यज्ञ नहीं मैं अश्वमेध यज्ञ करूँगा। मेरा सीता के प्रति अन्याय, अनीति चुनौती का विषय है। मैं देखना चाहूँगा कि उसे कोई चुनौती दे और मुझे तर्क में या युद्ध में परास्त करे। अश्वमेध यज्ञ निश्चित होगा। अश्व चुना जाए।

दृश्य छः

[राज्यभवन। राम, गुरु वशिष्ठ, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुमंत्र बैठे हैं]

राम : गुरुदेव ! मैंने अश्वमेध यज्ञ करना चाहा है।

वशिष्ठ : कोई अनीति की है क्या ? कोई गलत न्याय किया है क्या, राम बेटे ?

राम : मुझे लगता है कि सीता को त्याग कर मैंने सही न्याय नहीं किया है। उसी का पश्चाताप करना चाहता हूँ।

वशिष्ठ : करो, अवश्य करो। तमाम उच्च कुलों के ऋषियों-मुनियों को इस यज्ञ में बुलाओ। लेकिन एक बात है, राम !

राम : वह क्या ?

वशिष्ठ : राजा राम ! मैं तुम्हारे कुल का पुरोहित हूँ। यज्ञ की सही विधि बता देना मेरा धर्म है। यज्ञ करते हो तो भार्या का वामांग में होना शास्त्र के अनुसार आवश्यक है।

भरत : भइया, गुरुदेव सही कहते हैं। हम लक्ष्मण को भेजकर जनक-दुलारी को वापस बुला लें।

राम : भरत ! मैंने उसे त्याग दिया है। उसे त्यागते समय यह संकल्प किया था मैंने कि मेरी सीता अब अवध राज्य में आवेगी ही नहीं। सीता ने मेरा वचन निभाया। अब जो मेरा वचन बना और जो सीता का भी वचन बन चुका है उसे मैं स्वयं नहीं तोड़ूँगा।

वशिष्ठ : कोई हर्ज नहीं। सीता नहीं आवेगी तो न आवे। तब राजा राम, मैं तुम्हें दूसरी शादी करने को कहूँगा ताकि तुम यज्ञ अपनी पत्नी के साथ सम्पन्न कर सको।

राम : (हँसकर) गुरुदेव ! मैं दूसरी शादी कर लूँ। जिसके साथ अन्याय करने के प्रायश्चित के लिए मैं यह यज्ञ कर रहा हूँ उस यज्ञ को करने के लिए मैं दूसरा विवाह कर लूँ। (हँसते हैं।)

वशिष्ठ : राजा राम ! तुम हँस क्यो रहे हो ? राजा के लिए अनेक विवाहों का विधान है। तुम्हारे पिता दशरथ ने तीन विवाह किये।

राम : अवश्य किये थे, किन्तु राम ने केवल सीता से विवाह किया था। मैंने सीता को इसलिए नही त्यागा है कि मै उसकी जगह दूसरी पत्नी ले आऊँ। मैं कभी कल्पना भी नही कर सकता कि सीता के अलावा और कोई मेरी पत्नी हो। पत्नी का साथ होना इतना आवश्यक है तो मैं यह यज्ञ नही करूँगा। यह यज्ञ तो मै केवल इसलिए कर रहा हूँ कि सीता के प्रति मैंने जो अन्याय किया है उस पर लोकलाज के लिहाज से सही न्याय होने की मोहर लगवा लूँ।

वशिष्ठ : तुम्हारी भावना मै समझ रहा हूँ राम ! तुम्हारा कुलगुरु होने के नाते मैं भी चाहूँगा कि यह यज्ञ करके तुम अपने को न्याय के लिए सकल्पित कर दो।

राम : गुरुदेव ! यह यज्ञ अब तभी हो सकता है जब इसके लिए कोई और विकल्प निकले।

वशिष्ठ : विकल्प निकालना पडेगा राम ! महारानी सीता की सोने की एक प्रतिमा बनवा ली जाय।

सीता : तो सीता की ऐसी प्रतिमा बने जो सशरीर सीता ही लगे, जो सचमुच राजा राम की पत्नी लगे।

दृश्य सात

[राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न बैठे है।]

लक्ष्मण . भइया ! अश्वमेध यज्ञ किस प्रकार आयोजित किया जाय ? कितने लोच बुलाये जावें ?

राम : लक्ष्मण ! मेरे विचार से यह यज्ञ पुनीत गोमती के तट पर बसे नैमिषारण्य वन मे, जो अपनी नैसर्गिक सुन्दरता और शान्त वातावरण के लिए विख्यात है, किया जाय। वहाँ तमाम श्रेष्ठ ऋषि-मुनी भी वास करते है। वह पवित्र स्थल भी है और बाहर से आने वाले ऋषियो-मुनियो, महर्षियो के लिए परिचित भी है।

नैमिषारण्य में ही विशाल यज्ञ-मण्डप बनाने का आदेश दिया जाये।

भरत : लक्ष्मण ! भइया ठीक कह रहे हैं। नैमिषारण्य इस यज्ञ के लिए उत्तम स्थान है। वहीं व्यवस्था की जाय।

राम : भरत ! नैमिषारण्य में भव्य यज्ञ मण्डप बनाने और मुनियों, ऋषियों महर्षियों के रहने, भोजन आदि की सब व्यवस्था तुम और शत्रुघ्न सम्हालो। सबके लिए पर्याप्त शिविर हों, भोजन के पर्याप्त भण्डार हों। क्यों शत्रुघ्न, सारी व्यवस्था ठीक से हो जावेगी न ?

शत्रुघ्न : भइया ! जो भी आप आज्ञा देंगे उसके अनुसार कार्य होगा। व्यवस्था में किसी तरह की कमी नहीं रहेगी।

राम : लक्ष्मण ! तत्काल वानर शिरोमणि सुग्रीव को सम्वाद भेजो कि वह अंगद सहित अपने विश्वासी वानरों को लेकर इस यज्ञ के लिए सीधे अयोध्या आ जावें। वह हमारे साथ ही नैमिषारण्य जावेंगे। उन्हें मुझे कुछ आवश्यक और भरोसे के काम सौंपने हैं।

लक्ष्मण : मैं अभी सन्देश भिजवाता हूँ भइया !

राम : उनसे कहना वह विशालकाय बन्दरों को साथ लावें, कदाचित कभी कोई आवश्यकता पड़ जाये। यों नल, नील, जामवन्त, गवाक्ष आदि मेरे सभी लंकाजयी मित्रों को अवश्य लावें और हाँ, लक्ष्मण !

लक्ष्मण : जी भइया !

राम : तुम कोई संदेशवाहक लंका भी भेज दो। महारानी मन्दोदरी हमारे यज्ञ में अवश्य पधारें। हालांकि अब वह राजमाता हैं। मित्र विभीषण को कहलायें कि वह इच्छानुसार भेष धरने वाले और इच्छानुमार गति से चलने वाले राक्षसों के साथ सपत्नीक हमारे यहाँ पधारें। यज्ञ की व्यवस्था उन्हें सम्हालनी है और हाँ, निमंत्रण लेकर जो भी दूत जा रहे हैं उन्हें समझा दो कि जिन ऋषियों, महर्षियों, ब्रह्मर्षियों के साथ स्त्रियाँ भी हों वह स्त्रियों सहित ही आवें। उन्हें यज्ञ नगर में ऐसे ही इच्छित स्थान दिये जायेंगे। उन्हें किसी तरह की असुविधा नहीं होनी चाहिये।

लक्ष्मण : जैसी आज्ञा है भइया, वैसा ही होगा।

राम : भरत, शत्रुघ्न, तुम जाओ। जो कहा है उसी के अनुसार व्यवस्था के आदेश दो और जरा भी कठिनाई हो तो मुझे बताओ।

भरत : ठीक है भइया ! हम शत्रुघ्न के साथ जा रहे हैं, सारी व्यवस्था ठीक करायेंगे।

राम : तुम तीनों भाई जाओ, उत्तरदायित्व के साथ यह यज्ञ सम्पन्न करो।

दृश्य आठ

[नैमिषारण्य में यज्ञ-स्थल]

भरत : *भइया! अब तक आये सभी अभ्यागतों को शिविर दे दिये गये हैं। भोजन-पान की सम्यक् व्यवस्था है। यों राजा विभीषण और राजा* सुग्रीव सारी व्यवस्था स्वयं भी कर रहे हैं। कोई पानी माँगता है तो भी विभीषण या सुग्रीव पानी का पात्र लिये स्वयं उनके पास दौड़ जाते हैं।

राम : मित्र हैं। मित्रों का काम करना बुरी बात नहीं है, भरत! अभी बहुत से शिविर, ऋषि-कुटियाँ खाली रहनी चाहिये।

भरत : अभी खाली हैं, भइया। मुख्य द्वार पर अपने दो बाल शिष्यों सहित मुनी वालमीकि आये हैं। मैं उन्हें शीघ्र एक ऋषि-कुटी देने जा रहा हूँ।

राम : उन्हें सादर उनके योग्य बनी अलग कुटी में स्थान दो। उन्हें शिष्यों सहित कोई कष्ट न हो।

भरत : मैं उन्हीं के पास जा रहा हूँ भइया!

[वाल्मीकि अपनी कुटी में]

वालमीकि : लव-कुश! वीणा के सभी सातों तारों की बारीकी तुम्हें सिखा दी मैंने। रामायण के जितने भी परिच्छेद मैंने लिखे हैं तुम दोनों ने कंठस्थ कर लिए हैं न?

लव-कुश : जी, गुरुदेव!

वालमीकि : प्रतिदिन प्रातः से शाम तक रामायण के मेरे बताये छंद तुम लोग वीणा पर सुमधुर स्वर में गाओगे। नगर भर में, गली-गली में, ऋषियों की कुटियों के आगे, राजा राम का राजभवन जहाँ बना है उसके द्वार पर, रात को नदी के ऊँचे टीले पर भी गाते रहोगे।

बालक : जी, गुरुजी!

वालमीकि : और कहीं भोजन नहीं लोगे। कन्दमूल-फल और यहाँ के पेड़ों के पके फल खाओगे। ये स्वास्थ्यप्रद भी हैं। गोमती का शुद्ध जल पियोगे। अन्य कोई तो क्या यदि राजा राम भी पूछें—तुम्हारे माता-पिता कौन हैं, और तुम किसके पुत्र हो, तो एक ही उत्तर

देना, बेटो !

बालक : कि हम मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि के शिष्य हैं।

वाल्मीकि : बस-बस ! यही उत्तर। मैं यज्ञ में रहूँगा। तुम स्नान करके प्रतिदिन मेरी बतायी हुई रामायण के बीस सर्गों का गान वीणा के साथ स्वर मिलाकर हर कहीं करते रहना और प्रतिदिन एक बार राजा राम के राज-भवन के द्वार पर भी गान करते हुए लौटना।

बालक : जी, गुरुदेव ! हम ऐसा ही करेंगे।

दृश्य आठ

[यज्ञ नगर घूमते हुए लव-कुश। दोनों रामायण गाते हुए—]

हम जंगल के दो खिले फूल अवध के राजा की कथा सुनाते हैं।
भरी सभा में हम बेचारी सी महारानी की मन-व्यथा सुनाते हैं।
धरती से जन्मी, जनक ने पाला, राम को पहनायी जयमाला।
बनी अवध की रानी, मानिनी अभिमानिनि, पति मिला भाग्यवाला।
भरी सभा में हम बेचारी जनकदुलारी की व्यथा-कथा सुनाते हैं।
नख में, नयनों में रखकर सीरध्वज ने जिस कन्या को पाला।
अवधराज की प्रथम वधू बनकर जो आयी थी सुन्दर बाला।
पति के साथ समर्पित रहकर जिस युवती ने वन पाया।
राजसुखों को छोड़ जिसने, वन जीवन भरसक अपनाया।
भरी सभा में उस बेचारी जनकसुता की हम कथा सुनाते हैं।
पति जिसके हों दशरथ नन्दन, अवधजनों के अभिमानी हों।
जिनकी पत्नी जनकदुलारी, जन-जन की प्रिय महारानी हों।
पति के साथ कर्त्तव्य निभाने, चौदह वर्ष वह वन जाती है।
जनता के मन में केवल, उसकी सूरत मन भाती है।
भरी सभा में आज यहाँ हम सीता की कथा सुनाते हैं।
हम राम जी की, हम सीता जी की, कथा सुनाते हैं।
हम सीताराम की, हम दो दुखियों की कथा सुनाते हैं।
राम बेचारे की, सीता बेचारी की सुनो हम कथा सुनाते हैं।
हम जन-जन के मन भावन की, दुख-व्यथा सुनाते हैं।
हम दुख-व्यथा सुनाते हैं, हम सही कथा सुनाते हैं।
हम राम-बीती की, हम सीता-बीती की, व्यथा-कथा सुनाते हैं।

राम : कितना मधुर गान है यह ! लक्ष्मण ! लक्ष्मण !!

लक्ष्मण : जी, भइया !

राम : ये गान कौन गा रहे हैं ? ऋचाओं का यह सुमधुर पाठ कौन कर रहे हैं ? उन्हें मेरे समीप लाओ।

लक्ष्मण : द्वार पर वीणा लिए दो मुनि बालक यह गान गा रहे है, भइया !

राम : इस गान मे सचमुच मेरे मन की पीडा है। मेरी ही जीवनी है। मेरा ही संताप है । इन बच्चों को मेरे समीप लाओ न लक्ष्मण !

लक्ष्मण : भइया ! यह गान मुझे भी बहुत अच्छा लगा था । उन दो बच्चों से मैंने अन्दर राज-भवन मे आने और धन-धान्य ले जाने को कहा था। किन्तु वह दोनो हठी बालक मेरी इस प्रार्थना पर हँसने लगे। कहने लगे, यहाँ पेड़ों पर लगे फल और गोमती का जल हमारा पेट भर देते है। धन-धान्य अवध के राजा राम को भेज दो।

राम · अवध के राजा राम को भेज दो ? यह कहते है वह ?

लक्ष्मण : जी, भइया !

राम : तो वह अवध के राजा राम से क्षुब्ध है शायद । मै उन्हें देख नही सकता क्या लक्ष्मण ?

लक्ष्मण : कल प्रयास करूँगा, भइया ! आज तो वे दोनो गाकर द्वार से गाते चले गये है। सारे यज्ञ नगर मे, डगर-डगर वह यही सम्पूर्ण गान है । आपका जीवन और जकसुना की व्यथा ही गाते फिरते है।

राम : उन्होने मन के मर्म को अपनी वीणा से छू दिया है, इसलिए उन्हें देखने-सुनने का मन हो आया था। खैर, छोडो। रात बहुत बीत गयी है। जाओ तुम भी सोओ सौमित्र !

लक्ष्मण : जैसी आज्ञा भइया ! प्रणाम।

[राम अपने भाइयो, मत्रियो के साथ बैठे है। दो बालकों के गान के वही स्वर सनायी देते है।]

राम : लक्ष्मण ! फिर वही गान के स्वर। वही बालक शायद फिर अपना सुमधुर गान गाते हुए इधर आ रहे है। उन्हें प्रेम सहित मेरे पास बुला लाओ।

लक्ष्मण : अभी बुला लाता हूँ भइया !

[लक्ष्मण जाते है और थोडी देर मे उन दोनो मुनि-कुमारो को साथ ले आते है।]

राम : मुनि बालको ! आओ, इधर मेरे समीप आसन लो। कल तुम्हारा गान सुना था। कितना सरल, कितना मधुर और कितनी बेदना से ओतप्रोत गान था तुम्हारा।

कुश : अवधराज ! हमारा गाना आपको पसन्द आया था ?

राम : पसन्द आने की बात करते हो सुकुमार ! जो वाणी कानों मे अमृत टपका देती हो, जिन छंदों को सुनकर मनुष्य सुधबुध खो देता हो, वह पसन्द आने-न आने की क्या बात है। तुम अपना परिचय नही दोगे क्या ?

लव : आपको हमारा क्या परिचय चाहिये। हमे देखकर नही लगता कि हम वनवासी है ?

राम : किस भाग्यशाली पिता के पुत्र है आप दोनो ? किस स्वर्ग-सी पवित्र भूमि मे निवास-स्थान है ? किस सौभाग्यशालिनी माँ ने आपको जन्म दिया है और किस महान पुरुष ने ये छद आपको सिखाये है ? यह जानने के लिए हमारे मन मे हाहाकार पैदा कर दिया है।

कुश . इन छदो के रचयिता, रामायण के रचनाकार मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि के हम शिष्य है। हम उन्ही के आश्रम मे रहते है, हम उन्ही के आश्रमवासी है।

राम . मुनि वाल्मीकि के ?

लव : आप मुनि वाल्मीकि का नाम सुनते ही चौक क्यो गये ?

राम : मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि पूज्य है बेटे ! उनसे, उनके नाम से, उनकी प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि से, उनके यश और उनकी विद्वत्ता से, उनके ज्ञान और स्नेह की महिमा से मै बहुत अच्छी तरह परिचित हूँ।

लक्ष्मण : भइया ! ऋषि वाल्मीकि के आश्रमवासी इन बालको से मै एक बात पूछना चाहता हूँ।

राम : मै जानता हूँ लक्ष्मण ! तुम क्या पूछना चाहते हो। अभी रुको। हर बात का, हर प्रश्न का, हर उत्सुकता का अपना समय होता है। मुनि बालको, क्या यह रचना मुनि ने पूरी कर ली है ?

कुश : जी हाँ। चौबीस हजार छदो की यह रचना मुनिश्रेष्ठ के अनुसार अब तक की पूरी कथा बताती है किन्तु कथा अभी शेष है। यह जानकर हमे आश्चर्य हुआ कि इस कथा के नायक इसी अवध के राजा राम है, वही राम जो इस अश्वमेध यज्ञ के द्वारा अपनी अनीति, अन्याय का पश्चाताप भी कर रहे हैं और अपने को संसार-

जयी भी घोषित करना चाहते हैं।

शत्रुघ्न : (क्रोध से चौंकने के स्वर में) घोषित करना चाहते हैं ? अन्याय, अनीति, पश्चाताप ? यह कौन सी भाषा है जो ये बालक आर्य श्री राम के प्रति प्रयोग कर रहे हैं !

राम : शत्रुघ्न ! यह भाषा तुम नहीं जानते। राम यह भाषा अच्छी तरह समझता है। जब कोई यह भाषा बोलता है तो राम को वह भाषा बहुत ही अच्छी लगती है।

शत्रुघ्न : लेकिन भइया ! मैं इस भाषा, इस भाषा में छिपे अर्थ का प्रयोग यहाँ, ऐसे अवसर पर आवश्यक नहीं समझता। बच्चों को खाने-खेलने की बातें करनी चाहिए—नीति, अनीति, राजनीति की नहीं।

कुश : लव, चलो यहाँ से हम चलें। लगता है यही राजा राम हैं। राजा राम के दरबार में शायद चाटुकारिता की भाषा बोली जाती है। और हम बनवासियों को वह भाषा आती नहीं।

राम : नहीं, नहीं, मुनि कुमार ! आपने शत्रुघ्न की बात को गलत समझा है। उनका आशय यह नहीं है।

कुश : हमें उनका आशय समझकर करना भी क्या है। रमता जोगी, बहता पानी किसी की परवाह नहीं करता, राजन् ! आप राम हैं, आप यह यज्ञ करा रहे हैं और आप ही हमारे गीत के नायक हैं। यह सब गुरुदेव ने हमें आश्रम में ही बता दिया होता, तो हम इस यज्ञ में गुरुदेव के लाख कहने पर भी न आते।

राम : यह मेरा भी अहोभाग्य है और मेरा यज्ञ भी सफल हुआ कि मुनि-राज वाल्मीकि पधारे और उनके साथ तुम जैसे सुकुमार भी पधारे। इतनी सुन्दर रचना का नायक मैं हूँ यह जानने का मुझे तुम्हारे द्वारा ही अवसर भी मिला।

लव : गुरुदेव ने भी चलने को कहा, माँ ने भी कहा कि जाओ, तुम दोनों को वहाँ अच्छा लगेगा। माँ भी अजीब हैं भइया। उनको भी क्या पता नहीं था कि हम कहाँ जा रहे हैं ? उस राम के यज्ञ में जो हमारे गुरुदेव की रचना का नायक है ? जानता होता तो मैं कभी न आता।

कुश : लव ! इतने ओछे ढंग से बात नहीं की जाती। हम गुरुदेव के साथ आये हैं। गुरुदेव को यहाँ सादर बुलाया गया है। हम गुरुदेव के साथ आये हैं, चले जायेंगे। हमें राजा राम से क्या मतलब ?

राम : लगता है, मुनि कुमार राम से रुष्ट हैं। राम का जीवन ही ऐसा रहा है। जीवन-भर राम रुष्टता ही झेलता रहा है। कल रात राम की व्यथा, राम के जीवन की करुण गाथा मैं तुम लोगों के गाने में सुन रहा था। वह कितना सही चित्रण था। मुनि वाल्मीकि ने ठीक ही रचना की है। वास्तव में राम से अधिक दुखी इस संसार में और कौन व्यक्ति हो सकता है ?

लव : (हँसकर) सुन रहे हो भइया ! राम को अपना दुःख सबसे बड़ा दुःख लगता है ?

राम : राम के दुःख पर हँस क्यों दिये बेटे ? तुम्हारे छंदो में भी यह बात थी।

लव : लो भइया कुश ! इन्हें समझाओ। राम का दुःख दुःख है, महान दुःख है और सीता का दुःख ? श्री राम जी, आपसे कुछ पूछ सकता हूँ ?

राम : अवश्य, अवश्य बेटे ! मुझसे जो चाहो पूछ सकते हो।

लव : मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि···

कुश : लव, चुप रहो। गुरुदेव ने क्या कहा है ? हमें किसी से कुछ नहीं पूछना है हमें किसी को कुछ नहीं बताना है। तुम्हारी आदत है कि बीच में बोल अवश्य पड़ते हो।

राम : कितना सुखद संयोग है। हम भी ऐसे ही भाई थे। मैं भी लक्ष्मण को इसी तरह झिड़कता रहता था। तुम क्या कहना चाहते हो बेटे ? निर्भय होकर राम दुखी ही नहीं बुरा भी है। अपनी बुराई मनुष्य को मालूम होनी चाहिए। न मालूम हो तो बता देनी चाहिये। बोलो बेटे, तुम क्या कह रहे थे ?

लव : मैं कह रहा था कि हमारे गीत में आपको अपना दुःख तो दुःख लगा। आपको हमारा गीत शायद इसीलिए अच्छा भी लगा। किन्तु, क्या आपने कभी लक्ष्मण के दुःख के बारे में सोचा ? जीवन भर वह आपके साथ रहा। आप अपनी पत्नी सीता के लिए बेहाल रहे, युद्ध किये। कभी सोचा कि लक्ष्मण की भी पत्नी है ? लक्ष्मण के मन में भी बेकली है ?

राम : लव बेटे ! तुमने बहुत सही सवाल उठाया। नितान्त शिशु होकर भी तुमने कितना बड़ा प्रश्न किया है ?

लव : यही नहीं, राजा राम ! जीवन-भर दुखी रहने वाले राम ! जिनकी कथा के हम गीत गा रहे हैं वह राम ! मुझे आश्चर्य है कि सारी कथा कहने वाले मुनिश्रेष्ठ ने उर्मिला से बड़ा दुःख आपका क्यों

दिखाया ? उर्मिला को, उसके त्याग को, उसकी संकल्पशीलता को, आकांक्षाओं पर उसकी जीत को गुरुदेव ने पीछे क्यों कर दिया राजन् ! आपने कभी सोचा कि उर्मिला का त्याग, उसका दु:ख आपके दु:ख से कही बड़ा था ?

राम : तुम्हारी वाणी मे कितना सत्य है बेटे !

लव : और सुनिये। आपने कभी भरत के दु:ख को भी जाना है ? भरत क्या सुखी जीव थे ? आप तो माँ या पिता के कहने पर वनवास गये थे किन्तु भरत तो स्वेच्छा से राजसुखो से दूर रह कर साधु सरीखे रहे। क्यों रहे ? किसके लिए रहे ? किस कारण रहे ? वह दु:ख, वह कचोट क्या आपके दु:ख से छोटी है ? आपने भरत पत्नी माण्डवी का वह जीवन नही देखा जिसे उसने पति से चौदह साल तक अलग रहकर राजमहल मे भी तपस्विनी-सी रहकर बिताया ?

राम : बस कर बेटे, बस कर। मुझे बहुत लज्जित न कर।

लव : क्यो न करूँ ? अश्वमेध यज्ञ कर रहे हो, अपने अन्यायो पर पश्चा-ताप का पर्दा डालने जा रहे हो और विश्वविजयी होने जा रहे हो लेकिन हमारे गीतो का अन्तिम सर्ग सुना है ?

कुश : लव, रहने दो। गुरुदेव ने क्या कहा था ?

लव : कुश भइया ! बात मुँह मे आ जाती है तो रोक नही पाता हूँ। क्या कुछ गलत कह रहा हूँ ?

राम : कुश बेटे ! लव ने जो भी कहा उसमें गलत क्या है ? लव ने जो कहा उसका शब्द-शब्द सही है। वास्तव मे मेरे दु:ख से भी बडे दु:ख दूसरो ने झेले थे। सच मे, हमे अपने ही दु:ख को दूसरो से बडा नही समझना चाहिये।

लव : झेले थे ? (हँसकर) राजा राम ! झेले थे नही झेल रहे है। आपने अपनी पत्नी सीता का दु:ख देखा ? समझा ? उससे अधिक दुखी भी इस ससार मे कोई है ? राजा राम ! जनता को सुखी करने के सिवा आपने कभी सीता के दु:ख को भी समझा ?

राम : बेटे ! मेरी दुखती नस पर हाथ न धरो।

लव : क्यों न धरूँ ? हमारा अन्तिम पाठ वही है। राम ने सीता की अग्नि-परीक्षा लेने के बाद भी उसे किसी प्रजाजन के कहने पर वनवास दे दिया। वनवास भी तब दिया जब वह माँ बनने वाली

रहा हूँ मैं। सचमुच मुझे विश्वविजयी होने की कोई आकांक्षा नहीं है। मेरा उद्देश्य इस यज्ञ के द्वारा जन-जन की सहानुभूति पाकर अपने निर्णय पर··· ।

कुश : लव ! राजा राम को विश्वविजयी होने की कोई आकांक्षा नहीं है। वह सीता जी के प्रति किये गये अन्याय का पश्चाताप करने के लिए यह यज्ञ कर रहे हैं।

लव : तो आप यज्ञ करके घोड़ा क्यों छोड़ रहे हैं ? विजय का प्रतीक ?

राम : इसलिए कि क्या संसार में कोई है जो मुझसे युद्ध करने के लिए वह घोड़ा रोक ले। है कोई जो मेरी नीति से, मेरे कार्य से सहमत नहीं है ?

लव : (**हँसकर**) वह तो हम रोक लेंगे। हम आपके निर्णय से सहमत नहीं हैं।

राम : तुम रोक लोगे ? बच्चो, तुम मेरे काम में बाधा डालोगे ? युद्ध करोगे मुझसे ?

कुश : लव ! रहने दो। हम पहले गुरुदेव से पूछेंगे। वह कहेंगे तो हम विजयी घोड़ा रोक लेंगे। हमें युद्ध मे कोई डर तो ऐसा है नहीं जैसा राजन् दिखा रहे हैं, अपने शब्दों में व्यक्त आश्चर्य से।

राम : गुरुदेव यहीं कहीं पास ही ठहरे हुए हैं न ?

कुश : जी हाँ, *अगस्त्य आश्रम के पास ही हमारी कुटी है।*

राम : मैं वहीं आकर मुनिश्रेष्ठ के दर्शन करूँगा। तुम लोग वहीं मिलोगे न मुझे ?

कुश : आप वहाँ आवेंगे ?

राम : क्यों नहीं। वह मुनिश्रेष्ठ हैं। उन्होंने अपनी रचना का नायक मुझे बनाया है। इसलिए मैं और भी उनका कृतज्ञ हूँ। मैं अवश्य आऊँगा। मुनिश्री से कह देना।

कुश : अपनी कुटी पर हम आपका अवश्य स्वागत करेंगे। आप आयेंगे तो गुरुदेव हमें आपके बारे में अधिक जानकारी भी दे सकेंगे। शायद इस छंद रचना से आगे भी। किन्तु मेरे यह सब कहने का यह भाव बिल्कुल न लगाइयेगा कि हम आपका विश्वविजय की यात्रा पर निकला अश्व रोक नहीं सकते। अपनी उस क्षमता का परिचय हम तभी देंगे जब गुरुदेव से हम अश्व रोकने की आज्ञा पा लेंगे। हम विदा लेते हैं यहाँ से। चलो लव, अपने आश्रम में लौट चलें।

दृश्य नौ

[राम-लक्ष्मण राम की पर्णशाला में बैठे हैं]

राम : सौमित्र ! तुमने उन बालकों की बातें सुनीं ? कितने सुन्दर बालक हैं। कितने स्पष्टवादी गुलाब-से शब्द और हर शब्द में कांटों-सी चुभन थी। उन्हें क्या पता कि जिस राम को वह वाल्मीकि कथा के आधार पर दुत्कार रहे हैं, वह राम विवश और असहाय होकर ही तमाम लोगों के दुःखों का कारण बना है।

लक्ष्मण : भइया ! उन्होंने कहा था कि वे ऋषि वाल्मीकि के आश्रम के हैं। उनकी उम्र देखकर मैं चौंका था। उनके तीखे वचन भी मुझे तो भइया, बहुत ही मधुर लगे थे।

राम : क्या तुम्हें लगा नहीं सौमित्र, कि वे सीता के ही पुत्र हैं ? इस आयु में इतना ओज, इतना तेज, इतनी विद्वत्ता और इतनी निर्भीकता। क्या वे मेरे पुत्र थे ? क्या सीता ने जुड़वाँ पुत्र जने थे ?

लक्ष्मण : ये प्रश्न आप हवा से पूछ रहे हैं क्या ?

राम : मैं अपने सोच का समर्थन ढूंढ़ रहा हूँ लक्ष्मण। क्योंकि सीता वाल्मीकि के आश्रम में हैं। यह बात मेरे और तुम्हारे सिवाय और कोई नहीं जानता। तब मेरी सीता गर्भवती थी। उसे पुत्र को जन्म देना था। शंका केवल दो बालक होने पर है। किन्तु दोनों ही एकरूप, एकवचन, एकवय हैं तो जुड़वाँ ही हो सकते हैं।

लक्ष्मण : मुझे तो उन्हें देखते ही लगा था कि ये और कोई नहीं आपके ही पुत्र हैं। उनकी आँखें जनक नन्दनी-सी गहरी और आकर्षक हैं। उनके नथुने आपकी तरह प्रशस्त और उनके ओंठ आपकी तरह गम्भीर, उनके ललाट आपकी तरह मुस्कुराते रहने वाले हैं। उनके चेहरे पर आपका सा ही तेज है। उनकी बुद्धि भी वैसी ही प्रखर और स्वच्छंद है। बेलौस बातें करने वाले वे सुकुमार अवश्य ही आपके सुपुत्र हो सकते हैं।

राम : इसके मायने सीता जीवित हैं। वह वाल्मीकि के आश्रम में हजार दुःख भोगते हुए भी अपने बच्चों के साथ सुखी हैं। भगवान का लाख-लाख शुक्र है कि मेरी सीता जिन्दा है। मैं तो निराश था, समझता था कि वह स्वाभिमानी शायद जिन्दा न हो।

लक्ष्मण : हाँ भइया, निश्चय ही ये जनकदुलारी के ही बच्चे हैं।

राम : तुमसे मेरा कुछ भी छिपा नहीं है लक्ष्मण ! इन बच्चों को देखकर मुझे लगा था कि मेरी सीता मेरे सामने खड़ी होकर क्रोधित हो

कह रही है कि मैंने उसके साथ अक्षम्य अपराध किया है। सीता के प्रति मेरी बेचैनी बढ़ती ही जा रही है। अब मुझे लग रहा है कि यह यज्ञ भी निरर्थक है।

लक्ष्मण : भइया ! इन बच्चों को अपनाना हमारा धर्म है अब। यह अच्छा नहीं लगता कि यदि सचमुच यह आपके पुत्र हैं तो वन में रहकर साधु-पुत्र बने फिरते रहें।

राम : एक बात मन में आती है सौमित्र !

लक्ष्मण : वह क्या भइया ?

राम : मैंने केवल भावना के वशीभूत होकर लोक-अपवाद के कारण सीता को त्याग दिया था। आज भी किसी तरह इस लोक-अपवाद को सीता के सद्चरित्र होने का सक्षम साक्ष्य मिल जाय तो मैं सीता को अपना सकता हूँ। सीता फिर मेरी हो सकती है।

लक्ष्मण : लोक-अपवाद ! कोई धीरे-धीरे चलता है तो लोग कहते हैं, मेरी चाल चलता है। कोई तेज रफ्तार चलता है तो लोग कहते हैं कि ओछी चाल चलता है। कोई न धीरे, न तेज चले तो लोग कहते हैं, देखा इस समझौतावादी को—न धीरे चलता है न तेज चलता है। लोकमत तो ऐसा होता है भइया। जनता का अपना कोई मत नहीं हुआ करता है। निहित स्वार्थों के मत होते हैं। वही लोगों को वरगलाते हैं। सीधे-सीधे लोग वरगलाने में आ जाते हैं। वह धोबी भी किसी चातुर, निहित स्वार्थवादी से प्रभावित हो गया होगा।

राम : तुम्हारी बात सही है लक्ष्मण ! किन्तु राजा होने के भी दायित्व हैं। लोक-अपवाद से बचने के लिए मैंने सीता को त्यागा था। अब मैं एक बार फिर सीता से अपने चरित्र को जन-जन के सामने पवित्र सिद्ध कराकर उसे अपनाना चाहूँगा। सीता के बिना मेरा जीना जैसे शून्य के अतल में जीना हो गया है। चल सको तो मेरे साथ ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में चलो। मैं उनसे विनती करूँगा।

लक्ष्मण : विनती ! कैसी विनती भइया ?

राम : वे महर्षि हैं, उनसे तमाम विनतियाँ की जा सकती हैं। चलो उनके पास चलें हम।

[वाल्मीकि की कुटिया में]

वाल्मीकि : अवध नरेश, राजा राम, मुझे आश्चर्य हो रहा है कि यज्ञ के काम

में इतने व्यस्त हुए भी, इतते प्रसिद्ध महर्षियों, आचार्यों के यहाँ रहते हुए भी आप मेरे पास आने का समय निकाल पाये। आइये, आसन लीजिये। मेरे समीप आकर बैठिये।

[दोनों ऋषि के समीप धरती पर बैठ जाते हैं।]

राम : प्रभु, मेरी सीता आपके आश्रम में है। वह सकुशल तो है न?

वाल्मीकि : हाँ श्री राम, आपकी वह अभागिन सीता सकुशल है।

राम : लक्ष्मण ने लौटकर सीता की जो हालत बताई थी और सीता की मन:स्थिति की जो कल्पना मैंने की थी उससे तो मुझे आशा नहीं थी कि सीता जिन्दा है। उस हठीली की आदत मैं जानता हूँ। लक्ष्मण ने उसके रथ से उतरने का जो हाल सुनाया था उससे तो मुझे लगा था कि वह अभिमानिनी जिन्दा भी रही होगी कि नहीं।

वाल्मीकि : रामायण का गान करने वाले, श्री राम! आपके सच्चे चरित्र का गान करने वाले ये दोनों बालक उसके प्राणों से भी प्यारे पुत्र हैं।

राम : मेरे पुत्र? इन बच्चों को देखकर ही मुझे लगा था कि ये मेरे ही पुत्र हैं।

लक्ष्मण : मुनिश्रेष्ठ! इन्हें देखकर भइया और मैं समझ गये थे कि ये हमारे रक्तजन्मा हैं, हमारे वंशज हैं। इनकी बुद्धि की प्रखरता पर आपकी विद्वत्ता का सम्पूर्ण प्रभाव है।

वाल्मीकि : लव-कुश! इधर आओ बेटे! इन्हें प्रणाम करो।

कुश : मुनि! इन्हें हमने कल-परसों भी प्रणाम किया था, आज भी करते हैं। अवध-नरेश हैं ये!

वाल्मीकि : न केवल अवध नरेश। मैंने तुमसे कहा था न कि अभी केवल अश्वमेध यज्ञ तक की राम-कथा गाओ, आगे की बाद में रचूँगा।

कुश : हाँ, गुरुदेव, आपने कहा तो था। क्या आगे की रचना भी आपने लिख ली है गुरुदेव?

वाल्मीकि : लिख ली है, और अभी लिखूंगा भी। बताना यह है कि ये राजा श्रीराम तुम्हारे पिता हैं।

कुश : पिता हैं?

लव : ये ही हमारे पिता हैं? वही राम जिनकी कथा हम सुनाते रहे हैं?

वाल्मीकि : हाँ, वही राम जिनकी कथा मैंने तुमको कंठस्थ कराई है।

लव : कल राम-कथा सुनाने के बाद मैंने इनसे बहुत कुछ भला-बुरा कह दिया था, उसी कथा के आधार पर। मुझे खेद है गुरुदेव! क्षमा

माँगता हूँ।

राम : मैंने तुम्हारे बुरे को भी कला ही समझकर ग्रहण किया था, बेटे!

कुश : अपने पिता को पाकर हम धन्य हुए, हमारा प्रणाम लें पिताजी!

राम : (दोनों को गले लगाकर) मेरे बच्चो! मेरा शत्-शत् आशीर्वाद है तुम दोनों को। बेटे, लव! मैं कितना भाग्यहीन हूँ!

लव : आप रोते हैं पिताजी! आपकी आँखों में आँसू?

राम : नहीं, मैं रोता नहीं हूँ बेटे! यह तो मेरे हर्ष के आँसू हैं। लक्ष्मण! इन बच्चों को ले जाकर सारी यज्ञस्थली घुमा दो। माताओं से, भाइयों से, इनकी चाचियों से इनको मिला दो। सब इन्हें पाकर कितने प्रसन्न होंगे।

लक्ष्मण : जी, भइया! नैमिषारण्य का सारा यज्ञ नगर, हमारा नया राजमहल, सभी मंदिर आदि, गंगा का स्थल, मैं इन्हें दिखाने ले जाता हूँ। घर में सबसे इनको मिलाता हूँ। मेरे साथ चलो बेटो!

वाल्मीकि : जाओ कुश, जाओ लव, यह तुम्हारे चाचा लक्ष्मण तुम्हें पाकर अत्यंत प्रसन्न हैं। इनके साथ रथ पर जाकर जहाँ ये ले जायें हो आओ।

लव-कुश : अच्छा, गुरुदेव!

वाल्मीकि : अवध के कीर्तिमान राजा श्री राम! मैंने कहा न कि आपकी महारानी सीता इस बात से अत्यधिक दुखी हैं कि आपने तो राजा होने के नाते अपना राज्यादर्श निभाने को सीता को दण्ड दे दिया किन्तु सीता तो इस दण्ड के कारण जनता की नजरों में और भी गिर गई। आपके दण्ड ने तो सीता को सफाई का अवसर भी नहीं दिया। यह कैसा एकतरफा निर्णय दिया था आपने?

राम : मुनिश्री! एक बार अगर हो सके तो मैं सीता को इस दण्ड के प्रतिकार में सफाई का फिर अवसर देना चाहता हूँ। मेरी जनता, ऋषियों, मुनियों के सामने केवल एक बार सीता, फिर से अपने चरित्र को बेदाग सिद्ध कर दे तो मैं अवध की जनता को भी बता दूँ कि वह कलंक व्यर्थ है जो उन्होंने सीता पर लगाया है, या सीता के पति पर थोपा है। जिनके भी मन में शंका रही होगी वे स्वयं अनुभव करेंगे, कि सीता के चरित्र के बारे में ऐसा सोचना भी पाप था। सीता को अपनी सफाई देने का उचित समय अब आ गया है। क्योंकि जनता के मन में पश्चाताप है और सीता के

प्रति सहानुभूति भी है। अब जन-जन चाहता है कि सीता जहाँ कहीं हो, प्रजा को क्षमा करके अवध के राजमहल में पूर्ण सम्मान के साथ लौटा लाई जाये।

वाल्मीकि : राजा राम! अवध की जनता तुम पर कलंक लगाती है तो लगा ले। किन्तु सीता पर वह कलंक लगा सकती। किसी के भी मन में शंका थी तो गलत थी। सीता निष्कलंक है। सीता बेटी के निष्कलंक चरित्र के लिए मैं अपने सम्पूर्ण ऋषित्व को दाँव पर लगा सकता हूँ। मेरी साधना, मेरा तप, मेरे व्रत, सब व्यर्थ जायँ यदि सीता का चरित्र जरा-सा भी कलंकित हो। मैंने नदी-तट पर पड़ी सीता को अपने आश्रम में तभी आश्रय दिया जब जान लिया कि उसका चरित्र परम पवित्र है।

राम : किसी के भी मन में शंका की बात हो तो कारण भी ऐसे सिर-फिरे बन जाया करते हैं कि लोग जरा-सी बात को, चाहे वह निराधार ही हो, जबरदस्ती बतंगड़ बना देते हैं और बिना कारण, बिना आधार की बात भी लोगों में फैलकर सच समझी जाने लगती है। जनता के सामने, गुरुओं, साधुओं, ऋषियों के सामने क्या एक बार अपने चरित्र को उजागर करने और मेरे कलंक को धो देने के लिए सीता आपके कहने पर एक और प्रमाण नहीं दे सकती। मैं उसे फिर से अवध की जनता के सामने गले से लगाकर अपना लूं। अपने प्राणों में प्रतिष्ठित कर लूंगा।

वाल्मीकि : ठीक है, तो कल सबको लेकर मेरे आश्रम चलो। मैं उससे प्रमाण दिला दूंगा।

राम : क्या सीता स्वयं यहाँ नहीं आ सकेगी? यहीं इस यज्ञस्थल पर यह उचित होगा मुनिवर!

वाल्मीकि : सीता जो राजसुख छोड़कर वन में रह रही है, राम से त्यागी जाकर भी सुखी है, वह यहाँ क्यों आवेगी! उसे अब प्रमाण देने की स्वयं आवश्यकता भी क्या रह गई है। वह बेचारी वनवासी अब अपनी हठ के कारण इन नगरवासियों के बीच स्वयं नहीं आयेगी। तुम तो जानते ही हो, वह कितनी दृढ़ निश्चय वाली है।

राम : तो मैं अवध जनों, ऋषियों, मुनियों, महर्षियों को मनाकर आपके आश्रम में ले चलूंगा। सबसे प्रार्थना करूँगा कि वहीं चलें।

वाल्मीकि : तो मैं शायद सीता को मना लूंगा कि वह अपने सद्चरित्र होने का एक और प्रमाण दे। आश्चर्य है कि सीता से बार-बार यह प्रमाण

क्यों माँगे जाते हैं ? आखिर सीता भी तो पूछेगी।

राम : उसका पूछना सही है। और हम सत्य को जानते हुए भी मजबूर हैं।

वाल्मीकि : ठीक है, चलो, देखा जायेगा।

दृश्य दस

[नैमिषारण्य का राजभवन। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुमंत्र आदि बैठे हैं।]

राम : भरत ! हमारे चलने की तैयारी हो गई ?

भरत : तैयारी हो गयी है भइया ! अवध की आतुर जनता, माताएँ, आपकी बहुएँ, गुरु वशिष्ठ तथा यज्ञ में पधारे तमाम ऋषि-मुनि भी मानिनी जनकसुता के पास चलना चाहते हैं। सभी उन्हें मनाकर अवध वापस लाने को आतुर हैं। बड़े, बूढ़े, बच्चे सब चलना चाहते हैं।

राम : अवश्य चलें। तुम सबके चलने की व्यवस्था करो भरत ! एक-एक क्षण अब ऐसा लगता है जैसे युग-युग से बड़ा लग रहा हो। मैं नहीं जानता था सुमंत्र, यह अश्वमेध यज्ञ इतना फलदायी होगा। इस यज्ञ का सुफल यह होगा कि मैं अपनी सीता को पुत्रों सहित लौटा लाऊँगा।

लक्ष्मण : भइया ! आर्ये को वन में छोड आने का दुष्कर और निकृष्ट कार्य मुझे ही करना पड़ा था। मेरा सौभाग्य होगा कि उनके चरण पकड़कर मैं पश्चाताप कर सकूं। बार-बार क्षमा माँग सकूं।

राम : वह पश्चाताप का ही महापर्व होगा लक्ष्मण ! वह धोबी भी बार-बार यही कहता है कि मुझे भी चलने दीजिये। मैं उस पवित्र माँ के पाँवों पर सिर धरकर अपने जघन्य अपराध की रो-रोकर क्षमा माँगूंगा।

भरत : भइया ! राजरथ तैयार है। चलने का समय हो रहा है।

राम : भरत, तुम यहाँ सभी को विदा देकर पुरवासियों, माताओं, बहुओं, गुरुजनों सहित अयोध्या चलो। उनसे कहो कि उन सबके मेरे साथ वन चलने की आवश्यकता नहीं है। मैं जा रहा हूँ तो सीता को पुत्रों सहित अयोध्या लेकर आऊँगा। अयोध्या में हम लोगों के

लौटने की प्रतीक्षा करो। शत्रुघ्न भी तुम्हें सहायता देने को साथ रहेंगे। लक्ष्मण मेरे साथ चलना चाहें तो चल सकते हैं और केवल वही अवधवासी जो चलने के लिए बहुत आतुर हों, हमारे साथ चलें।

भरत : मुझे भी इच्छा थी भइया कि मैं चलकर······

राम : भरत ! अवध की सुरक्षा का दायित्व···सोचो न। हम सभी चले जावेंगे। तो···जनता की सुरक्षा का भी तो उत्तरदायित्व हम पर ही है न। जब सब अयोध्या लौटकर आवेंगे तो वहाँ भी सभी व्यवस्था तैयार रखनी होगी। माताएँ भी इतनी लम्बी यात्रा नहीं कर सकतीं। अतः उनका और बहुओं का सीधे ही अयोध्या जाना ठीक रहेगा।

भरत : जैसी आपकी आज्ञा हो।

दृश्य ग्यारह

[गंगातट पर वाल्मीकि का आश्रम वाल्मीकि, कुश, लव यज्ञ से लौटे हैं और सीता यज्ञशाला के समीप बरगद के नीचे बने चबूतरे पर उनके साथ बैठी हैं]

सीता : गुरुदेव ! यज्ञ कैसा रहा अवधनरेश का ? मैं तो अपने कुश-लव के बिना रात-रात-भर सो ही नहीं पाती थी। पहली बार इन्हें छोड़ा था, मन डरा-डरा सा रहता था। इनके बिना न भूख लगती थी, न नींद आती थी।

वाल्मीकि : सीता बेटी ! यज्ञ अनुपम था। अवधनरेश राजा राम ने आर्यावर्त के सभी ऋषि, मुनि, महर्षि और पंडितों को आमंत्रित किया था। सारी अयोध्या नगरी नैमिषारण्य में बसी हुई थी। हम सबके रहने की उत्तम और अनुकूल व्यवस्था थी।

सीता : आर्य राम घूम-घूम कर सभी की चिन्ता स्वयं कर रहे होंगे न गुरुदेव, उनके आज्ञाकारी और यशस्वी तीनों भाई भी पूरी विनम्रता से सबका स्वागत-सत्कार कर रहे होंगे। वहाँ उनकी तीनों माताएँ और मेरी बहनें देवी उर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्ति सहित सभी पारिवारिक भी थे न।

वाल्मीकि : सभी थे। सारा परिवार था। सारा अवध था। वह महायज्ञ भी था और महान समारोह भी।

कुश : माँ, सुनो। वहाँ लंका का राजा विभीषण भी आया था। उसके साथ बड़े-बड़े शरीर वाले विशालकाय राक्षस भी आये थे।

सीता : कुश ! राजा विभीषण अवश्य आये होंगे बेटे ! उन्हें अवध के राजा राम ने ही लंका का राजा बनाया है। लंका से राक्षस भी आये थे ?

कुश : माँ ! उनको लोग राक्षस कहते थे। किन्तु राजा विभीषण और वे राक्षस हर आमंत्रित की घूम-घूम कर सेवा कर रहे थे। बड़े ही विनम्र थे। हमारा गाना सुनकर तो विभीषण और राक्षस झूमने लगते थे। रोने लगते थे। कहते थे सीता माता के साथ अवध के लोगों ने अन्याय किया है।

लव : भइया ! विभीषण हमारा गाना सुनकर बार-बार मुझे अलग बुलाकर पूछता था कि बेटे, तुम जानते हो, सीता जी कहाँ हैं। मैं मुँह बनाता तो वह गिड़गिड़ाकर कहता, बेटे पता हो तो बता दो। वह जहाँ भी हों हम वहीं जाकर उनके चरणों पर गिर पड़ने को आतुर हैं। वह हमारी माँ हैं।

सीता : (**छलछलायी आँखों और भीगे स्वर में**) लव, बेटे ! विभीषण पूछ रहे थे···विभीषण कह रहे थे ऐसा ?

लव : हाँ माँ ! वही नहीं। जब गुरुदेव के कहने पर हम राम-कथा गाते घूमते रहे यज्ञ नगर में, तो एक-दो बार किष्किन्धा के राजा सुग्रीव मिले थे भयानक वानरों-रीछों के साथ। वे भी सबकी सेवा करते घूमते रहे थे। हमसे राम-कथा सुनी तो हमारे पीछे-पीछे हो गये। मौका मिलते ही बोले माँ कि बच्चो, सीता जी कहाँ होंगी ? बता दो तो हमारा जन्म सुधर जावे। सीता जी के बिना राजा राम को देखकर सारा संसार अधूरा लगता है।

सीता : तूने क्या बताया बेटे लव ?

लव : हमने ऐंठकर कहा, बड़े आये सीता जी वाले। अरे बन्दरों के राजा, तुम चाहो भी तो सीता जी क्या तुमसे मिलेंगी !

सीता : वहाँ हनुमान नाम का भी कोई विशालकाय बन्दर तुम्हें मिला होगा।

कुश : हाँ-हाँ, मिला था। जब हम आपकी व्यथा-कथा वीणा पर गाते तो वह आँखों में आँसू लिये हमसे प्रार्थना करता कि अब बस करो, सुना नहीं जाता आगे।

सीता : लव बेटे, वहाँ अंगद नाम का वानर भी था क्या कोई ?

लव : हाँ, था तो। वह अपने को किष्किन्धा का युवराज बताता था।

बड़ा सौम्य और सीधा-सादा था वह।

सीता : (हँसकर) वह सीधा-सादा था ? तुम्हारे सामने सीधा बना रहा होगा। वैसे वह बड़ा टेढ़ा है। अच्छा कुश ! वहाँ राजा राम की माँ को तुमने देखा ?

कुश : जी, देखा था। मैं राम-कथा गा रहा था तो पूछ रही थीं—यह गीत किसने बताया तुम्हें ! बार-बार सुनाओ बच्चो, इस गान को सुनाते ही रहो।

सीता : लक्ष्मण मिले थे ? कैसे हैं वह ? उनकी पत्नी को कहीं देखा था ? उर्मिला नाम है उसका।

लव : कुश भइया जब राजमाता कौशल्या से बात कर रहे थे उसी समय लक्ष्मण जी की पत्नी उर्मिला मुझसे बार-बार पूछ रही थीं कि बेटे, तुम्हें दीदी सीता जी का पता मालूम है ? वह कहाँ हैं ?

सीता : तुमने क्या कहा बेटे ?

लव : माँ, मैंने वही कहा जो गुरुदेव ने बताया था।

सीता : क्या कहा था गुरुदेव ने ?

लव : मेरे ! गुरुदेव ने कहा था कि तुम लोग राम-कथा गा देना, बाकी कुछ न बताना।

सीता : बेटो ! चिरंजीवी रहो। अवध-नरेश के यज्ञ में तुम गये। वहाँ तमाम ऋषि-महर्षि आये। विभीषण सहित लंका के राक्षस आये। वहाँ सुग्रीव सहित अंगद, जामवन्त आदि आये। सारा घर था, हनुमान थे, केवल वहाँ न थी तो अभागिन सीता न थी।

कुश : थी माँ थी। यज्ञ में सीता की बड़ी-सी सोने की मूर्ति थी। सजीव-सी।

सीता : थी बेटे ? सीता की मूर्ति थी ?

कुश : हाँ माँ ! वहाँ राजा राम के बायें सीता जी की भव्य सोने की ऐसी मूर्ति थी जो साक्षात सीता लगती थी। सुना राम जी ने कहा था कि मैं दूसरी शादी तो यज्ञ सम्पन्न करने के लिए करूँगा नहीं। तब यह युक्ति निकाली गयी थी कि सीता के कद की स्वर्ण-मूर्ति उनके वामांग में रखी जाये।

वाल्मीकि : बेटी सीता ! शीघ्र ही अवध के राजा मेरे आश्रम में अवध की जनता के साथ आने वाले हैं।

सीता : अवध के राजा राम ? इस आश्रम में ? यहाँ क्यों आ रहे हैं वह ?

वाल्मीकि : सीते ! वह तुम्हें फिर से अपनाने आ रहे हैं। उन्हें लग रहा है कि उन्होंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। वह अपने अन्याय का

प्रायश्चित करने आ रहे हैं।

सीता : आपने उन्हें आने की आज्ञा दे दी है ?

वाल्मीकि : हाँ, दे दी है।

सीता : इतना बड़ा अन्याय न करिये गुरुदेव ! आर्य यहाँ क्यों आवें ! उन्हें रोकिये। मैं अब फिर से अवध नहीं जा सकूँगी।

कुश : वहाँ से चलते समय राजा राम ने मुझसे भी कहा था माँ, कि बेटे अब मेरा समय क्षमा पाने का है। वे राजा राम बड़े कातर-से थे। माँ, उन्हें क्षमा नहीं किया जा सकता क्या ? वे हमारे पिता हैं। हम माँ और पिता को एक साथ रहते देखना चाहते हैं।

सीता : कुश, बेटे ! तू नहीं जानता कि आर्य को सीता कितना चाहती है। तू नहीं जानता कि राजा राम ने सीता को कितनी निर्दयता से घोर जंगल में डाल दिया। आज भी मैं अपने राम के लिए मर रही हूँ और जी भी रही हूँ। मरकर भी मुझे कहीं लगता है कि मेरे राम कभी न कभी मुझे अवश्य मिलेंगे। मैं राम के बिना न जी सकती हूँ न मर सकती हूँ। बार-बार मन करता है कि एक बार मैं अपने राम से मिल सकूँ तो मेरा जीवन धन्य होगा, लेकिन अब ऐसा नहीं होगा। सीता का भी कोई अहम् है, सीता फिर कितनी बार टूटने के लिए उनसे जुड़े। नहीं गुरुदेव ! ऐसा न होने दीजिये। मैं आपके आश्रम में अपने बच्चों के साथ सुखी हूँ। मुझे फिर से दुख के गहन संसार में न धकेलिये।

वाल्मीकि : राम के मन की व्यथा को तुम नहीं समझोगी तो और कौन समझेगा बेटी ! केवल अपने दुःख को दुःख जानकर राम के दुःख को मत भुला दो। राम का दुःख कितना बड़ा दुःख है। दुःख के सिवा राम को मिला ही क्या है। तुम ही हो जो उनका दुःख बाँट सकती हो। तुम्हीं हो जो उनके निर्णय को, चाहे वह तुम्हारे लिए कितना ही कठोर रहा हो, महानता दे सकती हो, और ऐसे लोगों की बातों को झुठला सकती हो जिन्होंने तुम्हारे चरित्र पर संदेह किया था।

सीता : यदि आर्य मुझे अवसर देते तो मैं क्या इस आधारहीन आशंका को तभी नहीं झुठला सकती थी। मुझे फिर परीक्षा देनी होती तो मैं देती। सहर्ष देती।

वाल्मीकि : अब भी विलम्ब क्या हुआ है। उस परीक्षा का समय अब आया है। तुम यह समझो कि गर्भवती होने के कारण राम ने तुम्हें मेरे संरक्षण में पवित्र गंगा-तट के वातावरण में भेजा था और यहाँ

मेरे आश्रम में तुम्हारे सान्निध्य में लव-कुश का पोषण, शिक्षण और व्यावहारिक परीक्षण आवश्यक था। वह काम पूरा हो गया। जन-जन में इस अवधि में तुम्हारे प्रति आस्था, विश्वास, सहानुभूति बढ़ती गयी है। एक और परीक्षा देकर सबके सामने राम का सिर ऊँचा कर दो और आने वाली पीढ़ियों को अपने चरित्र का आइना सौंप दो। मेरी रामायण का वही अन्तिम अध्याय होगा बेटी !

सीता : यही करते रहना, परीक्षा देते रहना ही शायद मेरी नियति है, गुरुदेव ! यही आपकी भी आज्ञा है। ईश्वर मुझे शक्ति दें।

दृश्य बारह

[मुनि वाल्मीकि का आश्रम है। सीता अपनी पर्णकुटी में है। मुनि वाल्मीकि के साथ तमाम साधु, चेले बैठे हैं। दूर से रथों, जनों के आने का स्वर]

एक शिष्य : मुनि ! आश्रम की ओर रथों के आने के स्वर आ रहे हैं।

दूसरा शिष्य : हाँ, लगता है जैसे बहुत सारे रथ एक साथ आ रहे हैं।

पहला शिष्य : मुनिश्री ! बहुत सारे रथों के आने का स्वर है। लेकिन बिगुल या रणभेरी नहीं बज रही है। कोई विजेता तो नहीं है यह।

दूसरा शिष्य : तो आश्रम की ओर इतने रथों के साथ और आयेगा कौन ! न बिगुल के स्वर, न रणभेरी की गर्जना। निश्चय ही किसी राजा की सेना हमारे आश्रम की ओर आ तो रही है किन्तु हमारी शत्रु नहीं है।

पहला शिष्य : यह सत्रु सेना तो हो नहीं सकती।

वाल्मीकि : शत्रु सेना नहीं तो यह मित्र सेना हो सकती है शिष्यो ! अगर मित्र सेना है तो हमारी जिम्मेदारी और बढ़ जाती है।

दूसरा शिष्य : प्रभु ! वह क्या ?

वाल्मीकि : बेटे ! उनके आतिथ्य, भोजन, जल-पान आदि की व्यवस्था करना।

पहला शिष्य : (**हँसकर**) गुरुदेव ! वह तो हम करेंगे ही। कन्दमूल खाते हैं, कंदमूल ही खिलायेंगे। नदी का जल है ही, कन्दमूल का अम्बार लगा देंगे हम।

वाल्मीकि : (**हँसकर**) ठीक है, ठीक है, जाओ, जो आ रहे हैं उनकी अगवानी कर आश्रम तक ले आओ। हम इस आश्रम में उनका सत्कार

करेंगे।

दोनों शिष्य : जो आज्ञा, गुरुदेव ! हम सभी शिष्य जा रहे हैं उनकी अगवानी करने।

[अवध के लोगों, ऋषियों, मुनियों, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, अंगद, जामवंत आदि अतिथियों के साथ राम-लक्ष्मण आते हैं और मुनि वालमीकि को प्रणाम करते हैं।]

राम : मुनिश्रेष्ठ ! आपकी आज्ञा से ही आपके आश्रम में आया हूँ। वह लोग भी आये हैं जिन्होंने सीता के चरित्र पर प्रश्नचिह्न लगा दिया था। वे स्वयं सीता से क्षमा माँगने यहाँ आये हैं।

वालमीकि : आर्य राम ! वे लोग लाख क्षमा माँगें पर सीता को उन्होंने उस समय कलंकित माना यह क्षोभ सीता के मन से हटता नहीं है। वे लोग क्षमा योग्य हैं भी नहीं। वे आये हैं तो उनसे कहो कि यहाँ से चले जावें। जो हिम को, अग्नि को, सूर्य को, चन्द्रमा को, सीता को कलुषित मानते हों, उन्हें क्षमा किस बात की। उनसे कहा जाये कि वे वापस चले जावें।

राम : मैं उन्हें सीता से, आपसे क्षमा दिलाने के अभिप्राय से ही साथ लाया हूँ। वे सब बेचारे छोटी बुद्धि के थे। उन्हें अग्नि-परीक्षा की बात पता नहीं थी। अग्नि-परीक्षा की बात अयोध्या में बताई भी नहीं गयी थी। वे जब से सीता के बारे में मेरे प्रण को समझे हैं कि मेरा निर्णय सीता को निर्वासित करने का है, तभी से राज-भवन की देहरी पर सिर पीटते रहे हैं। यह सब बात सीता को बताइये गुरुदेव !

वालमीकि : सीता को मैंने बहुत मनाया था राजा राम ! वह नहीं मानती। वह बहुत ही स्वाभिमानिनी है।

राम : सीता स्वाभिमानिनी है यह मैं भी जानता हूँ गुरुदेव ! किन्तु मैं अवध की जनता के साथ सीता के पास आया हूँ तो क्या सीता मेरे पास तक भी नहीं आ सकती ?

वालमीकि : वे आ सकती हैं। उन्हें आना चाहिये भी। यों वह अपने मन की स्वामिनी हैं। आपसे मेरी नैमिषारण्य में जो बातें हुई थीं, उसके अनुसार मैंने सीता बेटी को मनाना चाहा था। वह मानती नहीं। इस समय भी वह यहाँ आ ही जावेगी मैं कह नहीं सकता।

राम : सीता मेरे पास आ नहीं सकती। मैं उसके पास जा नहीं सकता। मुनिवर, हम पति-पत्नी हैं। हमारे बीच अभिमान की दीवार कहाँ

खड़ी होती है।

[सीता का लव-कुश के साथ आना]

सीता : आर्य को अभागिन सीता का प्रणाम। मैं सुन रही थी, ठीक कहते हैं आप, किन्तु मान-सम्मान केवल पति का ही होता है, पत्नी का नहीं ! एक पति निर्दोष पत्नी को भुलावे में डालकर आजीवन वनवास दे दे और उसे इतनी सस्ती समझ ले कि जब चाहे उसके चरित्र को कलंकित मान ले और जब चाहे उसे पवित्र मान ले, तो ऐसी पत्नी का नाम सीता ही हो सकता है आर्य ! क्या सीता का कोई स्वाभिमान नहीं है ?

राम : सीते ! मेरी सीते ! इतनी बड़ी बातें क्यों करती हो। कितना लज्जित करना चाहती हो मुझे।

सीता : आप क्यों लज्जित होंगे आर्य ! आपने लज्जित होने जैसा क्या काम किया है। लेकिन सीता के इतने समीप न आइये नाथ कि सीता अपना स्वाभिमान भी न सम्हाल सके।

राम : समीप आने से रोकती हो। दूर अवश्य रही हो सीते, किन्तु मन की समीपता तो कभी भी घटी नहीं है।

सीता : मन की समीपता आप जानते होंगे आर्य ! शरीर की दूरी मैंने झेली है। झेलूँगी भी। इसीलिए अब बार-बार दूर होने के लिए समीपता चाहती भी नहीं। कुश, लव, आगे बढ़ो बेटे। मुनिश्री ! इस विशाल जनसमूह के सामने लव-कुश को अन्तिम अध्याय पढ़ा दीजिये कि आर्य ही इनके पिता हैं। और मैं ही इनके गीत की भाग्यहीन सीता हूँ। चरण छुओ बेटे, आगे बढ़ो न।

[लव-कुश श्री राम के चरण छूते हैं।]

राम : कुश बेटे, लव बेटे ! (**दोनों को हृदय से लगाकर प्यार करते हैं**) इन्होंने तो सीता, मेरे यज्ञ के समय मेरा मन पूरी तरह जीत लिया था। ये बालक हमारा अश्व रोकने को तत्पर थे।

सीता : बेटे किसके हैं (**हँसती हैं। राम और अन्य लोग भी हँसते हैं**) आपके बेटे ही तो आपको चुनौती दे सकते हैं।

वाल्मीकि : न विश्वास हो राजा राम, तो इनसे आपका कोई भी वीर युद्ध करके देख ले।

राम : मुनि ! मेरा खून इससे गौरवमय होता है। मैं तो चाहता हूँ कि इन बालकों की वीरता, अपने वीरत्व की स्थापना में अपव्यय न होकर जनता के कल्याण में लगे।

लव : पिताजी ! निश्चित रहिये। हम अपना पौरुष केवल जनकल्याण

पर ही लगायेंगे।

सीता : बेटे ! ऐसे बोलो जैसे पुत्र पिता से बोलता है। पिता से गर्वीले बोल नहीं बोले जाते।

कुश : लव ! आगे आओ। पिताजी के साथ हमारे कितने ही पूज्य यहाँ आये हैं, उनका चरण स्पर्श करें हम। (**चरण छूते हुए**) पिताजी, हमारा सबसे परिचय करा दें।

[राम सबसे उन्हें मिलाते हैं।]

सीता : आर्य ! ये देवदूत-से आपके दो बच्चे आपके चरणों में रख दिये मैंने। इन्हें आप अपनाइये। ये आपके हैं।

राम : इन बच्चों के साथ मैं तुम्हें भी अपनाने आया हूँ। इस जनता के सामने, इन ऋषियों के सामने एक बार फिर अपने को निर्दोष सिद्ध कर दो और मेरे साथ वापस चलो अयोध्या।

सीता : मेरे लिए भी अनिवार्य हो गया है कि आप सबके सामने मैं अपने को निर्दोष सिद्ध करूँ। मुझ पर लांछन लगाया गया था। मुझे उस लांछन को मिटाना तो होगा ही।

लक्ष्मण : सारी अवध की जनता जानती है कि आप निर्दोष हैं। आपका चरित्र पावन है। मैं आपकी लंका में दी गयी अग्नि-परीक्षा का साक्षी हूँ।

विभीषण : साक्षी मैं भी हूँ। हनुमान, सुग्रीवराज, अंगद, जामवंत आदि सभी हैं।

सीता : लक्ष्मण ! मैं भावना में इतनी बह गयी थी तुमसे बोल भी नहीं सकी। भरत, शत्रुघ्न कुशल से हैं न, माण्डवी, उर्मिला, श्रुतकीर्ति ठीक हैं न। तुम्हारे और भरत के शत्रुघ्न के बच्चे ठीक हैं न। माताएँ कुशलता से तो हैं।

लक्ष्मण : सारी दुनिया ठीक है भाभी। ठीक नहीं है तो वे नहीं हैं जिनके बारे में आप पूछ रही हैं। आपसे दूर रहकर हमारा सारा परिवार दुखी है। भइया दुखी हैं, मैं दुखी हूँ।

राम : सीते ! अब एक बार फिर अयोध्या चलकर परिवार को सुख लौटा दो। एक बार फिर सिद्ध कर दो कि तुम्हारा चरित्र जल की तरह निर्मल और अग्नि की तरह उज्ज्वल है।

वाल्मीकि : बेटी, सीते ! राजा राम को तुम्हारी एक और परीक्षा चाहिये।

सीता : एक नहीं सौ परीक्षाएँ दे सकती हूँ, किन्तु इन परीक्षाओं का कोई अन्त है ! मेरे चरित्र पर लांछन है, इसलिए एक और परीक्षा देती हूँ फिर नहीं चाहती कि मैं आपके पास जाऊँ और फिर अपने

चरित्र की परीक्षा देती रहूँ। परीक्षा देती हूँ। अगर मेरा चरित्र निष्कलुष है तो धरती माँ, तूने मुझे जन्म दिया था, तू ही आज मुझे अपने में समा ले। अपनी गोद में ले ले मुझे। और अगर मैं कलंकिनी हूँ तो माँ, तू भी मुझे मत अपनाना।

[धरती फटती है। एक सिंहासन उभरता है। सीता उस पर बैठती हैं। सिंहासन धरती के गर्भ में डूबता है। सीता मुस्कराती-सी हैं। राम चिल्लाते हैं। लव-कुश चिल्लाते हैं।]

राम : सीते ! मेरी सीते !

सीता : नाथ, इस परीक्षा में भी मैं खरी उतरी हूँ। मेरा अन्तिम प्रणाम लें।

राम : नहीं, नहीं, सीते ! न जाओ तुम, सीते ! सीते ! ··· (**दूर तक जाते स्वर**) सीते ! हमें छोड़कर न जाओ सीते !

कुश-लव : माँ, माँ !

राम : सीते, सीते !

जनसमूह : महारानी ऐसा न करिये, ऐसा न करिये।

[धरती से उठा सिंहासन सीता सहित धरती में समा जाता है।]

दृश्य तेरह

[राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुमंत्र आदि बैठे हैं।]

राम : सुमंत्र! मैं सीता के चले जाने के बाद एकदम टूट-सा गया हूँ। मेरी उस प्रियतमा को जिस धरती ने जन्म दिया था उसी ने अपनी गोद में समा भी लिया। जीवन-भर अपनी सीता को कष्ट देने और चरित्र-परीक्षा लेने के सिवा मैंने दिया भी क्या ? जानते हुए भी कि वह अपने निर्मल और पवित्र चरित्र में महान है। उसके पक्ष में स्वयं सफाई देने के बजाय मैंने उसे आजीवन वन-वासिनी बनने के लिए बाध्य किया। मुझे क्या हक था उस समय कि मैं कहूँ कि वह अपने चरित्र की एक और परीक्षा देकर अवध लौट आये।

सुमंत्र : उनका निर्णय अवध की अबोध जनता के लिए बहुत ही दु:खदायी था। वह अपनी माँ की गोद में समा गयी पर हमें, सारे

अवध को निरीह छोड़कर।

राम : इस अयोध्या में, इस कनक भवन में, इस राजभवन में अब सीता के बिना रह सकना मेरे लिए दूभर हो गया है। मैं चाहता हूँ कि भरत को अवध का राज्यभार सौंपकर मैं संन्यास ले लूँ।

भरत : भइया ! आप यह मुझे किस अपराध की सजा दे रहे हैं ?

राम : मेरे बाद तुम हो, भरत ! राज्य का भार मेरे बाद तुम्हारे कंधों पर होना चाहिये। तुम इस योग्य हो भी।

भरत : भइया ! आपने मेरे, लक्ष्मण के, शत्रुघ्न के पुत्रों को अलग-अलग नगरों का राज्य दे दिया है।

राम : वह मैंने ठीक किया। वह राज्य मैंने उन्हें उपहारस्वरूप दिये हैं। अवध का राज्य मेरे पास अब भी है।

भरत : लेकिन भइया ! लव-कुश को अभी कोई राज्य नहीं दिया गया। मैं चाहता हूँ कि अवध का उत्तरांचल कुश को और दक्षिणांचल लव को सौंप दिया जाय। आप संन्यासी होंगे तो मैं भी वहीं आपकी सेवा करूँगा।

राम : भरत ! मुझे केवल अवध का राजसिंहान स्वयं छोड़कर किसी को देने का निर्णय लेना है। उस पर पहला अधिकार तुम्हारा है भरत !

भरत : कहा न भइया ! मुझे राज्य नहीं चाहिए। जहाँ आप जावेंगे वहीं मैं भी चलूंगा।

राम : भरत, ऐसा हठ न करो। मेरी बात नहीं मानोगे ? मेरे बाद मेरे उत्तराधिकारी तुम हो।

भरत : तो भइया ! मैंने राज्य लिया और जैसा अभी कहा, कुश और लव बेटों को दे दिया। अभी राजसभा से स्वीकृति भी दिलाये देता हूँ। कोशल देश अर्थात् उत्तरांचल कुश को दिया जाता है। उसकी राजधानी होगी कुशावती। दक्षिण का भाग लव को देता हूँ। उसकी राजधानी श्रावस्ती होगी। शत्रुघ्न के पुत्र सुबाहु को मथुरा और शत्रुघाती को विदिशा का राज्य दिया ही जा चुका है। इसी तरह मेरे तक्ष को तक्षशिला और पुष्कल को पुष्कल का राजा बनाया जा चुका है। लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु को कारू-पथ का राजा बना दिया गया है। अब यह सातों भाई परस्पर प्रेम से अपना-अपना राज्य करेंगे।

दृश्य चौदह

[राम, लक्ष्मण बैठे हैं। सुमंत्र का प्रवेश।]

राम : आइये महामंत्री ! क्या समाचार लेकर प्रातःकाल ही आने का कष्ट किया है।

सुमंत्र : राजन् ! द्वार पर एक तपस्वी पधारे हैं। तुरन्त आपसे मिलना चाहते हैं। कहते हैं वह महर्षि अतिबल के दूत हैं। मुझे उन्होंने स्वयं बुलाकर आपके पास अपने आने का समाचार देने को कहा है।

राम : उन्हें सादर मेरे पास ले आओ।

सुमंत्र : जैसी आज्ञा। मैं अभी उन्हें लिवा लाता हूँ। द्वारपाल, मेरे साथ चलो।

[तपस्वी आते हैं। राम आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हैं।]

राम : मुनि ! राम का सादर प्रणाम स्वीकार कर यह सुवर्ण आसन ग्रहण करें।

मुनि : राजा श्री राम ! मुझे तत्काल आपसे कुछ गुप्त बात करनी है। लेकिन शर्त यह होनी चाहिये कि हमारी वार्ता नितान्त गुप्त रहे। वार्ता के बीच कोई व्यवधान न पैदा हो।

राम : ठीक है मुनिवर ! वार्ता गुप्त रहेगी। कोई भी बीच में व्यवधान नहीं पैदा करेगा। लक्ष्मण ! मैं मुनि से एकान्त वार्ता करूँगा। तुम स्वयं द्वार पर रहोगे। किसी को भी अन्दर नहीं आने दोगे।

लक्ष्मण : ऐसा ही होगा भइया !

राम : और सुनो। यदि मेरी और मुनि की वार्ता के बीच जो कोई भी खलल डालेगा वह तुरन्त मृत्यु को भोगेगा।

लक्ष्मण : जी, ऐसा ही होगा। द्वार पर मैं स्वयं रहूँगा। किसी तरह का व्यवधान नहीं पड़ने दूंगा।

[लक्ष्मण जाते हैं। उनके साथ सुमंत्र और द्वारपाल भी चले जाते हैं।]

राम : मुनि ! अब यहाँ पूर्ण एकान्त है। कोई भी हमारी बातें नहीं सुन सकता।

मुनि : राजा राम ! मुझे ऋषि अतिबल ने भेजा है। मैं काल हूँ। सभी देवताओं के परामर्श से ब्रह्माजी ने चाहा है कि भगवान विष्णु जिस

काम के लिए धरती पर मनुष्य-लीला करने गये थे वह काम पूरा हो चुका है। देव-लोक में बराबर यह चर्चा होती है कि भगवान विष्णु क्षीर सागर में लौट आयें और देवताओं के कल्याण का कार्य करें। अपने लोक को सम्हालें। नर के रूप में अवतार लेकर जो कुछ आपको करना था वह सब काम आप पूरा कर चुके हैं। देवी लक्ष्मी को भी अब आपकी प्रतीक्षा है। क्योंकि सीता जी को आप पहले ही यहाँ से भेज चुके हैं।

राम : **(हँसकर)** मुनि काल ! मैं यह भी भूल गया था कि मैं कौन था, क्यों आया था, क्या करना था और क्या-क्या करने के बाद कब वापस जाना था। मैंने मनुष्य रूप लेकर जो लीला शुरू की तो उस लीला में मैं स्वयं ही खो गया। वास्तव में मनुष्य जीवन देव जीवन से भी मुझे इतना आकर्षक लगा कि मैं मनुष्य ही बना रह गया। आप स्मरण न कराते तो अभी बना ही रहता।

मुनि : **(हँसकर)** मैं सब मनुष्यों की अवधि निर्धारित करता हूँ। उसी अवधि की आपको भी याद दिलाने आ गया हूँ।

राम : अवधि की याद दिलाने ! **(जोर से हँसते हैं।)**

मुनि : आप प्रभु हैं किन्तु जब तक मनुष्य रूप में हैं तब तक आपकी आयु मेरे वश में है। **(जोर से हँसता है)** यों भी अपना काम सभी को करना ही होता है। मैं तो ब्रह्मा जी के कहने से आज आपको याद दिलाने भेजा गया हूँ।

राम : आपने ठीक कहा। मनुष्य मरणशील प्राणी है। मैं मनुष्य बना हूँ तो वह नियम मुझे भी मानना ही है। मनुष्य को जन्म लेने के बाद एक न एक दिन मरना ही है। मैंने भी मनुष्य रूप में जन्म लिया है तो मृत्यु का वरण मुझे भी करना ही है। मैं अब देर नहीं करूँगा मुनि !

[लक्ष्मण द्वार पर बैठे हैं। सहसा मुनि दुर्वासा का आना।]

दुर्वासा : द्वार पर कौन है यह ? मुझे तुरन्त राजा राम से मिलना है।

लक्ष्मण : मुनि ! मुझ लक्ष्मण का प्रणाम लें। पधारें। मैं आर्य का छोटा भाई हूँ। आपको घड़ी-दो घड़ी प्रतीक्षा करनी होगी मुनि ! अभी राजा श्री राम किसी और मुनि से एकान्त वार्ता कर रहे हैं। जैसे ही वह बाहर आवेंगे मैं आपको आर्य से मिला दूँगा।

दुर्वासा : **(क्रोध से)** मिला दोगे ? बड़ा उपकार करोगे सौमित्र ! मैं घड़ी-भर भी किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। राजा राम से तुरन्त जाकर

कहो कि मुनि दुर्वासा अभी तुरन्त उनसे मिलना चाहते हैं।

लक्ष्मण : मुनि ! जब तक पहले गये हुए मुनि बाहर नहीं आ जायेंगे तब तक मैं भी अन्दर नहीं जा सकता। मुझे क्षमा करें। मुझे ऐसी आज्ञा है।

दुर्वासा : अरे लक्ष्मण ! मुझे जानता नहीं तू ! मैं दुर्वासा हूँ। यदि तुरन्त तुमने मुझे राम से नहीं मिलाया तो मैं शाप दे दूँगा। राम सहित तुम सभी भाइयों के सभी बेटे व सम्बन्धी मर जावेंगे। एक भी नहीं बचेगा। वह कौन मुनि है राम के पास जो मुझसे भी बड़ा है। वह मुनि नहीं है राम का काल है, तुम्हारा काल है, इसलिए मुझे रोको मत।

लक्ष्मण : मुनि ! आपके क्रोध व शाप की बात मैंने सुनी है। सभी क्यों समाप्त हों ? सब भाइयों, सब पुत्रों की अपेक्षा केवल मेरा समाप्त होना ठीक है। अतः लक्ष्मण ही आर्य का आदेश न मानकर रामकी प्रतिज्ञा के अनुसार समाप्त हो जाय। मुनिश्री ! मैं श्री राम के पास जाता हूँ ताकि आपके शाप के भाजन अन्य लोग न बनें।

[राम और मुनि एकान्त में बात कर रहे हैं। लक्ष्मण का अन्दर आ जाना]

राम : क्या है लक्ष्मण ! जब मना किया था कि मेरी और मुनि की बातों के बीच कोई अन्दर न आये तो तुम क्यों आ गए ?

लक्ष्मण : द्वार पर मुनि दुर्वासा खड़े हैं। बहुत क्रोध में हैं। वह तुरन्त आपसे मिलना चाहते हैं। इसीलिए आना पड़ा भइया ! क्षमा करें मुझे।

मुनि : तो हम चले राजा राम, अब आप उनसे बात करें।

राम : ठीक है, आपकी बात मैं समझ गया, प्रणाम लें।

मुनि : ठीक है, मैं चल रहा हूँ। (**जाते हैं।**)

राम : लक्ष्मण ! तुम्हें मेरी प्रतिज्ञा का तो ध्यान रखना चाहिये था। हमारी बातों के बीच क्या तुम्हें ही आना था ! तुम न आते, सीधे मुनि दुर्वासा को भेज देते।

लक्ष्मण : मुनि दुर्वासा ने जो बातें कहीं उससे मैं डर गया।

राम : भेजो उन्हें अब।

[लक्ष्मण ऋषि दुर्वासा को लेकर आते हैं।]

राम : मुनि दुर्वासा को राम का प्रणाम।

दुर्वासा : मैं दीर्घकाल से भूखा रह कर तप कर रहा हूँ। आज मेरे तप का

अंतिम दिन है। मैंने निश्चय किया था कि तप पूर्ण होने पर मैं अयोध्या के राक्षस-द्रोही राजा राम के हाथों से भोजन ग्रहण करूँगा। राजा राम ! आज मुझे तुम अपने हाथों से परोस कर भोजन कराओ !

राम : स्वीकार है। मैं आपको अपने हाथों से परोस कर भोजन कराऊँगा। मुनि ! आइये आप इधर विश्राम कीजिये, मैं भोजन की व्यवस्था करता हूँ।

दृश्य पन्द्रह

[पर्दा गिरता है। पर्दा उठता है। राम, लक्ष्मण, भरत, वशिष्ठ आदि बैठे हैं।]

लक्ष्मण : भइया ! आपकी प्रतिज्ञा के अनुसार मैं मरण को वरण करने जा रहा हूँ। आपने कहा था न, जो आपकी वार्ता में व्यवधान डालेगा। मुझे न पावेगा। किन्तु अब आप उदास क्यों हैं ? मेरे लिए शोक न कीजिये। मुझे दण्ड दीजिये। अन्यथा आपको वचन न निभाने के लिए नर्क की यातना मिल सकती है।

राम : लक्ष्मण ! वचन मैं भी झूठा नहीं होने दूँगा। तुमने बाजी जीत ली। तुम आगे हो गये हो। सुमंत्र ! लक्ष्मण सरयू में समाधि लेने जा रहे हैं। मैं भी उनके बाद सरयू में समाधि लूँगा। भइया लक्ष्मण, तुम चलो वचन निभाओ। हम साथ नहीं जा सके इसलिए कि तुम्हारे कर्म अगले जन्म में मेरे बड़े भाई होने के हो चुके हैं। छोटा भाई होकर तुमने बहुत भोगा। अब पहले जाकर तुम अगले जन्म में मेरे बड़े भाई बनकर मुझसे भरपूर सेवा कराना। जाओ लक्ष्मण, विदा ! **(लक्ष्मण सबसे विदा होकर जाते हैं)** सुमंत्र ! हमारे भी चलने की तैयारी करो। भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव और अवध के प्रजा-जन, मेरे मित्र बन्दर, रीछ जो भी चाहें मेरे साथ चल सकते हैं। हनुमान ! तुम्हें मेरे बाद अयोध्या की रक्षा करनी है और धरती पर ही रहना है। अभी जब तक भक्ति और आदर है तुम रहोगे। महाप्रलय के बाद दिव्यलोक को आ जाना। गुरुदेव ! आप हमारे पितृपूज्य हैं। हमें अन्तिम आशीर्वाद दीजिये और अपने ज्ञान-प्रकाश से हमारे बच्चों को भी आलोकित कीजिये। प्रणाम करते हैं हम। माताएँ पहले ही जा चुकी हैं। अब हम तीनों भाई भी जा

रहे हैं। लक्ष्मण सरयू में अब तक समाधि ले चुके होंगे। अब हमें भी सरयू में चलकर समाधि लेनी है। ॐ नमः शिवाय :! धरती हमेशा अक्षय रहे, आकाश अपनी अनन्त छाया से धरती को स्नेह समर्पित करता रहे और गंगा आदि नदियाँ इसे सींचती रहें। पवन इसे दुलारते रहें, सागर इसे पखारते रहें। इस धरती को प्रणाम कर इस सृष्टि के पाँचों तत्व हम इन्हीं को समर्पित कर देंगे। आइये, प्रस्थान करें।

॥ इति राम-कथा नाटक ॥

आभार

इस पुस्तक के लिए मैं आभारी हूँ—

श्री भोलानाथ तिवारी आई० ए० एस० का जिन्होंने रेडियो में गन्ना विभाग उ० प्र० के प्रायोजित कार्यक्रम 'रसभारती' के लिए 'राम-कथा' प्रसारित करने के मेरे सुझाव को स्वीकार कर स्वयं प्रेरित भी किया और अपने अमूल्य सुझाव भी दिये।

मानस संगम कानपुर ने वर्ष १९८१ में इस रचना पर मुझे 'ललित साहित्य पुरस्कार' देकर सम्मानित किया। संस्था के संचालक श्री बद्रीनारायण तिवारी व संयोजक श्री ललित मोहन अवस्थी (अब स्वर्गीय) ने मुझे यह सम्मान देकर मेरी लेखनी का गौरव बढ़ाया।

मेरी पत्नी मुझे निरन्तर लेखन में, पुस्तक प्रकाशन में जिस लगन से तकाज़ा करती रही, आलस्य तोड़ती रही, उसके लिए उनका उल्लेख कर देना भी समीचीन होगा।

पाँच साल तक इसे पुस्तकाकार प्रकाशित कराने को मुझे कहते रहने पर भी अपनी हिम्मत न छोड़ने वाले और मुझे इसके प्रकाशन के लिए बार-बार लखनऊ आकर तैयार करते रहने वाले मेरे मित्र जगदीश भारद्वाज जी ने इसे एक सुन्दर पुस्तक का रूप देकर मेरी मेहनत को आप तक पहुँचाने का असाध्य श्रम किया है।

प्रेस-कापी तैयार करने में सर्वश्री बृजकुमार त्रिपाठी, और मुख्य रूप से के० के० अमरनानी ने श्रम साध्य मदद की।

—**गोपाल उपाध्याय**

और इसी परंपरा में शीघ्र प्रकाश्य
श्री गोपाल उपाध्याय विरचित

कृष्ण-कथा

एवं

शिव-कथा

नाट्य रूप में

३५४३, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२
फोन : २७६३८६